

**DUE DATE SLIP**

**GOVT. COLLEGE, LIBRARY**

KOTA (Raj )

Students can retain library books only for two weeks at the most.

BORROWER'S No.	DUE DATE	SIGNATURE

॥ श्रीः ॥

## विद्याभवन राष्ट्रभाषा ग्रन्थमाला

६२

### आचार्य हेमचन्द्र और उनका शब्दानुशासन : एक अध्ययन

[ सामाजिक सांस्कृतिक विश्लेषण, व्याकरणशास्त्र का तुलनात्मक-  
आलोचनात्मक विवचन, प्राकृत भाषा की प्रमुख प्रवृत्तियों का  
निष्पण एव भाषावैज्ञानिक तत्त्वों का अनुरालन ]

डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री,

अधीनपाचार्य, न्यायनार्थ, एन० ए० ( मसूदा, हिन्दी एवं प्राकृत ),

पा० ए० ३१०, गेल्डे-निस्ट

अध्यक्ष : संस्कृत एवं प्राकृत विभाग, एच० १० दैन कलेज,

नाग ( मध्यविश्वविद्यालय ) ।

35114



चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी-१

प्रकाशक • चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी  
मुद्रक • विद्याविलास प्रेस, वाराणसी  
संस्करण • प्रथम, वि० संवत् २०२०  
मूल्य • १५-००

© The Chowkhamba Vidya Bhawan,  
Chowk, Varanasi-1  
( India )  
1963  
Phone : 3076

THE  
VIDYABHAWAN RASHTRABHASHA GRANTHAMALA

62



A CRITICAL STUDY OF SIDDHA HEMA  
S'ABDĀNUS'ĀSANA

[ *A Socio-Cultural, Comparative and Philological  
Study of Haima Grammar* ]

BY

*Prof. Dr. N. C. Shastri,*

M A , Ph. D. ( Gold Medalist )

Head of the Deptt. of Sanskrit & Prakrit,  
H. D. Jain College, Arrah. ( Magadh University. )



THE  
CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN  
VARANASI-I

1963

## विषय-सूची

पुरोवाक्	१-४
प्रस्तावना	३-९०
पुरातन जैन वैयाकरण	३
हेम के पूर्ववर्ती व्याकरणों के दोष और हेम द्वारा उनका परिमार्जन	४
हेम शब्दानुशासन के उपनीच्य	६
सास्कृतिक सामग्री चतुर्पद	९
उल्लिखित नगर और उनका आधुनिक बोध	१२
"    गाँव	१८
"    पर्वत	१९
"    नदियाँ	२१
"    वन	२४
सामाजिक जीवन	२५
जाति-व्यवस्था	२५
ब्राह्मण जाति	२८
क्षत्रिय जाति	२९
वैश्य और शूद्र जाति	३०
सामाजिक संस्थाएँ	३१
गोत्र	३१
वर्ग	३३
सपिण्ड	३४
ज्ञाति	३६
कुल	३६
वस	३७
विभिन्न सम्बन्ध	३७
विवाह	३८
अन्य सम्कार	४०
साधन-व्यवस्था	४२
स्नान पान	४२

संस्कृत-अक्ष	...	...	४३
संस्कृत-अक्ष	...	...	४४
व्यञ्जन	...	...	४५
सिद्ध-अक्ष	...	...	४६
निष्ठाक्ष और पञ्चाक्ष : नाम और विवेचन	...	...	४८
भोजन बनाने में प्रयुक्त होने वाले वर्तनों की तालिका			५०
स्वास्थ्य एवं रोग	...	...	५१
वस्त्र, अलंकार एवं मनोविनोद	...	...	५३
झीडा-विनोद	...	...	५५
भाषार-विचार	...	...	५८
लोक-मान्यतायें	...	...	६२
कला-कौशल	...	...	६३
शिक्षा और साहित्य	...	...	६४
आर्थिक जीवन	...	...	६६
दृष्टि	...	...	६७
फसलें	...	...	७०
घृष्ट और औषधियाँ	...	...	७०
व्यापार-वाणिज्य	...	...	७०
उद्धित सिद्धे	...	...	७१
व्यवहार-क्षय-विक्रय	...	...	७३
वाणिज्य-पथ	...	...	७५
क्षणदान के नियम	...	...	७६
निमान-भान प्रमाण	...	...	७९
पेसे और पेसेवर	...	...	८१
प्रशासन	...	...	८४
राजतन्त्र और संघ शासन	...	...	"
राज्य की आमदनी के साधन	...	...	८६
कतिपय शब्दों की व्युत्पत्तिमूलक विनोदतायें	...	...	८७
आभार	...	...	९०
ग्रन्थारम्भ	...	...	१-२८४
आमुप	...	...	१-७

प्रथम अध्याय

आचार्य हेम का जीवन परिचय	८-१६
[ जन्मतिथि, जन्मस्थान, माता पिता और उनका धर्म, शैशवकाल, शिक्षा और सूरिपद, सिद्धराज जयसिंह के साथ संबंध ]	
सिद्ध हेम के लिखने का हेतु	१६
हेमचन्द्र और सम्राट् कुमारपाल	१८
रचनाएँ	२३

द्वितीय अध्याय

संस्कृत शब्दानुशासन एक अध्ययन	२६-५४
प्रथम अध्याय विरलेपण	२६
द्वितीय अध्याय विरलेपण	३०
तृतीय अध्याय विरलेपण	३३
चतुर्थ अध्याय विरलेपण	३८
पञ्चम अध्याय विरलेपण	४०
षष्ठ अध्याय विरलेपण	४५
सप्तम अध्याय विरलेपण	५०

तृतीय अध्याय

हेमशब्दानुशासन के खिलपाठ	५५-६६
धातुपाठ विवेचन	५५
गणपाठ विवेचन	५६
वर्णादि सूत्र विवेचन	५७
लिङ्गानुशासन विवेचन	६७

चतुर्थ अध्याय

हेमचन्द्र और पाणिनि तुलनात्मक समीक्षा	६७-९०
---------------------------------------	-------

पञ्चम अध्याय

हेमचन्द्र और पाणिनीतर प्रमुख वैयाकरण	९१-१०९
हेम व्याकरण और कातन्त्र	९२

भाचार्य हेम और भोजराज	...	...	१०१
हेम और सारस्वत	...	..	१०४
हेम व्याकरण और मुग्धबोध	...	...	१०७

### षष्ठ अध्याय

हेमचन्द्र और जैन वैयाकरण	...	...	११०-१३०
हेम व्याकरण और जैनेन्द्र	...	..	१११
हेम व्याकरण और शाकटायन	..	...	११९
हेम व्याकरण की परम्परा	...	..	१२९

### सप्तम अध्याय

प्राकृत शब्दानुशासन : विश्लेषण	...	...	१३१-१७४
प्रथम पाद : विश्लेषण	...	...	१३१
द्वितीय पाद : विश्लेषण	...	...	१४७
तृतीय पाद : विश्लेषण	...	...	१५९
चतुर्थ पाद : विश्लेषण	...	...	१६३

### अष्टम अध्याय

हेमचन्द्र और अन्य प्राकृत वैयाकरण	...	...	१७५-१९१
हेम और वररश्चि	...	...	१७८
प्राकृतप्रकाश और हेमशब्दानुशासन के सूत्रों की तुलना			१८३
चण्ड और हेमचन्द्र	...	...	१८७
हेम और त्रिविक्रम	...	...	१८८
छत्तमीचर, सिंहराज और हेमचन्द्र	...	...	१९०

### नवम अध्याय

हेम व्याकरण में समागत भाषाविज्ञान के विद्वानों का

विवेचन ... १९२-२०२

[ ध्वनि परिवर्तन, आदि-मध्य स्वरलोप, आदि-मध्य-अन्वय व्यंजनलोप, आदि-मध्य स्वरगम, आदि मध्य व्यंजनगम, त्रिपर्यय, समीकरण, पुरोगामी-पश्चगामी समीकरण, पारस्परिक व्यंजन समी-



करण, विपरीकरण, पुरोगामी पश्चगामी विपरीकरण, सन्धि, अनुनासिकता, मात्राभेद, घोषीकरण, अघोषीकरण, महाप्राण, अल्पीकरण, ऊष्मीकरण ]

### परिशिष्ट १

हैम संस्कृत व्याकरण का सूत्रपाठ २०३-२६५

### परिशिष्ट २

प्राकृत हैम व्याकरण का सूत्रपाठ ... २६६-२८४



## पुरोवाक्

“तीनों लोक घोर अग्निकार में डूब जायँ, यदि ‘शब्द’ कहलाने वाली व्योति इस समस्त संसार को आलोकित न करे। बुद्धिमान् शुद्धवाणी को कामधेनु मानते हैं। वही वाणी जब अशुद्ध रूप से प्रयोग में लाई जाती है, तब वह बोलनेवाले का त्रैलपन प्रकट करती है।”

ये हैं माया के महत्त्व सम्बन्धी महाकवि दण्डी के उद्गार, जो उन्होंने अपने ‘काव्यादर्श’ के आदि में आज से लगभग डेढ़ हजार वर्ष पूर्व घोषित किये हैं। किन्तु उनमें भी सहस्रों वर्ष पूर्व भारत में वाणी की शुद्धता पर बहुत बल दिया जाने लगा था। वेद-मन्त्र तभी फलदायक माने जाते थे जब उनका पूर्ण शुद्ध उच्चारण किया जाता था। इसी प्रयोजन से मुनि शाकल्य ने वेदों का पद-पाठ तैयार किया, जिनमें पाठक वेद-संहिता का एक-एक शब्द अलग अलग जान जायँ। इतना ही नहीं, शीघ्र ही वेदों के ऋमपाठ, जटापाठ, घनपाठ आदि भी बन गये, जिनके द्वारा शब्दों को आगे में पीछे, पीछे से आगे, एक या दो शब्द मिलाकर आगे-पीछे आदि रूप में पढ़-मट कर वेदों के न केवल एक-एक शब्द, किन्तु एक-एक वर्ण व स्वर की मन्ने प्रकार रक्षा करने का प्रयत्न किया गया है।

जान पड़ता है वेद-पाठ की इन्हीं प्रणालियों ने ‘शिष्टा’ ‘प्राग्विशाल्य’ और ‘निरुक्त’ को जन्म दिया, जिनके द्वारा व्याकरण शास्त्र की नींव पड़ी। ‘व्याकरण’ का वाच्यार्थ है शब्दों को उनके पृथक्-पृथक् रूप में समझना-समझाना। संस्कृत व्याकरणशास्त्र का सर्वोत्कृष्ट रूप पाणिनि मुनि इत

‘अष्टाध्यायी’ में पाया जाता है। किन्तु उन्होंने अपने से पूर्व के अनेक वैयाकरणों, जैसे शाकटायन, शौनक, स्तोत्रायन, आपिशलि आदि का आदरपूर्वक उल्लेख किया है, जिससे व्याकरणशास्त्र की अतिप्राचीन अविच्छिन्न विकास-धारा का संकेत मिलता है। पाणिनि की रचना इतनी सर्वाङ्गपूर्ण व अपने से पूर्व की समस्त मान्यताओं का यथावश्यक यथा-विधि समावेश करने वाली सिद्ध हुई कि, उससे पूर्व की उन समस्त रचनाओं का प्रचार रुक गया और वे लुप्त हो गईं। पाणिनि की अष्टाध्यायी में यदि कुछ कमीवैशी थी तो उसका शोधनवार्तिककार कात्यायन व भाष्यकार पतञ्जलि ने कर दिया। इस प्रकार पाणिनीय व्याकरण-सम्प्रदाय को जो प्रतिष्ठा प्राप्त हुई उसे शताब्दियों की परम्परा भी कोई क्षति नहीं पहुँचा सकी।

पाणिनीय परम्परा द्वारा संस्कृत भाषा का परिष्कृत रूप स्थिर हो गया। किन्तु व्याकरणशास्त्र की अन्यान्य पद्धतियों भी बराबर चलती ही रहीं। इन व्याकरण ग्रन्थों में विशेष उल्लेखनीय हैं शाकटायन, कातन्न, चान्द्र और जैनेन्द्र व्याकरण; जिनका अपना-अपना वैशिष्ट्य है और वे अपने-अपने काल में नाना क्षेत्रों में सुप्रचलित रहे तथा उन पर टीका-टिप्पणियाँ भी रच ली गईं जो व्याकरणशास्त्र के विकास की दृष्टि से बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं।

संस्कृत के अन्तिम महावैयाकरण हैं आचार्य हेमचन्द्र, जिन्होंने अपने ‘शब्दानुशासन’ द्वारा संस्कृत भाषा का विश्लेषण पूर्ण रूप से किया और हैम सम्प्रदाय की नींव डाली। पाणिनि दत्त अष्टाध्यायी के अनुसार इन्होंने भी अपने व्याकरण को आठ अध्यायों व प्रत्येक अध्याय को चार पादों में विभाजित किया। किन्तु उनकी एक बड़ी भारी विशेषता यह है कि उन्होंने संस्कृत का सम्पूर्ण व्याकरण प्रथम सात अध्यायों में समाप्त करके अष्टम अध्याय में प्राकृत व्याकरण का भी प्ररूपण ऐसी सर्वाङ्गपूर्ण

रीति से किया कि वह अद्यावधि अपूर्व व अद्वितीय कहा जा सकता है। उनके पश्चात् जो प्राहत व्याकरण बने, वे बहुधा उनका ही अनुसरण करते हुए पाये जाते हैं। विशेषतः शौरसेनी, मागधी और पेशाची प्राहतों के स्वरूप तो कुछ-न-कुछ उनके पूर्ववर्ती चण्ड व वररुचि जैसे प्राहत के व्याकरणों ने भी उपस्थित किये हैं, किन्तु अपभ्रश का व्याकरण तो हेमचन्द्र की अपूर्व देन है। उसमें भी जो उदाहरण पूरे व अधूरे पद्यों के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं, उनसे तो अपभ्रश साहित्य की प्राचीन समृद्धि के सम्बन्ध में विद्वानों की आँसे खुल गई और वे उन पद्यों के स्रोतों की खोज में लग गये। यह कार्य आज तक भी सम्पन्न नही हो सका।

संस्कृत, प्राहत और अपभ्रश भाषाओं के इस महान् व्याकरण को चार-पाँच हजार सूत्रों में पूरा करके भी कनिकाल-मर्वस हेमचन्द्र को ऊन नहीं आई। उन्होंने अठारह हजार श्लोक प्रमाण उसकी वृहद् वृत्ति भी लिखी, गणपाठ, धातुपाठ, उणादि और लिङ्गानुशासन प्रकरण भी जोड़े तथा सामान्य अध्येताओं के लिये उपयोगी छह हजार श्लोक प्रमाण लघुवृत्ति भी तैयार की। इतना ही नहीं, उन्होंने अपने समस्त व्याकरण को सूत्रानुक्रम से उदाहृत करते हुए अपने समकालीन नरेश कुमारपाल का चरित्र भी एक विशाल द्वयाश्रय काव्य के रूप में रचा। एक व्यक्ति द्वारा व्याकरणशास्त्र की इतनी उपासना इतिहास में बेजोड़ है। फिर जब उनकी पुराण, काव्य, दर्शन, कोष, छन्द आदि विषयों की अन्य कृतियों का भी लेखा जोखा लगाया जाता है, तब तो मस्तक आश्चर्य से चकित होकर उनके चरणों में अवनत हुए पिना नहीं रहता।

भारतीय शास्त्रों का ऐतिहासिक व परिचयात्मक अध्ययन तो बहुत कुछ हुआ है, किन्तु एक-एक शास्त्र के अन्तर्गत कृतियों का परस्पर

तुलनात्मक मूल्याङ्कन संतोषजनक रीति से पूरा किया गया नहीं पाया जाता। इस दिशा में डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री का प्रस्तुत प्रबन्ध अभिनन्दनीय है। उन्होंने आचार्य हेमचन्द्र के जीवनवृत्त और उनकी रचनाओं का सुचारु रूप से परिचय देकर उनके उक्त व्याकरण-कार्य का आलोचनात्मक विश्लेषण भी किया है तथा पाणिनि व अन्य प्रधान वैयाकरणों की श्रुतियों के साथ तुलना करके हेमचन्द्र की विशेष उपलब्धियों का भलीभाँति निर्णय भी किया है। व्याकरण जैसे कर्कश शास्त्र का ऐसा गम्भीर आलोचन प्रत्येक साहित्यिक के वश की बात नहीं। उसके लिये जितने अभ्यवसाय व ज्ञान की आवश्यकता है वह प्रस्तुत प्रबन्ध के अवलोकन से ही जाना जा सकता है। इस उत्तम शास्त्रीय विवेचना के लिये मैं डॉ० नेमिचन्द्रजी को हृदय से बधाई देता हूँ और ऐसा विश्वास करता हूँ कि उनकी इस श्रुति से इस पीढ़ी के नवयुवक शोधकर्ता दिङ्निर्देश, प्रेरणा और स्फूर्ति प्राप्त करेंगे।

अगस्त ?, १९६३

डॉ० हीरालाल जैन

एम० ए०, एल० एल० बी०, हा० लिट्

अध्यक्ष -

संस्कृत, पालि एवं प्राकृत विभाग

जबलपुर विश्वविद्यालय, जबलपुर

प्रच्य भारतीय भाषाओं एवं दर्शन शास्त्र

के

अग्र्य विद्वान्

सनादरणीय

पं० सुखलाल जी संघवी

अहमदाबाद

को

ता

द

र



नेमिचन्द्र शास्त्री

## प्रस्तावना

भाषा के शुद्धज्ञान के लिये व्याकरणज्ञान परमावरणक है। धातु और प्रत्यय के संश्लेषण एवं विश्लेषण द्वारा भाषा के आन्तरिक गठन का विचार व्याकरण साहित्य में ही किया जाता है। लक्ष्य और लक्ष्णों का सुव्यवस्थित वर्णन करना ही व्याकरण का उद्देश्य है। शब्दों की व्युत्पत्ति एवं उनके निर्माण की प्राणवन्त प्रक्रिया के रहस्य का उद्घाटन व्याकरण के द्वारा ही होता है। यह शब्दों के विभिन्न रूपों के भीतर जो एक मूल संज्ञा या धातु निहित रहती है, उसके स्वरूप का निश्चय और उसमें प्रत्यय जोड़कर विभिन्न शब्दों के निर्माण की महनीय प्रक्रिया उपस्थित करता है, साथ ही धातु और प्रत्ययों के अर्थों का निश्चय भी इसी के द्वारा होता है। संक्षेप में व्याकरण भाषा का अनुशासन कर उसके विस्तृत साम्राज्य में पहुँचाने के लिये राजपथ का निर्माण करना है।

संस्कृत भाषा में व्याकरण के रचयिता इन्द्र, शाकटायन, आपिशलि, काशकृत्स्न, पाणिनि, अमर, जैनेन्द्र और चन्द्र ये आठ शाब्दिक प्रसिद्ध माने जाते हैं। जैन संप्रदाय में देववन्दी, शाकटायन, हेमचन्द्र आदि कई व्याकरण हुए हैं। देववन्दी ने अपने शब्दानुशासन में अपने से पूर्ववर्ती छः जैनाचार्यों का उल्लेख किया है:—

( १ ) गुणे श्रीदत्तस्याऽस्त्रियाम् ( १।१।३४ )—हेताविति वर्तते । अस्त्रीलिङ्गे गुणे हेतो श्रीदत्तस्याचार्यस्य मतेन का विभक्तिर्भवति । अन्येषां मतेन हेताविति मा । यथा—जाड्याद्रुद्धः जाड्येन वदः ।

( २ ) कृष्टपिमृजां यशोभद्रस्य ( २।१।९९ )—कृष्टपिमृज् इत्येतेभ्य क्यच् भवति यशोभद्रस्याचार्यस्य मतेन ।

( ३ ) राद्भूतवलेः ( ३।४।८३ )—समासश्चान्ताद् निर्वृत्तादिषु पञ्च स्वर्थेषु रवो भवति भूतवलेराचार्यस्य मतेन ।

( ४ ) रात्रेः कृति प्रभाचन्द्रस्य ( ४।३।१८० )—रात्रिशब्दे कृति चो युमागमो भवति प्रभाचन्द्रस्याचार्यस्य मतेन ।

( ५ ) वेत्तेः सिद्धसेनस्य ( ५।१।१० )—वेत्तेर्गोत्रिनित्तभूतस्य इत्य रडागमो भवति सिद्धसेनस्याचार्यस्य मतेन ।

( ६ ) चतुष्टयं ममन्तभद्रस्य ( ५।४।१४० )—शयो ह इत्यादि चतुष्टयं समन्तभद्राचार्यस्य मतेन भवति, नान्येषां मते ।

उपर्युक्त सूत्रों में धीदत्त, यशोभद्र, भूतबलि, प्रभाचन्द्र, सिद्धसेन और समन्तभद्र इन छः वैयाकरणों के नाम आये हैं। स्पष्ट है कि इनके व्याकरण सम्बन्धी ग्रन्थ थे, पर आज वे उपलब्ध नहीं हैं।

जैनेन्द्र के उपसिद्धसेन वैयाकरणाः ( ११११६ )—उदाहरण से स्पष्ट है कि ये सिद्धसेन को सबसे बड़ा वैयाकरण और उपसिंहनन्दिनं कवयः ( ११११६ ) द्वारा सिंहनन्दी को बड़ा कवि मानते हैं। पर आचार्य हेम ने 'उत्कृष्टेऽनुदेन' ( २१२३९ ) सूत्र के उदाहरणों में 'अनुसिद्धसेनं कवयः' द्वारा सिद्धसेन को सबसे बड़ा कवि माना है। अतएव स्पष्ट है कि आचार्य हेम के पूर्व कई जैन वैयाकरण हो चुके हैं। हेम की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि इन्होंने अपने पूर्ववर्ती समस्त व्याकरण ग्रन्थों का अध्ययन कर उनसे यथेष्ट सामग्री ग्रहण की है।

हेम के पूर्ववर्ती व्याकरणों में विस्तार, काठिन्य एवं क्रमभंग या अनुवृत्ति बाहुल्य ये तीन दोष पाये जाते हैं; किन्तु आचार्य हेम उक्त तीनों दोषों से मुक्त हैं। व्याकरण में विवक्षित विषय को कम सूत्रों में निबद्ध करना अस्वाभाविक समझा जाता है। अल्पवाक्यों वाले प्रकरण एवं अलशास्त्रों वाले सूत्रों में प्रतिपाद्य विषय को प्रकट किया जाय तो रचना सुन्दर और विस्तार दोष से मुक्त समझी जाती है। हेम ने उक्त सिद्धान्त का पूर्णतः पालन किया है। जिस प्रकार की शब्दावली के अनुशासन के लिए जितने और जैसे सूत्रों की आवश्यकता थी, इन्होंने वैसे और उतने ही सूत्रों का प्रणयन किया है। एक भी सूत्र ऐसा नहीं है, जिसका कार्य किसी दूसरे सूत्र से चलाया जा सकता हो।

सूत्रों एवं उनकी वृत्ति की रचना ऐसी शब्दावली में नहीं होनी चाहिए, जिसकी व्याख्या की आवश्यकता हो अथवा व्याख्या होने पर भी अर्थ विषयक सन्देह बना रहे। अतः श्रेष्ठ ग्रन्थन-शैली वही मानी जाती है, जिसके पढ़ने के साथ ही विषय का सम्यक् ज्ञान हो जाय और पाठक को तद्विषयक तनिक भी सन्देह उत्पन्न न हो। सूत्रों की शब्दावली उटखी न हो और न जितने मरिचिक उतनी व्याख्याएँ ही संभव हों। आचार्य हेम सरल और स्पष्ट शैली की कला में अत्यन्त पटु हैं। व्याकरण की साधारण जानकारी रखनेवाला व्यक्ति भी इनके शब्दानुशासन को हृदयंगम कर सकता है तथा संस्कृत भाषा के समस्त प्रमुख शब्दों के अनुशासन से अवगत हो सकता है।

शब्दानुशासन की शैली का दूसरा गुण यह है कि विषय को स्पष्ट करने के साथ सूत्रों का सुस्पष्टवर्णित एवं सुसम्बद्ध रहना भी आवश्यक है, जिसमें



समन्वय करते समय अनुवृत्ति या अधिकार सूत्रों की आवश्यकता प्रतीत न हो। लक्षणों के साथ लक्ष्यों में भी ऐसा सामर्थ्य रहे जिससे वे गंगा के निरवच्छिन्न प्रवाह के समान उपस्थित होकर विषय को क्रमबद्ध रूप में स्पष्ट करा सकें। विषय व्यतिक्रम होने से पाठकों को समझने में बहुत कठिनाई होती है। अतः एक ही विषय के सूत्रों को एक ही साथ रहना आवश्यक है। ऐसा न हो कि सन्धि के प्रकरण में समास विधायक सूत्र, समास में कारक विषयक सूत्र और कृदन्त में तद्धित विधायक सूत्र आ जायें। इस प्रकार के विषय व्यतिक्रम से अप्येताओं को कष्ट का अनुभव होता है तथा विषय की धारा के विच्छिन्न हो जाने से तथ्य ग्रहण के लिए अधिक ध्यायन करना पड़ता है।

शैलीगत उपयुक्त तीनों दोष न्यूनाधिक रूप में हेम के पूर्ववर्ती सभी व्याकरणों में पाये जाते हैं। सभी की शैली में अस्पष्टता, क्रममंग एवं दुरुहता पायी जाती है। कोई भी निष्पक्ष व्यक्ति इस सत्य से इंकार नहीं कर सकता है कि हेम शब्दानुशासन संस्कृत भाषा के सर्वाधिक शब्दों का सुरष्ट अनुशासन आशुबोधक रूप में उपस्थित करता है। इस एक ही व्याकरण के अप्ययन से व्याकरण विषयक अच्छी जानकारी प्राप्त की जा सकती है। मिद्ध हेमशब्दानुशासन की प्रशस्ति में प्रशंसा बोधक निम्न पद्य उपलब्ध होता है, जो पर्याय है—

तेनातिविस्तृतदुरागमविप्रकीर्ण-

शब्दानुशासनसमूहकदर्थितेन ।

अभ्यर्थितो निरुपमं त्रिविधद् व्यघत्त,

शब्दानुशासनमिदं मुनिहेमचन्द्रः ॥ ३५ ॥

अर्थात्—अतिविस्तृत, कठिन एवं क्रममंग आदि दोषों से युक्त व्याकरण ग्रन्थों के अप्ययन से कष्ट प्राप्त करते हुए जिज्ञासुओं के लिए हेम शब्दानुशासन की रचना की गयी है।

यह गुजरात का व्याकरण कहलाता है। मालवराज भोज ने व्याकरण ग्रन्थ लिखा था और वहाँ उन्हीं का व्याकरण काम में लाया जाता था। विद्याभूमि गुजरात में कलाप के साथ भोज व्याकरण की भी प्रतिष्ठा थी। अतएव आचार्य हेम ने मिद्धराज के आदेश से गुर्जर देशवासियों के अप्ययन के हेतु उक्त शब्दानुशासन की रचना की है। अमरचन्द्र सूत्रि ने अपनी बृहत् अवयुर्गि में हेम शब्दानुशासन की दोषमय विमुक्ति की चर्चा करते हुए लिखा है—

। 'शब्दानुशासनजातमस्ति, तस्माच्च कथमिदं प्रशस्यतममिति ?  
उच्यते तद्धि 'अतिविस्तीर्णं प्रकीर्णञ्च । 'कातन्त्रं तर्हि साधु भविष्यतीति  
चेन्न तस्यै सङ्कीर्णत्वात् । इदं तु सिद्धहेमचन्द्राभिधानं नातिविस्तीर्णं न  
च सङ्कीर्णमिति अनेनैव शब्द-व्युत्पत्तिर्भवति ।'

। 'अतएव स्पष्ट है कि सिद्ध हेमचन्द्रानुशासन सन्तुलित और पञ्चाङ्गपूर्ण है ।  
इसमें प्रत्येक सूत्र के पदच्छेद, विभक्ति, समास, अर्थ, उदाहरण और सिद्धि ये  
छहों अंग पाये जाते हैं ।

उपजीव्य—

यों तो आचार्य हेम ने अपने पूर्ववर्ती सभी व्याकरणों से कुछ न कुछ  
ग्रहण किया है, पर विशेषरूप से इसके व्याकरण के उपजीव्य काशिका,  
पानञ्च महाभाष्य और शाकटायन व्याकरण हैं । इन्होंने उक्त ग्रन्थों के  
विस्तृत विषयों को जोड़े ही शब्दों में बड़ी निपुणता के साथ अपने सूत्रों एवं  
वृत्तियों में समाविष्ट किया है, जिससे उसे समझने में विशेष आयास नहीं  
करना पड़ता । 'हम यहाँ केंदल शाकटायन के प्रभाव का ही विरलेपण कर  
यह दिखाने का प्रयास करेंगे कि हेम के ग्रहण में भी मौलिकता और  
नवीनता है । नदी के जल को सुन्दर बचन के कलश में भरने के समान  
सूत्र और उदाहरणों को ग्रहण कर लेने पर भी उनके निबद्ध श्रम के  
वैशिष्ट्य ने एक नया ही चमत्कार उत्पन्न किया है ।

सूत्र	शाकटायन सूत्राङ्क	सिद्धहेम० सूत्राङ्क
अप्रयोगीत्	१११५	१११३०
आसत्	१११७	७११२०
सम्बन्धिना सम्बन्धे	१११८	७११२१
बहुवर्गे भेदे	१११९०	१११४०
के समासेऽप्यर्थे	१११११	१११४१
क्रियायो धातु	१११२२	२११३
सम्बन्धवदोच्छ्र	१११३०	२११८
तिरोऽन्तर्धौ	११११३४	२११९
स्वाम्योऽधि-	१११३४	२११३२
प्राग्व बन्धे	१११३८	२११९९
पर	१११४४	७१११८

१ १ भूषण, धनुष, गण, चन्द्र और शिबानुशासन ये पाँच व्याकरण कमा  
हैं । इन पाँचों में समन्वित व्याकरण पञ्चाङ्ग कहलाता है ।

सूत्र	शाकटायन सूत्राङ्क	सिद्धहेम० सूत्राङ्क
स्पर्धे	११११४६	७११११९
नं क्ये	११११६३	११११२२
मनुर्नभोऽङ्गिरोवन्ति	११११६७	११११२४
स्वैरस्वैर्दसौहिण्याम्	११११८५	११११५६
वीष्टौतौ समासे	११११८८	११११७०
इन्द्रे	११११९७	११११३०
सम्राट्	११११९३	१११११६
सुचो वा	११११७३	१११११३

सूत्रों की समता, सूत्रों के भावों को पचाकर नये ढंग के सूत्र एवं अमोघवृत्ति के वाक्यों को उ्यों के त्यों रूप में अथवा कुछ परिवर्तन के साथ निबद्ध कर भी अपनी मौलिकता को अछुण्ण बनाये रखना हेम जैसे प्रतिभाशाली व्यक्ति का ही कार्य है। उदाहरण के लिए शाकटायन के 'नित्यं हस्ते पाणौ स्वीकृतौ' ११११३६ सूत्र के स्थान पर हेम ने 'नित्यं हस्ते-पाणावुद्वाहे' ३११११५ सूत्र लिखकर स्पष्टता के प्रदर्शन के साथ उद्वाह—विवाह अर्थ में हस्ते और पाणौ को नित्य ही अव्यय माना है और कृन् धातु के योग में गति संज्ञक कहकर हस्तेकृत्य, पाणौकृत्य रूप सिद्ध किये हैं। अतः स्पष्ट है कि शाकटायन के सूत्र में योड़ा सा परिवर्तन कर देने से ही हेम ने शब्दशासन के क्षेत्र में चमत्कार उत्पन्न कर दिया है अर्थात् एक सामान्य स्वीकृति को विशेष स्वीकृति बना दिया है। इसी प्रकार 'कणो मनः श्रद्धोच्छेदे' ११११२८ शाकटायन सूत्र के स्थान पर 'कणोमनस्त्वप्ती' ३१११६ सूत्र लिखकर 'कणोहत्य पयः पिबति, मनोहत्य पयः पिबति' उदाहरणों के अर्थ में मौलिकता उत्पन्न कर दी है। तावत् पिबति यावत्तप्तः—तय तक पीता है, जब तक तप्त नहीं होता। यद्यपि तृप्ति शब्द का अर्थ भी श्रद्धोच्छेद है, पर तृप्ति कर देने से उदाहरणों में अयोग्य स्पष्टता आ गयी है।

वर्ण्य विषय—

हेम शब्दानुशासन के वर्ण्य विषय पर आगे विस्तार से विचार किया गया है। संस्कृत भाषा के शब्दानुशासन को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है—

- |                    |                    |
|--------------------|--------------------|
| ( १ ) अनुष्कवृत्ति | ( ३ ) कृद्वृत्ति   |
| ( २ ) आख्यातवृत्ति | ( ४ ) तद्धितवृत्ति |

अनुष्कवृत्ति में सन्धि, शब्दरूप, कारक एवं समास इन चारों का अनुशासन आरम्भ से लेकर तृतीय अध्याय के द्वितीय पाद तक वर्णित है।

आख्यातवृत्ति में धातु रूपों और प्रक्रियाओं का अनुशासन तृतीय अध्याय के तृतीय पाद से चतुर्थ अध्याय के चतुर्थ पाद पर्यन्त और कृद्-वृत्ति में कृत्प्रत्यय सम्बन्धी अनुशासन पञ्चम अध्याय में निरूपित है। तद्धितवृत्ति में तद्धित प्रत्यय, समासान्त प्रत्यय एवं न्याय सूत्रों का कथन छठे और सातवें दोनों अध्यायों में वर्तमान है। साहित्य और व्यवहार की भाषा में प्रयुक्त सभी प्रकार के शब्दों का अनुशासन इस व्याकरण में प्रथित है।

### सांस्कृतिक सामग्री—

शब्दानुशासन सम्बन्धी विशेषताओं का विवेचन इस समीक्षा ग्रन्थ के अगले प्रकरणों में विस्तारपूर्वक किया गया है। अतः यहाँ इसकी सांस्कृतिक सामग्री का विवेचन करना आवश्यक है। निम्न हेम शब्दानुशासन में भूगोल, इतिहास, समाज, शिक्षा, साहित्य एवं अर्थनीति सम्बन्धी सामग्री प्रचुर परिमाण में विद्यमान है। सर्वप्रथम भौगोलिक सामग्री का विस्तार किया जाता है। पाणिनि के समान हेम ने भी नगर और ग्रामों के बननेवाले कारणों का विवेचन करते हुए लिखा है—

( १ ) तद्ग्रास्ति ( १।२।७० )—ओ वस्तु जिस स्थान में होती है, उस वस्तु के नाम से उस स्थान का नाम पड़ जाता है। जैसे—उदुम्बरा अस्मिन् देशे सन्ति औदुम्बरं नगरम्, औदुम्बरो जनपदः, औदुम्बरः पर्वतः अर्थात् उदुम्बर के वृक्ष जहाँ हों; उस नगर, जनपद और पर्वत को औदुम्बर कहा जायगा।

( २ ) तेन निर्वृत्ते च ( १।२।७१ )—जो व्यक्ति जिस गाँव या नगर को बसाता है, वह ग्राम या नगर उस बसानेवाले व्यक्ति के नाम से प्रसिद्ध हो जाता है। यथा—कुशाम्बेन निर्वृत्ता कौशाम्बी, ककन्देन काकन्दी, मकन्देन माकन्दी अर्थात् कुशाम्ब, ककन्द और मकन्द की बसाई हुई नगरियाँ क्रमशः कौशाम्बी, काकन्दी और माकन्दी कहलायी हैं।

( ३ ) निवासादूरमवे इति देशे नाम्नि ( १।२।९९ )—निवास—रहने वालों के नाम से तथा अदूरमव किसी दूसरे स्थान के निकट बसा होने से उस स्थान का नाम उन्हीं के नाम पर पुकारा जाने लगता है। यथा—ऋजुनावानां निवासः आर्जुनावः, शिवीनां शैवः, उपुष्टस्य औपुष्टः, शकलायाः शकलः अर्थात्—गुणी नाविक जहाँ रहते हों उसे आर्जुनाव, शिविजाति के चप्रिय जहाँ निवास करते हों उसे शैव, उपुष्ट जाति के व्यक्ति जहाँ रहते हों उसे औपुष्ट और शकल जाति के ब्राह्मण जहाँ निवास करते हों उसे शकल कहते हैं।

जो स्थान किसी दूसरे स्थान के निकट बसा हुआ होता है, वह भी उसी के नाम से व्यवहृत होने लगता है। जैसे विदिशाया अदूरभवं वैदिशो नगरम्, वैदिशो जनपदः, वरणानामदूरभवं वरणा नगरम् ( १।२।१९ ) अर्थात् विदिशा नदी के समीप बसा हुआ नगर या जनपद वैदिश कहलाया और वरण बृह के समीप बसा हुआ नगर वरणा। शूद्र पर्वत के समीप बसे हुये ग्राम को शूद्र, शाहनटी बृह के समीप बसे हुये ग्राम को शाहनटी कहा है।

स्थान वाली संज्ञाओं और वस्तुओं के नामों में नाना प्रकार के सम्बन्ध थे। जो वस्तु जहाँ प्राप्त होती थी, उस वस्तु के नाम पर भी उस स्थान का नाम पड़ जाता था। हेम ने 'शार्कराया इक्षणीयाऽणु च' १।२।७८ के उदाहरणों में बतलाया है—'शार्करा अस्मिन् देशे सन्ति—शार्करिकः, शार्करीयः' अर्थात् चीनी जिन देश में पायी जाए उस देश को शार्करिक या शार्करीय कहा जाता है। 'बल्लुर्द्रिपर्दिक्विरियाष्टायनण्' १।३।१४ के उदाहरणों में कापिशापन मयु, कापिशापनी द्राक्षा उदाहरण आये हैं। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि कपिशा नगरी से आनेवाला मयु कापिशापन और द्राक्षा—दान्य कापिशापनी कहलाती थी। रंकु जनपद में उत्पन्न और वहाँ से लाये जाने वाले प्रसिद्ध बौल और कम्बल राष्ट्रव एवं वहाँ के मनुष्य राष्ट्रवक ( १।३।१५ ) कहलाते थे।

### जनपद—

आचार्य हेम ने अपने सूत्र और उदाहरणों में अनेक जनपद, नगर, पर्वत, और नदियों के नामों का उल्लेख किया है। उत्तर-पश्चिम में कपिशा (१।३।१४) का उल्लेख किया है, यह नगरी काबुल से ५० मील उत्तर में वर्तमान थी। कपिशा से उत्तर में कम्बोज जनपद था, जहाँ इस समय मध्य एशिया का पानीर पठार है। तक्षशिला के दक्षिण पूर्व में भद्र जनपद ( १।३।२४ ) था, जिनकी राजधानी शाकल ( १।३।२७ ) थी। शाकल शाकल का स्थलकोट है। भद्र के दक्षिण में उशीनर ( १।३।३६ ) जनपद था। वर्तमान पञ्जाब का उत्तर-पूर्वी भाग त्रिगर्त देश कहलाता था। सतलुज, घ्यास और रावी इन तीन नदियों की घाटी के कारण इस प्रदेश का नाम त्रिगर्त ( १।३।३० ) पड़ा था। कुछ जनपद प्राचीनकाल से प्रसिद्ध रहा है, यद्यपि हेम के समय में इन जनपद का अस्तित्व समाप्त हो चुका था, फिर भी इन्होंने दिल्ली और मेरठ के आस-पास के प्रदेश को कुछ जनपद ( १।३।५३ ) कहा है। इसकी राजधानी हम्तिनापुर थी। महाभारत के समय में कुछ जनपद बहुत ही प्रसिद्ध था।

गंगा और रामगंगा के बीच का प्रदेश पाचाल जनपद ( ६११२४ ) कहलाता था। यह जनपद चारों दिशाओं के आधार पर पूर्व, अपर, दक्षिण और; उत्तर इन-चार भागों में ( ७१४१६ ) विभक्त था। कोशल जनपद ( ७११११९ ) अपने समय में प्रसिद्ध रहा है। यहाँ का राजा प्रसेनजित् बुद्ध काल का रघुतिप्राप्त नृपति है। प्रसेनजित् ने काशी और कोशल को एक ही शासन सूत्र में मिला दिया था। बुद्ध को कोशल देश के मानसाकट नामक ब्राह्मण ग्राम के उत्तर में अचिरवती नदी के किनारे एक आम्रवन में विचरण करते देखा जाता है। काशी ( ७११११९ ) जनपद में वाराणसी, मिर्जापुर आदि प्रदेश शामिल थे। शूरसेन ( ७११११९ ) जनपद में मथुरा और आगरा का प्रदेश शामिल था। कान्यकुब्ज ( ७१४१७ ) कुञ्ज भी पृथक् जनपद कहा है। पूर्व में घग ( ६१२१५ ), अग ( ६१२१५ ) और मगध ( ६११११६ ) तथा पूर्वी समुद्रतट पर कलिंग जनपद ( ६११११६ ) के नाम मिलते हैं। पश्चिमी समुद्रतट पर कच्छ जनपद ( ६१२१५ ) और दक्षिण में गोदावरी तट पर अरमक ( ६१२१० ) का उल्लेख है।

‘राजन्यादिभ्योऽकन्’ ( ६१२१६ ) में राजन्य, देवयात, आयुत, शालक, याधु, जलन्धर, कुन्तल, अरकक, अम्बरीपुत्र, विम्बवन्, शैल्य, तैतल, उर्गनाभ, जर्जुन, विराट् और माल्य का नामोल्लेख किया है। ६१२१६ सूत्र में भौरिकि, भौलिकि, चौपयत, चैरयत, चैकयत, सैकयत, छैतयत, काणेय, वालिकाद्य और वाग्जिक की गणना भीरिव्यादि में तथा इपुकारि, सारस, चन्द्र, तापर्य, द्वयच, यच, उलय, सीवीर, दासभिन्नि, दायण्ड, ददादक, विश्वेनु, विश्वमाणव, विश्वदव, मुण्ड, देव, आदि की गणना एपुकार्य में की है।

हेम ने कच्छाप्रिगण म कच्छ, सिन्धु, वर्ण, मधुमत्, कम्बोज, साह्य, उर, अनुपण्ड, करमीर, विनापक, ह्रीप, अनूप, अनवाह, इलत, रङ्ग, गन्धार, युध, सस्याल और सिन्धुदन्त जनपदों की गणना की है। युगन्धर नामक जनपद का ( ६१२१३ ) उल्लेख भी उपलब्ध होता है। इस जनपद में पैदा होनेवालों को यौगन्धरक कहा है। ६१२१४ में साह्य जनपद के निर्देश में, यहाँ के बेल और मनुष्यों को साह्यक कहा जाता था। यहाँ यवागू-जौ की उत्पत्ति होती थी और यहाँ की जौ साह्यना कहलाती थी। श्री डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने काशिका में उद्धृत एक श्लोक के आधार पर साह्य राजतन्त्र के अन्तर्गत उदुम्बर, तिलवृक्ष, मद्रकार, युगन्धर, भूलिङ्ग और शरदण्ड इन छ रजवाहों का उल्लेख किया है। हम ने भी अपने उदाहरणों में इन छहों राश्यों

के नाम गिनाये हैं। कहा जाता है कि सात्वराज्य पञ्जाब के मध्यभाग और उत्तर पूर्व में बिखरे हुए थे। बहुत समभव है कि सात्व जनपद अलवर से उत्तर बीकानेर तक व्याप्त रहा होगा।

हेम ने 'बहुविपनेभ्य' ६।३।४५ सूत्र में, विभिन्न जनपदों में पैदा हुये व्यक्तियों के नामों का उल्लेख करते हुये दावं, काम्बव, त्रिहु, अजमांड, अजुकुन्द, कालञ्जर और वैकुण्ठि जनपदों का नामोल्लेख किया है। चिनाव और रावी के बीच का भाग दावं (जम्मु) जनपद कहलाता था। ६।३।५० सूत्र में मरुच्छु और पिप्पलीकच्छु का, ६।३।३८ में वृत्ति और मद्रक का, ७।१।११९ में निपघ, निचक, निग, कुरु, अवन्ति, कुम्भि, वमति और चेदि का एव ६।१।१२० में कम्बोज, चोल और केरल जनपदों का उल्लेख किया है। सौराष्ट्र का नामाङ्कन ५।२।८ में उपलब्ध होता है। इन जनपदों में हेम के समय में चेदि, अवन्ति—मालव और सौराष्ट्र का विशेष महत्व था। चेदि जनपद के नामान्तर त्रैपुर, डाहल और चैघ हैं। यह जनपद अग्निकोण में शुक्तिमती नदी के किनारे विन्ध्य पृष्ठ पर अवस्थित था। वर्तमान बरलखण्ड और तेलार चेदि राज्य के अन्तर्गत थे। मालव—यह जनपद उज्जयिनी से लेकर माहिम्नती तक व्याप्त था और दक्षिण में यह नर्मदा नदी की घाटी तक फैला हुआ था। द्वितीय शताब्दी तक यह अवन्ति जनपद कहलाता था। आर्या शताब्दी ईस्वी से हम इसे मालव के नाम से पाते हैं। हमचन्द्र ने 'अनपात् सिद्धराजोऽवन्तीम्' (५।२।८) उदाहरण प्रस्तुत किया है। इस उदाहरण से इस ऐतिहासिक तथ्य पर प्रकाश पड़ता है कि राजा जयसिंह ने १२ वर्षों तक मालवा के परिमारों के साथ युद्ध करके विजय प्राप्त की और वह अवन्तिनाथ कहलाया था। उसने बर्बरो का दमन किया और महोदये के चन्दों को सन्धि करने के लिए विवश किया। उसका नीति प्रधानतया आक्रमणमक थी, यह भी इस उदाहरण से स्पष्ट अवगत होता है।

काटियावाड़ से युक्त पश्चिमी समुद्र तटवर्ती सम्पूर्ण देश का नाम सौराष्ट्र है, जिसके उत्तरी भाग की सीमा विन्ध्य प्रान्त को, पूर्वी सीमा मेवाड़ सदाश्याम और मालवा को तथा दक्षिणी महाराष्ट्र पृथक् पृथक् का स्पर्श करती थी। 'अनयत्सिद्ध सौराष्ट्रान्' (५।२।८) उदाहरण से स्पष्ट है कि सैन्धव, मेवाड़ के गुर्जर को जीतकर जयसिंह सौराष्ट्र बना था। इस उदाहरण में सौराष्ट्र के दुर्दार राजा सैन्धव को पराजित करने का संकेत किया है। इस समय को विजय के अनन्तर ही सिद्धराज को चक्रवर्ती पद प्राप्त हुआ था। हमने सन्देह नहीं कि पालुवप चक्रवर्ती जयसिंह का शासनकाल सौराष्ट्र के

इतिहास का स्वर्णयुग है। इनके समय में इस जनपद में १८ देश सम्मिलित थे और इसकी सीमाएँ उत्तर में मुरुष्क, पूर्व में गंगातट, दक्षिण में विन्ध्याचल और पश्चिम में समुद्रतट पर्यन्त थीं। यह समस्त राष्ट्र स्वचक्र और परचक्र के उपद्वय से युक्त था।

दक्षिण भारत के राज्यों में चोल, केरल ( ११११२० ) तमिल राज्य थे। काञ्ची ( ३१११४२ )—काञ्चीवरम् दक्षिण भारत के तमिल प्रदेश की राजधानी थी। यह प्रदेश बहुत दिनों तक तोण्डेयमण्डलम् या तोण्डेयनाड कहलाता था। कहा जाता है कि कीलिक वर्मन चोल के एक पुत्र के साथ मगिपल्लवम् द्वीप की भागी राजकन्या के विवाह सम्बन्ध से उत्पन्न शुद्रुपल्लव नामक व्यक्ति पल्लव वंश का संस्थापक था, जिसने चोल पर शासन किया था।

नगर—

जनपदों के अतिरिक्त हेम ने नगर और गाँवों का भी उल्लेख किया है। उन्होंने कच्छान्त नामों में भरकच्छ और पिप्पलीकच्छ ( ११३१५० ) निर्दिष्ट किये हैं। भरकच्छ वर्तमान मदीच है और पिप्पलीकच्छ खग्मात की खाड़ी के बायीं ओर स्थित महीरेखा का चौड़ा था। नगरों में निम्नांकित नगर प्रधान हैं :—

( १ ) अवन्ती ( ०११११९ )—इसका दूसरा नाम उज्जयिनी है। अवन्ती की गणना जनपदों में की गई है। यह राज्य नर्मदा की घाटी में मानघाता नगर से लेकर इन्दौर तक फैला हुआ था। प्राचीन समय में अवन्ती का राजा चण्डप्रद्योत था, इसकी पुत्री वासवदत्ता का विवाह वत्सराज उदयन के साथ हुआ था। यह नगरी उत्तर और दक्षिण के प्रसिद्ध भारतीय नगरों तथा पश्चिमी किनारे के उस समय के प्रसिद्ध बन्दरगाहों से व्यापारिक मार्गों द्वारा जुड़ी हुई थी।

( २ ) आपादजम्बु ( ११३१४० )—शरावती नदी की पूर्व दिशा में यह नगर स्थित था। इसके पाम नापितवस्तु नामक नगर भी था। नापितवस्तु को हेम ने ११३१३६ सूत्र में बाहीक जनपद के अन्तर्गत परिगणित किया है।

( ३ ) ब्राह्मजाल ( ११३१३० )—यह नगर उशीनर बाहीक जनपद के अन्तर्गत था। सुदर्शन नामक नगर भी उक्त जनपद में ही अवस्थित था।

( ४ ) ऐषुकार भक्त ( ११३१६८ )—ऐषुकारोणां राष्ट्रमैषुकारिमक्तम् अर्थात् पञ्जाब में ऐषुकारिमक्त नामक राष्ट्र में उक्त नाम का नगर था। उत्तराप्ययन सूत्र के ( १४११ ) अनुसार, इसुकार—इषुकार नाम का समृद्ध एवं वैभव पूर्ण नगर था। सम्भवतः यह हिमालय का प्राचीन नाम रहा होगा।



( ५ ) काकन्दी ( ६।२।७१ )—उत्तर भारत की यह प्रसिद्ध प्राचीन नगरी है। मगवान् महावीर के समय में काकन्दी में जितशत्रु राजा का राज्य वर्तमान था। काकन्दी नूनखार स्टेशन से दो मील और गोरखपुर से दक्षिण पूर्व तीस मील पर किष्किन्धा—सुबुन्द ही प्राचीन काकन्दी है।

( ६ ) कांची ( ३।१।४२ )—यह भारत की प्रसिद्ध और पुण्य नगरी है। आजकल इसे कांचीपुरम् या काञ्चीवरम् कहते हैं। इसे दक्षिण मथुरा भी कहा गया है। यह द्रविड या चोल देश की राजधानी पालार नदी के तट पर अवस्थित है जो मद्रास से ४३ मील पर अवस्थित है।

( ७ ) कापिशी ( ६।३।१४ )—यह काबुल से उत्तर पूर्व हिन्दूकुश के दक्षिण आधुनिक बेग्राम ही प्राचीन कापिशी है। यह नगरी घोरबन्द और पञ्जशीर नदियों के सन्म पर अवस्थित थी। बाङ्गीक से बानियाँ होकर कपिश प्रान्त में घुमने वाले मार्ग पर कापिशी नगरी स्थित थी। यह व्यापार और संस्कृति का केन्द्र थी। यहाँ हरी दास की उत्पत्ति होती थी और यहाँ की बनी हुई कापिशायनी मुरा भारतवर्ष में आती थी। पाणिनि ने भी (४।२।९९) इमका उल्लेख किया है।

( ८ ) काम्पिल्य ( ६।२।८४ )—इमका वर्तमान नाम करिया है। यह फर्हवाबाद से पच्चीस और कायमगंज से दूः मील उत्तर पश्चिम की ओर घृही गंगा के किनारे अवस्थित है। प्राचीन समय में यह नगरी दक्षिण पाञ्चाल की राजधानी थी।

( ९ ) कौशाम्बी ( १।२।७१ )—यह वत्स देश की राजधानी थी, जो यमुना के किनारे पर बसी थी। वत्साधिपति उदयन का उल्लेख समग्र संस्कृत साहित्य में आता है। यह गान विद्या में अत्यन्त प्रवीण था। कौशाम्बी के राजा शतानीक ने शम्पा के राजा दधिवाहन पर शूद्राई की थी। यहाँ पर महावीर के पाम उदयन की माँ रानी मृगावती ने दीक्षा धारण की थी। आजकल यह स्थान इलाहाबाद से ३० मील की दूरी पर अवस्थित कोसम नामक गाँव है। कनिष्क की इम पहचान को स्मिथ ने स्वीकार नहीं किया था और उनका विचार था कि कौशाम्बी को हमें कहीं दक्षिण में वर्षलम्बुड के आम-पास खोजना चाहिए, पर कनिष्क और स्मिथ के बाद इम सम्बन्ध में जो खोजें हुई हैं और अभी हाल में प्रयाग विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास विभाग के तत्वावधान में कोसम की खुदाई के परिणाम स्वरूप घोषिताराम के अवशेष के मिलने से वह सन्देह दूर हो गया है और कोसम को ही प्राचीन कौशाम्बी माना जाने लगा है। कोसम के चारों ओर दूर तक जो टीला सा दिखलाई देता है, उसे उदयन के किले का परकोय बनाया जाता है।

इतिहास का स्वर्णयुग है। इनके समय में इस जनपद में १८ देवा सम्मिलित थे और इसकी सीमाएँ उत्तर में तुलुक, पूर्व में गंगातट, दक्षिण में विन्ध्याचल और पश्चिम में समुद्रतट पर्यन्त थीं। यह समस्त राष्ट्र स्वच्छक और परच्छक के उपद्रव से मुक्त था।

दक्षिण भारत के राज्यों में चोल, केरल ( ६१११२० ) तमिल राज्य थे। काञ्ची ( ३१११४२ )—काञ्चीवरम् दक्षिण भारत के तमिल प्रदेश की राजधानी थी। यह प्रदेश बहुत दिनों तक तोण्डेयमण्डलम् या तोण्डेयनाड कहलाता था। कहा जाता है कि कीलिक चर्मन चोल के एक पुत्र के साथ मणिपल्लवम् द्वीप की भागी राजकन्या के विवाह सम्बन्ध से उत्पन्न बुदुपल्लव नामक व्यक्ति पल्लव वंश का संस्थापक था, जिसने चोल पर शासन किया था।

नगर—

जनपदों के अतिरिक्त हेम ने नगर और गाँवों का भी उल्लेख किया है। उन्होंने कण्ठान्त नामों में भरकण्ठ और पिप्पलीकण्ठ ( ६१३५० ) निर्दिष्ट किये हैं। भरकण्ठ वर्तमान भदोच है और पिप्पलीकण्ठ खम्भात की खाड़ी के बायीं ओर स्थित महीरेखा का कौटा था। नगरों में निम्नांकित नगर प्रधान हैं :—

( १ ) अवन्ती ( ७११११९ )—इसका दूसरा नाम उज्जयिनी है। अवन्ती की गणना जनपदों में की गई है। यह राज्य नर्मदा की घाटी में मान्धाता नगर से लेकर इन्दौर तक फैला हुआ था। प्राचीन समय में अवन्ती का राजा चण्डप्रद्योत था, इसकी पुत्री वासवदत्ता का विवाह वात्सराज उदयन के साथ हुआ था। यह नगरी उत्तर और दक्षिण के प्रसिद्ध भारतीय नगरों तथा पश्चिमी किनारे के उस समय के प्रसिद्ध बन्दरगाहों से व्यापारिक मार्गों द्वारा जुड़ी हुई थी।

( २ ) आपाढजम्बु ( ६१३४० )—शरावती नदी की पूर्व दिशा में यह नगर स्थित था। इसके पास नापितवस्तु नामक नगर भी था। नापितवस्तु को हेम ने ६१३१६ सूत्र में चाहीक जनपद के अन्तर्गत परिगणित किया है।

( ३ ) आह्वजाल ( ६१३३० )—यह नगर उशीनर चाहीक जनपद के अन्तर्गत था। सुदर्शन नामक नगर भी उक्त जनपद में ही अवस्थित था।

( ४ ) ऐपुकार भक्त ( ६१२१६८ )—‘ऐपुकारीणां राष्ट्रमैपुकारिभक्तम्’ अर्थात् पञ्जाब में ऐपुकारिभक्त नामक राष्ट्र में उक्त नाम का नगर था। उत्तरा-प्ययन सूत्र के ( १४११ ) अनुसार, इसुकार—इपुकार नाम का समृद्ध एवं वैभव पूर्ण नगर था। सम्भवतः यह हिसार का प्राचीन नाम रहा होगा।

( ५ ) काकन्द्री ( १।२।७१ )—उत्तर भारत की यह प्रसिद्ध प्राचीन नगरी है। भगवान् महावीर के समय में काकन्द्री में जितसत्रु राजा का राज्य वर्तमान था। काकन्द्री नूननार स्टेशन से दो मील और गोरमपुर से दक्षिण पूर्व तीस मील पर क्रिष्किन्धा—सुबुन्द ही प्राचीन काकन्द्री है।

( ६ ) कांची ( ३।१।४२ )—यह भारत की प्रसिद्ध और दुर्गम नगरी है। आजकल इसे कांचीपुरम् या कासांवरम् कहते हैं। इसे दक्षिण मथुरा भी कहा गया है। यह द्रविड या खोल देश की राजधानी पालार नदी के तट पर अवस्थित है जो मद्रास से ४३ मील पर अवस्थित है।

( ७ ) कापिश्री ( १।३।१४ )—यह काबुल से उत्तर पूर्व हिन्दूकुश के दक्षिण मायुनिक वेदान ही प्राचीन कापिश्री है। यह नगरी घोरबन्द और पञ्जशीर नदियों के सङ्गम पर अवस्थित थी। बहोके से बानियों होकर कपिश प्रान्त में घुमने वाले मार्ग पर कापिश्री नगरी स्थित थी। यह व्यापार और संस्कृति का केन्द्र थी। यहाँ हरी दाम्य की उत्पत्ति होनी थी और यहाँ की बनी हुई कापिशायनी सुरा भारतवर्ष में आती थी। पाणिनि ने भी (१।२।९९) इसका उल्लेख किया है।

( ८ ) काम्पिल्य ( १।२।८४ )—इसका वर्तमान नाम कपिला है। यह फर्गनावाद से पश्चिम और कायमगंज से दक्षिण मील उत्तर पश्चिम की ओर बड़ी गंगा के किनारे अवस्थित है। प्राचीन समय में यह नगरी दक्षिण पाञ्चाल की राजधानी थी।

( ९ ) कौशाम्बी ( १।२।७१ )—यह वत्स देश की राजधानी थी, जो यमुना के किनारे पर बसी थी। वत्साधिपति उदयन का उल्लेख समग्र संस्कृत साहित्य में आता है। यह गान विद्या में अत्यन्त प्रवीण था। कौशाम्बी के राजा शतानीक ने चम्पा के राजा दधिवाहन पर चढ़ाई की थी। यहाँ पर महावीर के पास उदयन की माँ रानी मृगावती ने दीक्षा धारण की थी। आजकल यह स्थान इलाहाबाद से ३० मील की दूरी पर अवस्थित कोसम नामक गाँव है। कनिष्क की इस पहचान को स्मिथ ने स्वीकार नहीं किया था और उनका विचार था कि कौशाम्बी को हमें कहीं दक्षिण में वपेलम्बन्द के आस-पास खोजना चाहिए, पर कनिष्क और स्मिथ के बाद इस सम्बन्ध में जो खोजें हुई हैं और अभी हाल में प्रयाग विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास विभाग के तत्त्वावधान में कोसम की खुदाई के परिणाम स्वरूप घोषिताराम के अवशेष के मिलने से वह सन्देह दूर हो गया है और कोसम को ही प्राचीन कौशाम्बी माना जाने लगा है। कोसम के चारों ओर दूर तक जो टीला सा दिखलाई देता है, उसे उदयन के किले का परकोटा बताया जाता है।

( १० ) गिरिनगर ( १७११२६ )—यह नगर गुजरात के प्रसिद्ध पर्वत गिरिनार के आस पास स्थित था । आज के जूनागढ़ को प्राचीन गिरिनगर कहा जा सकता है । आपटे ने दक्षिणापय के एक जिले का नाम गिरिनगर लिखा है । पर हेम का अभिप्राय गिरिनार के पार्श्ववर्ती गिरिनगर से ही है ।

( ११ ) गोनर्द ( २१२१०५ )—हेम ने 'पूर्व उज्जयिन्या गोनर्दः' उदाहरण द्वारा उज्जयिनी से पूर्व गोनर्द की स्थिति मानी है । पालि साहित्य में गोनद्ध या गोनद्धपुर कहा गया है । यह भवन्ती जनपद का 'प्रसिद्ध निगम था जो दक्षिणापय मार्ग पर' स्थित था । यावरी ब्राह्मण के सोलह शिष्य गोदावरी के तट के समीप स्थित अपने गुरु के आश्रम से चलकर 'प्रतिष्ठान और उज्जयिनी होते हुए गोनद्ध आये थे और फिर वहाँ से आगे चलकर उन्हें जो प्रसिद्ध नगर पदा था, वह विदिशा था । इस प्रकार गोनर्द नगर उज्जयिनी और विदिशा के बीच में स्थित था । सुत्तनिपातों की अटकथा के अनुसार गोनर्द का एक अन्य नाम गोघपुर भी था ।

( १२ ) नड्वल ( ११२१०५ )—पाणिनि ने भी इसका उल्लेख ( ४१२१८८ ) किया है । संभवतः यह मारवाड़ का नाडौल नगर है ।

( १३ ) पावा ( ११३१२ )—प्राचीन समय में पावा नाम की तीन नगरियाँ थीं । जैन ग्रन्थों के अनुसार एक पावा मंगि देश की राजधानी थी । बौद्ध साहित्य में पावा को मल्ल देश की राजधानी बताया गया है । दूसरी पावा कोशल के उत्तर पूर्व में कुशीनारा की ओर मल्ल राज्य की राजधानी थी । धार्मिक पदराना को, जो कसिया से बारह मील और गोरखपुर से लगभग पचास मील है, पावा कहते हैं । तीसरी पावा मगध जनपद में थी । यह उक्त दोनों पावाओं के मध्य में अवस्थित थी, अतएव पावा-मध्यमा के नाम से अभिहित की गयी है । वर्तमान में मिहार शरीफ से लगभग ८ मील की दूर पर दक्षिण में यह स्थित है ।

( १४ ) पुण्ड्र ( ११२१६९ )—यह पुण्ड्रवर्धन के नाम से प्रसिद्ध है और पूर्व बंगाल के मालदा जिले में है । वर्तमान बोगरा जिले का महारथान गढ़ नामक स्थान पुण्ड्र जनपद में था । इस ग्राम में असोक का एक शिलालेख मिला है, उसमें पुण्ड्र नगर के महामात्र के लिए आज्ञा दी गयी है । कौटिल्य अर्थशास्त्र ( अ० ३२ ) में लिखा है कि पुण्ड्र देश का वस्त्र रथाम और मणि के समान खिन्ध वर्ण का होता है । महाभारत ( समा पर्व ७८, ९३ ) में पुण्ड्र राजाओं का हुबूलादि लेकर महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में उपस्थित

होने का उल्लेख है। राजशेखर ने काव्यमीमांसा में पुण्ड्र की गणना पूर्व देश में की है। -

( १५ ) माहिष्मती ( ३।४।२० )—पुराण, महाभारत आदि ग्रन्थों में उल्लिखित यह एक अति प्राचीन नगरी थी। श्रीमद्भागवत में लिखा है कि इस नगरी में हेहयराज कार्त्तवीर्यार्जुन राज्य करते थे। स्कन्दपुराण के नागर खण्ड के मत से यह नगरी नर्मदा के तट पर अवस्थित थी। सहस्रार्जुन रेवा के जल में बहुत सी स्त्रियों के साथ जलक्रोडा करता था। शैवग उसके बल-वीर्य को जानता हुआ भी उसके साथ युद्ध करने आया और अन्त में सहस्रार्जुन के हाथ बन्दी बना।

महाभारत में लिखा है कि राजसूय के समय सहदेव यहीं (कर) उगाहने आये थे। उस समय यहाँ नीलराज का राज्य था। स्वयं अग्निदेव इनके जामाता थे। अग्नि की सहायता से नीलराज ने उनको परास्त किया, पर अग्निदेव के कहने पर सहदेव की पूजा की और कर दिया। गरुड पुराण ( ८।१।१९ ) में इस स्थान को महातीर्थ कहा है।

बौद्ध काल में भी माहिष्मती समृद्धिशाली नगरी थी। बहुत से पण्डितों का वास होने से इस नगरी का आदर था। ७वीं शती में चीनी यात्री ह्यु एन च्वांग यहाँ आया था। इसने मोहिनिफलोपुलो ( महेश्वरपुर ) के नाम से उल्लेख किया है। इस समय इस नगरी का परिमाण ५-मील था। इसकी गणना स्वतन्त्र राज्यों में की जाती थी। यहाँ के निवासी पाशुपतावलम्बी थे। राजा ब्राह्मण था। बताया जाता है कि जबलपुर से द्वा मील दूर त्रिपुरारि नामक नगरी का अम्युदय होने से माहिष्मती की समृद्धि लुप्त हो-गयी थी। महाभारत के समय में माहिष्मती और त्रिपुर स्वतन्त्र राज्य थे। -

हेम ने माहिष्मती का उल्लेख दो बार किया है। प्रथम बार उज्जयिनी के साथ ( ३।४।२० ) और द्वितीय बार ( ६।२।१४ )—'माहिष्मान् देशो भवा माहिष्मती' लिखा है। पालि साहित्य से अवगत होता है कि यह नगरी दक्षिणपथ मार्ग पर पड़ती थी और प्रतिष्ठान एवं उज्जयिनी के बीच अवस्थित थी। माहिष्मती को कुछ लोगों ने महेश्वर से मिलाया है और कुछ ने मान्धाता नगर से। माहिष्मती की पूर्वोक्त स्थिति के अवलोकन से स्पष्ट है कि उसे मान्धाता से मिलाना ही उचित है। -

( १६ ) माकन्दी ( ६।२।७१ )—दक्षिण पाञ्चाल के मुख्य नगरों में इसकी गणना थी। दुर्योधन से पाण्डवों के लिए कृष्ण द्वारा चिन पाँच नगरों

की माँग की गयी थी, उनमें माकन्दी का नाम भी शामिल था। बताया गया है कि एक माकन्दी गंगा के किनारे थी और दूसरी यमुना के।

( १० ) वरणा ( ११२।१९ )—वरण वृष के समीप बसी होने के कारण इस नगरी का नाम वरणा पड़ा था। वरणा उस दुर्ग का नाम था, जो ब्राह्मणों के राज्य में सिन्धु और स्वात नदियों के मध्य में सबसे सुरक्षित स्थान था। पाणिनि व्याकरण में भी ( १।२।८२ ) इसका उल्लेख आया है।

( १८ ) विराट नगर ( ७।१।२१ )—यह नगर मात्स्य देश की राजधानी था। यहाँ पर पाण्डवों ने वर्ष भर गुहावास किया था। जयपुर से उत्तर पूर्व ४२ मील पर यह प्राचीन स्थान आज भी वर्तमान है।

( १९ ) वैदिशं नगरम् ( १।२।१९ )—पालि साहित्य में इसे 'वेदिम नगर' कहा है। वस्तुतः वैदिश नगर दक्षिणाप्य मार्ग पर गोनर्द और कौशांबी के बीच अवस्थित था। बाहरि ब्राह्मण के सोलह शिष्य यहाँ उदरे थे। भोपाल के निकट वेत्रवती या वेतवा नदी के तट पर मिलमा नाम की नगरी ही प्राचीन वैदिश नगर है। यह कभी दशार्जुन की राजधानी रहा है। सम्राट् पुष्यमित्र का पुत्र अग्निमित्र अपने पिता के समय इन नगरी में राज्यपाल के रूप में निवास करता था। कालिदास के मालविकाग्निमित्र नाटक में इसकी खर्चा है। दानमठ की कादम्बरी का प्रधान नायक शुद्रक वैदिश नगर का राजा था। स्पविर महेन्द्र ने लंका जाने के पूर्व बुद्ध समय इस नगर में निवास किया था। उनकी माता देवी ने इस नगर में 'वेदिसगिरि महाविहार' की स्थापना की थी।<sup>१</sup>

( २० ) शाद्वलम् ( १।२।०५ )—यह भी एक नगर है।

( २१ ) सिद्धावत ( १।२।०६ )—हेम ने 'सिद्धायाः' सूत्र की व्याख्या करते हुए सिद्धावत को समुद्र नगर कहा है। संभवतः यह सोन नदी पर स्थित सिद्धावत नगर रहा होगा।

( २२ ) संकारस्य ( ७।१।१६ )—फर्रुखाबाद जिले में इक्ष्मती नदी के किनारे वर्तमान संकिसा है। हेम ने ( २।२।१०० ) में गवीधुमतः संकारस्य चत्वारि योजनानि' उदाहरण द्वारा गवीधुमत से संकारस्य की चार दोहरन दूर बतलाया है। ७।१।१६ सूत्र के उदाहरण में 'संकारस्यकानां पाटलिपुत्र-कारणां च पाटलिपुत्रका आल्यतनाः'—अर्थात् सांकारस्य और पाटलिपुत्र के निवासियों में पाटलिपुत्र वाले सम्पन्न हैं। इससे स्पष्ट है कि हेम के समय में सांकारस्य का वैभव चीण हो गया था। यह पञ्जाब देश का मुख्य नगर था।

वाल्मीकि रामायण के आदिकाण्ड ( अध्याय ७० ) में भी संकाश्य नगर का उल्लेख है। पाणिनि ने ( ४।२।८० ) संकाश्य नगर का उल्लेख किया है। सरभमिग जातक में संकाश्य नगर की दूरी भावस्ती से तीस योजन बतायी गयी है। जनरल कनिंघम ने सकिसा—वसन्तपुर की पहचान सर्वप्रथम की है। सकिसा गाँव ४१ फुट ऊँचे टीले पर बसा हुआ है। चारों ओर दूमरे भी टीले हैं, जिनका घेरा मिलाकर करीब दो मील है।<sup>१</sup> स्मिथ ने इस पहचान को स्वीकार नहीं किया था। उनका कहना था कि यूआन् खुआङ्ग ने जिन संकाश्य नगर को देखा था, उसे एटा जिले के उत्तर-पूर्व में होना चाहिए।<sup>२</sup> फाझान ने संकाश्य नगर को मधुरा से १८ मील दक्षिण-पूर्व में देखा था।<sup>३</sup> संकाश्य नगर उत्तरापथ मार्ग पर अवस्थित था, जिसके एक ओर सोरों और दूसरी ओर कश्मीर नगर स्थित थे। इन दोनों के बीच में संकाश्य नगर था।

( २३ ) सौवास्तव ( ६।२।७२ )—यह सुवास्तु या स्वात नदी की घाटी का प्रधान नगर था। पाणिनि की अष्टाध्यायी ( ४।२।७७ ) में इसका उल्लेख मिलता है।

( २४ ) तक्षशिला ( ६।२।६९ )—यह नगर पूर्वी गन्धार की प्रसिद्ध राजधानी था। मिन्धु एवं विपाशा के बीच सब नगरों में बड़ा और समृद्ध-शाली था। उत्तरापथ राजमार्ग का मुख्य व्यापारिक नगर था। जैन ग्रन्थों में इसका दूसरा नाम धर्मचक्र भूमि भी पाया जाता है। बौद्धकाल में यह नगर विद्या का बड़ा केन्द्र था।

( २५ ) विष्णुपुर ( २।४।४९ )—बौद्धिक जिले का प्राचीन नगर है। यह अक्षांश २७°१२' उ० तथा देशान्तर ७७°-५७' पू० के मध्य द्वारिकेश्वर नदी से कुछ मील दक्षिण में अवस्थित है। यह प्राचीन समृद्धिशाली नगर है। प्राचीन समय में ७ मील लम्बा था। दुर्ग प्राकार के मध्य में राजप्रासाद वर्तमान था। यहाँ आज भी भग्नावशेष उपलब्ध हैं। नगर के दक्षिणी दरवाजे के समीप विशाल शस्त्रागार का ध्वंसावशेष उपलब्ध है। क्रि.वदन्ती प्रचलित है कि रघुनाथ इस नगर का प्रथम महत्त राजा हुआ। इस वंश ने ११०० वर्ष शासन किया। राजा रघुनाथ ने बड़े यत्न से इस नगर को बसाया था। बहुत समय तक यह महत्तभूमि के नाम से प्रसिद्ध रहा। विष्णुपुर में ५९ राजाओं ने राज्य किया है।

इन नगरों के अतिरिक्त गया ( ६।२।६९ ), उरदा ( ६।२।६९ ), यावा

१ एन्डिन्स ज्योमेरी ऑन इण्डिया पृ० ४२२-४२७।

२ वा'नेन \* ऑन् यूआन् खुआङ्ग नेविन इन इण्डिया, विन्ड दूमरी, पृ० ३२८।

३ गारल्म : टविल्स ऑव फाझान, पृ० २४।

( ६।३।२ ), दार्व ( ६।३।२ ), राजगृह ( ६।३।४६ ), पाटलिपुत्र ( ७।३।६ ), वजु-म्रांज ( ७।३।२६ ), आस्कथ्य ( ३।२।४८ ), धीपुर ( २।४।४९ ), कोविदार ( ६।२।८४ ), कश्मीर ( ६।२।८४ ), वाराणसी ( ६।२।६९ ), माहनगर ( ६।३।५८ ) प्रमृति नगरों के नाम उपलब्ध होते हैं । हेम ने मथुरा और पाटलिपुत्र की समृद्धि की तुलना करते हुये लिखा है—‘मथुरा पाटलिपुत्रेभ्यः आढ्यतरा’ ( २।२।२९ ) अर्थात् मथुरा पाटलिपुत्र की अपेक्षा अधिक समृद्धि-शाली है । सम्भवत हेम के समय में मथुरा की समृद्धि अधिक बढ़ गयी थी । पर संकाश्य की अपेक्षा पाटलिपुत्र की समृद्धि अधिक थी । हेम ने ‘संकाश्य-कानां पाटलिपुत्रकानां च पाटलिपुत्रका आढ्यतमा’ ( ७।३।६ ) उदाहरण द्वारा अपने समय की स्थिति पर प्रकाश डाला है । २।४।११ सूत्र के उदाहरणों में ‘वहुपरित्राजका मथुरा’ उदाहरण प्रस्तुत कर मथुरा में बहुत से सन्यासियों के रहने की सूचना दी है । अनुमान है कि आज के सनात ही हेम के समय में भी मथुरा में सन्यासियों की भीड़ एकत्र रहती थी । इसी कारण हेम ने उक्त उदाहरण द्वारा मथुरा में संन्यासियों की बहुलता की सूचना दी है ।

हेम ने राजन्यादि गण, ईपुकार्यादि गण, मध्वादि गण, नडादि गण, वरणादि गण, नद्यादि गण, धूमादि गण, वाहीक गण आदि में तीन-चार सौ नगरों से कम का उल्लेख नहीं किया है । इन गणों में पाणिनि के नामों की अपेक्षा अनेक नाम नवीन आये हैं ।

गाँवों के नामों में जाम्ब, शालूकिनी, केतवता ( ३।१।१४२ ), नपर्णा ( ६।२।९ ), पूर्वेषुकामरामी ( ६।३।२३ ), शाकली, नन्दीपुर, सिपुरी, वाता-नुप्रस्य, कुञ्जुटरीवह ( ६।३।३६ ), वर्तोपुर, पीलुवह, मालाप्रस्य, शोणप्रस्य ( ६।३।४३ ) आदि सैकड़ों नाम आये हैं । हेम ने मौञ्ज नामक ग्राम के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करते हुये लिखा है—“मौञ्जं नाम वाहीकावधिरन्य-पदीयो ग्रामो न वाहीक ग्राम इत्येके । अन्ये तु दश द्वादश वा ग्रामा विशिष्टसन्निवेशावस्थाना मौञ्जं नामेति ग्रामसमूह एवायं न ग्रामः, नापि राष्ट्रं येन राष्ट्रलक्षणोऽकञ् स्यात् इति मन्यन्ते” ( ६।३।३६ ) । अर्थात् मौञ्ज ग्राम वाहीक की सीमा के बाहर नहीं है । अतः इसे वाहीक ग्राम में ही शामिल करना चाहिये, ऐसा कुछ विद्वानों का मत है । अन्य कुछ मनोपी दस या चारह ग्रामों के विशिष्ट समूह को मौञ्ज ग्राम मानते हैं, किन्ती एक ग्राम को नहीं । यह राष्ट्र तो है नहीं, जिससे राष्ट्रलक्षण सूचक अकञ् प्रत्यय किया जाय । इस प्रकार हेम ने ग्राम सम्बन्धी सामग्री पर पर्याप्त विचार किया है ।



पर्वत—

राष्ट्र, नगर और ग्रामों क अतिरिक्त पर्वत, नदी और वनों की विवेचना भी हैम व्याकरण में उपलब्ध होती है। हम क उल्लेखों से अवगत होता है कि उनक समय में भी पर्वतीय लोग आयुधनीवी थे। इन्होंने—‘पर्वतात् ६।३।६०—पर्वतश्चाद्देशवाचिन शेषेऽर्थे इय प्रत्ययो भवति।’ यथा—पर्वनाया राजा, पर्वतीयो पुमान्। अर्थात् पहाड़ी प्रदेश में रहने वालों को बतलाने के लिय पर्वत् शब्द से इय प्रत्यय होता है। यथा—पहाड़ी इलाके का राजा और पहाड़ी पुरुष दोनों हा पर्वतीय कहलाते हैं। मनुष्य अर्थ से भिन्न अर्थ बतलाने के लिये यह इय प्रत्यय विकल्प से होता है। बताया है—‘अनरेवा’ ६।३।६१—पर्वताद्देशवाचिनो नरवर्तितशेषेऽर्थे इय प्रत्ययो भवति वा। यथा—पर्वतीयानि पर्वतानि फलानि, पार्वतमुटकम्। मार्कण्डेय पुराण में त्रिगर्त, हुम्गर, हुना ( हसमार्ग ), जलालाबाद ( नीहार ) के अर्थात् कागडा स अफगानिस्तान क पहाड़ी लोगों को पर्वतीय या पर्वता श्रयी कहा जाता था। महाभारत उद्योग पर्व ( ३०।२७ ) में गान्धारराज राजुनि पर्वतीय —गन्धार देश का राजा राजुनि पहाड़ी कबीलों का अधिपति था। हम ने सानु शब्द की व्युत्पत्ति बतलाते हुये लिखा है—‘सनति सनोति वा मृगादीनीति सानु—पार्वतैकदेश ( उण० १ ) अर्थात् मृग आदि पशुओं के रहने स सानु कहलाता था।

पौराणिक पर्वतों में विजयार्घ, पुष्करार्घ ( ६।३।७० ), निपघ और नील ( २।२।३३ ) का निर्देश आया है। विजयार्घ को कुङ्ग विद्वान् हिमालय का ही एक जग मानते हैं। ‘अञ्जनादीना गिरौ’ ( ३।२।७७ ) में परम्परा से चले आने वाले पर्वतों के निर्देश क साथ कुङ्ग नाम नये पर्वतों के भी जाय हैं। इस सूत्र में अञ्जनादि गण क अन्तर्गत अञ्जनागिरि, अञ्जनागिरि, किञ्चुका गिरि, किञ्चुलकागिरि, सास्वगिरि, लोहितागिरि, कुङ्कुगिरि, खदनागिरि, नलागिरि एव पिंगलागिरि इस प्रकार दस पहाड़ों के नामों का उल्लेख किया है। पाणिनि ने किञ्चुलकादि गण में किञ्चुकागिरि, शालकागिरि, अञ्जनागिरि, अञ्जनागिरि, लोहितागिरि एव कुङ्कुगिरि इन छ पहाड़ों का उल्लेख किया है। श्री डा० वासुदेव शरण अप्रवाल ने अनुमान किया है कि उत्तर पश्चिमी द्वार पर अफगानिस्तान से बलुचिस्तान तक उत्तर दक्खिन दौड़ती हुई पहाड़ों की जो ऊँची दीवार है, उसकी बड़ी चोगियों क य नाम जान पड़ते हैं। कुङ्ग विद्वान् हिन्दुकुश का पुराना नाम लहितगिरि मानते हैं। महाभारत

(सभापर्व० २७।१७) में अर्जुन की दिग्विजय के मार्ग में काश्मीर के घाट लोहित को जीतने का उल्लेख है।

हेम ने ३।१।१४२ में हिमालय पर्वत की एक छोटी गौरी का उल्लेख किया है। इसका वर्णन महाकवि कालिदास के कुमारसंभव में पार्वती-तपश्चरण के प्रसंग में (५।७) उपलब्ध होता है। इस छोटी पर मयूर रहा करते थे। हेम ने इसी प्रसंग में कैलास पर्वत का उल्लेख किया है। जिनसेन के महापुराण में (३३ पर्व, श्लो० १२-२०) कैलास का बहुत विस्तृत वर्णन मिलता है। इस कैलास पर्वत से बहुत से क्षरने निकलते थे, इसकी छोटी बहुत ही उन्नत थी, इसमें नाना प्रकार की मणि जड़ित थीं। गुफाओं में सिंहादि हिंसक जन्तु निवास करते थे। यह कैलास भी हिमालय की एक छोटी है। हेम ने ३।२।७५ में इसका अन्य नाम अष्टापद भी कहा है। यथा—अष्टौ पदान्यत्र अर्थात् आठ पद—उपत्यकाएँ जिसकी हों, वह अष्टापद है। कुछ विद्वान् कैलास को मानसरोवर से २५ मील उत्तर में मानते हैं तथा यह स्थान मनुष्यों के लिए अगम्य माना जाता है। अन्य पर्वतों में गन्धमादन (२।२।३३) के नामों के साथ निम्नांकित पर्वतों का उल्लेख मिलता है।

**रैवतगिरि (३।१।२०)**—यह गुजरात का प्रसिद्ध पर्वत है। आजकल इसका नाम गिरनार है। पुराणों में इसे रैवतक पर्वत कहा गया है। यह काटियावाड़ प्रान्त के जूनागढ़ नगर के समीप है। महाकवि माघ ने अपने माघ काव्य में श्रीकृष्ण की सेना के द्वारिका से चलकर रैवतक पर्वत पर शिविर डालने के अतिरिक्त विविध क्रीड़ाओं का वर्णन किया है। जैन साहित्य में यह पर्वत बहुत प्रसिद्ध और पवित्र माना गया है।

**माल्यवान् (२।२।३३)**—यह दक्षिणापथ का पर्वत है। रामायण में इसका वर्णन आया है। यहाँ सुग्रीव की प्रार्थना पर श्रीरामचन्द्र जी ने वर्षाकाल व्यतीत किया था।

**परियात्र (२।२।७५)**—यह भारत वर्ष का एक कुल पर्वत है। संभवतः यह विन्ध्य पर्वत माला का एक भाग है, जो कच्छ की ग्याही की ओर है। कुछ ऐतिहासिक विद्वानों के मत से यह हिमालय की शिवालक पर्वत माला का नाम है। कुछ विद्वान् जयपुर और मरवाड़ के मध्य में विस्तृत पर्वत माला के दक्षिण भाग को परियात्र मानते हैं, जो आजकल पत्थर कहलाती है। चीनी यात्री यूएन च्वांग ने इसी पर्वत माला को परियात्र कहा है। हेम ने 'उत्तरो विन्ध्यात् परियात्रः' (२।२।७५)—अर्थात् विन्ध्य से उत्तर परियात्र

को कहा है। मध्य भारत में पश्चिमोत्तर में विस्तृत पर्वत श्रेणी विन्ध्य है, इसी के कारण भारत उत्तर और दक्षिण भागों में बँटा है।

वर्दीपानामगिरि ( ३१२१०८ )—वार्दा—‘मेघा सन्त्यत्र वर्दीपानाम गिरिः’ अर्थात् यह भी हिमालय की कोई चोटी ही प्रतीत होती है।

वेटावानामगिरि ( ३१२१०८ )—वेटन्ति पश्चिमिरेत्र वेटा वृक्षास्ते सन्त्यत्र अर्थात्—इस पर्वत पर घने वृक्ष थे। सम्भवतः यह विन्ध्यगिरि की कोई चोटी है।

शत्रुञ्जय ( ३१४१२० )—काठियावाड में एक छोटा सा पर्वत है। इस पर्वत पर लगभग ६०० जैन मन्दिर हैं। आचार्य हेम ने गिरनार से शत्रुञ्जय की दूरी बतलाते हुए लिखा है—‘रैवतकात् प्रस्थितः, शत्रुञ्जये सूर्यं पातयति’—अर्थात् रैवत से प्रातःकाल रवाना होने पर सूर्यास्त होते होते शत्रुञ्जय पर पहुँच जाते हैं। कहा जाता है कि जयसिंह सिद्धराज ने शत्रुञ्जय की तीर्थ यात्रा करके वहाँ के धादिनाथ को १२ ग्राम भेंट किये थे। सम्राट् कुमारपाल ने भी शत्रुञ्जय और गिरनार की यात्रा की थी तथा शत्रुञ्जय पर जिनमन्दिर भी बनवाये थे।

नदियों—

‘गिरिनद्यादीनाम्’ २।३।६८ में दो प्रकार की नदियों का उल्लेख किया है—गिरिनदी और वक्रनदी। गिरिनदी उस पहाड़ी नदी को कहा है, जो शरने के रूप में प्रवाहित होती है, जिसमें अधिक गहरा पानी नहीं रहता। वक्र नदी इस प्रकार की नदी है, जिसकी धारा बहुत लम्बी और दूर तक प्रवाहित होती है, जिसका जल भी गहरा रहता है। दूर तक प्रवाहित रहने के कारण वक्र नदी के तट पर आवादी रहती है, बड़े-बड़े गाँव या शहर बस जाते हैं। निम्न नदियाँ उल्लिखित हैं।

( १ ) गंगा ( ३।१।३४ ), यमुना ( ३।१।३४ ), शोण ( ३।१।१२ ), गोदावरी ( ३।२।५, ७।३।९१ ), देविका ( उण० २७ ), चर्मण्वती ( २।१।३० ), कुहा ( ५।३।१०८ ), उदुम्बरावती, मरुकावती, वीरणावती, पुष्करावती, वृक्षमती, दुम्बती, शरावती, दूरावती, भागीरथी, भीमरथी, जाह्नवी, सौभाग्यवती ( ६।२।७२ ), चन्द्रभागा ( २।४।३० ), अहिवती, कपिवती, मणिवती, मुनिवती, ऋषिवती ( २।१।९५ ), सरयू ( ९०४ उ० ) शङ्खरी ( ९०४ उ० )।

गंगा—यह भारत की प्रसिद्ध पुण्यनदी है। यह गढ़वाल जिले के गंगोत्री नामक स्थान से दो मील ऊपर हिन्दुमर से निकलती है। हेम ने ‘अनुगङ्गा वाराणसी’ ( ३।१।३४ )—उदाहरण द्वारा वाराणसी के समीप गंगा की सूचना

दी है। ३।२।५ सूक्त में उन्मत्तगङ्गं, लोहितगङ्ग, शनैर्गङ्गम् और तूष्णीगङ्गं उदाहरणों द्वारा गंगा की विभिन्न स्थितियों का निरूपण किया है। वर्षा ऋतु में बाढ़ आने से गंगा उन्मत्त और लोहित हो जाती है। शरद ऋतु में गंगा के प्रवाह की तीव्रता घट जाने से शनैर्गङ्गम्—धीरे-धीरे प्रवाहित होने वाली गंगा कही जाती है। ग्रीष्म ऋतु में गंगा की धारा के क्षीण हो जाने से कलकल ध्वनि भी कम सुनाई पड़ती है और गंगा शान्त रूप में प्रवाहित होने लगती है। अतः इन दिनों में तूष्णीगंगा कहलाती है।

यमुना—आगरा, मथुरा और प्रयाग के निकट प्रवाहित होनेवाली प्रसिद्ध नदी है। यह कलिन्द नामक स्थान से निकलती है, जिसे यमुनोत्तरी कहा जाता है। कलिन्द पर्वत से निकलने के कारण ही यह कालिन्दी कहलाती है। हेम ने 'अनुयमुन' मथुरा ( ३।१।३४ ) उदाहरण से मथुरा की समीपता यमुना से बतलायी है।

शोण—यह पूर्व देश की प्रसिद्ध नदी है। हेम ने 'गङ्गा च शोणश्च गङ्गाशोणम् ( ३।१।३२ ) द्वारा गंगा और सोन की समीपता बतलायी है। यह नदी गोंडवाने से निकलकर पटना के समीप गंगा से मिलती है।

गोदावरी—दक्षिण भारत की प्रसिद्ध नदी है। यह सख्य पर्वत—पश्चिमी घाट के पूर्व शिखर श्यम्बकेश्वर नामक स्थान के पास ब्रह्मगिरि पर्वत से निकलती है। यह स्थान वर्तमान नासिक नगर से १२ मील की दूरी पर है। यह नदी राज महेन्द्री के पास पूर्वसमुद्र ( बंगाल की खाड़ी ) में गिरती है और ९०० मील लम्बी है।

देविका—यह मद्रदेश में प्रवाहित होने वाली प्रसिद्ध नदी है। वामन पुराण अध्याय ८४ के अनुसार रावी की सहायक नदी थी, इसकी पहचान देग नदी के साथ की जा सकती है, जो जम्मू की पहाड़ियों से मिलकर स्यालकोट, शेवपुरा जिलों में होती हुई रावी में मिल जाती है।

चर्मण्यती—इसका वर्तमान नाम चम्बल है सिन्ध्याचल की नदियों में यह प्रसिद्ध है। इसका जल बहुत ही पतला और साफ होता है।

कुदा—यह उत्तरापथ की प्रसिद्ध नदी है। इसे काबुल नदी भी कहते हैं। वेदों में इसे कुमा कहा गया है। ग्रीक लोग इसे काकम कहते हैं। यह सिन्धु की सहायक नदी है और कोही बाया पहाड़ के नीचे से निकलती है।

उदुम्बरायती—उदुम्बर देश की किसी नदी का नाम है। यह देश व्यास और रावी के बीच में कांगड़ा के भाम-पास अवस्थित था।

मशाकावती—स्वात नदी का निचला भाग मशाकावती नदी है। इसके

तट पर मशकावती नगरी थी। यूनानियों के अनुसार मस्मग का किला पहाड़ी था, चिमके नीचे प्रवाहित होने वाली नदी मशकावती कहलाती थी। काशिका ( १११८५ ) में दम नदी का उल्लेख है।

गौरपावती—यह नदी प्राचीन वारणावती ज्ञात होती है। राजशेखर ने काव्य मीमामा में दक्षिण भारत की नदियों में वरणा का नाम गिनाया है। यह मध्य पर्वत से निकलती है।

पुष्करावती—स्वात नदी के एक हिस्से का नाम पुष्करावती है। सुवास्तु नदी के दक्षिण का प्रदेश, जहाँ वह कुभा में मिलती है, किसी समय पुष्कल जनपद कहलाता था। श्री ६० वासुदेव शरण अप्रवाल ने गौरी-सुवास्तु सगम तक की मम्मिलित धारा को पुष्करावती माना है<sup>१</sup>।

ईशुमती—यह फर्गनावाद चले गी ईशुन नदी है। गंगा की सहायक नदियों में इसकी गणना की गयी है।

द्रुमती—संभवत यह काश्मीर की ड्राम नदी है।

शारावती—कुरुक्षेत्र की घग्गर नदी है। यह प्राच्य और उदीच्य देशों की सीमा पर प्रवाहित होती थी।

डरावती—यह पञ्जाब की प्रसिद्ध इरावती या राप्ती नदी है। लाहौर नगर इसी के तट पर बसा था। कुड़ विद्वान् अवध प्रदेश की राप्ती नदी को इरावती मानते हैं, पर अधिकांश विचारक इसी पक्ष में हैं कि यह पञ्जाब की प्रसिद्ध रावी नदी ही है।

भैरवती—दक्षिण भारत की प्रसिद्ध नदी है। इसका वर्तमान नाम भीमा है। कृष्णा के साथ जहाँ दमका सगम होता है, वहाँ इसका नाम भैरवती हो गया है।

सौरावती—आजकल इसे स्वात नदी कहा जाता है। इसकी पश्चिमी शाखा गौरी नदी है। इन दोनों के बीच में उड्डियान था, जो गन्धार देश का एक भाग माना जाता था।

चन्द्रभागा—पञ्जाब की पाँच प्रसिद्ध नदियों में से एक नदी चिनाव ही चन्द्रभागा नदी है। यह सिन्धु की सहायक नदियों में है। दम नदी के दोनों तटों पर चन्द्रावती नगरी का ध्वसावशेष पडा हुआ है। कहा जाता है कि राजा चन्द्रमेन ने यह चन्द्रावती नगरी बसाई थी, किन्तु यहाँ से प्राप्त प्राचीन सिक्कों को देखने से यही अनुमान किया जाता है कि इस नगरी का अस्तित्व चन्द्रमेन से बहुत पहले भी वर्तमान था। अतः चन्द्रसेन ने इसका पुनः संस्कार किया होगा।

वन—

भौगोलिक दृष्टि से वनों का महाव सार्वजनीन है। आचार्य हेम ने अपने रावदानुशासन में शताधिक वनों का उल्लेख किया है। प्राचीन भारत में वन अधिक थे और उनकी उपयोगिता से सभी लोग अवगत थे। इन्होंने 'निष्प्राप्तेऽन्तः खदिरकारयाम्रशरेक्षुप्लक्षपीयूक्षाभ्यो वनस्य' ( २।३।६६ ) में निर्घणम्, प्रवणम्, अग्नेवणम्, आम्रवणम्, शरवणम्, इक्षुवणम्, प्लक्षवणम्, पीयूषावणम् तथा २।३।६५ सूत्र में मनोहरवनम्, प्रभाकरवनम् के नाम भी गिनाये हैं। 'द्वित्रिस्वरूपधिवृक्षेभ्योनवाऽनिरिकादिभ्यः' २।३।६७ में देवदारवन, भद्रदारुवन, विदारीवन, शिरीषवन, हरिकावन, मिरिकावन, तिमिरवन, चिरिकावन, कमरिवन, खीरवन, हरिवन, द्रुमवन, वृक्षवन, दुर्वावण, मूर्वावण, व्रीहिवण, मारुण, नीवारवण, कोद्रवण, त्रिवंगुवण, शिग्रुवण, दारुवण और करीरवण का उल्लेख आया है।

इन वनों में अग्नेवण प्राचीन अग्रजनपद में स्थित था। आम्रवन राजगृह के समीप आम का घना जंगल था। कहा जाता है कि इसे जीवक ने बुद्ध को दान में दिया था। प्राकृत साहित्य में कई उद्यानों का उल्लेख आया है। कंबिष्ठ नगर में सहस्रसंघवण नाम का उद्यान था। आसमिया नगरी के बाहर सांववण नाम के उद्यान का उल्लेख है। महाकवि अर्हदास ने अपने मुनिसुव्रत काव्य में मगध के घनीभूत वनों का वर्णन करते हुए लिखा है—

तमोनिवासेषु वनेषु यस्य मरन्दसार्द्रास्तरणोर्मयूषाः।

स्फुरन्ति शाखान्तरलब्धमार्गाः क्षुन्ताः प्रयुक्ता इव शोणितार्त्राः ॥१।२.७॥

जिस मगध देश के निग्रिड अन्धकार मय वनों में मकरन्द विन्दु से भीगी हुई तथा पत्तों की ओट से छन-छन कर आती हुई सूर्य की किरणें लक्ष्य को वेध कर आती हुई रुधिराक्त चक्षियों की प्रतीत होती हैं।

कवि ने 'द्विर्विनो यत्र त्रिधाय' तथा 'आरामरामाशिरसीव' ( १।३.८-३९ ) पद्यों द्वारा राजगृह के बाहर रहने वाले वनों की सूचना दी है। हेम ने ( २।३।६५ ) मनोहर वन को रम्य उद्यान बताया है। शरवणम् नामक सशिवेश श्रावस्ती नगरी से सटा हुआ था, जहाँ आजीवक आचार्य गोपाल मंगलित पुत्र का जन्म हुआ था। इक्षुवण—कर्णयायाद जिले की ईक्षुमती—ईगन नदी के तट पर अवस्थित था। प्रभाकर वन का दूसरा नाम महावन भी बताया गया है। यह उद्यान वाराणसी के समीप था। गोपालक ने महावीर से कहा था कि उसने काम महाजन में माह्यमंडित का शरीर छोड़कर रोह के शरीर में प्रवेश किया है। प्रभाकर वन के वैशाली के आस-पास रहने के भी प्रमाण मिलते हैं। व्रीहिवण और मूर्वावण

शुभ्रुगणिका नदी के दोनों तटों पर अवस्थित थे। भगवान् महावीर ने इसी शुभ्रुगणिका नदी के तट पर केवलज्ञान प्राप्त किया था। बदरीवन मिर्जापुर और वाराणसी के बीच पड़ता था। आज भी इस स्थान पर बदरी—वैर के पेड़ उपलब्ध हैं। यह बदरीवन राजस्थान में घौलपुर से २१-२२ मील पर बर्डी नामक कस्बे के आम पाम स्थित था। इरिका वन और मिरिका वन विन्ध्य की तलहटी में स्थित थे। करीरवन—मथुरा और बृन्दावन के बीच आज मील लग्ना वन था। आचार्य हेम के समय में भी यह वन किसी रूप में स्थित रहा होगा।

### सामाजिक जीवन—

आचार्य हेम ने अपने व्याकरण में चिम समान का निरूपण किया है, वह समान पाणिनि या अन्य व्याकरणों के समान की अपेक्षा बहुत विकसित और भिन्न है। हेम द्वारा प्रदत्त उदाहरणों से भी वहाँ एक जाति व्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है, पर हमने जातिवाद का कट्टरता स्वीकार नहीं की है। उनकी जाति व्यवस्था श्रम विभाजन पर तो आधारित है ही, साथ ही परम्परा से प्राप्त जन्मना जाति-व्यवस्था के उदाहरण भी आचार्य हेम ने उपस्थित किये हैं। सामाजिक रहन-सहन और आचार-व्यवहार में हेम ने जाति को कारण नहीं माना। समान की उन्नति और अवनति का हेतु वैयक्तिक विकास ही है, चाहे वह विकास आर्थिक हो अथवा आध्यात्मिक।

### जाति व्यवस्था—

आचार्य हेम ने जातिव्यवस्था के सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है—‘जातेरयान्तनित्यस्त्रीशूद्रात्’ १।१।५४—‘तत्र जातिं क्वचित्सस्या-नव्यङ्ग्या, यथा गोत्वादि। सद्गुणदेशव्यङ्ग्यत्वे सत्यप्रिलिङ्गन्या यथा ब्राह्मणादि। अप्रिलिङ्गत्व द्वेन्द्रत्तादेरप्यस्तीति सद्गुणदेशव्यङ्ग्यत्वे सतीत्युक्तम्। गोत्रचरणलक्षणा च तृतीया।’ यदाहु—

आकृतिप्रदणा जातिलिङ्गाना च न सर्वभारु।

सद्गुणजातनिर्माणं गोत्रं च चरणै सन् ॥

अर्थात्—जाति के अन्तर्गत गोत्र—विभू वंश परम्परा और चरणों—गुरुवश परम्परा को भी सम्मिलित कर लिया गया है। गोत्र और चरणों के विभिन्न भेदों के आधार पर सद्वृत्तों प्रकार की नाना जाति उपजातियाँ सगठित हो गयी हैं। ऐसा लगता है कि हम के मत में एक गोत्र के भीतर भी कई उपजातियाँ हुई हैं। इन उपजातियों के बनने का आधार मात्र श्रमविभाजन है। यतः एक प्रकार से जातिविका अर्जन करने वालों का एक वर्ग माना है।

७।३।६० सूत्र की व्याख्या करते हुये लिखा है—“नानाजातीया अनियत-वृत्तयोऽर्थनामप्रधानाः संघपूजाः ( ७।३।६४ ) । नानाजातीया अनियत-वृत्तयः शरीरायासजीविनः संघनावाः ( ७।३।६१ ) । यथा कापोतवाक्यः त्रैहिमत्यः” ( ७।३।६१ ) । उक्त दोनों उदाहरणों के विरलेष्य से ज्ञात होता है कि कापोतपाक जाति और त्रैहिमत जाति-आजीविका अर्जन करने के दृग पर अवलम्बित हैं । कापोतपाक वह जाति है, जिसके घेरे में बबूतर पकड़ने या बबूतर का मास पकाकर आजीविका चलाने की प्रथा वर्तमान हो । इसी प्रकार त्रैहिमत जाति धान एकत्र कर आजीविका चलाने वाली थी । त्राज भी बिहार में इस प्रकार की जाति है, जो जगली धान के कर्णों को पकड़ करती है । अतः आचार्य हेम का ‘अनियतवृत्तयः’ पद इस बात का सूचक है कि भिन्न भिन्न जाति वालों की भिन्न भिन्न वृत्तियाँ होती हैं, इसी कारण नाना जाति वाले अनियत वृत्ति कहलाते हैं । जो लोग अर्थ और काम साधनों का प्राधान्य रखते थे, उनको पूग कहा गया है । यह पूग गोत्र या सघ कई जातियों में विभक्त था । कुछ लोग लौह प्वज का निर्माण कर आजीविका चलाते थे और कुछ लौह गलाकर अन्य वस्तुओंके निर्माण का कार्य करते थे । इसी प्रकार शारीरिक धम करने वालों का संघ मात कहलाता था । इन घातों की कापोतपाक और त्रैहिमत जातियाँ थीं । कुछ विद्वानों का मत है कि आर्यावर्त की सीमाओं पर बसने वाले और अस्त्र-शस्त्र के बल से लूटमार करने वाले घात कहे जाते थे । इस जाति को उत्तर पश्चिमी कदाहली इलाकों का निवासी माना है ।

७।३।६२-६७ सूत्रों की वृत्तियों में शस्त्रजीविनों और उनके भीतर रहने वाली जातियों का उल्लेख किया है । ‘शस्त्रजीविनां यः संघस्तद्वाचिनः स्वार्थेऽन्यत् प्रत्ययो वा भवति । शवराः शस्त्रजीविसंघः । पुलिन्दाः, कुन्तेरपत्य बहवो मापवकाः कुन्तयः ते शस्त्रजीविंसंघः कौन्त्य’— ७।३।६२ शस्त्र से आजीविका चलाने वालों का संघ शस्त्रजीवि संघ कहा गया है । यह संघ अनेक जातियों में विभक्त था—शवर, पुलिन्द आदि । इसी प्रसंग में इन्होंने कुन्ति नाम की एक शस्त्रजीवि जाति का उल्लेख किया है । उक्त सूत्र की टिप्पणी में इस शब्द को स्त्रीत्वविशिष्ट माना है, जिससे ऐसा प्वनित होता है कि यह स्त्री संघ था, किन्तु नूट मन्दर्भ में इस प्रकार की कोई सूचना अंकित नहीं है । कुन्ति के बहुत से पुत्रों को, जिनकी आजीविका का साधन शस्त्र था, कौन्त्य कहा है ।

यतीकेप्यनाक्षपराजन्वेष्यः ७।३।६३ सूत्र में यतीकेप्य की ब्राह्मण और शत्रिय जाति के अतिरिक्त अन्य जातियों का उल्लेख करते हुए हेम ने



कुण्डविश, बुद्रव, मालव, शमण्ड और वागुर जातियों का निर्देश किया है। ये सभी जातियाँ शस्त्रजीवि थीं। वागुर जाति की पहचान पद्दियों को पकड़ने-वाली व्याध जाति से की जा सकती है। इस जाति का पेशा गुलेर द्वारा पद्दियों को मारने या जाल फैटाकर पकड़ने का था। युधाया अपत्यं बहवः कुमारस्ते शस्त्रजीविसंघः यौधेयः, शौकेयः, धार्तेयः, व्यावनेयः, धार्तेयः (७।३।६५); शस्त्रजीविसंघः पर्शोरपत्यं बहवो माणवकाः पार्शवः, राक्षमः (७।३।६६); दमनस्यापत्यं बहवः कुमारस्ते शस्त्रजीविसंघ दमनीयः। औलपीयः, औपलीयः, वैजवयिः, औरकिः, आच्युतन्तिः, फाधन्दिः, शाक्रन्तपिः, सार्यसेनिः, तुलभा, मौञ्ज्वायनः, औदमेधिः, औपथिन्दिः, सावित्रीपुत्रः, कौण्ठारथः, दाण्डकिः, क्रीष्टकिः, जालमानिः, जारमाणिः, ब्रह्मगुनः, ब्राह्मगुनः, जानकिः (७।३।६७) आदि अनेक जाति एवं जातियों के वाचक शब्दों का निर्देश उपलब्ध होता है। उल्लिखित सभी जातियाँ शस्त्रजीवी थीं। उलप एक प्रकार की घाम है, इसे काटकर आजीविका चलाने वाले औलप कहलाये और उनकी सन्तान औलपीय नाम से प्रसिद्ध हुई। इसी प्रकार उपल-पत्यर काटने का कार्य कर आजीविका निर्वाह करनेवाले औपलि हुए और उनकी सन्तान औपलीय कहलायी। आचार्य हेम के इस वर्णन से स्पष्ट अवगत होता है कि इनकी दृष्टि में जाति या वर्ण का प्रधान आधार आजीविका है। एक ही प्रकार की आजीविका करनेवाले वर्गविशेष की सन्तान भी आगे चलकर उसी जाति के नाम से अभिहित की जाने लगी। आशय यह है कि एक ही प्रकार की आजीविका करनेवाले जब फल-फूल कर अधिक पुत्र-पौत्रों में विकसित हो पृथक् पृथक् ह्यात, गुट्ट या अह्न के अन्तर्गत बढ़ जाते थे तो वे समाज में अपने पृथक् अस्तित्व का भान और स्मृति बनाये रखने के हेतु एक छोटी उपजाति या गोत्रत्वयव का रूप ग्रहण कर लेते थे। स्पष्ट है कि जाति, उपजातियों, कौटुम्बिक नामों, पैतृकनामों, व्यापारिकनामों, शहरों के नामों, पेशे के नामों एवं पदों के नामों के आधार पर संबन्धित हुई हैं। हेम ने पाणिनीय तन्त्र के आचार्यों से ही वाहीक एवं उत्तर-पश्चिम प्रदेश की समाज व्यवस्था को स्पष्ट करने वाले उदाहरणों को एकत्र कर अपने दंग से प्रस्तुत किया है। शकस्यापत्यं शकः, यवनस्यापत्यं यवनः, उर्त्तः, कन्धोजः, चोलः, केरलः (६।३।१२०) आदि प्रयोगों से भी उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है।

यह सत्य है कि आचार्य हेम के समय में वर्णव्यवस्था वैदिक काल की अपेक्षा बहुत शिथिल हो गयी थी, फिर भी उमकी जड़ें पाताल तक रहने के कारण वह जन्मना अपना अस्तित्व बनाये हुए थी। प्राचीन परम्परा की

क्षत्रियः' ( उ० ७५६ ) उदाहरण प्रस्तुत किया है। भोज्या-भोज्यंशजाः क्षत्रियाः ( २१४८१ ) द्वारा भोज्यवंशीय-परिभारवंशीय क्षत्रियों का परिचय दिया है। इस वंश के राजा मालवा में निवास करते थे।

### वैश्यजाति—

आचार्य हेम ने 'स्वामिवैश्येऽर्थः' ५११३३ सूत्र में वैश्य के लिये अर्थ शब्द का प्रयोग किया है। कृषि और व्यापार आदि के द्वारा निष्कपट भाव से आजीविका अर्जन करना वैश्य का कार्य है। जिन व्यापारिक कार्यों के करने से ब्राह्मण की निन्दा होती है, वे ही कार्य वैश्य के लिये विधेय माने गये हैं। प्राकृत साहित्य में 'गहवड', 'कुटुम्बिक', 'बोडम्बिय', 'इम्म', सेट्टि आदि संज्ञाओं का प्रयोग वैश्य के लिये मिलता है। हेम की दृष्टि में वैश्य के लिये कृषि की अपेक्षा व्यापार प्रधान व्यवसाय बन गया था। वैश्य की स्त्री वैश्या कहलाती थी।

### शूद्रजाति—

आचार्य हेम ने 'पाश्व्यशूद्रस्य' ३११४३ में दो प्रकार के शूद्र बतलाये हैं—आर्यावर्त के भीतर रहने वाले और आर्यावर्त की सीमा के बाहर रहने वाले। आर्यावर्त की सीमा से बाहर निवास करने वाले शूद्रों में शक और पवन हैं। आर्यावर्तवासी शूद्रों के भी दो भेद हैं—पाश्या और अपाश्या। पाश्या की परिभाषा करते हुये लिखा है—'यैर्मुक्ते पात्रं संस्कारेण शुद्धयति ते पात्रमर्हन्तीति पाश्याः' (३११४३)—अर्थात् अभिजात्य वर्ग के व्यक्तियों के वर्तनों में जो स्नान-पी सकते थे तथा मांजने से वर्तन शुद्ध माने जाते थे, वे शूद्र पाश्या कहलाते थे। पर जिन्हें समाज में निम्न समझा जाता था और भोजन के हेतु अभिजात्य वर्ग के पात्र नहीं दिये जाते थे, वे अपाश्या कहलाते थे। समाज में सबसे निम्न धेणी के शूद्र अ, चाण्डाल (३११४३) प्रभृति थे। ये नगर या गाँव से बाहर अपने घर बनाकर रहते थे। हेम ने 'अन्तरायै पुरे क्रुध्यति—चाण्डालादिपुर्ये इत्यर्थः। नगरवाह्याय चाण्डालादिगृहायेत्यर्थः' (११४०) द्वारा पुरानी परम्परा का निर्देश किया है। इनसे ऊपर कुम्हार, नापित, बद्ध, लोहार, तन्नुवाप-बुनकर, रजक-धोषी, तप, अयस्कार (१११०२) आदि जाति के व्यक्ति शूद्र माने गये हैं। इन शूद्रों का समाज के साथ सम्पर्क रहता था, इनसे भोजन-पान वाले वर्तनों की सुभाषित मानी जाती थी। हेम ने आर्य शूद्रों की समस्या को मुलक्षाने का प्रयास किया है। अतः इन्होंने 'शीलमस्नाकं स्वम्' (२११२१) द्वारा

शील को जीवन का सर्वस्व बतलाते हुये शीलवान् व्यक्ति को आर्य कहा है। आर्य की व्युत्पत्ति 'अर्यति गुणान् आप्नोतीति आर्य' जो ज्ञान, दर्शन और चरित्र को प्राप्त करे, वह आर्य है। अतएव शूद्र भी चरित्रबल से आर्यत्व को प्राप्त हो सकता है। फलतः शक, यवन, पुलिन्द, हूण आदि जातियाँ आर्यों में मिश्रित हो जाने से ये जातियाँ भी आर्य मानी जाने लगी थीं।

पुरानी परम्परा के अनुसार हेमचन्द्र ने आभीर जाति को महाशूद्र कहा है। इनका कथन है—“कथं महाशूद्री—आभीरजातिः, नात्र शूद्रशब्दो जातिवाची किं तर्हि महाशूद्रशब्दः। यत्र तु शूद्र एव जातिवाची तत्र भवत्येव ङीनिपेधः। महती चासौ शूद्रा च महाशूद्रेति” ( २।४।५४ )। कात्यायन ने भी ४।१।४ में महाशूद्र का उल्लेख किया है। काशिका में आभीर जाति को महाशूद्र कहा गया है। इसका कारण यही मालूम पड़ता है कि शक, यवन और हूणों के समान आभीर जाति भी विदेश से आने वाली जाति थी। अतः इस जाति की भी गणना शूद्रों में की गयी है, पर इतना सत्य है कि सामाजिक व्यवहार और छुआछूत की दृष्टि से इसका स्थान ऊँचा माना गया था। महाशूद्र शब्द का अर्थ ऊँचे शूद्र लेना चाहिये। अन्य जातियों में निषाद, वरु, सुधातु और कर्मार ( १।१।३८ ) का उल्लेख किया है।

### सामाजिक संस्थायें—

समाज के विकास के लिये कुछ सामाजिक संस्थान रहते हैं, जिनके माध्यम से समाज विकसित होता है। मूलतः ये संस्थान परिवार के बीच रहते हैं, पर इनका सम्बन्ध समाज के साथ रहता है। आचार्य हेम ने अपने व्याकरण में जिन सामाजिक संस्थाओं का उल्लेख किया है, वे पाणिनिकालीन हैं, पर उनकी व्यवस्था और व्याख्या में पर्याप्त अन्तर है। हेम के द्वारा उल्लिखित संस्थायें निम्न प्रकार हैं।

१ गोत्र	६ वंश
२ वर्ण	७ विभिन्न सम्बन्ध
३ सपिण्ड	८ विवाह
४ ज्ञाति	९ अन्य संस्कार
५ कुल	१० आश्रम

### गोत्र—

पाणिनि ने जिस प्रकार गोत्र को वंश परम्परा के अन्तर्गत वर्ण व्यवस्था का सूचक माना है, हेम ने भी गोत्र को उसी रूप में स्वीकार किया है। पर

इतना सत्य है कि हेम मात्र ऋषियों की परम्परा को ही गोत्र में कारण नहीं मानते, बल्कि ऋषियों से भिन्न व्यक्तियों को भी गोत्र व्यवस्थापक मानते हैं। इनके अनुसार जब मानव समुदाय अनेक भागों में विभक्त होने लगा तो अपने पूर्वजों और सम्बन्धियों का स्मरण रखने के हेतु संकेतों की आवश्यकता पड़ी। इस प्रकार के संकेत वंश चलाने वाले व्यक्ति ही हो सकते थे, अतः वंश संस्थापक व्यक्ति का नाम गोत्र कहलाया। आचार्य हेम ने 'ब्रह्मादिभ्यो-गोत्रे' ६।१।३२ में बताया है कि 'स्वापत्यसन्तानस्य स्वव्यपदेशानारणमृ-पिरनृपिर्वा यः प्रथमः पुरुपस्तदपत्यं गोत्रम्। वाहोरपत्यं वाहविः, औप-वाकविः'। अर्थात् एक पुरखा की पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र आदि के रूप में जितनी सन्तानें होंगी, वे गोत्र बही जायेंगी। गोत्र प्रवर्तक ऋषि और अनृषि-ऋषि-इतर दोनों ही हो सकते हैं। गोत्र प्रवर्तक मूल पुरुष को वृद्ध या वंश्य कहा है। वृद्ध की धारणा में बताया है—“पौत्रादि वृद्धम् ६।१।२-परमप्रकृतेः अपत्यवतो यत्पौत्रापत्यं तद्वृद्धसंज्ञं भवति। गर्गस्यापत्यं पौत्रादि गार्ग्यं। परमा प्रकृष्टा प्रकृतिः परमप्रकृतिर्यस्मात् परोऽन्यो न जायते। यद्यपि पितामहप्रपितामहादिनीत्या वृद्धसन्तानस्यानन्त्यं तथापि यन्नात्रा कुलं व्यवदिश्यते स परमप्रकृतिरित्युच्यते।” अर्थात् जिस सन्तान वाली परम प्रकृति से पौत्रादि उत्पन्न होते हैं, उसकी वृद्ध संज्ञा होती है। परम प्रकृति उसीको कहा जायगा, जिससे पूर्व अन्य कोई मूल पुरुष उत्पन्न न हुआ हो। किन्तु इस प्रसंग में यह आशंका उत्पन्न होती है कि पितामह, प्रपितामह आदि की परम्परा अनन्त है, अतः इस अनन्त सातत्य में किस व्यक्ति को मूल पुरुष माना जाय। इस शंका का समाधान करते हुये आचार्य हेम ने उक्त सन्दर्भ में बतलाया है कि जिसके नाम से कुल की प्रसिद्धि हो, उसी को परम प्रकृति-मूल पुरुष मान लेना चाहिये। तात्पर्य यह है कि समाज में जितने कुल हैं, उन सबके नामों का मंग्रह किया जाय तो परिवार के नामों की संख्या सदस्रों, लाखों और धरबों तक पहुँच जायगी। यतः प्रत्येक व्यक्ति अपना-अपना वंश चलाता है, पर वास्तविक वंश प्रवर्तक या गोत्रकर्त्ता वे ही होते हैं, जिनके नाम से कुल प्रसिद्धि पाता है।

पुराणी वैदिक परम्परा की मान्यता के अनुसार मूल पुरुष ब्रह्मा के चार पुत्र हुए—भृगु, अंगिरा, मरीचि और अत्रि। ये चारों गोत्र प्रवर्तक थे। पश्चात् भृगु के कुल में जमदग्नि, अंगिरा के गौतम और भरद्वाज; मरीचि के करयप, वसिष्ठ और अगस्त्य एवं अत्रि के विश्वामित्र हुए। इस प्रकार जमदग्नि, गौतम, भरद्वाज, करयप, वसिष्ठ, अगस्त्य और विश्वामित्र ये सान ऋषि गोत्र या वंश प्रवर्तक कहलाये। अत्रि का विश्वामित्र के अलावा भी वंश चला। इन

जाठ मूल ऋषियों के अतिरिक्त इनके वंश में भी जो प्रसिद्ध व्यक्ति हुए, निनकी विशिष्ट रयाति के कारण उनके नाम से भी वंश प्रसिद्ध हुआ । फलतः अनेक स्वतन्त्र गोत्रों का विस्तार होता चला गया ।

जमदग्निर्भरद्वाजो विश्वामित्रात्रिगौतमाः ।

वशिष्ठः कश्यपोऽगस्त्यो मुनयो गोत्रकारिणः ॥

—गोत्रप्रवर

ये ब्राह्मणगोत्र ऋषिभूत कहलाये । इनके अतिरिक्त क्षत्रिय, वैश्य और इतर जातियों में भी सहस्रों गोत्रों की परम्परा प्रचलित रही । आचार्य हेम ने अनृषि शब्द द्वारा ब्राह्मणेतर गोत्रों की ओर मद्देत किया है । 'गोत्राङ्गवत्' ६।२।१३४ सूत्र से यह भी ध्वनित हाता है कि सभी जातियों के गोत्रों की परम्परा उनके मूल पुरुष से आरम्भ हुई है ।

हेम ने परिवार क मुखिया पद या गोत्रपदवी को प्राप्त करने की व्यवस्था पर प्रकाश डालते हुए लिखा है— वश्यज्यायोभ्रात्रोर्जीवति प्रपौत्राद्यक्षी युवा" ६।१।३ 'वशो भवो वश्य-पित्रादिरात्मन कारणम् । ज्यायान् भ्राता-वयोऽधिक एकपितृक, एकमातृको वा । प्रपौत्र—पौत्रापयम् परम-प्रकृतेश्चतुर्थ । स्त्रीवर्जित प्रपौत्राद्यपत्य जीवति वंश्यो ज्यायो भ्रातरि वा युवसज्ञ भवति ।' अर्थात् सबसे बृद्ध या ज्येष्ठ व्यक्ति गोत्र का उत्तराधिकारी होता है, यही गृहपति कहलाता है और यही परिवार का प्रतिनिधि बनकर जाति विरादरी की पचायतों में भाग लेता है । वश्य—बृद्ध क जीवित रहने पर ज्येष्ठ, भ्राता या पुत्र पौत्रादि युव कहलाते हैं । श्रेणी या निगमों में प्रति-निधित्व करने का अधिकार घर के बृद्ध पुरुष को ही प्राप्त है ।

आचार्य हेम ने गोत्र परम्परा का सम्बन्ध वर्ण एव रक्तपरम्परा के साथ वहीं तक जोड़ा है, जहाँ तक लोकमर्यादा का प्रश्न है । लौकिक समस्याओं को सुलझाने की आवश्यकता है । जब ये प्राणी की आम्पन्तर वृत्ति की व्याख्या करने लगते हैं तो गोत्रन्यवस्था से ऊपर उठकर भ्रमणाचरण को ही सर्वस्व मानते हैं । 'भ्रमणा युष्माक शीलम्, एव भ्रमणा अस्माक शीलम्' (२।१।२५) द्वारा भ्रमण होने पर उच्च गोत्र का भा जाना स्वभाव सिद्ध है । यत हीन कुल या जातिवाला व्यक्ति भी भ्रमणाचरण से श्रेष्ठ हो जाता है । अतः गोत्र लोकमर्यादा के पालन के लिए स्वीकार किया गया है । हेम क मत से वंश का प्रतिनिधित्व एव उत्तराधिकार का निर्वाह गोत्र द्वारा ही समभव है ।

वर्ण—

'वर्णाद्ब्रह्मचारिणी' ७।२।६९ की व्याख्या में बताया गया है कि 'वर्ण-शब्दो ब्रह्मचर्यपर्याय', वर्णे ब्रह्मचर्यमस्तीति वर्णा—ब्रह्मचारी—इत्यर्थः ।

अन्ये तु वर्णशब्दो ब्राह्मणादिर्णवचन । तत्र ब्रह्मचारीत्यनेन शूद्रव्य-  
वन्देद क्रियते इति मन्यन्ते, तेन त्रैवर्णिको वर्णोत्पद्यते । स हि  
विद्याप्रहणार्थमुपनीतो ब्रह्म चरति न शूद्रः । अर्थात् वर्ण शब्द ब्रह्मचर्य का  
पर्याय है, जो ब्रह्मचर्य का पालन करता है, वह वर्ण—ब्रह्मचारी कहलाता है ।  
अन्य कतिपय आचार्य वर्ण शब्द को ब्राह्मणादि वर्ण का वाचक मानते हैं ।  
अतः ब्रह्मचारी शब्द द्वारा शूद्र का वृषकरण किया गया है । और तीन वर्ण-  
वालों को वर्ण शब्द द्वारा अभिहित किया है । यतः शूद्र विद्या प्रहण करने  
के लिए उपनीत—ब्रह्म को धारण नहीं कर सकता है, अतएव उसे ब्रह्मचारी  
नहीं माना है । आचार्य हेम ने इस स्थल पर परम्परा से प्राप्त वर्ण शब्द की  
व्याख्या करके शूद्र को ज्ञान से वंचित बतलाया है । पर इनके निम्नो  
मतानुसार शूद्र भी उपस्कराचार की शुद्धि होने से अतः प्रहण करने का  
अधिकारी है ।

जातिशब्दी शब्द से ईय प्रत्यय जोड़कर हेम ने उस जाति के व्यक्ति  
का बोध कराया है । 'नातेरीय सामान्यवति' ७।३।१३९ में 'ब्राह्मणजातीय',  
क्षत्रियजातीय, वैश्यजातीय एवं शूद्रजातीय' उदाहरणों द्वारा तत्तद्  
जाति वाचक व्यक्तियों के लिए तत्तद् प्रत्यय जोड़कर साधनिका सम्प्रदाय की  
जानी है । तिन व्यक्तियों द्वारा वर्ण या जाति पहचानी जाती है, वे वन्धु  
कहलाते हैं । किसी सम्प्रदाय या जाति के व्यक्ति एक ही पूर्व पुरुष से मन्वन्ध  
रगने के कारण सम्प्रदाय या जाति की दृष्टि से वन्धु कहे जाते हैं । आचार्य  
हेम ने वर्णशब्द (५३४ उ०) के अन्तर्गत कीमाश और कर्ष की गणना की है ।

सपिण्ड—

आचार्य हेम ने सामाजिक अस्तित्व के लिये सपिण्ड व्यवस्था को स्थान  
दिया है । इनका मत है—'सपिण्डे वयस्थानाधिके जीवद्य' ६।१।४  
'यत्रोरेकं पूर्वं सप्तमं पुत्रपस्तावन्योन्यस्य सपिण्डी वयो यौवनादि ।  
स्थान पितापुत्र इत्यादि । परमप्रवृत्ते खीरर्षित प्रपौत्राद्यपत्य वय-  
स्थानाभ्या द्वाभ्यामधिके सपिण्डे जीवति—जीवदेऽनुवन्मम भवति' ।  
अर्थात् पिता की मातृकी पीढ़ी तक सपिण्ड कहलाते हैं । मनुस्मृति में भी  
सपिण्ड की यही व्याख्या उपलब्ध होती है ।

सपिण्डता तु पुत्रे नमने त्रिनिवर्तते ।

समानोदकभासस्तु जन्मनान्नोरवेदने ॥ ५।६०

अर्थात्—सपिण्डता सातवीं पीढ़ी में निवृत्त होती है और समानोदकता जन्म

तथा नाम के जानने पर निवृत्त हो जाती है। सपिण्डता में निम्न सात पीढ़ियों शामिल हैं।

- |                                   |                 |
|-----------------------------------|-----------------|
| ( १ ) पिता                        | ( ५ ) पितामह    |
| ( २ ) पितामह                      | ( ६ ) प्रपितामह |
| ( ३ ) प्रपितामह तथा प्रपितामह के- | ( ७ ) स्वयं     |
| ( ४ ) पिता                        |                 |

इस प्रकार सात पीढ़ियों तक सपिण्डता रहती है। मनुस्मृति के मत में उक्त सातों में से प्रथम तीन पिण्डभागी और अबोध तीन पिण्डशेषभागी हैं। सातवाँ स्वयं पिण्डदाता है। सपिण्डता से सामाजिक सघटन को दृढ़ता प्राप्त होती है।

आचार्य हेम पिण्डदान के पक्ष में नहीं हैं, यत इन्होंने पिण्ड का अर्थ शरीर किया है और इनके मतानुसार सात पीढ़ियों तक सपिण्डता रहने का अर्थ है परम्परा से प्राप्त रक्त सम्बन्ध के कारण पारिवारिक महत्ता। लोकन्यायादा एवं समान सघटन को बनाये रखने के लिए परिवार के बड़े व्यक्तियों का सम्मान एवं प्रभुत्व स्वीकार करना अत्यावश्यक है। यही कारण है कि हेम जैसे सुधारक और क्रान्तिकारी व्यक्ति ने पुरखार्यों के जीवित रहने पर प्रयौगदि उम्र और पद में बड़े होने पर भी युवसत्त्वक कहे हैं। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि समाज के सघटन और अस्तित्व को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए सपिण्डों को महत्ता प्रदान की गयी है। व्यवहार में भी देखा जाता है कि परिवार के चचा, ताऊ आदि बड़े सम्बन्धियों के जीवित रहने पर मतोजा प्रभृति व्यक्तियों को प्रतिनिधित्व करने का अधिकार नहीं दिया जाता है। यद्यपि आज ये सभी व्यवस्थाएँ दृढ़ रही हैं और उक्त व्यवस्थाओं को सामन्तवादी कहकर टुकराया जा रहा है। जनतन्त्र की दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति का समान महत्त्व है, अतः जहाँ भी प्रतिनिधित्व का प्रश्न उपस्थित होता है, वहाँ योग्य कोई भी व्यक्ति प्रतिनिधित्व कर सकता है। पर इनारे गाँवों में आज भी सपिण्डवाली व्यवस्था प्रचलित है। घर का बड़ा व्यक्ति— गोत्र परम्परा से बड़ा व्यक्ति ही किसी भी सामाजिक मामले में भाग लेता है और उसी को परिवार का प्रतिनिधि बनकर अपना मन्तव्य देना होता है। यह मन्तव्य उस मुखिया का न होकर समस्त परिवार का मान लिया जाता है। अतः आचार्य हेम ने पुरातन समान व्यवस्था को दृढ़ यतने के लिए सपिण्ड सस्या को स्थान दिया है।

## ज्ञाति—

अपने निकट सम्बन्धियों को ज्ञाति कहा है। आचार्य हेम ने 'अन्तर्गत-स्वाभिधेयापेक्षे चावधिनियमे व्यवस्थापरपर्याये गन्वमाने...' (११४७) में स्वशब्द की व्याख्या करते हुए बताया है—'आत्मात्मीयज्ञातिधनार्थ-वृत्तिः स्वशब्दः' अर्थात् अपने और पिता आदि के सम्बन्धी ज्ञाति शब्द द्वारा अभिहित किये गये हैं। हेम की दृष्टि में परिवार समस्त मानवीय संगठनों की मूल इकाई है और यही सामाजिक विकास की प्रथम सीढ़ी है। सामाजिक कर्तव्यों का पालन करने के लिए परिवार के सभी सम्बन्धियों को उचित स्थान देना आवश्यक है। यतः राग-द्वेष, हर्ष-शोक, नमता-भेद, लोभ-त्याग आदि विषयक घटनाओं का म्रीडास्पल परिवार ही है। अतः सपिण्ड में परिवार की जो सीमा निर्धारित की गयी थी, वह ज्ञाति व्यवस्था में और अधिक विस्तृत हो गयी है। समाज विकास की प्रक्रिया में बताया जाता है कि जब पारिवारिक सम्बन्धों का विस्तार होने लगता है, तो समाज विकसित होता है। ज्ञाति व्यवस्था में पिता के तथा अपने सभी सम्बन्धी परिवार की सीमा में आवद्ध हो जाते हैं, जिससे सुदृढ़ समाज के गठन का धीमे-धीमे होता है। इस व्यवस्था से व्यक्ति अपने सीमित परिवार से आगे बढ़ जाता है और सम्बन्धियों के सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख मम करने लगता है। हेम की ज्ञाति संस्था समाज की एक उपादेय संस्था है।

## कुल—

कुल की प्राचीन समय में अत्यधिक प्रतिष्ठा थी। प्रतिष्ठित एवं यशस्वी कुल महाकुल कहलाते थे। समाज में इस प्रकार के कुलों का स्थान बहुत उंचा माना जाता था। हेम ने महाकुल में उत्पन्न हुए व्यक्तियों को महाकुल और महाकुलीन ( ६११९९ ) कहा है। ये दोनों शब्द विद्या-बुद्धि से सम्पन्न सेवानावी प्रतिष्ठित कुल के लिए ही व्यवहृत होते थे। कुल प्रतिष्ठा का मानदण्ड सदाचार, ज्ञान और सम्पत्ति के अतिरिक्त सेवा एवं त्याग भी था। जिस कुल के व्यक्ति अन्य लोगों के कल्याण हेतु अपना सर्वस्व त्याग करते थे, वे श्रेष्ठ कुलवाले समझे जाते थे। सदाचार का रहना कुल प्रतिष्ठा के लिए आवश्यक था। हेम के दुष्कुलीन और दौष्कुलेय ( ६११९८ ) उदाहरण हम बात के साक्षी हैं कि श्रेष्ठ समाज के निर्माण के लिए उत्तम, सदाचारी और प्रतिष्ठित कुलों का अस्तित्व आवश्यक है। जिन कुलों में सदाचार का प्रचार था, जो स्वार्थ के वशीभूत थे और जिनमें अमृतवृत्तियों का बाहुल्य पाया जाता था, वे दुष्कुल कहलाते थे तथा उनमें उत्पन्न हुए व्यक्ति



दुःखलीन या दीकुलेय कहे जाने थे। कुल की मर्यादा प्राचीन काल में प्रिय चली आ रही है।

हेम ने भी पाणिनि के समान परिवार को ही कुल कहा है। कुल की संज्ञा ज्ञानि से उदा है। जाति में सम्बन्धी अपेक्षित थे, पर कुल में कितनी पीढ़ियों तक का स्मरण रहता है, उतनी पाण्डियों शामिल हैं। कुल में कितनी पाण्डियों शामिल थीं, इसका हेम ने कोई निर्देश नहीं किया है।

वशा—

हेम ने 'यगे भवो वश्यपित्रादिरात्मन कारणम्' ( ६।१।३ ) अर्थात् वशा में उत्पन्न हुए व्यक्ति को वश्य कहा है। वशा को हेम ने दो प्रकार का बताया है—विद्या और योनि सम्बन्ध से उत्पन्न ( विद्यायोनिस्तन्वन्धादनञ् ६।३।१५० )। विद्यावशा गुरु-शिष्य परम्परा के रूप में चलता था, यह भी योनि सम्बन्ध के समान ही वास्तविक माना जाता था। आचार्य हेम ने उम प्राचीन गुरु शिष्य परम्परा का उल्लेख किया है, जिसमें शिष्य वेदाध्ययन या अपनी शिक्षा की समाप्ति किया करता था। शिक्षा के सम्बन्ध में हेम के विचार पाणिनि की अपेक्षा बहुत विस्तृत हैं। इन्होंने वेद की ज्ञान की अन्तिम सीमा नहीं माना है, बल्कि विभिन्न विद्याओं, कलाओं, साहित्य एवं दार्शनिक सम्प्रदायों के अध्ययन को आवश्यक माना है।

योनि सम्बन्ध से निम्न पुत्र पिता पुत्र आदि वशा कहा जाता है। मूल स्थापक पुरुर के नाम के साथ पीढ़ियों की मध्या निकाल कर वशा के दीर्घकालीन अस्तित्व की सूचना दी जाती है। आचार्य हेम ने वशा के सम्बन्ध में कितने विचार व्यक्त किये हैं, वे सभी परम्परा से संगृहीत हैं।

विभिन्न सम्बन्ध—

परिवार में विभिन्न प्रकार के व्यक्ति निवास करते हैं, इन व्यक्तियों के आपस में नामा प्रकार के सम्बन्ध रहते हैं। आचार्य हेम ने माता, पिता, पितामह, निवृष्य, आता, सोदर्य, ज्येष्ठ, स्वमा, पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, पित्रुश्वसा, मातृश्वसा, स्वर्तीय, आतृय, मातामह, मातुल, मातुलानी, श्वश्रू ( २।३।१४, ३।१।१२१, ३।२।१७, २।४।६, २।४।८५ ) आदि का निर्देश किया है। पुत्र को परिवार की सुख शान्ति का हेतु बतलाते हुए उसकी महत्ता प्रदर्शित की है। 'पुत्रस्य परिवर्द्धनं सुखम्। पुत्रस्य स्पर्शात् शरीरस्य सुगन्धिं तर्हि मानसी प्रीतिः' ( ५।३।१२५ )। अर्थात् पुत्र का स्पर्श केवल शारीरिक आनन्द का ही हेतु नहीं है, अपितु मानसिक आनन्द का हेतु है। पुत्र को समस्त सम्बन्धों का आधार होने से हेम ने पुत्र को ही उत्तराधिकारी माना

ज्ञाति—

अपने निवृत्त मन्त्रियों को ज्ञाति बढ़ा है। आचार्य हेम ने 'अन्नगन्-स्याभिषेयापेक्षे पापधिनिवर्त्ते च्चरस्थापरपर्याये गम्यमाने' (११४६) में श्रुति की व्याख्या करते हुए बताया है—'आत्मान्मीयज्ञानिधनार्थ-पृतिः स्वशब्दः' अर्थात् अपने और पिता आदि के मन्त्रियों ज्ञाति शब्द द्वारा अभिहित किये गये हैं। हेम की दृष्टि में परिवार ममता मानवीय संगठनों की मूल इकाई है और यही सामाजिक विकास की प्रथम मीढ़ी है। सामाजिक कर्तव्यों का पालन करने के लिए परिवार के सभी मन्त्रियों को उचित ध्यान देना आवश्यक है। यतः राग द्वेष, हर्ष-दोष, ममता-मोह, लोभ-त्याग आदि विषय घटनाओं या मीढांगुल परिवार ही है। अतः सपिण्ड में परिवार की जो सीमा निर्धारित की गयी थी, वह ज्ञाति व्यवस्था में और अधिक विस्तृत हो गयी है। समाज विकास की प्रक्रिया में बताया जाता है कि जब पारिवारिक मन्त्रियों का विस्तार होने लगता है, तो समाज विकसित होता है। ज्ञाति व्यवस्था में पिता के तथा अपने सभी मन्त्रियों परिवार की सीमा में आवद्ध हो जाते हैं, जिनमें मृत समाज के गठन का धीमत्त होता है। इस व्यवस्था ने व्यक्ति अपने सीमित परिवार से आगे बढ़ जाना है और मन्त्रियों के सुग-दुःख को अपना सुग-दुःख ममत्तने लगता है। हेम की ज्ञाति संस्था समाज की एक उपादेय संस्था है।

कुल—

कुल की प्राचीन समय में अत्यधिक प्रतिष्ठा थी। प्रतिष्ठित एवं वनस्थी कुल महाकुल कहलाते थे। समाज में इस प्रकार के कुलों का स्थान बहुत ऊँचा माना जाता था। हेम ने महाकुल में उत्पन्न हुए व्यक्तियों को महाकुल और महाकुलीन (१११९९) कहा है। ये दोनों शब्द विद्या-बुद्धि से सम्पन्न सेवाभावी प्रतिष्ठित कुल के लिए ही व्यवहृत होते थे। कुल प्रतिष्ठा का मानदण्ड सदाचार, ज्ञान और संपत्ति के अतिरिक्त सेवा एवं त्याग भी था। जिन कुल के व्यक्ति अन्य लोगों के कल्याण हेतु अपना सर्वस्व त्याग करते थे, वे श्रेष्ठ कुलवाले समझे जाते थे। सदाचार का रहना कुल प्रतिष्ठा के लिए आवश्यक था। हेम के दुष्कुलीन और दौष्कुल्य (१११९८) उदाहरण इस बात के साक्ष्य हैं कि श्रेष्ठ समाज के निर्माण के लिए उत्तम, सदाचारी और प्रतिष्ठित कुलों का अस्तित्व आवश्यक है। जिन कुलों में बदाचार का प्रचार था, जो स्वार्थ के चलीभूत थे और जिनमें अमरप्रवृत्तियों का पाहुल्य पाया जाता था, वे दुष्कुल कहलाते थे तथा उनमें उत्पन्न हुए व्यक्ति

दुष्कृतीन या दौष्कृतेय कहे जाने थे । कुल की मर्यादा प्राचीन काल से प्रिय चली आ रही है ।

हेम ने भी पाणिनि के समान परिवार को ही कुल कहा है । कुल की सीमा ज्ञाति से बड़ी है । ज्ञाति में सम्बन्धी अपेक्षित थे, पर कुल में जितनी पीढ़ियाँ तक का स्मरण रहता है, उतनी पीढ़ियाँ शामिल हैं । कुल में जितनी पीढ़ियाँ शामिल थीं, इसका हेम ने कोई निर्देश नहीं किया है ।

वंश—

हेम ने 'वशे भवो वंशयपित्रादिरात्मनः कारणम्' ( ६।१।३ ) अर्थात् वंश में उत्पन्न हुए व्यक्ति को वंशय कहा है । वंश को हेम ने दो प्रकार का बताया है—विद्या और योनि सम्बन्ध से उत्पन्न ( विद्यायोनिस्सम्बन्धादकन् ६।३।१।५० ) । विद्यावश गुरु-शिष्य परम्परा के रूप में चलता था, यह भी योनि सम्बन्ध के समान ही वास्तविक माना जाता था । आचार्य हेम ने उम प्राचीन गुरु शिष्य परम्परा का उल्लेख किया है, जिसमें शिष्य वेदाध्ययन या अपनी शिक्षा की समाप्ति किया करता था । शिक्षा के सम्बन्ध में हेम के विचार पाणिनि की अपेक्षा बहुत विस्तृत हैं । इन्होंने वेद को ज्ञान की अन्तिम सीमा नहीं माना है, बल्कि विभिन्न विद्याओं, कलाओं, साहित्य एवं दार्शनिक सम्प्रदायों के अध्ययन को आवश्यक माना है ।

योनि सम्बन्ध से निम्न पिता-पुत्र आदि वंश कहा जाता है । मूल संस्थापक पुरुष के नाम के साथ पीढ़ियों की संख्या निकाल कर वंश के दीर्घकालीन अस्तित्व की सूचना दी जाती है । आचार्य हेम ने वंश के सम्बन्ध में जितने विचार अंकित किये हैं, वे सभी परम्परा से संगृहीत हैं ।

विभिन्न सम्बन्ध—

परिवार में विभिन्न प्रकार के व्यक्ति निवास करते हैं, इन व्यक्तियों के आपस में नाना प्रकार के सम्बन्ध रहते हैं । आचार्य हेम ने माता, पिता, पितामह, पितृव्य, भ्राता, सोदर्य, ज्येष्ठ, स्वसा, पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, पितृष्वसा, मातृष्वसा, स्वस्त्रीय, भ्रातृव्य, मातामह, मातुल, मातुलानी, शश्रू ( २।३।१४, ३।१।१२१, ३।२।१७, २।४।६, २।४।८५ ) आदि का निर्देश किया है । पुत्र को परिवार की सुख-दान्ति का हेतु बतलाते हुए उसकी महत्ता प्रदर्शित की है । 'पुत्रस्य परिष्वङ्गान्तं सुखम् । पुत्रस्य स्पर्शान्न शरीरस्य सुखं किं तर्हि मानसी प्रीतिः' ( ५।३।१२५ ) । अर्थात् पुत्र का स्पर्श केवल शारीरिक आनन्द का ही हेतु नहीं है, अपितु मानसिक आनन्द का हेतु है । पुत्र को समस्त सम्बन्धों का आधार होने से हेम ने पुत्र को ही उत्तराधिकारी माना

है। जामाता, दौहित्र प्रभृति ( १।१।५२ ) सम्बन्धों के निर्वाह की भी चर्चा की गयी है। तथ्य यह है कि परिवार ही एक ऐसा निष्कलाप है, जिसमें स्वतंत्र स्नेह और सौदार्य का, गुरुजनों के प्रति आदर और भक्तिभाव का एवं सामूहिक बहुराज के लिए वैयक्तिक प्रवृत्तियों और महापुरुषों का भी दवाने का पाठ सीखा है। मध्य, दान, त्याग, वाग्व्यय, मित्रता, सेवा आदि मनुष्यों का विकास इन विभिन्न सम्बन्धों में ही होता है। भगः हेम की दृष्टि में विभिन्न पारिवारिक सम्बन्ध भी एक स्वतन्त्र संस्था है। समाज समग्रता की दिशा में हम संस्था का भी महावर्णन स्थान है।

### विवाह—

प्राचीन काल से ही विवाह एक प्रमुख सामाजिक संस्था है। हेम ने 'नित्यं हस्ते पाणायुद्धाहे' ( १।१।१५ )—हस्तेऽर्प्य, पाणीऽर्प्य अर्थात् पाणिप्रदण की विवाह कहा है। 'उदायाम्' ( १।१।५१ ) श्रुत द्वारा भी धरण एवं पाणिप्रदण को विवाह समझा माना है। उपर्युक्त श्रुत के स्पष्टीकरण के लिए 'पाणिगृहीति' ( १।१।५२ )—'पाणिगृहीति प्रकाराः शब्दा उदायां स्त्रियां ऋन्ता निपात्यन्ते'। यथा—पाणिगृहीतोऽन्याः पाणी या गृहीता पाणिगृहीति एवं परगृहीति। अर्थात् पाणिप्रदण के द्वारा पुरुष स्त्री का धरण करता है और विवाह हो जाने पर पत्नी को पाणिगृहीती कहा जाता था। पाणिगृहीता नाम्द सम्भार की विधि से बाह्य परिणीता स्त्री के लिए व्यवहार में आता था।

हेम ने कन्या की योग्यता कुमारी होना माना है। कुमारी कन्या विवाह के बाद कुमारी भार्या और उमका पति कौमार पति इन विशेषणों से सम्बोधित किये जाते थे। हेम ने लिखा है—कुमार्या भयो भर्ता कौमारः, तस्य भार्या कौमारी—कुमारी एव प्रतीयते ( १।१।५९ )। पत्नी अपने पति की प्रतिष्ठा स्वयं प्राप्त कर लेती थी। गणक—अर्थ विभाग के अधिकारी की स्त्री गणकी और आचार्य की स्त्री आचार्यानी कहा जाती थी। विवाह गोश्र के घादर होता था। हेम ने हमके लिए निम्न सात उदाहरण उपस्थित किये हैं।

- १ अग्निभरद्वाजानां विवाहोऽग्निभरद्वाजिका
- २ वशिष्ठकश्यपानां विवाहोऽत्र वशिष्ठकश्यपिका
- ३ ऋषुअत्रिरसानां विवाहोऽत्र ऋषुअत्रिरसिका
- ४ कुत्सकुशिकानां विवाहोऽत्र कुत्सकुशिकिका
- ५ गर्गभार्गवानां विवाहोऽत्र गर्गभार्गविका

६ कुरु-वृष्णीनां विवाहोऽत्र कुरुवृष्णिका

७ कुरु-काशानां विवाहोऽत्र कुरुकाशिका

हेम के उक्त उदाहरणों में से पूर्व के पाँच उदाहरण तो पतञ्जलि के महाभाष्य में ( ४।१।१२५ ) आये हुए हैं। शेष दो इन्होंने नये प्रस्तुत किये हैं। अतएव स्पष्ट है कि विवाह गोत्र के बाहर होता था, सगोत्रीय विवाह प्राप्त नहीं था।

विवाह योग्य कन्या को वर्या कहा है। इनका मत है—वर्यादयः शब्दा उपेयात्प्रियवर्षेषु यथासंख्यं निपात्यन्ते। वृणातेर्ये वर्या उपेया चेद्भवति। शतेन वर्या, सहस्रेण वर्या कन्या संभक्तव्या ( ५।१।३२ )। अर्थात् वर्या आदि शब्दों का विवाह के अर्थ में क्रमशः निपातन हाता है। जिस वरण योग्य कन्या का विवाह सम्बन्ध किया जाता था—जो सर्वसाधारण के लिए वरण की वस्तु थी, उस कन्या का सौ या हजार कार्पाण मूल्य चुकाया जाता था। वरपक्ष विवाह के समय कन्यापक्ष को धन देता था, इसका समर्थन हेम के निम्न सन्दर्भ से भी होता है—

“विवाहे वहन् कार्पाणान् ददाति, बहुशः कार्पाणान् ददाति” ( ७।१।५० )। अर्थात् वर्या का विवाह कन्या के पिता को धन देने पर बिना किसी रोक-टोक के धन देनेवालों के साथ सम्पन्न हो जाता था। इस प्रकार की कन्याओं की प्राप्ति के लिए वरपक्ष की ओर से मगनी की जाती थी। कन्या के माता-पिता जिसका सम्बन्ध अपनी ओर से निश्चित करते थे, उसे वृत्या कहा है। विवाह योग्य कन्या को हेम ने पतिवरा कन्या ( ५।१।१२ ) कहा है।

हेम के उल्लेखों से यह भी विदित होता है कि कन्या के विवाह की समस्या उस समय भी विषम हो गयी थी। इनका ‘शोकंकरि कन्या’ ( ५।१।१०३ ) उदाहरण इस बात का साक्षात् है कि कन्या के विवाह करने में कष्ट होने के कारण ही उसे शोक कारक माना गया है। पुत्र जन्म का उत्सव मनाया जाता था, पर कन्या के जन्म लेते ही घर में शोक छा जाता था। हेम के समय में स्वयंवरण की प्रथा समाप्त हो गयी थी और कन्या के विवाह का पूर्ण दायित्व माता-पिता पर ही आ गया था।

हेम ने पाणिनि के समान ही विवाहिता स्त्री के लिए जाया, पत्नी और जानि ( ७।१।१६४ ) शब्दों का प्रयोग किया है। जिस वृद्ध की स्त्री युवती होती थी, उसे युवजानि; जिसको स्त्री प्रिय होती थी, उस पति को प्रियजानि; जिस युवक की वृद्धा स्त्री होती थी, उसको वृद्धजानि; जिसकी स्त्री शोभना—

सुन्दरी होती थी, उसको सोभनजानि, गिरवी स्त्री क्यू होती थी, उसको यथानि एवं त्रिमहे दूसरी स्त्री नहीं होती थी, उसे अनन्यजानि कहा ( ७३१७४ ) है ।

हेम ने देवविदेय के अनुसर त्रियों के संन्दर्भ का भी विस्तृत किया है । २।२।१२१ सूत्र में 'मगधेषु न्तनी पीनी. पलिद्वैष्यरिणी शुभे' अर्थात् मगध की त्रियों के स्थूल स्नान और कलिद्व की त्रियों के सुन्दर नेत्र होने थे । वृद्धपत्नी, वृद्धपति, मूलपति, मूलपत्नी, बहुपति, बहुपत्नी ( २।४।४८ ) आदि उदाहरणों द्वारा दम्पतियों का नारारिक गिपति का बोध कराया है । सोभना सुजाता समस्ता या दन्ता अथवा इति सुदती कुमारी ( ७३।१५१ ), समदन्ती, रिनाघदती, अथ इय दन्ता अथवा अघेदती, कालदती ( ७३।१५२ ) आदि उदाहरणों द्वारा त्रियों के शौनों के संन्दर्भ पर प्रकाश डाला है । पालदती को वदगूरत और सुदती का सुन्दरी माना है । इसी प्रकार जानु ( ७३।१५५ ), नाक ( ७३।१६०-१६३ ) एवं बान की सुन्दरता को भी विवाह कार्य सम्पन्न करने के हेतु योग्यता माना गया है ।

आचार्य हेम ने स्वर्ण और अमर्ण दोनों ही प्रकार के विवाहों का उल्लेख किया है । इन्होंने बतलाया है—'पुरुषेण सह नमानो धर्णो ब्राह्मणशादि-स्तस्या भवति । परा पुरुषाद्भिन्नधर्णा स्त्री परस्त्री । तस्या अन्तरापत्य पराशान' ( १।१।४० ) । अर्थात् विवाहोप विवाह होने पर जो सम्मान उत्पन्न होती थी वह पराशान कहलाती थी ।

विवाह के समय प्रीतिभोज देने की प्रथा भी हेम के समय में प्रचलित थी । हेमके 'विवाहे बहुभिर्भुक्तमतिथिभिः, घटुशो नुक्तमतिथिभिः ( ७।२।१५० ), उदाहरण से विवाह में प्रीतिभोज के अवसर पर बहुत से अतिथियों के सम्मिलित होने एवं उनके भोजन करने का संकेत मिलता है । भारत का स्वागत एवं अन्य क्रियाएँ आज के समान ही प्रचलित थीं ।

### अन्य संस्कार—

पारिवारिक जीवन विधायक के लिए मध्यकाल में भी संस्कारों का महत्त्वपूर्ण स्थान था । परिवार की अनेक प्रवृत्तियों इन्हीं संस्कारों द्वारा संचालित होती थीं । सन्तान का निष्पन्न, सामाजिक परम्पराओं का संरक्षण और व्यक्तित्व का निर्माण भी अशुद्ध संस्कारों के द्वारा ही होता है । परिवार के घेष्ट वातावरण का निर्माण भी अशुद्ध संस्कारों के पलस्वरूप ही होता है । आचार्य हेम ने निम्नलिखित संस्कारों का उल्लेख किया है ।

१ नामकरण—जन्म से ग्यारहवें दिन या दूसरे वर्ष के आरम्भ में यह

संस्कार सम्पन्न किया जाता है। नाम सुन्दर और शोभन अक्षरों में होना चाहिए। इन्द्रशर्म, सुशर्म, सुवर्म, सुदामा, अश्वयामा ( ५।१।१४७ ) आदि नाम अच्छे माने जाते हैं। उत्तर या पूर्वपद का लोप कर नाम छोटे ही रखे जाते हैं। यथा—शर्म, वर्म, हेम, दामा, यामा ( ५।१।१४७ ) पद पूर्व और उत्तर दोनों के लिपि ग्रहण किये जाते थे। उत्तर पद के लिपि प्रायः दत्त, ध्रुत, गुप्त, मित्र, सन, आदि पद ब्राह्म माने हैं। नक्षत्र के नामों पर भी जातक के नाम रखे जाते थे।

० अन्नप्राशन—७म ने प्राशित्रम् ( ६।१।२५ ) को अन्नप्राशन कहा है। इस पद की व्याख्या करते हुए बतलाया है—‘वालस्य यः प्रथमं भोजनं तदुत्तरते प्राशित्रम्’—अर्थात् बच्चे को दूध निकालने पर प्रथम बार अन्न बिलाने को प्राशित्र कहा है। यह संस्कार धर्मविधि पूर्वक सम्पन्न होता था।

३ चूडाकर्म—इसका दूसरा नाम मुण्डन-संस्कार भी है। यह पहल या तीसरे वर्ष में सम्पन्न किया जाता है। आचार्य हेम ने ‘चूडादिम्याऽन्’ ६।१।११९ सूत्र में ‘चूडा प्रयोजनमस्य चौडम्, चीलम्’ उदाहरणों द्वारा इस संस्कार का उल्लेख किया है। ७।२।१४४ में भद्राकरोति, भद्राकरोति नापित—शिशोर्माङ्गल्यनेशच्छेदनं करोति’ सन्दर्भ द्वारा शिशु के केशच्छेदन का संकेत किया है। यह संस्कार भी विधि पूर्वक सम्पन्न किया जाता था।

४ कर्णवेध—तीसरे या पाँचवें वर्ष में कर्णवेध नामक संस्कार सम्पन्न किया जाता था। हेम ने ‘अभिद्वर्णं शिशुः’ ( ३।२।८४ ) उदाहरण द्वारा इस संस्कार की ओर संकेत किया है।

५ उपनयन—हेम ने ‘यज्ञोपवीत पवित्रम्’ ( ५।२।८६ ) तथा उपनयनम् ( ६।१।११९ ) उदाहरणों द्वारा इस संस्कार का समर्थन किया है। इस संस्कार से उनका अभिप्राय विद्यारम्भ करने से है। यज्ञोपवीत को पवित्र माना है और उसे आर्यत्व का द्योतक कहा है। आदिपुराण में आचार्य त्रिनसेन ने इसे ब्रह्मसूत्र, रत्नत्रयसूत्र और यज्ञोपवीत नामों से अभिहित किया है। त्रिनसेन ने बताया है कि यज्ञोपवीत तीन लर का द्रव्यसूत्र है और हृदय में उत्पन्न हुए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र गुणों रूप भावसूत्र का प्रत्यक्ष सूचक है।<sup>१</sup> हमारा अपना अनुमान है कि आचार्य हेम ने शन्द्रादुशासन की परम्परा का अनुसरण करने के लिए ही ‘यज्ञोपवीत पवित्रम्’ उदाहरण प्रस्तुत किया है। वास्तव में जैनधर्मानुमोदित ऋतों के साथ यज्ञोपवीत का कोई सम्बन्ध नहीं है। अतः इसे रत्नत्रय या ऋतों का चिह्न मानना बुद्धि का व्यायाम ही है।

## ६ समापन—

विद्यार्जन की समाप्ति भी विद्यारम्भ के समान महत्व रखती है। हेम ने अङ्गसमापनीयम्, श्रुतस्वन्धसमापनीयम् ( ६।१।१२२ ) द्वारा इस संस्कार का समर्थन किया है और इस अवसर पर स्वस्तिवाचन, शान्तिवाचन और पुण्याहवाचन ( ६।१।१२३ ) करने का भी नियमन किया है। यह संस्कार समावर्तन संस्कार का ही रूपान्तर है।

## आश्रम—

आश्रम व्यवस्था धार्मिक संगठन के अन्तर्गत ली जा सकती है। कहा जाता है कि वर्ण व्यवस्था के द्वारा समाज में कार्य विभाजन होता है और आश्रम व्यवस्था के द्वारा पद्धति निरूपण। आश्रम व्यवस्था मनुष्य के जीवन का पूरा समय-चक्र थी। इसके द्वारा समाज के प्रति मनुष्य के कर्त्तव्यों एवं उनके कालों का विवेचन किया गया था। समष्टि के उन्नयन के लिए व्यक्ति की समस्त शक्तियों का अधिकाधिक उपयोग करना इस व्यवस्था का उद्देश्य है। आचार्य हेम ने अन्य वैयाकरणों के समान इस व्यवस्था को सामाजिक संस्था ही माना है। वस्तुतः आश्रम वह संस्था है, जिसके द्वारा व्यक्ति समाज-हित के लिए अपना अधिक से अधिक उपयोग करता था। 'चतुराश्रम्यम्' ( ७।२।१६४ ) द्वारा हेम ने प्राचीन परम्परा के आधार पर चारों आश्रमों का अस्तित्व बतलाया है। पर यह सत्य है कि वर्ण व्यवस्था के समान आश्रम व्यवस्था भी बूझ चुकी थी। 'आश्रमात् आश्रम गच्छेत्' वाला सिद्धान्त मान्य नहीं था। हेम के मत से गृहस्थ और श्रमण ये दो ही आश्रम थे। इनके दीक्षातपसी, श्रद्धातपसी, श्रुततपसी, मेधातपसी और अप्ययनतपसी ( ५।१।१६० ) उदाहरणों द्वारा हम बात का सकेत मिलता है कि कोई भी व्यक्ति दीक्षा किसी भी समय धारण कर सकता था। श्रमणा युष्मभ्यं दीयते, श्रमणा अस्मभ्यं दीयते ( २।१।२५ ) उदाहरणों से स्पष्ट है कि श्रमण दीक्षा ही सर्वोपरि महत्व रखनी थी। गृहस्थाश्रम श्रमणदीक्षा को प्राप्त करने का एक साध्यम था, अतः किसी भी वर्ण का कोई भी व्यक्ति किसी भी अवस्था में श्रमण हो सकता था। निवृत्तमार्ग को प्रमुखता प्रदान की गयी है। श्रमणा अस्माकं शीलम् ( २।१।२५ ) से सूचित होता है कि जीवन का आदर्श श्रमण धर्म ही था।

## खान-पान

किसी भी राष्ट्र की सम्यता पर खान-पान एवं पाकविधि से यथेष्ट प्रकाश पड़ता है। यह सत्य है कि सम्यता का विकास होने पर मनुष्य अन्नपान की



विभिन्न विधियों का आविष्कार करता है। हेमचन्द्र की दृष्टि में शाकाहार ही आध्यात्मिक उत्थान एवं सांस्कृतिक उत्कर्ष का परिचायक है। यद्यपि शब्द साधुत्व के लिए इन्होंने उदाहरणों में मासाहार ( ६।२।१४१ ) को भी निर्दिष्ट किया है, पर ये सिद्धान्ततः शाकाहार के ही पक्ष में हैं। इन्होंने 'भुजो भक्ष्ये' ४।१।११७ में पाणिनि के समान भोज्य को भक्ष्य अर्थ में ग्रहण किया है। नाचार्य हेम ने इस सूत्र की व्याख्या में कात्यायन और पतञ्जलि के शका समाधान को समाविष्ट कर लिया है—'भक्ष्यमभ्यवहार्यमात्रम्—न खर-पिशदमेव । यथा अब्भक्ष्यो, वायुभक्ष्य इति'। इस पर गण्पणी में लिखा है—'न खरपिशदमेवेति' कठोरप्रत्यक्षमित्यर्थ । अखरविशदमपि भक्ष्य दृष्टमिति दृष्टान्तमाह—अभक्ष्येति । अपो द्रव रूप न कठिन प्रत्यक्ष त्वस्ति वायुस्तु कठिनो न प्रत्यक्षस्तस्यानुमानेन गम्यत्वात् तेन भोज्य पय इत्यादि सिद्धम्'। अर्थात् भोज्य में ठोस और तरल दोनों प्रकार के पदार्थ आ जाते हैं, पर भक्ष्य दाँत से चबाय जाने वाले भोजन के लिए ही व्यवहृत होता है, अतः समस्त भोज्य पदार्थों को भक्ष्य नहीं कहा जा सकता। इस शका का समाधान करते हुए कहा है कि अभ्यवहार्य मात्र भक्ष्य है—केवल खरविशद—कठोर प्रत्यक्ष नहीं। अतः अप भक्ष्य और वायु भक्ष्य प्रयोगों में द्रव—तरल और अप्रत्यक्ष गम्य को भी ग्रहण किया गया है। तात्पर्य यह है कि भक्ष्य के अन्तर्गत हेम के मतानुसार खाद्य, द्रव्य और पेय ये तीनों प्रकार के पदार्थ समृद्धीत हैं। भक्ष्य पदार्थों के अन्तर्गत निम्न प्रकार के भोज्य आते हैं —

### १ सस्कृत—

'सस्कृत भक्ष्ये' ६।२।१४०—'सत उत्कर्षाधान सस्कार' अर्थात् जिससे पदार्थों में विशेष स्वाद की उत्पत्ति हो, उस प्रकार की पाकक्रिया को सस्कार कहा जायगा। यथा—भ्राष्ट्रे सस्कृता, भ्राष्ट्रा अपूपा ( ६।२।१४० )—आटे की बड़ो लोथी बनाकर खोंचे में रखकर भाड़ के भीतर सेक लेना, भ्राष्ट्रा अपूपा—नानस्रटाई है। हम ने इस सिद्धान्त द्वारा उस समय के समान में नाना प्रकार के सुस्वादु पदार्थों के बनाने की विधि का निरूपण किया है। 'क्षीरादेयण्' ६।२।१४२ सूत्र में—'क्षीर सस्कृत भक्ष्य क्षैरेयम्, क्षैरेयी यवाणू'। अर्थात् दूध के द्वारा बनायी गयी वस्तुओं को क्षैरेय कहा गया है। जौ की दूध में बनायी गयी खार को क्षैरेयी यवाणू कहा जाता था। दूध और दही प्राचीन काल से ही भारतीयों के लिए प्रिय रहे हैं। इन दोनों से नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोज्य पदार्थ तैयार किये जाते थे। दूध के समान हेम ने

दही से भी संस्कृत पदार्थ तैयार करने का उल्लेख किया है। 'दध्न इकण्' ६।२।१४३—'दध्न संस्कृतं भक्ष्यं दाधिकम्' द्वारा दही के विशेष संस्कार द्वारा निष्पन्न भक्ष्य पदार्थों की ओर संकेत किया है। भोजन को स्वादिष्ट बनाने के लिए इमली की खटाई का उपयोग भी मध्य में किया जाता था। हेम ने—“तित्तिडीकेन तित्तिडीनाभिर्वा संस्कृतं तैत्तिडीरुम्” ( ६।१।४ ) द्वारा इमली की साँठ या घटनी का उल्लेख किया है।

हेम ने 'ठदकेन श्यति औदधित्, उदधित् ( ६।२।१४४ ) उदाहरणों द्वारा मट्टे से तैयार की गयी महेरी की ओर संकेत किया है।

मांस बनाने की विधियों का निर्देश करते हुए—'शूने संस्कृतं शून्यं मांसम्, उत्यायाम् उर्यम् ( ६।२।१४१ ) अर्थात् सलाह पर भूना हुआ मांस शून्य मांस और तवे पर भूना हुआ मांस उर्य मांस कहलाता है। इन उदाहरणों को हेम ने शब्दों का साधुत्व बतलाने के लिए ही लिखा है।

### २ संसृष्ट—

हेम ने 'संसृष्टे' ६।१।५ सूत्र में भोजन में किसी दूसरी वस्तु के अप्रधान रूप से मिलने को संसृष्ट कहा है। जैसे किसी वस्तु में दही डाल दिया जाय तो वह दाधिक कहलायेगी और नमक डाल दिया जाय तो लावणक कही जायगी। इसी प्रकार मिर्च, अदरक, पीपल आदि मसाला जिस अचार में मिला हो, वह मारीचिक, शाङ्खवेरिक और पैपलिक कहा जायगा। संसृष्ट से संस्कृत का भेद बतलाते हुए कहा है—“मिश्रणमात्र संसर्ग इति पूर्वोक्तात्संस्कृताद्भेदः”। अर्थात् मिश्रण क्रिया की दृष्टि से संस्कृत और संसृष्ट दोनों समान हैं, पर संसृष्ट में मात्र मिश्रण रहता है, पर मिलाये गये पदार्थ की प्रधानता नहीं रहती, जब कि संस्कृत में दोनों मिलाये गये पदार्थ अपना समान महत्व रखते हैं तथा संस्कृत में मिश्रण करने से स्वाद में वैशिष्ट्य उत्पन्न होता है। अभिप्राय यह है कि संस्कृत भोज्य पदार्थ निर्माण की विशेष पद्धति है, जिसमें दो या दो से अधिक पदार्थ मिश्रित कर कोई विशेष खाद्य-पदार्थ तैयार किया जाय। पर संसृष्ट में एक वस्तु प्रधान रहती है, उसे स्वादिष्ट करने के लिए अन्य पदार्थ का मिश्रण कर दिया जाता है। जैसे अचार में मसाले मिलाने पर भी अचार की प्रधानता है, किन्तु अचार को स्वादिष्ट बनाने के लिए मसालों का संयोग अपेक्षित है। परन्तु संस्कृत के उदाहरण खीर में खीर बनाने की विशेष पद्धति तो अपेक्षित है ही, साथ ही दूध और घावळ इन दोनों का समान महत्व है, इनके समानुपातिक सम्यक् मिश्रण के बिना खीर तैयार नहीं हो सकती है। हेम ने संसृष्ट के निम्न उदाहरण प्रस्तुत किये हैं।

१ लवणेन संसृष्टो लयणः सूपः ( ६।४।५ )

२ चूर्णे संसृष्टाश्चूर्णिनोऽपूपाः ( ६।४।५ )

३ चूर्णिनो घानाः ( ६।४।५ )

४ मुद्गैः ससृष्टो मौद्ग. ओदनः ( ६।४।५ )

प्रथम उदाहरण नमकीन दाल में नमक गौण है और दाल प्रधान है। यत-नमक के अभाव में भी दाल काम में लायी जा सकती है। नमक दाल को स्वादिष्ट मात्र बनाता है, प्रधान भोज्य नहीं है। इस प्रकार चून—कसार से भरे हुए गूँसे—चूणिन' अपूपा' कहलाते हैं। यहाँ गूँसे के भीतर भरे हुए चून या कसार की अपेक्षा अपूप की प्रधानता है। इसी प्रकार चूर्णिनो घाना में घान की प्रधानता और चून—कसार की गौणता है। मौद्ग' ओदन में भात मुख्य खाद्य है और मूग इच्छानुसार मिलाने की वस्तु है।

व्यञ्जन—

आचार्य हेम ने व्यञ्जन की परिभाषा बतलाते हुए लिखा है—“व्यञ्जनं येनालं रचिमापद्यते तदधिष्ठतशाकसूपादि” ( ३।१।१३२ ) अर्थात् जिन पदार्थों के मिलाने से या साथ खाने से खाद्य पदार्थ में रचि अथवा स्वाद उत्पन्न होता है, वे दही, घी, शाक और दाल आदि पदार्थ व्यञ्जन कहलाते हैं। ‘व्यञ्जनेभ्यः उपसिक्ते’ ६।४।८ में निम्न उदाहरण आये हैं—

१ सूपेन उपसिक्त' सौपिक ओदन'—भात को स्वादिष्ट या रुचिवर्धक बनाने के लिए उसमें दाल का मिलाना। यहाँ दाल व्यञ्जन है।

२ दाधिक ओदन—ओदन को रुचिपूर्ण बनाने के लिए दही का मिलाना। यहाँ पर दही व्यञ्जन है।

३ घातिक' सूप'—दाल को स्वादिष्ट बनाने के लिए घी मिलाना। यहाँ पर घी व्यञ्जन है।

४ तैलिकं शाकं—शाक को रुचिवर्धक बनाने के लिए तैल का छौंक देना। यहाँ पर तैल व्यञ्जन है।

व्यञ्जन नाना प्रकार के बनावे जाते थे। व्यञ्जनों से भोजन स्वादिष्ट और रुचिवर्धक बनता था।

आचार्य हेम के उदाहरणों में आये हुए भोज्य पदार्थों को निम्न तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है।

- ( १ ) सिद्ध अन्न या कृतान्न
- ( २ ) मधुरान्न—मिठाइयाँ
- ( ३ ) गन्ध एवं फल

सिद्ध-अन्न—अन्न को पकाकर या सिद्ध कर तैयार किये गये पदार्थ—  
ओदन ( ७।१।२१ )—यह सदा से भारत का प्रधान भोजन रहा है । इसका  
दूसरा नाम भक्त भी आया है । आचार्य हेम ने भिस्सा और ओदन ( १।१।  
२९ ) ये दो भात के भेद बतलाये हैं । भिस्सा भूने हुए भात को कहा जाता  
था । यह हल्दी, नमक, जीरा आदि मसाला देकर तैयार किया जाता था ।  
ओदन—सादा भात है, यह अर्वा और भुजिया दोनों प्रकार के चावलों से  
तैयार किया जाता था । कुछ विद्वान् भुजिया चावल के भान को भिस्सा मानते  
हैं । पर हेम ने अपनी 'अभिधान चिन्तामणि' ( ३।६० ) में भिस्सा का अर्थ  
भुजा हुआ नमकीन भात किया है ।

चावल अनेक प्रकार के थे । चावलों के गुणों की भिन्नता से भात के  
प्रकारों में भी अन्तर हो जाता था । आचार्य हेम ने चावलों के भेदों का  
उल्लेख ( ७।२।९ ) सूत्र के उदाहरणों में किया है ।

यरागू—

जौ के द्वारा कई प्रकार के खाद्य पदार्थ तैयार किये जाते थे, जो  
साधारणतः यरागू कहलाते थे । जौ का दलिया दूध में पका कर छैरेयी  
यदागू ( ६।२।१४२ ) बनायी जाती थी । जौ की नमकीन लपसी बनाने को  
लपणा यरागू ( ६।४।५ ) कहा है । जौ को भूनकर भी खाया जाता था ।  
भ्रष्टा यरागू ( ६।२।४० ) भात पर मुनाकर तैयार की जाती थी और  
इसका उपयोग भूजे के रूप में किया जाता था । यावक ( ६।२।५२ )  
यवानां प्रकारो यावः स एव यावकः—अर्थात् जौ को भोगल-  
मूल से कूट कर भूमी अलग कर पहले पानी में उचालते थे, फिर दूध,  
चीनी मिलाकर खीर के रूप में इसका उपयोग किया जाता था । यह  
आजकल की वारली का रूप है । पिष्टक ( ६।२।५३ )—पीठा । इसके बनाने  
की कई विधियाँ प्रचलित थीं । सर्वप्रथम यह चने की दाल को पानी में  
भिगोकर, भाँग जाने पर पीस लेते थे और इसमें यथेष्ट मसाला मिलाकर  
रख लेते थे । अनन्तर चावल के आटे की छोटी-छोटी लोथी बनाकर बेल लेते  
थे और उसमें उक्त मसाले वाली पीठी भर कर पानी में सिद्धा लेते थे । कुछ  
लोग गेहूँ के आटे से भी बनाते थे । चावल के आटे की बनायी गयी लोहियों  
को बेलकर दूध मीठा देकर सिद्धा लेना भी पीठा कहा जाता था । नमकीन  
पीठा चसन को पानी में खीलाकर पका लेने पर तैयार किया जाता था ।  
विहार में आज भी आठ-दम प्रकार का पीठा तैयार किया जाता है ।

पुरोडाश ( ६।२।५१ )—हेम ने 'त्रीटिमयः पुरोडाशः' अर्थात् चावल  
के आटे में घी, चीनी, मेवा मिलाकर पुरोडाश बनाने की विधि बतलायी है ।

पुरोडाश आटे की मोटी रोटी बनाकर उसमें घी, चीनी, मेवा मिलाने से बनता था। इसका आधुनिक रूप पँजीरी है। सत्यनारायण की कथा में आटे को भूनकर घी, चीनी और किसमिस आदि मिलाकर यह पँडीरी-पँजीरी आज भी तैयार की जाती है। पुरोडाश यज्ञीय द्रव्य था, पर कालान्तर में स्यौहारों के अवसर पर इसका प्रयोग सामान्य रूप से भी होता था।

मूँग की ढाल—मूँग की ढाल का प्रयोग बहुलता से होता था। हेम ने 'कथ रोचते मम घृत सह मुद्गैः' ( २।२।५६ ) अर्थात् मूँग की ढाल में घी ढालकर खाना रचिकर माना जाता था। घातिकः सूपः ( ६।४।४८ )—घी ढालकर ढाल खाने की प्रथा अच्छी मानी जाती थी। मूँग की ढाल के अतिरिक्त अरहर, उदद आदि की ढालें भी व्यवहार में लायी जाती थीं।

कुल्माप ( ७।१।२१ )—आचार्य हेम ने—'कुल्मापाः प्रायेण प्रायो वान्नमस्यां पौर्णमास्यां कौल्मापी' ( ७।१।१९५ )—अर्थात् उस पौर्णमासी को कौल्मापी कहा जाता था, जिसमें वर्ष में एक बार कुल्माप नामक अन्न नियमत खाने की प्रथा प्रचलित थी। प्राकृत साहित्य में कुल्माप निवृष्ट अन्न को कहा गया है। संभवत यह वाजरा या उवार के आटे में नमक और तेल ढालकर बनाया जाता था। इसके बनाने की विधि यह थी कि सर्व-प्रथम थोड़े से पानी में उक्त आटे को उवाल लेते थे, पश्चात् उसमें नमक, तेल ढालकर खाते थे। हेम ने 'कुल्मापस्नादाश्चोला' ( ५।१।१५७ ) द्वारा चोल देश में कुल्माप खाने के प्रचार की ओर संकेत किया है। वटक ( ७।१।१९६ )—'वटनानि प्रायेण प्रायो वान्नमस्यां वटकिनी' अर्थात् जिस पूर्णमासी को वटक—बड़े नियमत खाये जाते थे, उसे वटकिनी पूर्णिमा कहा जाता था। प्राचीन भारत में यह प्रथा थी कि जिस दिन जो अन्न खाया जाता था, वह दिन उस अन्न के नाम पर प्रसिद्ध हो जाता था। बड़ा खाने की प्रथा प्राचीन काल से चली आ रही है। बड़ा बनाने के अनेक प्रकार प्रचलित थे। कुछ लोगों का मत है कि मगौड़ी को वटक कहा गया है।

शाक ( ७।२।३० )—शाक को व्यञ्जन कहा है। यह खाद्य पदार्थों के साथ मिलकर भोजन को रचिकर बनाता है। हेम ने तैलिकं शाकं ( ६।४।८ ) द्वारा शाक को तैल में तलने की प्रथा का निर्देश किया है। 'यदृच्छ्याकं शाक-समूहो वा शाकी' ( ७।२।३० ) द्वारा शाक समूह या बहुत बड़े शाक के ढेर को शाकी कहा है।

सक्तु ( ७।१।२१ )—सक्तु का उपयोग प्राचीन काल से चला आ रहा है। सक्तु को पानी में घोलकर नमक या मीठा ढालकर खाया जाता था। कहीं-कहीं दूध और चीनी के साथ भी सक्तु को खाने की प्रथा थी। सक्तुव्या

घाना: ( ७२१९ ) उदाहरण द्वारा भुने हुए धान—चावल से भी सक्तू बनाने की प्रथा पर प्रकाश पड़ता है। इदं सक्तूनां पीतं ( २१२११ ) द्वारा पतले सक्तू का भी उल्लेख मिलता है।

मिष्टाद्यो और पकाद्यो में निम्नलिखित मिष्टाद्यो का उल्लेख उपलब्ध होता है।

- |                                 |                                |
|---------------------------------|--------------------------------|
| ( १ ) गुडापूप: ( ७११९४ )        | ( ७ ) गुडघाना: ( ६११८; ६११६९ ) |
| ( २ ) तिलापूप: ( ७११९४ )        | ( ८ ) हविरन्न ( ७११२९ )        |
| ( ३ ) भ्रष्टा अपूपा: ( ६१२१४३ ) | ( ९ ) पायस ( २१२४८ )           |
| ( ४ ) चूर्णिनो अपूपा: ( ६१४५ )  | ( १० ) मधु ( ५११८३ )           |
| ( ५ ) शङ्कुली ( ७११११ )         | ( ११ ) पलाल ( ७१२३० )          |
| ( ६ ) मोदक: ( ७१२ )             | ( १२ ) शर्करा ( २१२५५ )        |

### अपूप—

पुये भारत का बहुत पुराना भोजन है। गेहूँ के आटे को चीनी और पानी में मिलाकर घी में मन्द मन्दी आँच से उतारे हुए मालपुये अपूप कहलाते थे। हेम का गुडापूप से अभिप्राय गुड ढालकर बनाये हुए पुत्रों से है। तिलापूप आजकल के अँदरसे है। ये चावल के आटे में तिल ढालकर बनाये जाते थे। भ्रष्टा अपूप आजकल की नानगटाई या खीरी है। भाद में रखकर इनको सेका जाता था। चीनी मिलाकर बनाये हुए भ्रष्टा अपूप—वर्तमान विस्कट के पूर्वज है। चूर्णिन अपूप—गूसे या गुक्षिया है। ये कमर या भाटा भीतर भरकर बनाये जाते थे।

शङ्कुली—आजकल की विशिष्ट पूरी है। इसे खजुरा कहा जायकता है। आटे में घी का मोहन देकर यह पकाया बनाया जाता था।

मोदक—मिष्टाद्यो में सदा से प्रिय रहा है। यह चावल, गेहूँ या अन्य दानों के आटे से बनाया जाता था। पूजा में भी मोदकों का उपयोग किया जाता था, यह बात हेम द्वारा उल्लिखित 'मोदकमयी पूजा' ( ७१२ ) से स्पष्ट है।

गुडघाना—गुड में पगी हुई लायी को कहा गया है। दूसरे शब्दों में इसे गुडघानी भी कहा जा सकता है। प्राचीन समय की यह प्रधान मिष्टाई थी। सभी वैद्याकरणों ने गुडघाना का प्रयोग किया है।

हविरन्न—चावलों के आटे को घी में भूनकर शर्करा के साथ एक विशेष प्रकार का खाद्य तैयार किया जाता था। कुछ लोगों का मत है कि यह दूध, चावल और मेवा-चीनी से विशेष प्रकार की खीर के रूप में तैयार किया जाता

था। हवन के अतिरिक्त साधारण उपयोग के लिए भी इसका व्यवहार होता था। मेरा अपना अनुमान है कि यह मीठा भात है।

पायसान्न—दूध में चीनी के साथ उबाला हुआ चावल पायसान्न है। इसे खीर कहा जा सकता है। प्राचीन और मध्यकालीन मिथानों में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। आचार्य हेम के समय में पायसान्न बनाने की अनेक विधियाँ प्रचलित थीं।

पलल—तिल और गुड़ को कूटकर निलकुट के रूप में यह तैयार किया जाता था। कहीं कहीं तिल को गुड़ की चासनी में मिलाकर गजक के रूप भी यह तैयार किया जाता था। हेम के मत से कणरहित चावल पलाल है। इन्होंने लिखा है—“पलालम्—भकणो व्रीह्यादिः” ( ४७५ उ० )।

दाधिक—दही और दूध के संयोग में विभिन्न प्रकार के सुस्वादु खाद्य तैयार किये जाते थे। दूध, घी, दधि और नवनीत का अगणित तरह से उपयोग किया जाता था। सशर्करं पय ( २।२।५५ ) से स्पष्ट है कि चीनी मिलाकर दूध पीने की प्रथा भी प्रचलित थी। ह्ययङ्गवीन ( ६।२।५५ )—नवनीत विशेष हितकर बताया गया है।

मधु—इसका दूसरा नाम खैर भी मिलता है। छोटी मक्खी का बनाया मधु खैर और बड़ी मक्खी के द्वारा निर्मित मधु आमर कहा जाता था। मधु के अनेक प्रयोग प्रचलित थे। श्लेष्मघ्नं मधु ( ५।१।८३ ) कहकर इसे श्लेष्मा—स्थूल्य को दूर करने वाला कहा है।

गुड—गन्धे के रस को औटाकर गुड, राव और चीनी बनायी जाती थी। गुड से पूरे तथा और भी अनेक प्रकार की मिठाइयाँ तैयार होती थीं।

पेय-पदार्थ—पेय पदार्थों में दूध, मठ्ठा, कषाय, सौवीर—कौंजी, और सुरा का उल्लेख मिलता है। आचार्य हेम ने देशविशेष के अनुसार पेय पदार्थों की प्रथा का उल्लेख किया है। पुनः पुनः क्षीरं पिबन्ति क्षीरपायिणः उशीनराः ( ५।१।१५७; २।३।७० ); तक्रपायिणः सौराष्ट्राः, कषायपायिणो गान्धाराः, सौवीरपायिणो वाहीकाः ( ५।१।१५७; २।३।७० ) तथा सुरापाणाः प्राच्याः ( २।३।७० ) से स्पष्ट है कि उशीनर—चिनाव के निचले काँटे-के निवासी दूध पीने के शौकीन, सौराष्ट्र निवासी मट्ठा पीने के शौकीन, और गान्धार—आधुनिक अफगानिस्तान के पूर्वी भाग के निवासी कषाय रस के शौकीन थे, कोषकारों ने कषाय रस की परिभाषा करते हुए बतलाया है—“यो वक्त्रं परिशोषयति जिह्वां स्तम्भयति कण्ठं बध्नाति हृदयं कपति पोटयति च स कषायः”। अर्थात् यह आज की चाय के समान कोई

रूपयले रस का पेय पदार्थ था, जिसके पीने की प्रथा प्राचीन समय में गान्धार देश में थी। बाहीक—मद्र देशवासियों में सौवीर—कौंजी पीने की प्रथा एवं प्राच्य देशों में सुरा पीने की प्रथा प्रचलित थी। सुरा जौ और पिठ्ठी से बनायी जाती थी। आचार्य हेम ने चावलों द्वारा बनायी जानेवाली सुरा का निर्देश करते हुए लिखा है—सुरायै सुर्या सुरीयास्तण्डुलाः ( ७।१।२९ ) इसी प्रकार यवसुरीयम्, पिष्टसुरीयम् ( ७।१।२९ ) उदाहरण सुराओं के विभिन्न प्रकारों पर प्रकाश डालते हैं।

आचार्य हेम ने ताम्बूल का भी निर्देश किया है। ताम्बूल सेवन करने वाले को ताम्बूलिक ( ६।४।५९ ) कहा है।

### धान्य—

धान्यों में व्रीहि, यव, मुद्ग, माप, गोधूम, तिल, कुलथ ( ६।२।५८ ) की गणना की गयी है। नीवार, कोटव, त्रियंगु ( २।३।६७ ) भी अल्पे धान्यों में परिगणित हैं। शरदि पच्यन्ते शारदाः शालयः—शरद ऋतु में उत्पन्न होनेवाले धान को शालि, शिशिर में उत्पन्न होनेवाली मूँग को शैशिरा मुद्गाः ( ६।३।११७ ), शरद्युष्ठाः शारदा यवा ( ६।३।११८ ) शरद ऋतु में उत्पन्न होनेवाले यव को शारद यव कहा है। श्रैष्मं सस्यं, वामन्तं सस्यं ६।३।१२० में श्रैष्म और वसन्तकालीन सस्य का उल्लेख किया है। चणः ( चना ) का निर्देश ( ९।५७ उ० ) भी पाया जाता है।

### भोजन बनाने में प्रयुक्त होनेवाले वर्तन

- १ अयस्कुण्ड ( २।३।१४ )—लोहे का खरल
- २ अयस्कुम्भ ( २।३।१६ )—ताम्बे या लोहे का घड़ा
- ३ कुटिलिका ( ६।४।२६ )—चिमटा, सड़मी
- ४ गर्गरी ( उणा० ९ )—महाकुम्भ—बड़ा घड़ा। यह मिट्टी का बनता था।
- ५ कुंडा ( ७।३।१६९ )—पत्थर का कटौता
- ६ घट ( ६।३।१९४ )—मिट्टी का जल भरने का घड़ा
- ७ कलशा ( ५३१ उ० )— " " "
- ८ शूर्प ( ६।३।१९४ )—भनाज फटकने का सूप
- ९ पिटक ( ६।३।१९४ )—फल-पूल रगने की बांस की पिटारी
- १० पिठरी ( २।४।१९ )—कढ़ाई
- ११ द्रोणी ( २।४।१९ )—जलचैपणी कुण्डिका—कटौती



१२ उख ( ६१२१४१ )—तवा

१३ पात्रम् ( ७१११९४, ६१४१६३ ) । ( ५२५ उ० )—लोटा, गिलास

१४ भाण्ड ( ६१४१७५ )—हाँडी, बटुआ, बरलोई ।

१५ स्थाली ( ६१२१७२ )—थाली

१६ सूर्मी ( ३४६ उणा० )—चूल्हा

१७ पिठरं ( ३९९ उणा० )—भाण्डम्—उठे कढाये के लिए प्रयुक्त है

१८ पात्री ( ४४५ उ० )—भाजनम्—भन्न संग्रह करने के बड़े भाँड़े

१९ दात्रम् ( २१२२४ )—हसुआ

२० अमत्रम् ( ४५६ उ० )—भाजनविशेष—

२१ मूसलम् ( ४६८ उ० )—इसका दूसरा नाम चीता ( ८५७ उ० )

में आया है—मूसल

२२ स्थालं ( ४७३ उ० )—भाजनम्—थाल

२३ कलशी ( ५३१ उ० )—दधिमन्यनभाजनम् ( दधिमन्यनभाजनम् ५३२ उ० ) दही मयने का बर्तन, इसका दूसरा नाम करमी है ।

२४ चमत्तः ( ५६९ उ० )—चम्मच

२५ कालायस ( ५८९ उ० )—लोहे के बने बड़े बर्तन । मतान्तर से यह लोहे की सन्दूक के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है ।

२६ प्रघाणः ( २४६ उ० )—तौबे का बर्तन ।

२७ कटाह ( ६१४१६२ )—फडाहा

स्वास्थ्य एवं रोग—

भाचार्य हेम ने 'सिद्धहेमशब्दानुशासन' में अनेक रोग और उनकी चिकित्सा के सम्बन्ध में निर्देश किया है । इनकी दृष्टि में वात, पित्त और कफ ही रोग का कारण है । इनके कुपित होने को रोग कहा जाता है और उपशम को स्वास्थ्य । इन्होंने बताया है—“वात-पित्तश्लेष्मसन्निपाताच्छ्रमनकोपने ६१४१५२—शम्यति येन तच्छ्रमनम् । कुप्यति येन तत्कोपनम्” । वातस्य शमनं कोपनं वा वातिकम्, पैत्तिकम्, श्लैष्मिकम्, सान्निपातिकम्” । अर्थात्—वात के निमित्त या प्रकोप से उत्पन्न होनेवाले रोग वातिक; पित्त के निमित्त या प्रकोप से उत्पन्न होनेवाले रोग पैत्तिक; श्लेष्म के निमित्त या प्रकोप से उत्पन्न होनेवाले रोग श्लैष्मिक कहलाते हैं । जब वात, पित्त और कफ ये तीनों प्रकुल होते हैं, तब सन्निपात रोग उत्पन्न होता है ।

वात को शान्त रखने के लिए तैल मालिश का प्रयोग करना हितकर होता है । पित्त को शान्त रखने के लिए घी और छेन्मा को—कफ को

शान्त रखने के लिए मधु का प्रयोग प्राज्ञ बताया है। इनका कथन है—  
वार्त हन्ति वातघ्नम् तैलम्; पित्तघ्नं घृतम्, श्लेष्मघ्नं मधु ( ५११८४ )।

मध्यकाल में अनेक रोग तो बढ़े हुए थे ही, पर उ्वर का प्रकोप अधिक पाया जाता था। आचार्य हेम ने दो दिन पर आने वाले उ्वर को द्वितीयक, तीन दिन पर आने वाले उ्वर को तृतीयक, चार दिन पर आनेवाले उ्वर को चतुर्थक, एवं बहुत दिनों तक लगातार आनेवाले उ्वर को सततक (७१११९३) कहा है।

‘कालहेतुफलाद्रोगे’ ( ७१११९३ ) सूत्र में काल, प्रयोजन और फल को रोगों के नामकरण का कारण कहा है। सर्दी देकर चढ़नेवाला बुखार शीतक ( शीत. हेतु प्रयोजनमस्य ) और गर्मी से आनेवाला उष्णक कहा है। उ्वर के अतिरिक्त निम्न विदोष रोगों के नाम उपलब्ध होते हैं।

१ वैपाटिकम् ( ७१२३४ )—कुष्ठविदोष—यह प्रायः हाथ और पैरों में उत्पन्न होनेवाला गलित कुष्ठ है।

२ अर्शः ( ९६७ उ० ) बवासीर—यह प्राचीन काल से भयानक रोग माना गया है।

३ अर्मः ( ३३८ उ० )—अक्षिरोगः—नेत्रों में होनेवाला मोतियाबिन्दु के समान।

४ न्युब्ज ( ४१११२० )—रोगविदोषः—

५ मृदरः ( ३९९ उ० )—अतिकायः—स्थूलता का रोग। मोटापा आज भी एक प्रकार का रोग माना जाता है।

६ श्मेत्रं ( ४५१ उ० )—संभवतः शोथ रोग है।

७ श्वेत्रं ( ४५१ उ० )—संभवतः कुष्ठविदोष—श्वेत कुष्ठ के लिए आया है।

८ पाटलं ( ४६५ उ० ) मोतियाबिन्दु—नेत्रों में पटल आ जाने को पाटल कहा है।

९ कामलो ( ४६५ उ० )—काच-कामलादि रोग प्राचीन काल से प्रसिद्ध चले आ रहे हैं। इम रोग से नेत्रों की ज्योति मन्द हो जाती है। कुछ लोगों ने इमे पाण्डु रोग भी कहा है।

१० हृद्रोगः ( ३१२१४ )—हृदय रोग।

११ यक्ष्मः ( ३३८ उ० ) क्षय जैमा असाध्य रोग।

१२ सन्निपात ( ६१४१५२ )—त्रिदोष के मिश्र जाने पर उत्पन्न होनेवाला असाध्य या कष्टमाल्य रोग।

१३ शिरोर्ति ( ५१३१२१ )—शिरदर्द ।

१४ हृदयशाल्यम् ( ३१२१४ )—हृदय में होनेवाला दर्द ।

१५ हृदयदाह ( ३१२१४ )—हृदय में जलन उ-पन्न करनेवाला रोग ।

१६ भगदर ( ५१३१३४ )—भग दारयति भगदरो व्याधि ।

१७ वातावीसार ( ७१२१६१ )

आचार्य हेम ने औषधिक कर्चूर, जायु और भेषजये तीन नामान्तर बतलाये हैं । जायु की व्युत्पत्ति बतलाते हुए लिखा है—‘जयत्यनेन रोगान् श्लेष्माण वा जायु’ औषध ( १ उ० )—अर्थात् जिससे रोग दूर हो औषधि है । ‘भेषजादिभ्यष्ट्यण्’ ७१२१६४ में भेषजमेव भैषज्यम् अर्थात् भेषज को ही भैषज्य कहा है । इससे ध्वनित होता है कि विभिन्न औषधियों के संयोग से भी औषधि निर्माण की प्रथा वर्तमान थी । कर्चूर का नाम ( ४२९ उ० ) में रोगशमनक औषधि क लिप् जाया है । काष्ठादि औषधियों के नतिरिक्त धातुन औषधियों के व्यवहार का संकेत—कासीस धातुजर्मापधम् ( ५७६ उ० ) द्वारा प्राप्त होता है ।

रोगों के पचाये जाने तथा शीघ्र निकालने की प्रक्रिया से भी अवगत थे । अवश्यपाच्य, अवश्यरेच्यम् ( ४१३११५ ) उदाहरण उपर्युक्त कथन की पूर्णतया पुष्टि करते हैं ।

वस्त्र, अलंकार एव मनोविनोद—

वस्त्रों का व्यवहार आर्थिक समृद्धि एवं रुचि परिष्कार का सूचक तो है ही साथ देश की औद्योगिक उन्नत अवस्था का भी परिचायक है । आचार्य हेम शब्दानुशासन के रचयिता हैं, अत उदाहरणों में नाना प्रकार के वस्त्रों का निरूपण किया है । हेम ने ‘उपाङ्गूपासमवाय’ ४१४१२ में शरीर की वेपमूपा को सजाने पर जोर दिया है । इन्होंने वस्त्र क लिप् चेल, चीवर, वस्त्र, वसन, आच्छादन एव परिधान का प्रयोग किया है । ‘चीवर परिधत्ते परिचीवरयते’ ( ३१४११ ) अर्थात् चीवर धारण करने का विधान आरम्भिक धर्म-गो और ब्रह्मचारियों के लिए है । बौद्ध भिक्षु भी चावर धारण करते थे । चावरों को स्वयं स्वच्छ भी करते थे यह बात ‘चीवर समाजयति सचीवरयते’ ( ३१४११ ) से सिद्ध होती है ।

परिधान की व्याख्या करते हुए लिखा है—“समाच्छादनम् परिधानम्” ( ३१४११ )—शरीर को आच्छादन करनेवाले वस्त्र को परिधान कहा है । हेम का यह संकेत भी है कि गुह्य अंग का समाच्छादन ही परिधान है अर्थात् धोती के अर्थ में परिधान का प्रयोग आया है । हेम ने जीर्ण वस्त्र को चीर

कहा है (३९२ उ०) तथा 'चीर जीर्णं वर्णं वल्कनं च' (३९० उ०) द्वारा वल्कल को भी चीर बताया है।

दख दुनने की प्रथा या निरसन करते हुए "प्रोद्यतेऽस्त्रमिति प्रगणितं तन्नुवापराणां ना निर्गवास्त्राणिति निष्प्राणि पटः" (७।३।१८१) अर्थात्, दुरीष, तन्नु, वेन और शलाका द्वारा दख दुने जाते थे तथा सीकर नामा तरह के दख बनाये जाते थे। 'कैरेयम्' ६।३।३९ में स्पष्ट है कि रेरनी वहाँ को कैरेय, अक्षमी के तन्नुओं में देने ( 'तना ऊननी तस्या दिगारोऽप्यवः जीनकम्, जीनम्' ६।३।३७ ) वहाँ को अम—अमक एव ऊनी वहाँ को ( 'ऊर्जाया विकार' जीर्णकम्, जीर्णम् ) ६।३।३७ अम—अमक कहते थे। सूत्र से देने दख कार्यांत कहलाते थे। इन तीनों प्रकार के दखों का उपयोग हेन के समय में होता था। कार्यांत का व्यवहार सर्वसाधारण में प्रचलित था। दखों को नाना प्रकार के रङ्गों से रंगने की प्रथा भी प्रचलित थी। 'रागाद्यो रक्ते' ६।३।३ सूत्र में स्पष्ट है कि कुमुन्न रङ्ग से रङ्गा गया दख कौमुन्न, कपायसे रङ्गा कपाय, मज्जिसे रङ्गा गया माज्जि, हरिद्राके रङ्ग से रङ्गा हरिद्रा, नील से रङ्गा नील एव पीत से पीत कहलाता था। रंगे दख धारण करने की प्रथा खियों में विशेष रूप से वर्तमान थी।

खियों महादर, मँहदी और गेरोचन का भी व्यवहार करती थीं। लाक्ष्या रक्तं लाक्षिकम्, रोचनया रक्तं रौचनिकम् ( ६।३।१० ) अर्थात् पाँवों को लाक्षा से रङ्गने की प्रथा और हाथों को रोचन—कुंकुम या मँहदी से रङ्गने की प्रथा प्रचलित थी। कावकल के मन्तान अघरोष्ठों को भी रोचन से रङ्गित किया जाता था। क्षामिनी युवतियों का नामा प्रकार से शृंगार करती थीं। संस्क्रोति चन्द्याम् नूपयति ( ३।१।४३ ) से अज्ञात होता है कि विवाह के अनन्तर के अतिरिक्त अन्य उत्सव या त्यौहारों के समय चन्द्याओं का विशेष शृंगार किया जाता था। शृंगार में सुगन्धित चन्दन, उद्गन्धित कन्दल, पृतगन्धित वररु ( ७।३।१४३ ) का उपयोग विशेष रूप से किया जाता था। सुगन्धित मालाओं का धारण करना एव सुगन्धित चतुर्भुजिक चूर्ण का लेप लगाना अच्छा समझा जाता था।

कंठ, दाह, मुँड, कर, प्रीषा आदि स्थानों पर अलंकार ( ६।३।१२ ) धारण किये जाते थे। वहाँ में निकलित्विन दखों का प्रधान रूप से व्यवहार पाया जाता है।

१ उष्णीषः ( ५५६ उ० )—दिलेनेष्टनम्—पगड़ी या साधा। प्राचीन और मध्यकाल में पगड़ी या साधा बाधने की प्रथा प्रचलित थी।

२ अधोवस्त्रम्—घोती, इसका दूसरा नाम परिधान भी आया है ।

३ प्रावाराः—दुशाला । राजाच्छादनाः प्रावाराः ( ३।४।४१ ) से ज्ञात होता है कि यह राजा महाराजाओं के ओढ़ने योग्य ऊनी या रेशमी चादर थी । कौटिल्य के अनुसार जंगली जानवरों के रोएँ से प्रावार नामक दुशाला बनता था, यह पण्यकम्बल की अपेक्षा मृदु और सुन्दर होता था ।

कम्बल—‘कम्बलान्नाम्नि’ ७।१।३४ में कम्बल के लिए लायी गयी ऊन को कम्बलीया ऊर्णा कहा है । कम्बल कई प्रकार के होते थे । पाण्डु देश से भी कम्बल आते थे । इन कम्बलों में रथों के पर्दे बनते थे, ये रथ ‘पाण्डु-कम्बलेन छन्न. पाण्डुकम्बली रथ.’ ( ६।२।१३२ ) कहलाते थे ।

कौपीन—( ६।४।१८५ ) ‘कौपीनशब्दः पापकर्मणि गोपनीय-पायूपस्थे तदावरणे च चीवररूपेण वर्तते’ ( ६।४।१८५ )—कौपीन शब्द लंगोटी के अर्थ में आया है । उस समय भी लंगोटी लगाने वाले भिक्षु विचरण करते थे ।

वासस् ( ५।३।१२५ )—‘राजपरिधानानि वासांसि’ उदाहरण द्वारा राजकीय वस्त्रों को वासस् कहा है । ये वस्त्र भडकीले और चमकीले होते थे ।

क्रीडा-विनोद—

आमोद-प्रमोद में सभी लोगों की अभिरुचि रहती है । क्रीडा करने के लिए उद्यानों में भ्रमण, नगरों की रथयात्रा, हाथी-घोड़ों की सवारी प्रभृति कार्य आचार्य हेम के समय में होते थे । आचार्य हेम ने निम्न सूत्रों में क्रीडा का निर्देश किया है :—

१ अकेन क्रीडा जीवे ३।१।८१

२ क्रीडोऽकूजने ३।३।३३

अभ्योपत्तादिका—

अभ्योपाः स्वाद्यन्तेऽस्यामिति अभ्योपत्तादिका ( ५।३।१२१ )—औ, गेहूँ की बालों को अग्नि में भून कर, बूटकर, गुड़ मिलाकर अभ्युप तैयार किये जाते थे । इस क्रीडा में अभ्युपों का सेवन किया जाता था । कामसूत्र में भी इस क्रीडा का ( ४।१।१ ) नाम आया है ।

उद्दालपुष्पभञ्जिका—

‘उद्दालकपुष्पाणि भज्यन्ते यस्यां सोद्दालपुष्पभञ्जिका’ ( ५।३।१२१ )—उद्दालक पुष्पों का भंजन जिस क्रीडा में सम्पन्न किया जाय वह उद्दालपुष्प-भञ्जिका है । आपटे ने अपने कोष में लिखा है—“A sort of game played

by the people in the eastern districts (,in which Uddalaka flowers are broken or crushed" ) उद्दालक जातक में भाया है कि वाराणसी के राजा का पुरोहित उद्दालक घृष्टों के घर्माघे में अपनी गणिका को उद्यानक्रीडा के लिए ले जाता था। यह क्रीडा वह उद्यानक्रीडा है, जिसमें उद्दालकपुष्पों का चयन और भंजन किया जाता था।

वारणपुष्पप्रचयायिका ( ५।३।१२१ )—यह घेना या खस के पुष्पों को एकत्र करने की क्रीडा है। वारण की ढालों को झुका कर पुष्पों का चयन हाथ की पहुँच के भीतर आई हुई शाखा से अपने ही हाथ से करना होता था। इस प्रकार की क्रीडा का उत्सव वैशाखी पूर्णिमा को सम्पन्न किया जाता था।

सालभञ्जिका—साला भज्यन्ते यस्यां सा सालभञ्जिका ( ५।३।१२१ ) साल वृक्ष की ढालियों को झुकाकर खियाँ पुष्पों का चयन करती थीं, यह क्रीडा सालभञ्जिका कहलाती थी। भरहुत, साँची की शुद्धला एव मथुरा की कुपागवला में उक्त क्रीडाओं में संलग्न खियों की मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं। यह पूर्व भारत की क्रीडा थी।

चन्दनवक्षा—चन्दनास्तद्यन्ते यस्यां—चन्दनवक्षा क्रीडा ( ५।३।१२१ ) चन्दन के वृक्षच्छेदन द्वारा क्रीडा सम्पन्न की जाती थी।

प्रहरण क्रीडा—

‘प्रहरणात् क्रीडायां णः’ ६।२।११६—इस क्रीडा का नाम उस प्रहरण या आयुध के नाम अभिहित किया जाता था, जिसे लेकर यह क्रीडा सम्पन्न की जाती थी। इस क्रीडा का मुख्य उद्देश्य अपनी कटा के कौशल का प्रदर्शन करना था। इसी कारण आचार्य हेम ने लिखा है—“यत्राद्रोहेण घातप्रतिघातौ स्यातां सा क्रीडा” ( ६।२।११६ )—अर्थात् शत्रुता के विना श्रेमपूर्वक शस्त्रों के घात-प्रतिघात करने की क्रिया क्रीडा है। उदाहरणों में—‘दण्डः प्रहरणमस्यां क्रीडायां दण्डा’ ( ६।२।११६ )—छात्री भाजने का खेल दिम्बलाना दण्डा क्रिया है। भाज कल भी छात्री चलाने की प्रवीणता दिम्बलाने के लिए इस प्रकार की क्रीडा की जाती है। मौष्टा—मुष्केवात्री का खेल, पादा—लतियाने का खेल आदि। मालाक्रीडा का नाम भी हेम ने गिनाया है तथा उसके स्वरूप का वर्णन करते हुए लिखा है—माला भूषणमस्यां क्रीडायाम्—जिस क्रीडा में माला आभूषण को अनेक प्रकार से धारण कर मनोरंजन किया जाय, वह मालाक्रीडा है।

मल्लयुद्ध ( २।२।६८ )—मल्लयुद्ध के लिए अखाड़े का निरूपण करते हुए हेम ने—‘तिलपातोऽस्यां वर्तते तैलपाता क्रियाभूमिः क्रीडा’

( ६१२।११५ )—अर्थात् जिस क्रीडा में तिल गिराया जाता था, वह क्रीडा तैलपाता कहलाती थी। नखाड़े को चिकना और भच्छा करने के लिए तैल देकर मिट्टी को मृदुल भी करने की ओर उक्त उदाहरण में सकेत वर्तमान है। नखाड़े में दो पहलवान आपस में ललकारपूर्वक युद्ध करते थे। आज भी मल्लयुद्ध की क्रीडा प्रसिद्ध है। दर्शक लोग मल्लयुद्ध देखकर आनन्दित होते थे।

मृगया—मृगयेच्छा याचना वृष्णा कृपाया श्रद्धान्तर्या ( ५।३।१०१ ) शिकार खेलकर पक्षी, हिरण एवं हिंसक जीवों के घात द्वारा मनोरजन किया जाता था।

अश्वयूत—यूत दीन्यति, अश्वान् दीव्यति ( २।२।१८ ), अश्वैर्यूतं चैत्रेण ( २।२।१९ ) उदाहरणों से स्पष्ट है कि यूत-क्रीडा पासों के द्वारा खेला जाती थी। तथा खेल और पासा दोनों ही अक्ष कहलाते थे। पासों का खिलाडी नाचिक कहलाता था। खेल अक्ष—चौकोर पासे और शलाका—लम्बे पासों से खेला जाता था। इन पासों पर अक्ष रहते थे। आचार्य हेम ने पाँच पासे के खेल का उल्लेख किया है। इन्होंने 'संख्याक्षशलाकं परिणा यूतेऽन्यथायुत्ता' ( ३।१।२८ ) में लिखा है—“पचिका नाम यूत पञ्चभिरश्वैः शलाकाभिर्वा भवति। तत्र यदा सर्वे उत्ताना अवाञ्चो वा पतन्ति तदा-पातयितुर्जयः। अन्यथापाते पराजयः। एकैनाक्षेण शलाकया वा न तथायुत्तम् यथा पूर्वं जये एकपरि, द्विपरि, त्रिपरि, परमेणचतुपरि। पञ्चसु त्वेकरूपेषु जय एव भवति। अक्षेणैव न तथा युत्तम् यथापूर्वं जये अश्वपरि। शलाकापरि, पाशकेन न तथायुत्तम् ( ३।१।३८ )। अर्थात् पचिका नाम जुआ पाँच अक्ष या पाँच शलाकाओं से खेला जाता है। जब वे सब पासे सीधे या भाँधे एक से गिरते हैं, तब पासा फेंकने वाला जातता है, किन्तु यदि कोई पासा उल्टा गिरता है, तो खेलने वाला उतने अक्ष में हारता है। उदाहरण के लिए जब चार पासे एक से पड़ते हैं और एक उल्टा गिरता है, तो खिलाडी कहता है अक्षपरि, शलाकापरि—एकपरि। इन कुछ शब्दों का अर्थ है—एक पासे से हारना। यदि दो पासे उल्टे पड़ते हैं, तो द्विपरि, तीन पासे उल्टे पड़ते हैं तो त्रिपरि और चार पासे उल्टे पड़ते हैं तो चतुपरि कहा जाता है।

इस सन्दर्भ में आचार्य हेम ने विविध मान्यताओं का उल्लेख करते हुए लिखा है:—

केचित् समविपमयूते सममित्युक्ते यदा विपम भवति तदा अक्ष-

परिशलाकापरीति प्रयुज्यत इत्याहुः । अन्ये पूरं पदमाहृतं तच्च पतितमिष्टं सिद्ध पुनस्तदाहृतं यद्वा न पतति तदायं प्रयोगोऽक्षपरि शलाकापरीत्याहुः ( ३।१।३८ ) । बुद्ध लोगो का मत है कि सम-विषय जुप में सम ऐसा कहने पर विषय पास आ जाय तो अक्षपरि, शलाकापरि का प्रयोग किया जाता है । खेल अक्षों से खेला जाय तो अक्षपरि और शलाकाओं से खेला जाय तो शलाकापरि कहलाता है । अन्य विचारकों का यह मत है कि पहले जो कहा गया है, यदि वही पास आ जाय तो खिलाड़ी की विजय होती है, और प्रतिद्वन्द्वी खिलाड़ी की पराजय; और कहा गया पास न आवे तो अक्षपरि या शलाकापरि कहलायेगा । वस्तुतः यह जुआरियों की हार-जित की मापा है, किस प्रकार उनको विजय प्राप्त होती है, यही यहाँ निर्देश किया गया है ।

मनोविनोद के साधनों में उत्सव विशेष भी सम्मिलित थे । आचार्य हेम ने 'भासं भावी मामिकः उत्सवः' ( ६।१।१०६ ) अर्थात् महीने पर चलने वाले उत्सव का निर्देश किया है ।

### आचार-विचार—

जनसाधारण में प्रचलित आचार-व्यवहार किसी भी समाज की संस्कृति का परिचायक होता है । आचार्य हेम ने अपने समय तथा उसके पूर्ववर्ती समाज के आचार-विचारों का सम्यक् निरूपण किया है । समाज के आदर्श का निरूपण करते हुए लिखा है—“इमाः परस्परां परस्परस्य वा स्मरन्ति, इमाः परस्परां परस्परस्मिन् वा स्निह्यन्ति, इमे कुले परस्परां भोजयतः-सस्त्रीभिः कुलैर्वा इतरेतरामितरेतरेण वा भोजयते” ( ३।२।१ ) इस सन्दर्भ से अलगत होता है कि जनसाधारण में स्नेह और प्रेम रहना चाहिए, जिससे वे परस्पर में स्नेह करें और आवश्यकता पड़ने पर स्मरण कर सकें । भोजन सम्बन्धी आदान-प्रदान भी अपेक्षित है । परस्पर में भोजन करने-कराने से समाज की मित्ति दृढ़ होती है और सामाजिकता का विकास होता है । अतिथि-सत्कार का महत्त्व तो सभी आचार्य मानते हैं । आचार्य हेम ने समाज-व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए परस्पर उपकार और सहयोग करना नितान्त आवश्यक माना है । “अनुकम्पा फारण्येन परस्यानुग्रहः तथा अनुकम्पया युयता नीतिस्तयुन्तनीतिः” ( ७।३।३४ ) । अर्थात् दया या करुणापूर्वक अन्य व्यक्तियों की सहायता करना, उनके कार्यों में सहयोग प्रदान करना मनुष्य के लिए आवश्यक है । जो व्यक्ति अपने जीवन में अहिंसा या दया की नीति को अपना लेता है, वह व्यक्ति समाज का बड़ा उपकार करता है ।



‘शील युष्माक स्वम्, शीलमस्माक स्वम्, शीले वय स्थास्याम, शीनेऽस्माभि स्थितम्’ ( २।१।२१ ) से स्पष्ट ज्ञात होता है कि मानवमात्र का आदर्श आचार है। आचार या शील के बिना व्यक्ति अपने जीवन में कोई भी सफलता नहीं प्राप्त कर सकता है। जीवन की वास्तविक उन्नति शील—सदाचार द्वारा ही होती है। जिस प्रकार तैल के बिना तिल का अस्तित्व नहीं, उसी प्रकार शील के अभाव में जीवन का कोई भी मूल्य नहीं है। दान के महत्व का वर्णन करते हुए कहा है—‘दानेन भोगान्नाप्नोति’ ( २।२।२४ )—दान देने से ही भोगों का प्राप्ति होती है। दान देने का सिद्धान्त समाज में सहयोग का सिद्धान्त है। सचय से समान में व्यतिक्रम आता है और दान देने से समान में अद्भुत सगठन एवं समता उत्पन्न होती है। अतः धार्मिक दृष्टि से दान का नितना मूल्य है, उससे कहीं अधिक सामाजिक दृष्टि से। समानविज्ञान दान को समान के परिष्कार और गठन में एक हेतु मानता है।

जीवन मारयति, मास न भक्षयति ( ५।२।१९ ) द्वारा अहिंसा सिद्धान्त का स्पष्टीकरण किया है और जावन को सुखी, सम्पन्न और शान्त बनाने के लिए मासभोजन का त्याग एवं सभी प्रकार की जीव हिंसा का त्याग आवश्यक माना है। मन, वचन और क्रिया में अहिंसा का रहना अनिवार्य माना है। उनके मुनिधूर्त और आरक्षिनस्कर ( ३।१।१०० ) उदाहरण स्पष्ट घोषणा करते हैं कि आचारहीन मुनि भी धूर्त कोटि में परिगणित हो जाता है। जिस मुनि के जीवन में अहिंसा आदि महाव्रत, पाँच समितियों और तान गुणियों का अस्तित्व नहीं है, ऐसा मुनि बाहर से मुनिव्रत धारण करने पर भी अन्तरंग शुद्धि के अभाव में धूर्त है। द्रुल-कपट, प्रपच आदि में आसक्त होने से अहिंसा का पालन संभव नहीं है। इसी प्रकार जो आरक्षि—दरोगा जनता के जानमाल की रक्षा न करके, चोरी करता हो, वह भी अतिनिन्दनीय है। आचार्य हेम जीवनोन्नति के लिए आचार को सर्वोपरि स्थान देते हैं।

जीवन का आदर्श ज्ञान और शील दोनों ही हैं। इसी कारण आचार्य हेम ने बतलाया है—‘ज्ञान च शील च वा दीयते। ज्ञान च शील च ते स्वम्, मे स्वम्’ ( २।१।२९ ) अर्थात् ज्ञान और आचार दोनों ही जीवन के लिए सर्वस्व हैं। ये दोनों वैयक्तिक और सामाजिक जावन के लिए आवश्यक माने गये थे।

नम्रता को समान में प्राह्य माना जाता था। विनीत विद्यार्थी का गुरु

भी सम्मान करते थे और समाज भी उन्हें आदर की दृष्टि से देखता था। 'धय विनीतास्तत्रो गुरवो मानयन्ति' ( २।१।३२ ) उदाहरण से स्पष्ट है श्रद्धालु और विनीत शिष्य गुरु के लिए प्रियपात्र बनता था। 'प्रिहरति देशमाचार्य' ( २।२।१० ) से अवगन होता है कि आचार्य लोग स्वकल्याण के अतिरिक्त समाजसुधार और समान-परिष्कार के हेतु देश में विचरण करते थे।

गर्वोक्तियों समाज में प्रचलित अवश्य थीं, पर समाज-कल्याण की दृष्टि से गर्वोक्तियों को महत्त्व नहीं दिया जाता था। 'म मे मुष्टिमध्ये तिष्ठति' ( २।२।२९ )—वह मेरी मुट्टी में है, आदि गर्वोक्तियों औपचारिक मानी गयी हैं। इसी प्रकार 'यो यस्य द्वेष्य स तस्याद्गणो' प्रतिवसति। यो यस्य प्रिय स तस्य हृदये वसति' ( २।२।२९ ) अर्थात् जा जिसका प्रिय है, वह उसके हृदय में वसता है और जा जिसका द्वेष्य—द्वेष की वस्तु है, वह उसकी ओतों में निवास करता है। ये दोनों उदाहरण भी हृदय की भावनाओं पर प्रकाश डालते हैं। समाज में राग द्वेष के परिष्कार को प्राण्य माना जाता था।

किसी बात का विश्वास दिलाने के लिए शपथ लन की प्रथा भी प्रचलित थी। जब लोग कही हुई बात की सच्चाई पर विश्वास नहीं करते थे, तो प्रायय उत्पन्न करने के लिए शपथ ली जाती थी। इस शपथ के सम्बन्ध में बताया है—'यदीदमेव न स्यात् इद मे इष्ट माभूत् अनिष्ट वा भवत्विति शपथ करोति' ( ७।२।१४३ ) अर्थात् यदि मेरा यह कथन यथार्थ न हो तो मेरा इष्ट—कल्याण न हो और अनिष्ट—असङ्गल हो जाय। इससे घबनित होता है कि हृदयशुद्धि पर विशेष ध्यान दिया गया है। जिसके हृदय में झूठ-झग्न नहीं है, वही व्यक्ति इस प्रकार की शपथ ले सकता है।

आचार विचार के अन्तर्गत व्रत नियम भी परिगणित किये जाते हैं आचार्य हेम ने 'व्रत शास्त्रविहितो नियम' ( २।१।४३ ) अर्थात् शास्त्रविहित नियमों का पालन करना व्रत है। शास्त्रविहित नियमों में 'देवव्रतादीन् टिन्' ( ६।१।८३ ) सूत्र में महाव्रतों को शास्त्रविहित व्रत बताया है। सामान्य भाषा में प्रतिज्ञा करने के नियम को व्रत कहा जाता है। 'व्रतमभिसन्धिचृतो नियम, इद कर्त्तव्यमिद न कर्त्तव्यमिति वा'। ( ७।१ सर्वार्थ० )—अर्थात् कर्त्तव्य के करने का और अकर्त्तव्य के त्याग का जो नियम लिया जाता है, वह व्रत है। पापों से निवृत्त होने रूप अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रह रूप पाँच महाव्रत हैं। आचार्य हेम ने लौकिक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हुए कहा

है—‘पय एव मया भोक्तव्यमिति व्रत करोति गृह्णाति वा पयोव्रत-  
यति । सावद्यान्न मया न भोक्तव्यमिति व्रत करोति गृह्णाति वा साव-  
द्यान्न व्रतयति’ ( ३।४।४३ )—अर्थात् दूध का मुझे सवन करना चाहिए, इस  
प्रकार का नियम लेकर जो दूध को ही ग्रहण करता है, वह पयोव्रती कहलाता  
है । पापाक्ष को मैं नहीं ग्रहण करूँगा इस प्रकार का नियम लेकर जो पापाक्ष  
सवन का त्याग करता है, वह सावद्यान्न व्रती कहलाता है ।

हेम ने ‘चान्द्रायण च चरति’ ६।४।८२ में चान्द्रायण व्रत का निर्देश  
किया है । देवव्रती, तिलव्रती ( ६।४।८३ ) आदि व्रत भा प्राचीन भारत की  
पृष्ठ नयी व्रत परम्परा पर प्रकाश डालते हैं ।

‘गोदानादीना ब्रह्मचर्ये’ ६।४।८१ सूत्र में ‘गोदानस्य ब्रह्मचर्यं—  
गौदानिकम्—यावत् गोदान न करोति तावत् ब्रह्मचर्यम्—अर्थात् गोदान  
का पर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत धारण करना—गौदानिक है । इसी प्रकार—  
आदित्यव्रतानामादित्यव्रतिकम् ( ६।४।८१ )—आदित्यव्रत का पालन  
करने वाला आदित्यव्रतिक कहा जाता है ।

‘धर्माधर्माच्चरति’ ६।४।४९ में धर्मानुष्ठान और अधर्म से विरक्ति रखना  
भी जीवन का लक्ष्य बताया गया है । ‘यावज्जीव भृशमन्न दत्तवान्’ ( ५।४।५ )  
द्वारा अन्नदान को जीवन पर्यन्त विधेय बताया है । स्थलि ( ६०७ उ० )  
शब्द दानशाला के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । ग्रह्णि ( ६।६ उ० ) शब्द पियाऊ  
के अर्थ में आया है । अत स्पष्ट है कि दानशालाएँ और पियाऊशालाएँ  
समान के सहयोग के लिए आवश्यक मानी जाती थीं । अतिथि की महत्ता  
अत्यधिक थी । हेम ने लिखा है—अतिथिवेद भोजयति य यमतिथिं  
जानाति लभते विचारयति वा त त सर्वं भोजयतीत्यर्थ ( ५।४।५४ )

जीवन के लिए शुचिब को आवश्यक मानते हुए लिखा है—शुचेर्मात्र  
कर्म वा शौचम्, शुचित्व ( ७।१।६९ ) अर्थात् शौच को जीवन में अपन  
कार्य या भाव द्वारा उतारना आवश्यक है ।

विशेष आचार विचारों पर भी ‘अक्षिणी निमीन्य हसति, मुख व्यापाद्य  
स्वपिति, पादौ प्रसार्य पतति, दन्तान् प्रकाश्य जल्पति’ ( ५।४।४६ )  
अर्थात् नीख बन्द कर हँसता है, मुख खोलकर सोता है, पैर फैलाकर कूदता  
है, दन्तीमी झलकाकर बोलता है, द्वारा प्रकाश पड़ता है । यद्यपि उक्त कार्य  
व्यक्ति विशेष के रहन-सहन के अन्तर्गत आर्योगे, तो भी इनका सामानिक  
आचार विचार के साथ सम्बन्ध है, यत उक्त क्रियाएँ अच्छी नहीं समझी जाती  
थीं, इसीलिए इनका व्यंग्य रूप में उल्लेख किया है ।

भी सम्मान करते थे और समाज भी उन्हें आदर की दृष्टि से देखता था। 'वय विनीतास्तन्नो गुरवो मानयन्ति' ( २।१।३२ ) उदाहरण से स्पष्ट है श्रद्धालु और विनीत शिष्य गुरु के लिए प्रियपात्र बनता था। 'प्रिहरति देशमाचार्य' ( २।२।७ ) से अवगत होता है कि आचार्य लोग स्वकल्याण के अतिरिक्त समाजसुधार और समाज-परिष्कार के हेतु देश में विचरण करते थे।

गर्वोक्तियों समाज में प्रचलित अवश्य थीं, पर समाज कल्याण की दृष्टि से गर्वोक्तियों को महत्त्व नहीं दिया जाता था। 'स मे मुष्टिमध्ये तिष्ठति' ( २।२।२९ )—वह मेरी मुट्ठी में है, आदि गर्वोक्तियाँ औपचारिक मानी गयी हैं। इसी प्रकार 'यो यस्य द्वेष्य स तस्याच्छो प्रतिवसति। यो यस्य प्रिय स तस्य हृदये वसति' ( २।२।२९ ) अर्थात् जो जिसका प्रिय है, वह उसके हृदय में बसता है और जो जिसका द्वेष्य—द्वेष की वस्तु है, वह उसकी ओँखों में निवास करता है। ये दोनों उदाहरण भी हृदय की भावनाओं पर प्रकाश डालते हैं। समाज में राग द्वेष के परिष्कार को प्राण्य माना जाता था।

किसी बात का विश्वास दिलाने के लिए शपथ लेने की प्रथा भी प्रचलित थी। जब लोग कही हुई बात की सच्चाई पर विश्वास नहीं करते थे, तो प्रत्यय उत्पन्न करने के लिए शपथ ली जाती थी। इस शपथ के सम्बन्ध में बताया है—'यत्रीदमेव न स्यात् इदं मे इष्टं माभूत् अनिष्टं वा भवतिवति शपथ करोति' ( ७।२।१४३ ) अर्थात् यदि मेरा यह कथन यथार्थ न हो तो मेरा इष्ट—कल्याण न हो और अनिष्ट—अमङ्गल हो जाय। इससे ध्वनित होता है कि हृदयशुद्धि पर विशेष ध्यान दिया गया है। जिसके हृदय में झुल-झुप नहीं है, वही व्यक्ति इस प्रकार की शपथ ल सकता है।

आचार विचार के अन्तर्गत व्रत नियम भी परिगणित किये जाते हैं आचार्य हेम ने 'व्रत शास्त्रविहितो नियम' ( ३।४।४३ ) अर्थात् शास्त्रविहित नियमों का पालन करना व्रत है। शास्त्रविहित नियमों में 'देवव्रतादीन् टिन्' ( ६।४।८३ ) सूत्र में महाव्रतों को शास्त्रविहित व्रत बताया है। सामान्य भाषा में प्रतिज्ञा करने के नियम को व्रत कहा जाता है। 'व्रतमभिसन्विकृतो नियम, इदं कर्त्तव्यमिदं न कर्त्तव्यमिति वा'। ( ७।१ मवार्थ० )—अर्थात् कर्त्तव्य के करने का और अकर्त्तव्य के त्याग का जो नियम लिया जाता है, वह व्रत है। पापों से निवृत्त होने रूप अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रह रूप पाँच महाव्रत हैं। आचार्य हेम ने ऋद्धिक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हुए कहा

हे—‘पय एव मया भोक्तव्यमिति व्रत करोति गृह्णाति वा पयोव्रत-  
यति । सावद्यान्न मया न भोक्तव्यमिति व्रत करोति गृह्णाति वा साव-  
द्यान्न व्रतयति’ ( ३।४।४३ )—अर्थात् दूध का मुझे खाना चाहिए इस  
प्रकार का नियम लेकर जो दूध को ही ग्रहण करता है, वह पयोव्रती कहलाता  
है । पापात्र को मैं नहीं ग्रहण करूँगा इस प्रकार का नियम लेकर जो पापात्र  
खाने का त्याग करता है, वह सावद्यान्न व्रती कहलाता है ।

हेम ने ‘चान्द्रायण च चरति’ ६।४।८२ में चान्द्रायण व्रत का निर्देश  
किया है । देवव्रता, तिलव्रती ( ६।४।८३ ) आदि व्रत भा प्राचीन भारत की  
एक नयी व्रत परम्परा पर प्रकाश डालते हैं ।

‘गोदानादीना ब्रह्मचर्ये’ ६।४।८१ सूत्र में ‘गोदानस्य ब्रह्मचर्यं—  
गौदानिकम्—यावत् गोदान न करोति तावत् ब्रह्मचर्यम्—अर्थात् गोदान  
काल पर्यन्त ब्रह्मचर्यं व्रत धारण करना—गौदानिक है । इसी प्रकार—  
आदित्यव्रतानामादित्यव्रतिकम् ( ६।४।८१ )—आदित्यव्रत का पालन  
करने वाला आदित्यव्रतिक कहा जाता है ।

‘धर्माधर्माचरति’ ६।४।४९ में धर्मानुष्ठान और अधर्म से विरक्ति रखना  
भी जीवन का लक्ष्य बताया गया है । ‘यावज्जीव भृशमन्न वृत्तयान्’ ( ५।४।५ )  
द्वारा अन्नदान को जीवन पर्यन्त विधेय बताया है । स्थलि ( ६०७ उ० )  
शब्द दानशाला के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । प्रह्लि ( ६१६ उ० ) शब्द पियाऊ  
के अर्थ में आया है । अतः स्पष्ट है कि दानशालाएँ और पियाऊशालाएँ  
समान के सहयोग के लिए आवश्यक मानी जाती थीं । अतिथि की महत्ता  
अत्यधिक थी । हेम ने लिखा है—अतिथिवेद भोजयति य यमतिथिं  
जानाति लभते विचारयति वा त त सर्वं भोजयतीत्यर्थ ( ५।४।५४ )

जीवन के लिए शुचित्व को आवश्यक मानते हुए लिखा है—शुचेर्भाज  
कर्म वा शौचम्, शुचित्व ( ७।१।६९ ) अर्थात् शौच को जीवन में अपन  
कार्य या भाव द्वारा उतारना आवश्यक है ।

विशेष आचार विचारों पर भा ‘अग्निणी निमीन्य हसति, मुख व्यापाद्य  
स्वपिति, पादौ प्रसार्य पतति, दन्तान् प्रकाश्य जल्पति’ ( ५।४।४६ )  
अर्थात् आँख बन्द कर हँसता है, मुख खोलकर सोता है, पैर फैलाकर बूढ़ता  
है, बत्तीसी झलकाकर बोलता है, द्वारा प्रकाश पड़ता है । यद्यपि उक्त कार्य  
व्यक्ति विशेष के रहन-सहन के अन्तर्गत आर्येण, तो भी इनका सामानिक  
आचार विचार के साथ सम्बन्ध है, यत उक्त क्रियाएँ अच्छी नहीं समझी जाती  
थीं, इसीलिए इनका व्यंग्य रूप में उल्लेख किया है ।

लोकमान्यताएँ—

दैनिक जीवन में ज्योतिष अथवा मुहूर्त शास्त्र को बड़ा महत्व प्राप्त है। प्रत्येक नवीन कार्य को शुभ मुहूर्त में आरम्भ करने का विशेष ध्यान सदा से रखा जाता रहा है। राज्याभिषेक, युद्ध के लिए प्रस्थान, गृहप्रवेश, पूजा-समारम्भ, विवाह सस्कार, यात्रारम्भ आदि कार्य ज्योतिष शास्त्र सम्मत शुभ घट्टियों में सम्पन्न किये जाते रहे हैं।

‘ज्योतिषम्’ ६।३।१९९ द्वारा ज्योतिष शास्त्र के अध्ययन पर जोर दिया गया है। आचार्य हेम ने ‘हेतौ सयोगोत्पाते’ ६।४।१५३ सूत्र में उत्पात को स्पष्ट करते हुए लिखा है—‘प्राणिना शुभाशुभसूचको महाभूतपरिणाम उत्पातः’ ( ६।४।१५३ )—अर्थात् प्राणियों के शुभाशुभ सूचक प्रकृति के विकार को उत्पात कहा है। यथा—भूकम्प चन्द्र ग्रह के कारण उत्पन्न होता है ( सोमग्रहस्य हेतुत्पात —सोमग्रहणिको भूमिकम्प ) ( ६।४।१५३ )। इसी प्रकार सप्तम क कारण इन्द्र धनुष, सुभिच्छ के कारण परिवेष एव पुत्र प्राप्ति सूचक सम्बन्धी निमित्तों का वर्णन किया है। शरीर में रहने वाले शुभाशुभ चिह्नों का भी वर्णन किया है। ‘चिह्न शरीरस्थ शुभाशुभसूचक तिलनालवादि’। यथा जायात्रो ब्राह्मण, पतिघ्नी कन्या’ ( ५।१।८४ )—स्पष्ट है कि शरीर में रहनेवाले तिल, मससा आदि चिह्न भविष्य के शुभाशुभ की सूचना देते हैं। भार्याघातक ब्राह्मणकुमार के शारीरिक चिह्न स्वयमेव प्रकट हाकर उसके अनिष्ट की सूचना देते हैं। इसी प्रकार पतिघातक कन्या की हस्तरेखा स्वय ही उसके वैधव्य की सूचक होती है।

आचार्य हेम ने नक्षत्रों में सम्पन्न किये जानेवाले कार्यों का भी उल्लेख किया है। ध्रुविष्ठा—धनिष्ठा नक्षत्र में सम्पन्न होनेवाले कार्य आविष्टीय ( ६।३।१०५ ), फाल्गुनी में सम्पन्न किये जानेवाले कार्य फाल्गुनीय ( ६।३।१०६ ), इसी प्रकार अन्य नक्षत्रों में सम्पन्न किये जानेवाले कार्यों का भी निर्देश किया है। इन नक्षत्रों में उत्पन्न हुए व्यक्तियों के नाम भी नक्षत्रों के नामों पर रखे जाने की प्रथा का निर्देश किया है। दिन, अहोरात्र, मास, पीर्णमासी, अयन, ऋतु के नामों के साथ वत्सर, सवत्सर, परिवत्सर, अनु-वत्सर, अनुसत्सर, विवत्सर और उद्धत्सर ( ४३९ उ० ) ये नाम भी उल्लिखित हैं। ‘पुण्येण पायसमर्नीयात्’ ( २।२।४८ ) से स्पष्ट है पुण्य नक्षत्र म खीर के भोजन का विधान ज्योतिष की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इस दिन पायसास्र के भक्षण से बुद्धि की वृद्धि होती है। ज्योतिष में पुण्य नक्षत्र का बड़ा महत्व माना गया है, इसमें विधिवत् खीर या ब्राह्मी का सेवन करने से बुद्धि की वृद्धि होती है।

कला-कौशल—

सभ्यता और संस्कृति के परिचायक कला-कौशल से भी हेम परिचिन थे। सौन्दर्य चेतना उनके रग-रग में व्याप्त है। सौन्दर्य प्रमाद्यन के रूप में विविध पुष्पों का प्रयोग, केशों का आरुर्पक शृङ्गार, अङ्गारागलेपन हेम के युग की प्रमुन्न विशेषताएँ हैं।

चित्रकला, सङ्गीत, वास्तु, नृत्य एवं स्यापत्य के समग्रन्ध में आचार्य हेम ने प्रचुर माममी उपस्थित की है। आचार्य हेम ने 'शिल्पं कौशलम् विज्ञान-प्रकर्षः' ( ६।४।५७ ) द्वारा दो बातों पर प्रकाश डाला है।

( १ ) कौशल—कुशलता या चतुराई। जिस कला का अभ्यास करना हो, उसकी चतुराई—प्रवीणता होनी चाहिए। इसे एक प्रकार से Practical knowledge कह सकते हैं।

( २ ) विज्ञान प्रकर्ष—विषय का पूर्ण पाण्डित्य—विषय की अन्तिम सीमा तक जानकारी। इसे Theoretical knowledge कहा जा सकता है। अभिप्राय यह है कि शिल्प में प्रयोगात्मक और सिद्धान्तात्मक दोनों ही प्रकार का ज्ञान अपेक्षित है। इन दोनों के सन्तुलन को ही शिल्प कहते हैं। शिल्प कला का स्थान तभी ग्रहण करता है, जब उसमें हृदय का संयोग रहता है। आचार्य हेम के उक्त विवेचन से यह स्पष्टतया जाना जा सकता है।

पाणिनि के समान हेम ने भी नृत्य, सङ्गीत और वाद्य को शिल्प के अन्तर्गत ही माना है। इनका कथन है कि नृत्य शिल्प जिनका पेशा है वे नार्तिक, गीत शिल्प जिनका पेशा है वे गैतिक, वाद्य शिल्प जिनका पेशा है, वे वादनिक, शृङ्गार शिल्प जिनका पेशा है वे मार्दङ्गिक कहलाते हैं। नृत्तं शिल्पमस्य नार्तिकः, गीतं गैतिकः, वादनं वादनिकः शृङ्गारवादनं शिल्पमस्य मार्दङ्गिकः, पाणविकः मीरजिकः, वैणिकः ( ६।४।५७ )। इसमें सन्देह नहीं कि हेम ने नृत्य, गीत, वाद्य और नाट्य या अभिनय का परस्पर में घनिष्ठ सम्बन्ध बताया है। हेम ने गीति, गेय, गाथिक और गायन शब्द का साधुत्व भी प्रदर्शित किया है।

वाद्यों में शृङ्गार, सुरज, पाणु, वीणा, मड्डुक, शंख और दुन्दुभि का उल्लेख मिलता है। हेम ने 'दक्षिणाय गाथकाय देहि प्रवीणायेत्यर्थः, दक्षिणायै द्विजाः स्पृहयन्ति (१।४।७) उदाहरणों से स्पष्ट किया है कि वीणा पर गाने-वाले को दक्षिणा दो, दक्षिणा के लिए द्विज लोग आपस में ईर्ष्या करते हैं। अवस्वननि शृङ्गारः विविधशब्दं करोतीत्यर्थः (१।३।४३)—शृङ्गारवादन से नाना

तरह की ध्वनि निकाली जा रही है। मड्डुकवादनं शिल्पमस्य माड्डुकः, भार्गविकः ( ६११५८ ) प्रयोगों से स्पष्ट है कि मड्डुक और शर्कर वाद्य यजाने का भी पेशा करने वाले विद्यमान थे। शङ्ख, दुन्दुभि, वीणा, मृदङ्ग ( ३१११६० ) वाद्य भी अत्यन्त लोकप्रिय थे।

‘केनेदं चित्रं लिखितमिह नगरे मनुष्येण संभाव्यते’ ( ६१३१४९ ) अर्थात् इस चित्र को इस नगर में किस मनुष्य ने बनाया है, से स्पष्ट है कि चित्र बनाने की कला का भी यथेष्ट प्रचार था। शिक्षासम्बन्धी जो सामग्री उपलब्ध होती है, उससे भी स्पष्ट है कि वास्तुकला ( ६१३१४८ ) और चित्रकला ( ६१२११८ ) भी अध्ययनीय विषय माने जाते थे।

### शिक्षा और साहित्य—

आचार्य हेम ने शिक्षा के सम्बन्ध में पर्याप्त सामग्री प्रदान की है। इन्होंने बतलाया है कि शिक्षा प्राप्त करता हुआ विद्यार्थी उम्र प्रकार विद्या-रूपमी, से युक्त हो जाता है, जिस प्रकार कार्पापण से कोई अभोष्ट वस्तु खरीदी जा सकती है। तात्पर्य यह है कि निष्कपट भाव से विद्या प्राप्त करने वाले छात्र को सभी विद्याएँ देना उसी प्रकार सुलभ है, जिस प्रकार सीधी-सादी लकड़ी को छीलने या खरादने में कोई कष्ट नहीं होता है। लिखा है—“द्रुतुल्यः द्रव्यमयं माणवकः । द्रव्यं कार्पापणं । यथा अप्रन्धि अजिह्वं दाह उपकल्प्यमाननिशिष्टरूपं भवति तथा माणवकोऽपि विनीयमानो विद्यालक्ष्म्यादिभाजनं भवतीति द्रव्यमुच्यते । कार्पापणमपि विनियुज्यमानं निशिष्टेष्टमाल्याद्युपभोगफलं भवतीति द्रव्यमुच्यते” ( ७११११५ )।

शिक्षार्थी की योग्यता का निरूपण करते हुए हेम ने निम्न गुणों का आवश्यक माना है—

- ( १ ) नम्रता—विनय
- ( २ ) शील—सदाचार
- ( ३ ) मेधा—प्रतिभा
- ( ४ ) धर्म—परिधर्म करने की क्षमता, विद्यार्जन में परिधर्म करनेवाला ।

आचार्य हेम ने शिष्य के लिए विनय गुण को आवश्यक माना है। इनके ‘धयं विनीतास्तत्रो गुरवो मानयन्ति’ ( २११३१ ), यूयं विनीतास्तद्गुरवो यो मानयन्ति’ ( २११३२ ) उदाहरणों से स्पष्ट है कि विनयी शिष्य को ही गुरु मानते थे। जो अविनीत या उदण्ड होता था, उसकी गुरु लोग उपेक्षा करते थे।



‘पुत्रा शीलवन्तौ तद्वां गुरवो मानयन्ति, आत्रा शीलवन्तौ तन्नौ गुरवो मानयन्ति’ ( २।१।३१ ) अर्थात् कुछ छात्र आपस में वार्तालाप करते हुए कहते हैं कि आप लोग शीलवान्-महाचारा हैं, इसलिए गुरु आपको मानते हैं, हम लोग शीलवान् हैं, इसलिए हमें गुरु लोग मानते हैं। इसमें स्पष्ट है कि छात्र के लिए शीलवान् होना नितान्त आवश्यक था।

‘एते मेधाविनो विनीता अथो एते शास्त्रस्य पात्रन्, एतस्मै सूत्र देहि एतस्मै अनुयोगमपि देहि’ ( २।१।३३ )। अर्थात् वे विनीत और प्रतिभाशाली हैं, उन-के शास्त्र ग्रहण करने के पात्र हैं। इनको सूत्र और अनुयोग की शिक्षा देनी चाहिए। उपर्युक्त उदाहरण से यह सूचित होता है कि छात्र के लिए प्रतिभाशाली होना आवश्यक था। प्रतिभा के अभाव में विद्यार्जन संभव नहीं होता था। ‘अधीत्य गुरुभिरनुज्ञातेन हि सत्पारोढव्या’ ( ३।१।५९ ) गुरु से पढ़कर उनकी आज्ञा मिलने पर ही स्राट पर शयन या क्षामन ग्रहण करना चाहिए। गुरुकी आज्ञा के विना स्राट पर बैठने वाला छात्र जानम कहलाता था। गुरु की सेवा करने से शास्त्र का पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है। गुरु की कृपा शास्त्रपारगामी होने के लिए आवश्यक मानी गयी है। ‘यदि गुरुनुपासीत शास्त्रान्त गच्छेत्’ ‘यदि गुरुनुपासियते शास्त्रान्त गमिष्यति’ ( ५।१।२५ ) उदाहरणों से उक्त तथ्य की सिद्धि होती है। जो छात्र धर्म करने में कमी करता था, उसे गुरु दण्ड भी देते थे, यह बात ‘द्वात्राय चनेटां प्रयच्छति’ ( २।२।२९ ) से सिद्ध होती है। आचार्य हेम ने प्रमानन-चार प्रकार के छात्रों का उल्लेख किया है। दार्मिक, शूलिक, रामविक और पार्श्वक। जो मित्यात्रनी परप्रसादार्यं दण्डाचिनमुपादायार्थानन्विच्छति स दार्मिक उच्यते—जो दूसरों को प्रमत्त करने के लिए शूद्रा ब्रह्मचारी बन विद्या ग्रहण करता है, वह दार्मिक है। जो मृदुनोपायेनान्वेष्टयानर्था-न्तीक्षोपायेनान्विच्छति रामविक स एव उच्यते—जो मरलता से सीखे जाने वाले विषयों को कठोरता से पढ़ना चाहता है, वह रामविक कहलाता है। ऋजुनोपायेनान्वेष्टयानर्थांनृजुनोपायेन योऽन्विच्छति स पार्श्वक उच्यते—जो ऋजु उपाय से सीखने योग्य विषयों को कठिन उपाय से पढ़ना चाहता है, वह पार्श्वक है ( ७।१।१७१ )। शूलिक छात्र कठिनाई से सिद्धि किये जाते हैं। नियमित रूप से अध्ययन करने वाले छात्र को आख्यात कहा है।

काकाद्यै न्ये ( ३।१।९० )—नियमों का उल्लंघन करने वाले छात्रों की निन्दा की जाती थी। ऐसे छात्र तीर्थवाच, तीर्थकाक, तीर्थवक, तीर्थशा, तीर्थमारमेय एव तीर्थकुक्कुट ( ३।१।९० ) कहलाते थे। जो गुरु के निकट स्थिरता और विनयपूर्वक अध्ययन नहीं करते थे, उन्हीं छात्रों के लिए

उपर्युक्त शब्द व्यवहार में लाये जाने से। लाञ्छनी-आञ्छित इत्येवंगीत ( ५२१५३ ) दात्र को विद्वान् का अग्रिहारी नहीं माना गया है। परिष्कृत के दिना सिद्धा की प्राप्ति नहीं हो सकती है।

काठ्यार्य हेम ने सिद्धा के अन्तर्गत न्याय, न्याय, लोकायत, पुनरत, सविता, पद, क्रम, मद्य, वृत्ति, मन्त्र आद्यैर्देव, एत, न्याय, इतिहास, पुराण, भारत, महाण्ड, कारवान, द्विपदा, ज्योतिष, रगित, कल्प, लघन, लक्षण, अनुत्पद्य, सुत्पद्य, अथर्व ( ६१०१३८ ), लोकायत, कल्पदण, हस्तिलक्षण ( ६१२१३९ ), इतिहास, सूत्र ( ६१०१२० ), ज्ञानविद्या, न्यायविद्या, धर्मविद्या, यमन्यायविद्या, अग्निसिद्धा ( ६१०१२९ ), यज्ञ ( ६१०१३० ), संन्यास, उपनिषद् ( ६१२१३६ ) इत्येषा ब्रह्मण ( ६१०१३५ ), अन्य ब्रह्मण ( ६१२१३२ ) निरुक्त, व्याकरण, निगम, जाम्बुविद्या, चन्द्रविद्या, त्रिविद्या, उत्पन्न, लुप्त, निमित्त एव छन्द ( ६१३१३८ ) की गणना की है। 'पञ्चोपनिषदामन्तमन्त्रानां कृत्वाधीते सप्तहोत्रादिनिरुक्तधीते गान्धर्वः । एव मलोक्तविन्दुसारमधीते पूर्वधरः' ( ३१०१३६ ) से स्पष्ट है कि ब्राह्मण षड्भेदविद्यापर्यन्त अगम का अध्ययन करता था और छन्दो विन्दुसार नामक चौदहवें पूर्व तक अध्ययन करता था। अभिप्राय यह है कि मूल्य सुतज्ञान के दो भेद हैं—अगमवाच्य और अगमविद्ये। अगमवाच्य के द्वावैकालिक और उत्तराध्ययन वादि अनेक भेद हैं। अगमविद्ये के द्वावैक भेद हैं—यथा—आचार, सूत्रज्ञान, स्थान, समवाय, अरुणप्रज्ञप्ति, ज्ञानार्थकदा, उपनिषाध्ययन, अन्तर्हृदय, अनुत्तरादिपदादिकदण, अरुणव्याकरण, विनाकसूत्र और दृष्टिवाद। दृष्टिवाद के पाँच भेद हैं—परिष्कृत, सूत्र, प्रथमबुद्धेय, पुनर्यत और चूलिक। इनमें से पूर्वगत के चौदह भेद हैं—उत्तरदृष्टे, अगमविद्ये, दीर्घोत्तरवाद, अस्तिनास्तिवाद, ज्ञानवाद, मन्त्रवाद, आनन्दवाद, धर्मवाद, प्रत्याख्याननामधेय, विद्यानुवाद, कल्याणनामधेय, प्राणवाय, किञ्चिद्विद्या और लोकाविन्दुसार। हेम के अनुसार अध्ययन की अन्तिम सीमा लोकाविन्दुसार नाम का पूर्व है।

इनके अङ्गसमापनीयम्, धृतस्यन्ययनसमापनीयम् ( ६११३०० ) से भी उक्त तथ्य की पुष्टि होती है।

### आर्थिक जीवन

कथं जीवनं वा मृतं है। धनदांस्त्वमयो त्वा लेटो मानवति ( ०१३३३ ) प्रयोग भी सम्मान का कारण धन को निह्न करता है। काठ्यार्य हेम ने आर्थिक जीवन के अन्तर्गत निम्न तीन बातों को सम्मिलित किया है—

- ( १ ) कृषि-यवस्था
- ( २ ) पशुपालन
- ( ३ ) व्यापार और अन्य वेशा

कृषि—

पाणिनि के समान आचार्य हेम ने कृषि की उन्नति पर पूर्ण प्रकाश डाला है। भारत प्राचीन काल से ही कृषि प्रधान देश रहा है, अतः व्याकरण ग्रन्थों में कृषि एवं उसके अंग सम्बन्धी प्रचुर नाम आये हैं।

खेत—आचार्य हेम ने 'क्षेत्र धान्यादीनामुत्पत्त्याधारभूमि' (७।१।७८) अर्थात् ज़िममें धान्य या फसले उत्पन्न हों, उसे क्षेत्र—खेत कहा है। कृषि योग्य भूमि अलग अलग खेतों में बँटी रहती थी और मूग, प्रियंगु, मीहि, कोदों आदि के खेत पृथक् पृथक् नामों से अभिहित किये जाते थे। इक्षूणा क्षेत्रम् इक्षुशाकटम्, मूलशाकटकम्, शाकशाकिनम् ( ७।१।७८ ) कुल-त्थाना क्षेत्रं कौलथीन, मौद्गीनम्, प्रेयङ्गवीणम्, नैजारीणम्, कौद्रुनीणम् ( ७।१।७९ ) त्रीहे क्षेत्रं त्रेहेयम्, शालेयम् ( ७।१।८० ), यजाना क्षेत्रं यज ( ७।१।८१ ) अरुणा क्षेत्रमणव्यम्, माण्यम् ( ७।१।८२ ), उमाना क्षेत्रम् उम्यम्, भङ्गयम् तिल्यम् ( ८।१।८३ ) क उल्लेखों से स्पष्ट है कि धान्य के नाम पर खेतों का नामकरण किया जाता था।

'कैदारण्यश्च' ( ६।२।१३ ) में कैदार उस खेत को कहा गया है, जहाँ हरी फसल बोयी गयी हो और ज़िममें पानी की सिंचाई होती हो। अर्थशास्त्र में कैदार शब्द आर्द्र खेतों के लिए प्रयुक्त हुआ है, ज़िम खेत में हरी फसल खड़ी रहती थी, उसे कैदार कहा जाता था। हेम ने हरे वन को भी कैदारवन कहा है। हरी फसल से लहलहाते खेतों का समूह कैदार्य या कैदारक कहा जाता था। खेती योग्य भूमि को कर्प कहा है। ज़िम भूमि में खेती संभव नहीं थी, उस भूमि को ( ऊपर क्षेत्रम् ७।२।२६ ) कहा है। ऊपर रेहाड या नोनी धरती को कहा गया है। जिस भूमि में खेती होती थी या जो खेती के योग्य बनायी जा सकती थी, उसे 'कृषिमत्क्षेत्रम्' ( ७।२।२७ ) के नाम से अभिहित किया गया है।

खेतों की नाप तोरु—खेत नाप तोरु के आधार पर एक दूसरे से बँटे हुए थे। 'काण्डात्प्रमा-ये' ( २।४।२४ )—द्वे काण्डे प्रमाणमस्या द्विकाण्डा त्रिकाण्डा क्षेत्रमिति। इसकी ग्लिष्णी में लिखा है—'यत्राभ्या काण्डाभ्या क्षेत्रपरिच्छिन्ना ते काण्डेऽपि क्षेत्रसन्तिते' ( २।४।२४ ) अर्थात् द्विकाण्ड और त्रिकाण्ड खेतों के क्षेत्रफल को सूचित करते हैं। एक

काण्ड की लम्बाई सोलह हाथ प्रमाण होती है तथा एक काण्ड खेत २४ × २४ फुट होता है और द्विकाण्ड ४८ × २४ वर्ग फुट, त्रिकाण्ड ७२ × २४ वर्ग फुट प्रमाण होता है ।

जोतना या कर्ष—जुताई के लिए कृष धातु थी । जुताई करने या भूमि कमाने में बहुत श्रम करना पड़ता था । दो बार की जोत के लिए द्विनीयाकरोति (द्वितीय बार करोति क्षेत्र द्वितीयाकरोति—द्वितीय बार कृपतीत्यर्थ ७।२।१३५) और तीन बार जोत के लिए तृतीया करोति (तृतीय बार कृपतीत्यर्थ (७।२।१३५) शब्द प्रचलित थे । आजकल भी दूसरी जोत, तीसरी जोत शब्द प्रचलित हैं । खेत की गहरी जुताई के लिए शम्वाकरोति श्रेत्र आया है । इसका अर्थ बतलाते हुए लिखा है—अनु लोमकृष्ट पुनस्तिर्यक् कृपतीत्यर्थः । अन्ये त्वाहु शम्बसाधन कृपिरिति शम्बेन कृपतीत्यर्थ । एके तु शम्वाकरोति कुलिबमित्युदाहरन्ति । लोहक वा वर्धकुण्डलिक्वा वा शबम् तत् कुलिबस्य करोतीत्यर्थ (७।२।१३५) अर्थात् हल को उबड़ा तिरछा चलाकर खेत को गहराई के साथ जोता जाता था । जिस हल में लोहे का बड़ा फाल लगा रहता था, उस हल को शम्ब कहा जाता था । इस हल के द्वारा गहरी जुताई किये जाने को शम्वाकरोति कहा गया है । आचार्य ने इस सूत्र की टिप्पणी में शम्ब एक प्रकार के हल को माना है, इस हल की तीन विशेषताएँ होती थीं—

( १ ) लम्बा फाल लगा रहता था ।

( २ ) फाल की बनावट इस प्रकार की होती थी, जिससे गूँट चौड़ा और गहरा होता था ।

( ३ ) यह हल साधारण परिमाण से बड़ा होता था ।

हल—हल का उल्लेख आचार्य हेम ने कई सूत्रों और उदाहरणों में किया है । 'हलस्य कर्षे' ७।१।२६, हलसीरादिकण ७।१।६, ६।३।१६१ सूत्रों में हल्य, हल, हालिक, मीरिक् आदि शब्दों का प्रयोग आया है । हलस्य कर्षो हल्या हल्यो वा, द्वयोर्द्विहत्या, त्रिहल्या, परमहत्या, उत्तमहल्या, उहुहत्या । यत्र हल कृष्ट स मार्ग कर्ष, कृत्यते इति कर्ष क्षेत्रमित्यन्ये (७।१।२६)—अर्थात् एक हल की जोत के लिए पर्याप्त भूमि हल्य कहलानी थी, इसका प्रमाण १३ एकड़ भूमि है । द्विहल्य का २३ एकड़ और त्रिहल्य का प्रमाण चार एकड़ भूमि है । एक परिवार के लिए द्विहल्या भूमि पर्याप्त ममत्ती जानी थी । बड़े परिवार परमहल्या भूमि रखने थे । अच्छी भूमि को उत्तमहल्या कहा जाता था ।

हल दो प्रकार के थे—बड़ा और छोटा । बड़ा हल गना देने और खेत को गहरा जोतने के काम में लाया जाता था । लम्बी लगी रहनेवाली लकड़ी को निम्ने जुआ लगाया जाता था, उसे हलापा, बीच के भाग को पोत्र (५।२।८७) और अग्रभाग को हाल, सैर (हलस्य हाल, सीरस्य सैर ६।२।३०) कहा है । हाल लाहे का बना फाल है, इसे अयोविकार कहा है ।

हल में जोते जानेवाले बैलों को हात्तिक या सैरिक (हल वहतीति हालिक सैरिक ७।१।६) कहा गया है । इन्हें योत्र—जोत से जुष्ट में बसा जाता था (५।२।८७) ।

फिस्तान या कृषक—कृषक तीन प्रकार के होते थे—

( १ ) अहलि या अहल ( ७।३।३६ )

( २ ) सुहलि या सुहल        "        "

( ३ ) दुहल या दुहलि        "        "

जिन कृषकों के पास अच्छा हल होता था, वे सुहल-सुहलि कहलाते थे, जिनके पास निजो हल नहीं होता था, वे अहल-अहलि अथवा अपहल कहलाते थे और जिनका हल पुराना, घिमा तथा कम चौड़ाई वाले पडौथे का होता था, उन्हें दुहल-दुहलि कहा जाता था ।

कृषि के विभिन्न अवयवों के लिए निम्नांकित शब्दों का प्रयोग हुआ है ।

पोना—करह धान्यवापनम् ( ५।८९ उ० ), वपन तथा वप घातु स प्यत् प्राचय करके वाप्य—बोने योग्य खेत के लिए आया है । आचार्य हेम ने—वीणाकरोति क्षेत्रम् । उप्त पश्चात् धीजै सह कृपतीत्यर्थ । अर्थात्—खेत में चीन छोट कर हल चलाने को वीणाकरोति क्षेत्र कहा ( ७।२।१३६ ) है ।

लपनी—जो खेत बटाई के लिए तैयार रहता था, वह लाप्य कहलाता था । कटनी को लून और काटनेवाले को लूनक कहा है ( ७।३।२६ ) । लवनी दात्र या लावित्र से की जाती ( ५।२।८७ ) थी ।

मगनी ( निष्पाव ६।२।५८ )—फमल काटकर खलिहान में ले जात थे, खलिहान के लिए चुना हुआ खेत खल्य ( ६।२।२५ ) कहा जाता था । खलिहानों के समूह को खल्या या खलिनी ( ६।२।३७ ) कहा गया है । खलिहानों को ऐसे स्थान पर रखा जाता था, जहाँ अग्नि का उपद्रव न हो और अग्नि में अन्न की रक्षा की जा सक ( ७।१।३७ ) ।

निम्नार—मगनी के पश्चात् निकार बरसाई की जाती थी ( ५।२।८७ ) ।

खलेबुस—खलिहान में भूसे के ढेर को खलेबुस कहा है ।

यवबुसम्—खलिहान में जौ के भूसे का ढेर ( ६।३।११४ ) ।

## फसलें—

मुख्यतः फसलें दो प्रकार की थीं—कृष्टपच्या खेती से उत्पन्न और अकृष्ट-पच्या—जो स्वयं ही उत्पन्न हो, जैसे नीवार आदि जंगली घान्य । बोने और पकने के समय के अनुसार फसलों का नाम पड़ता था । बोने के अनुसार चार प्रकार की फसलों का आचार्य हेम ने उल्लेख किया है । ( १ ) शारदाशा शारदा ( ६।३।११८ )—शरद ऋतु में बोयी गयी शारदा, ( २ ) हेमन्ते हेमन्तः ( ६।३।११८ )—हेमन्त में बोयी गयी हेमन्त, ( ३ ) शीष्म में बोयी गयी शीष्म या शीष्मरु और ( ४ ) आश्वयुज्यां कौमुद्यामुना आश्व-युजकः ( ६।३।११८ ) अर्थात् आश्विन में बोयी गयी आश्वयुजक कहलाती थी । इसी प्रकार अगहन में पकनेवाली आप्रहायगिक ( ६।३।११६ ) वसन्त में पकनेवाली वासन्त्य, शरदि पच्यन्ते शारदा ( ६।३।११७ ) शरद में पकनेवाली शारदा और शिशिर में पकनेवाली शैशिरा ( ६।३।११७ ) कहलाती थी ।

## वृक्ष और औषधियाँ—

इस सन्दर्भ में ब्रह्म, न्यग्रोध, अश्वत्थ, हंगुदी, वेणु, बृहती, सगु, सङ्गु, मकतु ( ६।२।५९ ) ; जम्बु ( ६।२।६० ), घव, खदिर, पलाश ( ७।१।८० ), हरीतकी, पिप्पली, कोशातकी, श्वेतपाकी, अर्जुनपाकी, कर्कटी, नखरजनी, शष्कण्डी, दण्डी, दोढी, दाढी, पच्या, अगिलका, चिञ्जा, धुआ, चांदा, एला, शाल, कण्टकारिक, शोफालिक ( ६।२।५७ ), नारी, भूलाटी, कण्टारी, तर्करी, गुडुची, वाकुची, नाची, माची, कुसुम्भी, मेपी, मालकी, मृद्धी, बर्बरी, पाण्डी, लोहाण्डी, मकरी, मण्डली, यूपी, सूपी, सूर्पी, मूर्डी, अरीहनी, ओकणी, अलन्दी, सलन्दी, देही, अलजी, गंडजी, शाट्की, उपरतसी, सच्छेदी ( २।१।१९ ) ; देवदार, मद्रदार, विदारी, शिरीष, दूरिका, मिरिका, करीर, चीरिका, कमरि, खीर ( २।३।६७ ), खदिर, आम्र, पीपुष एवं दारु ( २।३।६६ ) के नाम आये हैं । औषधियों में कुछ औषधियों के गुणों का भी उल्लेख किया है । अलन्दी को सन्निपातहन्त्री कहा गया है ।

पुष्पों में मल्लिका, यूथिका, नवमल्लिका, मालती, पाटल, कुन्द, मिन्दुवार, कदम्ब, करवीर, अशोकपुष्प, चम्पक, कर्णिकार एवं कोविदार ( ६।२।५७ ) के नाम आये हैं । औषधियों, पुष्प और वृक्ष भी आय के माधन थे, अतः इनका भी आर्थिक जीवन के माध सम्यन्ध है ।

## व्यापार-वाणिज्य—

हेम के समय में वाणिज्य-व्यापार बहुत ही विकसित और उन्नतित

था। नत इन्होंने व्यापार वाणिज्य विषयक पुराने और नये शब्दों का साधुत्व प्रदर्शित किया है। 'मूल्यै क्रीते' ६।४।१५० और 'सुवर्णकार्पाणत्' ६।४।१४३ सूत्रों से अवगत होता है कि सोने, चाँदी और ताँबे के सिक्के व्यवहार में लाये जाते थे। बाजार में माल खरीदने और बेचने का कार्य सिक्कों के द्वारा ही होता था। "द्वाभ्या क्रीत द्विकम्, त्रिकम्, पञ्चकम्, यात्रकम्, ताम्रकम्, कतिभि क्रातन् कतिकम्, त्रिंशत्कम्, त्रिंशतिकम्, चत्वारिंशत्कम्, पञ्चाशत्कम् साप्ततिकम्, आशीतिकम् नायतिकम्, पाष्टिकम्, ( ६।४।१३० ) शतेन क्रीतम् शत्यम्, शतिकम् ( ६।४।१३१ ) सहस्रेण क्रीत साहस्र ( ६।४।१३४ ), द्वाभ्या सुवर्णाभ्या क्रात द्विसुवर्णम्, अव्यर्धसुवर्णम्" ( ६।४।१४३ ) से स्पष्ट है कि वस्तुओं की कीमत दो तीन कार्पाण से लेकर सहस्र कार्पाण तक थी। आधा कार्पाण और डेढ़ कार्पाण का भी व्यवहार होता था। हेम ने निम्न लिखित सिक्कों का उल्लेख किया है।

सुवर्ण ( ६।४।१४३ )—प्राचीन भारत में सुवर्ण नाम का एक सिक्का प्रचलित था। हम न 'द्वाभ्या सुवर्णाभ्या क्रीत द्विसुवर्णम्, अव्यर्धसुवर्णम्' ( ६।४।१४३ ) में दो सुवर्णों से खरीदी हुई वस्तु को द्विसुवर्ण कहा है। डा० भाण्डारकर का मत है कि जनगढ़ हिरण्य की दुण्ड सञ्जा थी और उसी के जब सिक्के ढल जाते थे, तब वे सुवर्ण कहलाते थे। कौटिल्य के अनुसार सुवर्ण सिक्के का वजन १५० ग्रेन होता था।

कार्पाण ( ६।४।१३३ )—यह भारतवर्ष का सबसे प्रसिद्ध चाँदी का सिक्का है। इसका वजन ३२ रत्ती होता था। आहत रूपमस्यासित रूप्य कार्पाण। निघातिकाताडनाहीनारादिषु यद्रूपमुपपद्यते तद्राहत रूप्यम् ( ७।२।५४ )। सोने और ताँबे के भा कार्पाण होते थे, इनकी तोल एक कर्प—८० रत्ती रहती थी। आचार्य हम का मत है कि कार्पाण से प्रत्येक उपयोग योग्य वस्तु खरीदी जा सकती है। यथा—कार्पाणमपि त्रिनिधु ज्यमान विशिष्टेष्टमाल्यानुपभोगफल भवति ( ७।१।११५ )। सौ कार्पाणों से खरीदी हुई वस्तु को शत्य और शतिक ( ६।४।१३१ ) और हजार की कीमत वाली वस्तु को साहस्र कहा है। 'हाटक कार्पाणम्' ( ६।२।४२ ) से स्पष्ट है कि यह सोने का भी होता था।

निक ( ६।४।१४४ )—यह वैदिक काल से चला आया हुआ सोने का सिक्का है। आचार्य हेम ने मोल लिया न्यर्ष में द्वाभ्या निकभ्या क्रीतम्

वस्तु—द्विनिष्कम्, त्रिनिष्कम्, बहुनिष्कम् ( ६।४।१४४ ) रूप सिद्ध किये हैं। अर्थात् दो निष्क में मोल ली हुई वस्तु को द्विनिष्क, तीन निष्क से मोल ली हुई वस्तु को त्रिनिष्क और बहुत निष्कों से मोल ली हुई वस्तु को बहु-निष्क कहा है। हेम ने 'हाटकस्य विकारः, हाटको निष्क' ( ६।२।४२ ) द्वारा निष्क सोने का सिद्धा होता था, इस बात की सूचना दी है।

पण—यह कार्पाण का छोटा नाम है। यह ३२ रत्ती चाँदी के वजन का होता था। हेम ने 'द्वाभ्यां पणाभ्यां क्रीत' द्विपण्यम्, त्रिपण्यम्—अर्थात् दो पण से मोल ली हुई वस्तु द्विपण्य और तीन पण से मोल ली हुई वस्तु त्रिपण्य कही जाती थी।

पाद—यह कार्पाण के चौथाई मान का होता था। इसका वजन भी आठ रत्ती बताया गया है। दो पाद से मोल ली हुई वस्तु द्विपाद्यम् और तीन पाद से मोल ली हुई वस्तु त्रिपाद्यम् कहलाती थी। हेम ने लिखा है—मापपणसाहचर्यात् पादः परिमाणं गृह्यते, न प्राण्यङ्गम् ( ६।४।१४८ ) अर्थात् माप और पण के बीच में पाद शब्द के आने से यह परिमाण सूचक है, प्राणि-अङ्ग सूचक नहीं।

माप ( ६।४।१४८ )—यह चाँदी और तौबे का सिद्धा था। चाँदी का रौप्य माप दो रत्ती का और तौबे का पाँच रत्ती का होता था। द्विमाप्यम्, त्रिमाप्यम्, अर्धमाप्यम् से स्पष्ट है कि वस्तुओं का मोल दो माप, तीन माप और षेड माप भी होता था।

काकणी ( ६।४।१४९ )—यह माप का चौथाई होता था। अर्धशास्त्र में तौबे के सिद्धों में इसका उल्लेख ( २।१९ ) मिलता है। द्विकाकणीकम्, त्रिकाकणीकम्, अर्धकाकणीकम् से स्पष्ट है कि ये नाम दो, तीन और षेड काकणी से खरीदी गयी वस्तु के हैं। हेम ने काकणी के व्यवहार की चर्चा की है।

शाण—यह भी एक सिद्धा है। आचार्य हेम ने ६।४।१४६ और ६।४।१४७ इन दोनों सूत्रों में इस मिक्के का उल्लेख किया है। द्विशाणम्—द्वाभ्यां शाणाभ्यां क्रीत द्विशाणम्, त्रिशाणम्, पञ्चशाणम्, पञ्चशाण्यम् आदि प्रयोग इस मिक्के के प्रचलन पर प्रकाश डालते हैं। यह निश्चिन परिमाण और मूह्यवाला सिद्धा था। महाभारत में बताया है—अष्टौ शाणाः शतमानं यन्ति ( आरण्यक पर्व १३।४।१४ )—सौ रत्तीवाले शतमान में आठ शाण होते थे। अतएव पूरे शाण की तोल १२३ रत्ती होती थी। चरक में शाण का २० रत्ती प्रमाण कहा है। आचार्य हेम ने शाण का वजन कर्प का चतुर्थ भाग 'शाण. कर्पचतुर्भाग.' ( ३।२।१९ ) माना है।



कंस—यह भी सिद्धा है। द्वाभ्या कंसाभ्या द्विकस्या वा क्रीतम् द्विकसम्, त्रिकंसम् ( ६।४।१४१ ) से स्पष्ट है कि यह कोई तौबे का सिद्धा था। हमारा अनुमान है कि यह दो पैसे के बराबर का सिद्धा था।

विंशतिक—हेम ने बताया है कि 'विंशतिर्मानमस्य विंशतिकम् तेन क्रीतम्—त्रैशतिकम्—अर्थात् जिस सिद्धे का मान बीस हो उसको विंशतिकम् तथा उस विंशतिक से खरीदी वस्तु त्रैशतिक कही जायगी। यह ऐसा कार्पापण है, जिसमें २० माप होते थे, इसलिए यह सिद्धा विंशतिक कहलाता था।'

वसन—वसनेन क्रीतम्—वासनम्—वसन से खरीदी हुई वस्तु वासन कहलाती थी। आचार्य हेम ने राजसी वस्त्र को वसन कहा है ( ५।३।१२५ )। दूसरी परिभाषा में कुसुमयोगान्नयो वस्त्र—( २।४।३५ )—पुष्पों से सुवासित वस्त्र को वसन कहा गया है। इस प्रकार के वस्त्र से खरीदी हुई वस्तु वासन कही जाती थी। अथवा वसन नाम का कोई सिद्धा भी हो सकता है, जिसका प्रयोग प्राचीन समय में होता था।

#### व्यवहार और क्रय विक्रय—

क्रय विक्रय के लिए व्यवहार शब्द का प्रयोग हुआ ( ६।४।१५८ ) है। यह यात आयात सम्बन्धी व्यापक व्यापार के लिए प्रयुक्त होता था ( क्रय-विक्रयेण जीवति क्रय विक्रयिक ६।४।१६ )। और स्थानीय क्रय विक्रय के लिए पण शब्द का व्यवहार होता था। आपण-दुकान या बाजार में क्रय-विक्रय के लिए प्रदर्शित वस्तुएँ पण्य कहलाती थीं। आचार्य हेम ने पण्य की व्याख्या करते हुए लिखा है—पण्य विक्रेय भवति। आपूपाः पण्यमस्य आपूपिकः ( ६।४।५४ ), जो क्रय विक्रय से अपनी आजीविका चलाता था, वह व्यापारी कहलाता था। छोटे व्यापारी किशर, तगर, उशीर, हरिद्रा, हरिद्रपर्णी, गुग्गुल, नलद ( ६।४।५५ ) शलाह ( ६।४।५६ ) को बाजार में बेचते थे और बड़े व्यापारी इन पदार्थों को बाहर से मगाकर थोक रूप में बेचते और खरीदते थे। थोक व्यापारी सामान को एक जगह से दूसरी जगह ले जाकर बेचते थे।

आचार्य हेम ने बड़े व्यापारी के लिए द्रव्यक शब्द का प्रयोग किया है और इसकी व्याख्या करते हुए लिखा है—द्रव्यं हरति, वहति, भावहति द्रव्यक ( ६।४।१६७ )—जो पूजा लगाकर सामान ले जाता हो, लाता हो और अपने माल की स्वयं देखभाल करता हो उसे द्रव्यक कहा है। दूसरे व्यापारी वस्त्रिक थे। वस्त्र की व्याख्या में बताया है—'वस्त्रो नियतकालक्य-मूल्यम्' ( ६।४।१६८ ) अर्थात् निश्चित समय के क्रय मूल्य को वस्त्र कहते हैं,

जो इस प्रकार का व्यापारी हो, उसे वस्त्रिक कहा जायगा। तात्पर्य यह है कि हम कोटि के व्यापारी वायदा—सट्टा का कार्य करते थे। ये रोकड़-पूँजा व्यापार में नहीं लगाते थे, बल्कि जवान से ही इनका कारोबार चलता था।

प्राचीन भारत में आर्थिक जीवन की तीन मुख्य संस्थाएँ थीं। शिल्पियों के संगठन को श्रेणी, व्यापारियों के संगठन को निगम और माल लादकर वाणिज्य करनेवाले व्यापारियों को सार्थवाह कहा जाता था।

### व्यापारियों के भेद—

हेम के 'प्रस्तारसंस्थानतदन्तकठिनान्तेभ्यो व्यवहरति' ६।४।७९ "प्रस्तारे व्यवहरतीति प्रास्तारिकः, सांस्थानिकः, कांस्यप्रस्तारिकः, लौहप्रस्तारिकः गौसंस्थानिकः आश्वसंस्थानिकः, कठिनान्त—चांशकठिनिकः वार्धकठिनिकः" अर्थात् वस्तुओं का व्यापार करनेवाले व्यापारी तीन प्रकार के थे। जो व्यापारी खनिज पदार्थ—लोहा, कांसा, चाँदी, सोना आदि का व्यापार करते थे, वे प्रास्तारिक कहलाते थे, और जो पशुओं के व्यापारी थे, वे सांस्थानिक कहे जाते थे। इस प्रकार के व्यापारी गाय, घोड़ा, हाथी, ऊँट, गधा आदि पशुओं के यातायात का व्यापार करते थे। तीसरे प्रकार के व्यापारी बांस, चमड़ा, लाख आदि का व्यापार करते थे। माल के खरीदने बेचने का माध्यम सिद्धे थे।

### साई—

बाजार में किसी चीज की बिक्री पक्की करने के हेतु साईं दी जाती थी, जिसे सत्याकरोति कहा है। 'सत्याकरोति वणिग् भाण्डम्। कार्पापणादिदानेन मयावरयमेवैतत् क्रेतव्यमिति विक्रेतारं प्रत्याययति' (७।२।१४३) साईं का उद्देश्य ग्राहक की ओर से सौदा पक्का करना था और बेचनेवाले को पूरा विश्वास दिला देना था कि ग्राहक माल अग्रय खरीद लेगा।

### लाभ—

लाभ और मूल की व्याख्या करते हुए बताया है—'पटादीनामुदानां मूल्यातिरिक्तं प्राप्तं द्रव्यं लाभः' (६।४।१५८)—बच्चादि पदार्थों के निर्माण में जो लागत लगती है, वह उनका मूल्य कहलाती है। इस मूल्य से जो अतिरिक्त द्रव्य प्राप्त होता है, उसे लाभ कहते हैं।

### शुल्क—

व्यापारियों के माल पर चुंगी लगती थी, जिसे चुंगी कहते थे। जितना शुल्क माल पर लगता था, उसीके आधार पर व्यवहार में माल का नाम पद

जाता था ( ६।१।१५८ ) । चुगीघर को शुल्कशाला और वहाँ से प्राप्त होने-  
वाली आय को शौल्कशालिक कहा है ( शुल्कशालाया अवक्रय -शौल्क-  
शालिक ६।१।५३ ) । शुल्कशाला राज्य का नामदना का प्रमुख साधन थी ।  
शुल्कशाला—चुगी घर में नियुक्त अधिकारी को भी शौल्कशालिक (६।१।७४)  
कहा है । हेम की 'वाणिजा रक्षानिर्देशो राजभाग शुल्कम्' ( ६।१।१५८ )  
परिभाषा से इस बात पर भी प्रकाश पड़ना है कि यह शुल्क रचा क लिए  
सरकार को दिया जाता था और सरकार व्यापारियों की रक्षा का प्रयत्न  
करती थी ।

चुग्गी सामान की तायदाद के अनुसार लगती थी और यह कई बार दी  
जाती थी । हेम के 'द्वितीयमस्मिन्नस्मै वा वृद्धिरायो लाभ उपद्रा शुल्क  
वा देय द्वितीयम्, तृतीयम्, पञ्चमिकम्, षष्ठिकम्' ( ६।१।१५९ ) प्रयोग  
इस बात के समर्थक है कि प्रत्येक नगर में चुग्गी लगती थी । इसी प्रकार  
लाभ भी एकधिक बार लिया जाता था । निम्न छोटे माल पर आधा रुपया  
चुग्गी लगता थी उसे चुग्गी की भाषा में नार्थिक या मागिक ( भागशन्दोऽपि  
रूपकार्षस्य वाचक —६।१।१६० ) कहा है ।

### वाणिज्य पथ—

एक नगर से दूसरे नगर के जाने आने के लिए पथ—सड़कें थीं, जिनसे  
व्यापारियों को आना जाना पड़ता था। आचार्य हेम ने "शङ्कुत्तरकान्तार-  
राजवारिस्थलजङ्गलादेस्तेनाहृते च" ६।१।९०—शङ्कुपथेनाहृतो याति वा  
शाङ्कुपथिकः, औत्तरपथिकः, कान्तारपथिकः, राजपथिकः, वारिपथिकः, स्थाल  
पथिकः, जाङ्गलपथिकः ।

शङ्कुपथ—पहाड़ी मार्ग है । जहाँ घाँस में चट्टानें आ जाती थीं, वहाँ शङ्कु  
या लोहे की कील चट्टानों में ठोककर बडना पड़ता था । इस प्रकार कठिन पथ  
को शङ्कुपथ कहा है ।

उत्तरपथ—यह बहुत ही प्रसिद्ध व्यापार का मार्ग रहा है । यह  
रानगृह से गान्धार तक जाता था । दक्षिणापथ श्रावस्ती से प्रतिष्ठान  
तक जाता था । उत्तरापथ से यात्रा करनेवालों को औत्तरपथिक-उत्तरपथेना  
हृतो याति वा ( ६।१।९० ) कहा है । इस मार्ग के दो खण्ड थे । एक तो  
बंबु से काश्यपीय सागर तक, जो ब्लैकसी होकर यूरोप तक चला जाता था ।  
दूसरा गन्धार की रानधानी पुकलावती से चलकर तक्षशिला होता हुआ  
मिन्धु, शुतद्रि और यमुना पार करके हस्तिनापुर और कान्यकुब्ज प्रयाग को  
मिलाता हुआ पाटलिपुत्र एवं तात्रलिप्ति तक चला जाता था । इस मार्ग पर

यात्रियों के टहरने के लिए निपचाएँ, कुएँ और छायादार वृक्ष लगे हुए थे। सर्वत्र एक-एक कोस पर सूचना देने वाले चिह्न बने थे। इसी मार्ग का बीच का टुकड़ा तक्षशिला, पुण्डलावती से कापिश्री होता हुआ बाह्यिक तक जाता था और वहाँ पूर्व में रम्बोज की ओर से आते हुए चीन के कौशिय पर्यो से मिलता था।

कान्तारपथ और जांगलपथ—शैलाम्बी से अवन्ति होकर दक्षिण में प्रतिष्ठान और पश्चिम में भरकच्छ को मिलानेवाला विन्घ्याटवी या विन्घ्य के बड़े जङ्गल का मार्ग कान्तार पथ या जांगलपथ के नाम से प्रसिद्ध था।

#### स्थलपथ—

यह मार्ग दक्षिण भारत के पाण्ड्य देश से पूर्वाघाट और दक्षिणकोशल होकर आनेवाला मार्ग है। भारत से ईरान की ओर जानेवाले खुरकी रास्ते को भी स्थलपथ कहा है। आचार्य हेम ने 'स्थलादेर्मधुकरमरिचेषु' ६।४।९१—'स्थलपथेनाहृतं मधुकं मरिचं वा' अर्थात् स्थल पथ से मधुक—मुलहरी और मिचं लायी जाती थी।

#### अजपथ—

जिस मार्ग में केवल एक बकरी चलने की गुंजाइश हो तो उसे अजपथ कहते हैं। सम्भवतः यह पहाड़ी मार्ग है, जिस पर बकरी और भेड़ों के ऊपर थैलों में माल लादकर ले जाने थे।

#### वारिपथ—

बंदु से काग्दपीय सागर तक का मार्ग वारिपथ कहलाता था। इसी रास्ते भारतीय माल नदियों के जल द्वारा पश्चिमी देशों में पहुँचाया जाता था।

#### ऋचदान—

धनिक के लिए आचार्य हेम ने द्रव्यवान्, माल्यवान्, धनवान् (७।२।६), आश्व (३६४ उ०), स्वापतये (१।४।२८), हिरण्यवान् (७।१।१०९) शब्दों का उल्लेख किया है। आश्व के अन्तर्गत द्रव्य—धनिक थे, जिन्हें मरकार द्वारा हाथा पर सवारी करने का अधिकार प्राप्त था। (६।४।१०८) ये नैगन या महाजन कहे जाते थे। ये धनिक लम्बपति, करोदपति होते थे। ये लोग ऋण देने थे, इसलिए ऋणदाता को उत्तमर्ग और ऋण लेनेवाले को अधमर्ग कहा जाता था। श्यात्र को वृद्धि कहा है। 'अधमर्गेनोत्तमर्गाय गृहीत्वधनातिरिक्तं वृद्धिः' (६।४।१५८) अर्थात् कर्ज लेनेवाला महाजन को जो मूलधन के अतिरिक्त श्यात्र देता है, उसे वृद्धि कहते हैं। कहे श्यात्र को कुमीद

(कुमीद्र वृद्धिस्तदर्थं द्रव्यमपि कुमीद्रम्, तद्गृह्णाति कुमीद्रिकं ६।१।२५) कहा है। अत्र्येगृह्णाति गद्ये ६।१।३४ सूत्र में अन्याय से ग्रहण करने को गद्य कहा है। अन्य दस्य प्रभूत गृह्णन्नपन्यायकारी निन्द्यते ( ६।१।३४ ) अर्थात् थोड़ा घन देकर जो अधिक बसूल करता था, वह निन्दा का पात्र होता था। 'दशैकादशादिकञ्च' ६।१।३६—दशभिरेकादश दशकादशा। तान् गृह्णाति दशैकादशिकं। अर्थात् दस रूपन देकर ग्यारह रूपये बसूल किये जाने को दशैकादशिक व्याच कहा है। इस दस प्रतिशत व्याच को गृहित माना गया है। आचार्य हेम ने 'द्विगुण गृह्णाति—द्वैगुणिक, त्रैगुणिक, चतुर्षी वृद्धि गृह्णाति वार्युषिक' ( ६।१।३४ ) अर्थात् दुगुना, तिगुना व्याच कमाने वालों को निन्दा का पात्र कहा है।

व्याच की उचित दर आधा कार्पाण प्रतिमास की वृद्धि समझी जाती थी, यह दर छः प्रतिशत होती थी। ऐसे ऋण को अधिक, भागिक ( ६।१।१६० ) कहते थे। हेम ने सात, आठ, नौ और दस व्याचवाले ऋणों का भी उल्लेख किया है। यह ऋण किस्तों में चुकाया जाता था। सात किस्तों में चुकाया जानेवाला सप्तक, आठ किस्तों का अष्टक और नौ किस्तों का नवम कहलाता था ( ६।१। १५८, ६।१।३५, ६।१।३७ )। तिनने समय में ऋण चुकाया जाता था, उसके अनुसार ऋण का नाम पड़ता था। 'कालादेय ऋणो' ६।३।११३ सूत्र में समय विशेष पर चुकाये जानेवाले ऋण का कथन है। महीने में चुकाये जानेवाले ऋण को मासिक, वर्ष में चुकाये जानेवाले को वार्षिक और छः महीने में चुकाये जानेवाले को भावरुमभक्त या पाण्मासिक कहते थे ( ६।१।११५ )।

प्रिरोपहप से चुकाये जानेवाले ऋण—

यववुसकम्—यस्मिन् काले ययाना वुस भवति स कालो यववुसन् तत्र देयमृण यववुसकम् ( ६।३।११४ )—जब जौ की फसल पककर काट ली जाती थी और खलिहान में जौ निकालकर नूसा का ढेर कर देते थे, उस समय पर चुकाये जानेवाले ऋण को यववुसकम् कहा गया है। यह ऋण जौ और भूसा बेचकर चुकाया जाता था। यह वसन्त ऋतु का समय है और इस समय में होनेवाली फसलें वामन्तिक कहलाती हैं।

कलापकम्—यस्मिन् काले मयूरा केदारा इक्षव कलापिनो भवन्ति स कालस्तत्माहृदर्याक्लापी तत्र देयमृण कलापकम् ( ६।३। ११४ )—मोरों के कूकने, केशर वृक्षों के फलने और गधे के बड़े होने के काल को कलापी कहा गया है। यह समय आश्विन कार्तिक का है। इस समय गध्या या अन्य उत्पन्न होनेवाली फसलों को बेचकर यह ऋण चुकाया जाता था।

अश्वयुक्—‘यस्मिन् काले अश्वधाः फलन्ति न कालोऽश्वत्य-  
प्लसहचरितोऽश्वत्यः तत्र देवमृणमश्वयुक्’ (१।३।११४)—त्रिस महीने  
में पीपल के पेड़ों पर पीपल फल लगे, उस महीने को अश्वत्य कहते हैं और  
इस महीने में चुकाये जानेवाले ऋण को अश्वत्यक ऋण कहा जाता है। यह  
ऋण ध्रावण-भादो में तरकारियाँ या मूँग आदि धान्य बेचकर चुकाया जाता  
था। ध्रावण भादो में मूँग और उदद की फसल प्रायः आ जाती है। चावरा  
की फसल भी भादो में पक जाती है, यह ऋण इसी फसल से चुकाया  
जाता है।

उमाव्यासकम्—‘उमा व्यस्यन्ते विक्षिप्यन्ते यस्मिन् स काल उमा-  
व्यासस्तत्र देवमृणमुमाव्यासकम्’ (१।३।११४)—तीसी त्रिस महीने में  
छुँटी जाय, तीसी का बीज त्रिस महीने में बोया जाय, वह महीना उमाव्यास  
कहलाता है और इस महीने में चुकाया जानेवाला ऋण उमाव्यासक कहा  
जाता है। यह कार्तिक-अगहन के महीने हैं, इस महीने में खरीफ की फसल  
घर में आ जाती है और उससे ऋण भदा किया जाता है।

ऐपमकम्—ऐपमेऽस्मिन् संवत्सरे देवमृणमेपमकम् (१।३।११४)—  
इस वर्तमान वर्ष में चुकाया जानेवाला ऋण ऐपमकम् कहा जाता है।  
इसी वर्ष में ऋण भदा कर दिया जायगा, इस वार्त् पर लिया गया ऋण  
ऐपमक कहलायगा।

ग्रीष्मकम्—ग्रीष्मे देवमृण ग्रीष्मकम् (१।३।११५)—ग्रीष्म ऋतु—  
वैशाख-ज्येष्ठ में रबी की फसल से चुकाया जानेवाला ऋण ग्रीष्मकम् कहा  
गया है। प्रायः आत्रकल भी किमान इसी समय पर ऋण चुकाते हैं।

आप्रहायणिकम् (१।३।११६)—अगहन के महीने में चावल, ज्वार,  
चावरा, मूँग, उदद आदि अनेक धान्यों की फसल आती है। अतः इस  
महीने में ऋण का भुगतान करना सरल होता है। इस महीने में चुकाया  
जानेवाला ऋण आप्रहायणिक कहलाता था।

इस ने कात्यायन के समान ‘ऋणो प्रदशार्णवसनकम्बलवत्स-  
तरस्यार’ (१।२।७) यथा—प्रगतमृणं प्रार्णम्, दशानामृणं दशार्णम्,  
श्रुणस्यावयवतया नम्नन्थि ऋणमृणार्णम्, वमनानामृणं वमनार्णम्। एवं  
कम्बलार्णम्, वत्सरार्णम्, वत्सतरार्णम् सन्दर्भे लिया है। इसमें अग्रगत  
होता है कि दशैकादश पद्धति पर लिया गया ऋण दशार्ण, वमन—एक  
कार्पाण लिया गया ऋण वमनार्ण, कम्बल के लिये लिया जानेवाला कम्बलार्ण  
कहलाता था। यह कम्बल पाँच सेर उन का घना हुआ निश्चित नार और

तोल का होता था। नये वज्रडे क लिए लिया गया ऋण वत्सतराण कहलाता था।

उपर्युक्त ऋण सम्बन्धी विवेचन से स्पष्ट है कि वृषि, व्यापार, पशुपालन क समान ऋण देकर ध्यान से रुपये कमाना भी आर्थिक साधन क अन्नगत था।

### निमान मान प्रमाण—

व्यापार तथा उद्योग धन्धों के प्रकर्ष के लिए नाप, तोल का प्रचार होना आवश्यक है। आचार्य हम ने मान की व्याख्या करते हुए बताया है—

मानमिवत्ता सा च द्वेषा सरया परिमाण च (५।३।८१)—वपन और सरया निश्चित करने का नाम मान है और यह मान दो प्रकार का होता है—सरया और परिमाण—नाप।

कछ वस्तुएँ दूसरी वस्तुओं क बदले में भी खरीदी जाती थीं, इम प्रकार के व्यवहार को निमान कहते हैं। इम प्रकार की बदला बदली का आधार वस्तुओं का आन्तरिक मूल्य ही हाता था। हम क—‘द्वौ गुणावेपा मूल्य-भूताना यवानामुदश्विन द्वियया, उदश्वितो मूल्यम्’ (७।१।१५३)—अर्थात् चौ की अपेक्षा मट्टे का मूल्य बाधा था। एक सर चौ देने पर दो सर मट्टा प्राप्त होता था, यही मट्टे क परिवर्तन का आधार मूल्य कहलाता था। हम ने गायों के बदले में भी वस्तुओं के खरीदे जाने का निर्देश किया है। इनक ‘पञ्चभिरश्वे श्रिता पञ्चाश्वा, दशाश्व’ (२।१।२३) उदाहरणों से स्पष्ट है कि पञ्च घोड़ों क बदले में खरीदी हुई वस्तु पञ्चाश्व और दस घोड़ों क बदल में खरीदी वस्तु दशाश्व कहलाती थी।

हेम ने ‘द्वाभ्या काण्डाभ्या क्रीता द्विकाण्डा, त्रिणाण्डा शाटी’ (२।१।२४) उदाहरण लिखे हैं। दो या तीन काण्ड से खरीदा गयी साडी। शूर्प प्रमाण से ऋत वस्तु को शूर्पम् कहा है ‘द्वाभ्या शूर्पाभ्या क्रीत द्विशूर्पम्, त्रिशूर्पम्, अध्यर्घशूर्पम्’ (६।१।१४१) अर्थात् दो द्रोण प्रमाण का शूर्प एव दो शूर्प प्रमाण एक गोणी (लगभग ढाई मन वपन) होती है। दो शूर्प से खरीदी वस्तु द्विशूर्प, तान शूर्प से खरीदी वस्तु त्रिशूर्प और ढेढ़ शूर्प से खरीदी वस्तु अध्यर्घशूर्प कहलाती था। इस प्रकार पञ्चगोणि और दशगोणि प्रयोग भी प्रचलित थ।

### प्रमाण—

‘आयाममान प्रमाण तद् द्विविधम्। ऊर्ध्वमान तिर्यग्मानश्च। तत्रोर्ध्व मानात्—चानुनीप्रमाणमस्य जानुमात्रमुत्कम्, ऊरुमात्रमुत्कम्।

तिर्यग्मानात्—रज्जुमात्रं भूमिः, तन्मात्री, तावन्मात्री ( ७१११४० )  
अर्थात् लम्बाई के मान को प्रमाण कहते हैं और इसके दो भेद हैं—ऊर्ध्वमान  
तथा तिर्यग्मान । ऊर्ध्वमान द्वारा वस्तु की ऊँचाई नापी जाती है, जैसे घुटने  
भर पानी, एक पुरर पानी, हाथी हूवा पानी ( ७१११४१ ) आदि उदाहरण  
गहराई या ऊँचाई को प्रकट करते हैं । तिर्यग्मान द्वारा लम्बाई-चौड़ाई नापी  
जानी है—जैसे एक रज्जु भूमि । तिर्यग्मान सूचक निम्न शब्द है—हस्त  
( ७१११४३ )—हाथ—दो हाथ का एक गज होता है ।

दिष्टि, वितस्ति ( ७१११४३ )—१२ अंगुल प्रमाण

शम ( ७१११४३ )—शमः चतुर्विंशति अंगुलानि—२४ अंगुल प्रमाण

पुरुष ( ७१११४१ )—३ $\frac{१}{२}$  हाथ प्रमाण

हस्ति ( ७१११४१ )—७ हाथ ऊँचा, ९ हाथ लम्बा । साधारणतः

१३ $\frac{१}{२}$  फुट माप है

काण्ड ( २१४२४ )—१६ हाथ या २७ फुट लम्बा मान । मतान्तर  
से ४ गज ।

दण्ड ( ७१११५४ )—४ गज

रज्जु ( ७१११५१ )—४० गज

मान ( ६१४२६६ )

तराजू से तोल कर जिनका परिमाण जाना जाता था, वे वस्तुएँ मान  
कहलानी थीं । आचार्य हेम ने निम्न तोलों का उल्लेख किया है—

१ माप ( ६१४१४८ )—पौंच रत्ती प्रमाण ।

२ काकगी ( ६१४१४९ )—सवा रत्ती प्रमाण ।

३ दाण ( ६१४१४६ )—२० रत्ती प्रमाण ।

४ विस्त ( ६१४१४४ )—विस्त को कर्प या अक्ष का पर्याय माना जाता  
है । इसकी तोल आस्सी रत्ती होती है ।

५ लुडव ( ७१११४५ )—एक प्रस्थ—१२ $\frac{१}{२}$  तोले के बराबर ।

६ कर्प ( ७१११४५ )—दम सेर प्रमाण ।

७ पल ( ७१११४३ )—४ तोला, पलमात्रं मुवर्गम् ।

८ प्रस्थ ( ७१११४३ )—५० तोला प्रस्थमात्रो व्रीहिः ।

९ कंभ ( ६१४१४१ )—५ सेर प्रमाण ।

१० शूर्प ( ६१४१३० )—१ मन ११ सेर १६ तोला ।

११ द्रोण ( ६१४१५१ )—१० सेर—द्वैगिकम् ।

१२ खारी ( ६१४१५१ )—४ मन, खारीकम् ।



१३ गोणी ( २।४।१०३, ७।१।१२१ )—गोपयमेये, गोप्यास्तुख्यम्—गौगिकम्—२३ मन प्रमाण को गोणी होती थी ।

### भाजीविका के साधन पेशे—

हाथ से कार्य कर भाजीविका चलानेवाले व्यक्ति विभिन्न प्रकार के पेशे करते थे । आचार्य हेम ने 'हस्तेन कार्यं हस्त्यम्' ( ६।४।१०१ ) द्वारा इस प्रकार की भाजीविका करने वालों की ओर संकेत किया है । हेम ने कारि, शिल्पी ( ६।१९ उ० ) और कारु- ( ५।१।१५ ) द्वारा हाथ से काम करनेवालों को कारि और कारु कहा है । कुछ पेशेवरों के नाम नीचे दिये जाते हैं—

१ रजक ( ५।१।६५ )—वस्त्र प्रदाशन द्वारा भाजीविका सम्पन्न करनेवाला ।  
 २ नापित- ( ७।२।१४४ )—हजामत काट कर भाजीविका सम्पन्न करनेवाला ।  
 ३ कुम्भकार- ( ७।१।५५ )—मिट्टी के बर्तन बनाकर भाजीविका करनेवाला ।  
 ४ तन्तुवाय ( ७।१।५५ )—जुलाहा—वस्त्र बुनकर भाजीविका करनेवाला ।  
 आसनिकः ( ५।३।१३७ ) खनक ( ५।१।६५ )—खान खोदकर भाजीविका सम्पन्न करनेवाला ।

आनायी ( ५।३।१३५ )—जाल विद्याकर मरस्यवन्धन या हरिणवन्धन द्वारा भाजीविका सम्पन्न करनेवाला ।

घातनः ( २७२ उ० )—रगोपजीवी—रगरेज का कार्य कर भाजीविका सम्पन्न करनेवाला ।

गन्धिकः या गन्धी ( ७।२।६ )—इत्र या पुष्पों की गन्ध का कार्य करनेवाला ।

पाक्षिकः ( ६।४।३१ )—पक्षी पकड़ने अर्थात् व्याघ्र का कार्य करनेवाला ।

मायूरिकः ( ६।४।३१ )—मयूर पकड़नेवाला ।

तैत्तिरिकः ( ६।४।३१ )—तित्तिर पकड़कर बेचनेवाला ।

वाद्रिकः ( ६।४।३० )—वदराण्युद्धति उच्चिनोति—वैर आदि फल पकड़ कर बेचनेवाला ।

नैवारिकः ( ६।४।३० )—निवार—जंगली घान को पकड़ कर भाजीविका सम्पादन करनेवाला ।

श्यामाकिकः ( ६।४।३० )—श्यामा नामक घान को पकड़ करनेवाला

कम्बलकारक ( ७।३।१८१ )—ऊनी वस्त्र बुनकर भाजीविका सम्पन्न करनेवाले ।

चर्मकारः ( ७।१।४५ ) चमार—चमड़े की वस्तुएँ बनाकर भाजीविका सम्पन्न करनेवाला ।

- कर्मारः—( ६।३।१९४ )—लोहार, लौहार बनानेवाला ।  
 नर्तक ( ५।१।६५ )—नाचने का पेशा करनेवाले ।  
 गायक ( ५।१।६६ )—गाने का पेशा करनेवाले ।  
 भारवाहः ( ५।१।७० )—बोझा ढोने का कार्य करनेवाले ।  
 चित्रकरः ( ५।१।१०२ )—चित्रकारी का पेशा करनेवाले ।  
 धनुष्करः ( ५।१।१०२ )—धनुष बनाने का कार्य करनेवाले ।  
 ऋत्विजः ( ५।१।३२ )—यज्ञ आदि का पेशा या पौरोहित्य कार्य करनेवाले ।  
 स्वर्णकारः ( ३।२।३२ )—सुनार, इन्हें परपतोहर कहा है ।  
 वैद्य ( ६।२।१२१ )—आयुर्वेद-चिकित्सा का पेशा करनेवाला ।  
 ज्योतिषी ( ६।३।१९९ )—ज्योतिष विद्या का पेशा करनेवाले ।  
 कर्मकरः ( ५।१।१०४ )—मजदूर—शारीरिक ध्रम करनेवाले । दासी को कर्मकरी कहा गया है ।

तक्षायस्कारः ( ३।१।१४३ )—बढ़ई, यह रथों के पहियों पर लोहा चढ़ाने का कार्य करता था ।

### वेतनजीवी—

नियत काल के लिये नियत वेतन पर किसी व्यक्ति को काम के लिये स्वीकृत करना परित्रयण कहलाता था । 'परित्रियते नियतकाल स्वीत्रियते येन तत् परित्रयण वेतनादिः' ( २।२।६७ ) जो व्यक्ति इस प्रकार परित्रयित होता था, वह अपने परित्रेता—मालिक से वेतन जान लेने पर स्वीकृति देता था । इसी कारण भाषा में 'शताय परित्रीतः, शतादिना नियतकालं स्वीकृतम्' ( २।२।६७ ) प्रयोगों से स्पष्ट है कि एक शत या एक सहस्र कार्पाण सुदा पर तुम्हें काम पर नियत कर लिया गया, स्वीकार करो । श्रुति या मजदूरी पर लगाये गये मजदूर का नाम उसकी मजदूरी या उसके कार्यकाल से रखा जाता था । मजदूर मासिक और दैनिक दोनों ही प्रकार की मजदूरी पानेवाले होते थे ।

भाक्त ( ६।१।७२ )—भक्तमस्मै नियुक्तं दीयते भाक्तम्—रोजाना भोजन पर रहने वाला मजदूर ।

औदनिक ( ६।१।७२ )—ओदनमस्मै नियुक्तं दीयते औदनिक—भात के भोजन पर रहनेवाला मजदूर ।

आप्रभोजनिक ( ६।१।७० )—अप्रभोजनं अस्मै नियुक्तं दीयते आप्रभोजनिक—सबसे पहले भोजन जिनको कराया जाय, इसी भोजन पर जो कार्य करे, वह धर्मिक आप्रभोजनिक कहलाता था । तथ्य यह है कि इस प्रकार

के व्यक्ति मजदूर नहीं होते थे, बल्कि सम्मानित सहयोगी रहते थे। इन्हें सहयोग और सहकारित के आधार पर धन में सहयोग देना पड़ता था।

आपूपिक (६१४१००)—पुओं के भोजन पर काम करनेवाला सहयोगी श्रमिक।

शाष्ट्रुलिक—(६१४१००)—शक्कुली के भोजन पर काम करनेवाला मजदूर।

श्राणिक (६१४१०१)—श्राणा नियुक्तनस्मै दीयते—माँड जिस मजदूर को दिया जाता हो, वह श्राणिक कहलाता था।

इन मजदूरों के अतिरिक्त बड़े-बड़े वेतन पाने वाले कर्मचारियों के नाम भी उपलब्ध होते हैं—

१ शौन्कशालिकः (६१४१०४)—शुक्कशालायां नियुक्तः—चुंगी घर का अधिकारी।

२ आपणिकः (६१४१०४)—दुकान पर माल बेचनेवाला या हिसाब-किताब के लिये नियुक्त मुनीम।

३ दौवारिकः (६१४१०४)—द्वारपाल।

४ आश्रुपटलिकः (६१४१०४)—घृतगृह का अधिकारी।

५ देवागारिकः (६१४१०५)—देव मन्दिर का अधिकारी।

६ भाण्डागारिकः (६१४१०५)—भाण्डार का अधिकारी—सजाञ्जी।

७ आयुधागारिकः (६१४१०५)—अस्त्रशाला का अधिकारी।

८ कोष्ठागारिकः (६१४१०५)—कोठारी।

९ आतरिकः (६१४१०४)—यात्राकर वसूल करने का अधिकारी।

परिपाश्विकः (६१४१२९)—परिपाश्वं वर्तते परिपाश्विकः—अङ्गरक्षक।

पारिमुखिकः (६१४१२९)—सेवक।

लालाटिक (६१४१२५)—यः सेवको दृष्टं स्वामिनो ललाटमिति दूरतो याति न स्वामिकार्येषूपतिष्ठते स एवमुच्यते। ललाटमेव वा कोप-प्रसादलक्षणाय यः पर्यति स लालाटिकः। अर्थात् जो सेवक स्वामी के कार्य में तत्पर नहीं रहता है, स्वामी को भाते हुये देखकर उपस्थित हो जाता है अथवा जो स्वामी की प्रसन्नता और क्रोध को अवगत करने के लिये उसके ललाट की ओर देखता रहता है, वह लालाटिक कहलाता है। यह सेवक का एक भेद है, कोई स्वतन्त्र प्रकार नहीं है।

भाटक—

उक्त साधनों के अतिरिक्त आमदनी का एक साधन भाडा भी था। भाडे पर घोडा, गाड़ी, रथ आदि सवारियों के अतिरिक्त दुकान और मकान भी दिये जाते थे। आचार्य हेम ने बताया है—भोगनिर्वेशो भाटकमिति यावत् (६१४१५३)। नौका के भाडे के आतरिक और दुकान के भाडे को आपणिक कहा है।

## प्रशासन—

आचार्य हेम ने दो प्रकार के शासन तन्त्रों का उल्लेख किया—राजतन्त्र और संघशासन । 'पृथिव्या ईशः पार्थिवः' ( ६।४।१५६ )—एक जनपद की भूमि पृथिवी कहलाती थी और वहाँ का राजा पार्थिव कहलाता था । इसके विपरीत उससे विस्तृत भूप्रदेश या समस्त देश के लिये सर्वभूमि शब्द था, जहाँ का अधिपति ( सर्वभूमेः सार्वभौमः ६।४।१५६ ) सार्वभौम कहलाता था । राजा के लिये अधिपति ( ७।१।६० ) शब्द आया है, जो विशेष अर्थ का वाचक है । पड़ोसी जनपदों पर उस प्रकार का अधिकार हो, जिससे वे कर देना स्वीकार करें, अधिपत्य ( अधिपतेर्भावः कर्म वा अधिपत्यम् ७।१।६० ) कहलाता था । सम्राट् ( समाट् १।३।१६ ) विशिष्ट शासक का सूचक है, हेम ने ( 'सम्राट् भारत' ७।३।१६ ) उदाहरण से इस बात को स्पष्ट किया है कि यह उस प्रकार के शासन तन्त्र के लिये प्रयुक्त होता था, जिसमें अन्य राजाओं को करदाता बना लिया जाता था । उदाहरण में चक्रवर्ती भरत को विशेष्य के रूप में प्रयुक्त किया है, इससे ज्ञात होता है कि हेम सम्राट् को चक्रवर्ती मानते थे ।

इनके अतिरिक्त महाराज और अतिराज शब्द भी आये हैं । महान्धासी राजा महाराजः ( ७।३।१०६ ) अर्थात् यह शब्द बड़े राजा के अर्थ में प्रयुक्त है । महान् विशेषण के साथ राजा विशेष्य का कर्मधारय समास किया है, अतः स्पष्ट है कि यह शब्द अधिपति और सम्राट् का मध्यवर्ती था । अतिराज शब्द का प्रयोग 'अतिक्रान्तो राजानमतिराजः' ( ७।३।१०६ )—छोटे-छोटे राजाओं को अपने प्रभाव और प्रताप से तिरस्कृत करनेवाला तथा उन्हें करद बनानेवाला अतिराज कहलाता था । 'पञ्चानां राज्ञां समाहारः पञ्चराजी, दशानां राज्ञां समाहारः दशराजी' ( ७।३।१०६ ) शब्द भी इस बात के समर्थक हैं कि छोटे-छोटे राजा अपना संघ बनाकर रहते थे, पाँच राजाओं के संघ को पञ्चराजी और दस राजाओं के संघ को दशराजी कहा है । राज्य का संचालन मन्त्रिपरिषद् नाम की संस्था द्वारा होता था, राजा इस परिषद् का सर्वशक्तिशाली एवं सार्वभौम रहता था । जो प्रजा की रक्षा नहीं करता था, उस राजा को किराजा कहा ( ३।१।११० ) है ।

संघशासन के उदाहरण भी हेम ने प्रस्तुत किये हैं । 'नानाजातीया अनियतवृत्तयोऽर्थयामप्रधानाः संघपूगाः' ( ७।३।६० ) तथा 'नानाजातीया अनियतवृत्तयः शरीरायासजीविनः संघघाताः' ( ७।३।६१ ) अर्थात् प्राचीन समय में बाह्यिक एवं उत्तर-पश्चिमी प्रदेश में नाना प्रकार के

सघ राज्य थे, जिनमें शासन की अनेक कोटियाँ प्रचलित थीं। कुछ उन्नत श्रेणी के सघ थे, जिनमें समा, परिपद्, सघमुष्य, वर्ग, अंक, लक्षण नादि सघशासन की प्रमुख विशेषताएँ वर्तमान थीं। ऊपर के दोनों सघ इस प्रकार के हैं जो आयुधों द्वारा लूट-मार करके आत्मनिर्वाह करनेवाले कबीलों के रूप में थे। वे अपना एक मुखिया चुनकर किसी प्रकार सघ शासन चलाते थे। व्रात और पूग इसी प्रकार के सघ थे। पूग सघ की आजीविका निश्चित नहीं थी, पर इतना सत्य है कि ये लूटमार की अवस्था से ऊपर उठकर अर्धोपासनों के लिये अन्य साधनों को काम में लाते थे। इनका सघ शखोपजीवी तो था ही, पर इनका शासन कुछ व्यवस्थित था। ७३।६० सूत्र में 'लोहध्वजा पूगा' में लोहध्वज पूगों का निर्देश किया है।

व्रात उन लडाकू जातियों की संस्था थी, जिनका भाषों के साथ सघ्यं हुआ था और जो शारीरिक धर्म द्वारा राज्य से अपनी आजीविका का उपास-र्जन करते थे। ये वर्णाश्रम धर्म बाह्य जातियाँ थीं। पूग ग्रामणी—ग्राम मुखिया कहलाते थे उसी प्रकार व्रातों में भी ग्रामणी थे। शखोपजीवी सघों में पर्शव, दामन, यौधेय नादि भी परिगणित थे। हेम ने 'पर्शोरपत्यं वह्नो माणरनाः पर्शवः शखोपजीविसघः ( ७३।६६ ), दामनस्यापत्य वह्नः कुमारास्ते शखोपजीविसघः दामनीय' ( ७३।६७ ), युधाया अपत्य बह्वः कुमारास्ते शखोपजीविसघः यौधेय' ( ७३।६५ ), शरराः शखोपजीविसघः, कुन्तेरपत्यं बह्वो माणरनाः कुन्तय' शखोपजीविसघ कौन्त्यः ( ७३।६२ ), मल्ला संघ मल्लः ( ७३।६२ ), कुण्टीप्रशाः शखोपजीविसघ कौण्टी-विश्य ( ७३।६३ ), नादि सघों का उल्लेख किया है। इसमें स्पष्ट है कि सघशासन जहाँ तहाँ प्रचलित था।

दामन्यादि गणों में निम्न प्रकार आयुधजीवी सघों का निर्देश हेम ने किया है।

( १ ) दामन्यादि ( ७३।६७ )—दामनि, औलपि, काकदन्ति, अच्युतन्ति, शत्रुन्ति, सार्वसेनि, वैद्रवि, मौञ्जयन, तुलम, सावित्रीपुर, वैजवापि, औदकि।

( २ ) पार्श्वदि ( ७३।६६ )—पर्शु, असुर, बाह्लोक, वयस्, भरत, दशार्ह, पिशाच, अज्ञनि, कार्षापण, सन्वत्, वसु।

( ३ ) यौधेयादि ( ७३।६५ )—यौधेय, शौभ्रेय, द्वात्रेय, उपावाण्य, चार्तय, घार्सेय, त्रिगतं, भरत, उशीनर।

इस प्रकार इन तीनों गणों में कुल ३३ सघों का उल्लेख है।

सघ के प्रत्येक राजा या कुल के प्रतिनिधि क्षत्रिय को गण के ऐश्वर्य या

व्युत्पत्ति दो प्रकार से प्रस्तुत की है। प्रथम—अन्धे के पैर के नीचे बटेर का आना और दूसरी व्युत्पत्ति में अन्धे के हाथ में बटेर का आना। दोनों ही व्युत्पत्तियों के अनुसार अचानक किसी वस्तु की प्राप्ति होने को अन्धकवर्तिक-न्याय कहा जायगा।

४ अजाकृपाणीयम् ( ७११११७ ) 'अजया पादेनावकिरत्यात्मवधाय कृपाणस्य दर्शनमजाकृपाणम्—तसुख्यमजाकृपाणीयम्' अर्थात् बकरी आनन्द-विभोर होकर पैरों से निट्टी खुरचती है, इस निट्टी खुरचने के समय उसे मारने के लिए उठा खड्ग दिखा लायी पड़े, तो उस समय उस बेचारी बकरी का मृत्यु जन जाता है, इसी प्रकार आनन्द के समय कोई अनिष्टपूर्ण घटना दिखा लायी दे तो इसे अजाकृपाणीय न्याय कहा जाता है। तात्पर्य यह है कि रंग में भंग होना ही अजाकृपाणीय है।

५ असूया—परगुणासहनमसूया ( ७११८९ )—दूसरे के गुणों को सहन न करना—दूसरे के गुणों में दोष निकालना असूया—इंफ्या है।

६ सम्मतिः—कार्येष्वभिमत्यं सम्मतिः पूजनं वा ( ७११८९ )—कार्यों में अपना अभिप्राय करना सम्मति है। अथवा कार्यों का आदर करना सम्मति है। आचार्य हेम के मत से किसी के कार्यों पर अपना भला या बुरा विचार प्रकट करना अथवा किसी के कार्यों का समर्थन करना या आदर देना सम्मति है।

७ प्रत्यासत्ति ( ७११७९ )—'सामीप्यं देशकृता कालकृता वा प्रत्यासत्तिः' अर्थात् देशापेक्षया या कालापेक्षया समीपता को प्रत्यासत्ति कहते हैं। किसी वस्तु की निकटता दो प्रकार से होती है—( १ ) देश की अपेक्षा और ( २ ) काल की अपेक्षा।

८ अस्तिमान् ( ७१२१ )—अस्ति घनमस्य अस्तिमान्—जिसको घन हो—घनिक को अस्तिमान् कहते हैं। इस व्युत्पत्ति से यह स्पष्ट है कि घन अस्तित्व का कारण होने से घनिक को अस्तिमान् कहा है।

९ स्वस्तिमान् ( ७१२१ )—स्वस्ति आरोग्यमस्यास्ति स्वस्तिमान्। अत्रास्तिस्वस्ती अव्ययी घनारोग्यवचनौ। जिसे आरोग्य—स्वास्थ्य हो, उसे स्वस्तिमान् कहते हैं। अस्ति और स्वस्ति अभ्यय को घन और आरोग्य का वाचक माना गया है।

१० अविच्छेद ( ७११७३ )—सातन्यं क्रियान्तरैरेव्यवधानमविच्छेदः। किसी कार्य के निरन्तर होने में बीच में किसी रुकावट का न आना। अर्थात् निरन्तर का नाम अविच्छेद है।

११ आशंसा ( ५।४।२ )—‘आशंस्यस्य अनागतस्य प्रियस्यार्थस्याशंसनं प्राप्नुमिच्छा आशंसा’ । अर्थात् अप्राप्त वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा आशंसा है ।

१२ साधु ( १ उ० )—सम्यग्दर्शनादिभिः परमपदं साधयतीति साधुः, उत्तमश्रमादिभिः तपोविशेषैर्भावितात्मा साध्नोति साधुः, उभयलोकफलं साधयतीति साधुः । अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र के द्वारा जो परमपद की साधना करता है, वह साधु है । उत्तम श्रमा, उत्तम मार्गव आदि दस धर्म एवं अनशन, ऊनोदर आदि तपों के द्वारा आत्मा की भावना की साधना करता है, वह साधु है । दोनों लोकों के फल की साधना करनेवाला साधु है ।

१३ कौपीन ( ६।४।१८५ )—कूपप्रवेशनमर्हतीति कौपीनः—जिसको पहनकर कुँप् आदि में सरलतापूर्वक प्रवेश किया जाय, वह कौपीन है । वस्तुतः इसे संन्यासी धारण करते थे और वे इसे पहनकर जलाशय में स्नान किया करते थे, इसी कारण अर्धविस्तार बतलाने के लिए कौपीन की उक्त व्युत्पत्ति प्रस्तुत की गयी है ।

१४ छत्री ( ४४५ उ० )—द्वादयतीति छत्रम् छत्री वा धर्मवारणम्—जो आच्छादित करे और धूप से रक्षा करे, उसे छत्र या छत्री कहते हैं ।

१५ धेनुप्या ( ७।१।११ )—धेनुप्या या गोमता गोपालायाधमर्गेन चोत्तमर्गाय वा ऋगप्रदानाहोहनार्थं धेनुर्दीयते सा धेनुरेव धेनुप्या । अर्थात् कर्जंदार महाजन को इस शर्त पर कि जब तक कर्ज चुक नहीं जाता, तब तक इस गाय का दूध दुहो अर्थात् दूध दुहकर ऋण वसूल करो और जब ऋण चुक जाय तो गाय वापस कर देना, धेनुप्या है । यह एक कर्ज चुकाने का पारिभाषिक शब्द है ।

‘स ये मुष्टिमध्ये तिष्ठति’ मुहावरा—वह मेरी मुठ्ठी में है, ‘यो यस्य द्वेष्यः स तस्याक्षणोः प्रतिवसति’—जो जिसका शत्रु होता है वह उसकी आँखों में निवास करता है । यो यस्य प्रियः स तस्य हृदये वसति, जो जिसका प्रिय होता है, वह उसके हृदय में निवास करता है ।

इस प्रकार हेम ने शब्द व्युत्पत्तियाँ, मुहावरे तथा अनेक ऐसी परिभाषाएँ ( सातवें अध्याय के चतुर्थपाद के अन्त में ) निर्दिष्ट की हैं, जिनसे भाषा और साहित्य के अतिरिक्त संस्कृति पर भी प्रकाश पड़ता है ।

आभार—

इस प्रबन्ध के लिखने में आदरणीय डॉ० हीरालालजी जैन, अध्यक्ष प्राकृत, पालि एवं संस्कृत विभाग जवहलपुर से सहयोग प्राप्त हुआ है। अतः उनके प्रति अपनी पूर्ण धन्य-भक्ति प्रकट करता हूँ। आदरणीय पूज्य पं० सुखलालजी संघवी ने इसे आद्योपान्त पढ़ने की कृपा की, इसके लिये मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ। धन्य भाई लक्ष्मीचन्द्रजी जैन, मन्त्री भारतीय ज्ञानपीठ, काशी को भी नहीं भूल सकता हूँ। अन्त में चौखम्बा संस्कृत सीरीस एवं चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी के व्यवस्थापक चन्द्रद्वय मोहनदासजी गुप्त एवं विट्ठलदासजी गुप्त के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करता हूँ, जिनके अमूल्य सहयोग से यह रचना पाठकों के समक्ष प्रस्तुत हो रही है। सहयोगियों में प्रिय भाई प्रो० राजारामजी जैन का भी इस सन्दर्भ में स्मरण कर लेना आवश्यक है। उनसे प्रक संशोधन में सहयोग मिलता रहा है। पूज्य मुनिश्री कृष्णचन्द्राचार्य वाराणसी का अत्यन्त आभारी हूँ, जिन्होंने बृहद्सिद्धहेमदायानुशासन की निजी प्रति को उपयोग करने का अवसर प्रदान किया। श्री पं० लक्ष्मणजी त्रिपाठी, व्याकरणाचार्य व्याकरणाध्यापक राजकीय संस्कृत विद्यालय आरा का भी हार्दिक आभारी हूँ, जिनसे पाणिनितन्त्र के सम्बन्ध में अनेक ज्ञातव्य बातों की जानकारी उपलब्ध हुई।

प्रस्तावना अंदा कुछ बढ़ गया है। इसका कारण यह है कि हैम व्याकरण के सामाजिक और सांस्कृतिक विश्लेषण पर एक अध्याय पृथक् लिखना था, किन्तु समयान्तर से वह अध्याय मूल प्रति लिखने के समय लिखा नहीं जा सका। अतः उक्त विषय का समावेश प्रस्तावना में करना पड़ा है।

ड० दा० जैन कालेज, आरा  
( मगध विश्वविद्यालय )  
२५-८-६३

नेमिचन्द्र शास्त्री



**आचार्य हेमचन्द्र और उनका  
शब्दानुशासन : एक अध्ययन**  
( हैमप्रकाश में व्याकरणशास्त्र का तुलनात्मक विवेचन )

## आमुख

आचार्य हेम का व्यक्तित्व जितना गौरवास्पद है उतना ही प्रेरक भी। इनमें एक साथ ही वैयाकरण, आल्भारिक, दार्शनिक, साहित्यकार, इतिहासकार, पुराणकार, कौषकार, छन्दानुशासक और महान् युगकवि का अन्यतम समन्वय हुआ है। इनके उक्त रूप में बौद्ध रूप अधिक सशक्त है, यह निनाद का विषय है। हममें इन प्रबन्ध में शब्दानुशासन हेम पर ही विचार किया है।

हेम के पूर्व पाणिनि, चन्द्र, पूज्याद, शाक्यवन, भाजदेव आदि विद्वानों ने ही नैयाकरण हो चुके हैं। अपने समय में उनका समस्त शब्दशास्त्र का अध्ययन कर आचार्य हेम ने एक सर्वाङ्गपूर्ण, उपयोगी एवं सरल व्याकरण की रचना कर सस्कृत और प्राकृत दोनों ही भाषाओं को पूर्णतया अनुशासित किया है। तत्कालीन प्रचलित अनभ्रंश भाषा का अनुशासन लिखकर हेम ने इस भाषा को अमर तो बना ही दिया किन्तु अनभ्रंश के प्राचीन दोहा को उदाहरण के रूप में उपस्थित कर चुने हुए मन्त्रपूर्ण साहित्य के नमूनों की रचना भी की है। वास्तविकता यह है कि शब्दानुशासन हेम का व्यक्तित्व अद्भुत है। इनके धान और प्रातिपदिक, प्रकृति और प्रत्यय, समास और वाक्य, कर्त्तृ और तद्धित, अङ्ग और उपसर्ग प्रभृति का निरूपण, विवेचन एवं विश्लेषण किया है। प्रस्तुत प्रबन्ध में हमने आगेचनावक पद्धति पर शब्दानुशासन-सम्बन्धी हेम की विवचनाओं, उन विषयों और अभावों पर प्रकाश डाला है।

प्रथम अध्याय जीवन-परिचय सम्बन्धी है। द्वितीय अध्याय में इनके सस्कृत शब्दानुशासन का आलोचनात्मक और विवेचनात्मक अध्ययन उपस्थित किया है। इस अध्ययन में निम्न मौलिकनाएँ दृष्टिगोचर होगी—

१—ज्ञानों अध्याय सम्बन्धी अष्टाईस पादों के वर्ग विषय का संक्षिप्त और सर्वाङ्गी विवेचन।

२—ज्ञान विषय के क्रम विवेचन की मौलिकता पर प्रकाश।

३—द्वितीय के उत्तरार्ध और अष्टाद मातृओं का निरूपण।

४—शब्दशास्त्र के ज्ञान को दृष्टि से विषय विवेचन की वैज्ञानिकता और सरलता पर प्रकाश।

५—प्रत्येक पाद में निरूपित विषय की विवेचिताओं का संक्षेप विवेचन।

तृतीय अध्याय में हेम के खिलानों की विवेचना की है। हेम के धातु पाराना और लिङ्गानुशासन के दो अन्य खिलानों में इतने अधिक आकर्षक और उपजाऊ हैं कि हेम शब्दानुशासन का अध्ययन इनके अभाव में असूरा

ही रहेगा। अतः हमने धातुशास्त्र की विशेषताओं को बताने के लिये शब्दानुशासन का सर्वांगीण अध्याय उपस्थित किया है। शब्दों के मूल्य क्रम की हमारी विवेचना निलम्ब नहीं है। यह सत्य है कि हेम के लिटिगाट पाणिनि की अनेक मौलिक हैं। गणनाट धातुशास्त्र एवं लिटिगाटानुशासन आहृति और प्रकृति दोनों ही दृष्टिकोणों से महत्त्वपूर्ण बड़े जा सकते हैं।

चतुर्थ अध्याय में पाणिनीय तथा हेम शब्दानुशासन का तुलनात्मक और आलोचनात्मक चर्चा और सर्वांगीण विवेचन किया है। यह समस्त अध्याय विस्तृत मौलिक और नवीन गवेषणाओं से युक्त है। आज तक हेम पर इस प्रकार का अध्याय किसी ने भी उपस्थित नहीं किया है। हमने अपने अध्याय के आधार पर हेम और पाणिनि को निम्न दृष्टिकोणों से तोलने की चेष्टा की है।

१—पाणिनि और हेम की ग्रन्थ-शैली में मौलिक अन्तर है। पाणिनीय व्याकरण में एक निश्चय सूत्र भी कहीं-कहीं अल्पतः व्यवहृत हो गये हैं, पर हेम में ऐसी बात नहीं है। अतः ग्रन्थ शैली के आधार पर दोनों शब्दानुशासकों की प्रकरण क्रमानुसार तुलना।

२—पाणिनि ने अनेक सहायों की चर्चा की है, पर हेम ने सहायों की कल्पना और गुणता व निम्न ही प्रक्रिया निर्वाह कर लिया है। अतः सहायों की दृष्टि से दोनों वैसाकरणों की तुलना।

३—हेम का आदिमिभि उक्त समय हुआ, जब पाणिनीय व्याकरण का साङ्गै पाठ विवेचन हो चुका था, इतना ही नहीं, बल्कि उसके आधार पर काल्पायन तथा पतञ्जलि जैसे विशिष्ट वैसाकरणों ने सैद्धान्तिक गवेषणाएँ प्रस्तुत कर दी थीं। इस प्रकार हेम के सामने पाणिनि की अनुसन्धियाँ और अनासन्धियाँ ना वर्तमान थीं। फलतः हेम ने उन सारी सामग्रियों का उपयोग कर अपने शब्दानुशासन को सर्वांगीण एवं समवायुक्त बनाया। अतः पाणिनि और हेम की अनुशासन सम्बन्धी उपसन्धियों, अनुसन्धियों और अनासन्धियों के आधार पर तुलना।

४—हेम ने पाणिनि की प्रत्याहार पद्धति को स्थान न देकर, वांछित क्रम से ही प्रक्रिया का निर्वाह किया है। अतः उक्त दोनों आचार्यों की प्रक्रिया पद्धति में तुलना।

५—पाणिनि ने लौकिक शब्दों का अनुशासन करते समय प्रत्यये, आदेशों तथा धातु आदि में का अनुसन्ध लगाये हैं, उनका सम्बन्ध वैदिक मूल प्रक्रिया के साथ भी लाये रना है, जिनके कारण श्रेय संस्कृत भाषा सम्बन्धी अनुशासन को समझने में कुछ क्लेश का जाता है, किन्तु हेम ने उन्हीं अनुसन्धों को शरीर किया है, जिनका प्रयोजन तत्काल सिद्ध होता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पाणिनीय तन्त्र में मने ही साथ ही साथ वैदिक भाषा का भी अनुशासन होता

गया है, परन्तु श्रेय संस्कृत का सुबोध अनुशासन हेम के द्वारा ही हुआ है। अतएव दोनों की उक्त प्रक्रिया पद्धति के अनुसार तुलना।

६—हेम के पहले काल-विवेचन सम्बन्धी विभिन्न व्यवस्थाएँ नियमान थीं; कुछ नयी और कुछ पुरानी भी, जिनमें बहनों का हेम ने अनुकरण तथा अनुसरण किया है, किन्तु उन्होंने यह सदा ध्यान रखा है कि सरल एवं समयानुसारिणी व्यवस्था ही लाभप्रद हो सकती है, अतः यह इसका परिणाम है कि हेम ने अति प्रचलित लक्ष्मीय व्यवस्था को त्याग कर वर्तमाना, अद्यतनी, शक्यतानी, आदि सजाओं द्वारा ही समुचित व्यवस्था कर ली है। अतएव पाणिनि और हेम के धातुरूप, धातु प्रक्रिया और कालव्यवस्था पर तुलनात्मक चिन्तन।

७—हेम ने पाणिनि या सर्वथा अनुकरण न कर सुनों के नये-नये उदाहरण दिये हैं, जो भाषा के साहित्यिक क्षेत्र में इनकी मौलिक देन कहे जायेंगे। अतः मूर्तों और लक्ष्यों की दृष्टि से दोनों की तुलना।

८—सरलता, सजिनता और वैज्ञानिकता की दृष्टि से दोनों का तुलनात्मक विवेचन।

पञ्चम अध्याय में पाणिनीय प्रमुख वैयाकरणों के साथ और षष्ठ अध्याय में जैन वैयाकरणों के साथ हेम की तुलना की गयी है। इस तुलना में साम्य और वैषम्य दोनों पर प्रकाश डाला है। सजा, सन्धि, नाम, आख्याय, स्त्री-प्रत्यय, कृतप्रत्यय और तद्धित प्रत्ययों को लेकर तुलनात्मक विवेचन करने का आयास किया गया है। एक प्रकार से यह संस्कृत व्याकरण शास्त्र का तुलनात्मक इतिहास है। हेम के साथ-साथ अन्य शब्दानुशासनों का विवेचन भी यथास्थान होता चला है।

हम यह जोरदार शब्दों में कह सकते हैं कि हेम शब्दानुशासन की तो बात ही क्या, समस्त व्याकरण शास्त्र में अथावधि तुलनात्मक विवेचन, परीक्षा और अध्ययन नहा के बराबर हुआ है। इस दिशा में हमारा यह प्रथम प्रयास है और बहुत कुछ अज्ञानों में नवीन और मौलिक सामग्रियों से समलङ्कित है।

सप्तम अध्याय में प्राकृत शब्दानुशासन का एक अध्ययन लिखा है। हेम का आठवाँ अध्याय प्राकृत शब्दानुशासन करने वाला है। इस अध्याय के चार पाद हैं। प्रथम पाद में स्वर और असुक्त व्यंजनों का विचार; द्वितीय में संयुक्त चरित्रों का विचार, कारक प्रकरण, तद्धित प्रत्यय, तृतीय पाद में शब्दरूप, धातुरूप, क्त प्रत्यय और चतुर्थ पाद में धात्वादेश, शौरसेनी, मागधा, पेशाची, चूलिका पेशाची, एव अन्ध्रस भाषा का अनुशासन वर्णित है। हमने अपने अध्ययन में निकार विधायक सिद्धान्तों का परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत किया है। दो-चार स्थलों पर आलोचना और तुलना भी की गयी है।

आठवें अध्याय में प्राकृत वैयाकरणों के साथ हेम की तुलनात्मक समीक्षा उपस्थित की गयी है। प्राकृत वैयाकरणों में सबसे पुराने वैयाकरण वररुचि हैं; इनका हेम के उपर कितना और कैसा प्रभाव है, इसकी सम्बन्ध विवेचना की है। हमारा जहाँ तक ख्याल है, हेम प्राकृत वैयाकरण में निम्न बातों में निशिष्ट हैं।

१—आर्य और प्राकृत अर्थात् पुरानी और नयी दोनों ही प्राकृत भाषाओं का एक ही साथ अनुशासन किया है। इस क्षेत्र में हेम अद्वितीय हैं।

२—ज्ञान विचारों के सिद्धान्त निरूपण में सरलता, वैज्ञानिकता और गहनता का पूरा ध्यान रखा गया है, संक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है कि हेम की ग्रन्थन शैली समस्त प्राकृत वैयाकरणों से श्रेष्ठ है।

३—एक ही व्याकरण में हेम जैसा पूर्ण अनुशासन अन्यत्र उपलब्ध नहीं होगा। इन्होंने जिस विषय का उद्घाटन है, उसका अनुशासन सभी दृष्टिकोणों से पूर्णरूपेण उपस्थित किया है। इस एक व्याकरण के अध्ययन के उपरान्त अन्य व्याकरणों की जानकारी की अपेक्षा नहीं रहती है। अतः सार रूप में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि हेम प्राकृत शब्दानुशासन के सम्बन्ध अध्ययन से समस्त प्राकृत भाषाओं का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इतना निरवृत्त और गम्भीर ज्ञान अन्य किसी एक व्याकरण से नहीं हो सकता है।

४—धात्वादेश और अपभ्रंश भाषा का सर्वाङ्गपूर्ण अनुशासन हेम व्याकरण के अतिरिक्त अन्य किसी प्राकृत व्याकरण में नहीं है।

५—हेम ने सिद्धान्तों का प्रतिपादन व्यवस्थित और वैज्ञानिक पद्धति में उपस्थित किया है।

६—विषय-विवेचन के क्षेत्र में हेम सभी पूर्वकालीन और उत्तरकालीन वैयाकरणों से आगे हैं।

नवम अध्याय में आधुनिक भाषा विज्ञान के क्षेत्र में हेम सिद्धान्त विज्ञाने उपभोगी हैं और भाषा विज्ञान के कितने सिद्धान्त हेम में कहीं कहीं पर उपलब्ध हैं, इस पर विचार किया गया है। यह स्पष्ट है कि हेम ऐसे शब्दशास्त्र हैं, जिनमें आधुनिक भाषाविज्ञान के अधिकांश सिद्धान्त उपलब्ध हैं।

वाक्य विचार, रूपविचार, सम्बन्धनत्व और अर्थनत्व का विश्लेषण, ध्वनि अध्ययन, ध्वनि परिवर्तन के कतिपय कारण और उसकी दिशाएँ—आदिस्तरगण, मध्यस्तरगण, अन्तस्तरगण, आदिर्ध्वज्जगण, मध्यर्ध्वज्जगण, अन्तर्ध्वज्जगण, आदिस्तरागम, मध्यस्तरागम, अन्तस्तरागम, समस्तरागम, आदि-व्यञ्जनागम, मध्यव्यञ्जनागम, अन्तव्यञ्जनागम, स्वर और व्यञ्जन विपर्यय,

विषयीकरण, सन्धि, गुण, वृद्धि, उष्णिकरण, अनुनासिकता, घोषीकरण, अधोषीकरण, महाप्राणीकरण, अल्पप्राणीकरण, अभिश्रुति और अपिश्रुति; आदि सम्यक् प्रकार से निरूपित हैं।

यों तो सभी वाक्यों में भाषाविज्ञान के कुछ न कुछ सिद्धान्त अवश्य मिलते हैं, पर हमें उक्त विज्ञान के सिद्धान्त प्रचुरता और स्पष्टता के साथ उपलब्ध हैं। संस्कृत और प्राकृत वैयाकरणों में स्वरभक्ति, समीकरण और विषयीकरण का मौलिकता, स्पष्टता और दृढ़ता के साथ विवेचन करनेवाले हम ही हैं।

आधुनिक आर्यभाषाओं की प्रमुख प्रवृत्तियों का अस्तित्व भी हमें वर्तमान है। अतः संक्षेप में इन स्तरों ही कह सकते हैं कि संस्कृत और प्राकृत भाषाओं के वैयाकरणों में समीक्षापूर्णता, वैज्ञानिकता और स्पष्टता की दृष्टि से आचार्य हम का अद्वितीय स्वामी हैं। इनकी उद्भासनाएँ नवीन और तर्कसंगत हैं।



## प्रथम अध्याय

### जीवन परिचय

बारहवीं शताब्दी में गुजरात के सामाजिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक इतिहास की विधापक कृती आचार्य हेमचन्द्र सुगान्तरफारी और युगसंस्थापक व्यक्तित्व को लेकर अवतीर्ण हुए थे। इनकी अप्रतिम प्रतिमा का स्पर्श या गुजरात की उर्वर धरती में उत्पन्न साहित्य और कला की नव मल्लिकाएँ अपने फुल्ल सुमनों के मदुर लौरम ने समस्त दिग्दिगन्त को मत्त बनाने का उपक्रम करने लगा। पाटलिपुत्र, कान्यकुब्ज, बलभी, उज्जयिनी, काशी प्रभृति सृष्टिशाली नगरों की उदात्त स्तम्भ परम्परा में आहिलपुर ने भी गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त करने का आयास किया। शासकों की कलाप्रियता ने सोमनाथ, माण्ड्य-आबू, पाटण, टेकरी, अचलेश्वर, सिद्धपुर, शतुज्जय प्रभृति स्थानों में नयनाभिराम स्थावलों का निर्माण कराया। ये देवमंदिर केवल धर्मायतन ही नहै ये अपितु कलाकेन्द्र भी थे। अभिनय, संगीत, चित्र आदि ललित कलाओं की उपलब्धि इन स्थानों पर होती थी। यहाँ केवल संगमर्भ पर अंकित चित्रकारी ही पुष्पोपहार लेकर प्रणामाञ्जलि अर्पित करने को प्रस्तुत नहीं थी, किन्तु साहित्य की अमर कृतियाँ भी मानव मस्तिष्क की ज्ञानतन्त्रियों को श्रुत कर अनृतरस के आस्वाद द्वारा मदमत्त करने के सुलभ और सुकुमार व्यापार में सलम थीं। ये रचनाएँ जितनी ही मादक हैं उतनी ही मनोहर। सँनारे हुए देवमंदिरों की भाँति, वेदिका पर स्थित प्रतिमा की भाँति, उद्यान में लहलहाती मालती लता की भाँति, एवं मदन-चन्दन द्रुम की सुकुमार लताओं के त्रिलुलित किसलय की भाँति गुजरात आज़ाद सौन्दर्य का विजयोल्लास, धर्म का सौकन-काल, सर्वविद्याओं का स्वयंवृतपति एवं समस्त ज्ञान का मिलनतीर्थ बन गया। जिस प्रकार प्रदीप के प्रकाश से तिमिराच्छन्न मित्र हो भासुर प्रकाश का नितान तन जाता है, उसी प्रकार हेमचन्द्र को पाकर गुजरात अज्ञान, धार्मिक रूढ़ियों एवं अन्धविश्वासों से मुक्त हो, योग्यता का समुद्र, गुणों का आकर, कीर्ति का कैलास एवं धर्म का त्रिवेणी सगम बन गया। शत शत मुखों से मुपारित हो एक साथ यह ध्वनि कर्णकुहरों में प्रदिग् होने लगी, कि साहित्य और संस्कृति के लिए अब गुजरात शासकालीन मेघ समुद्रों में अन्तर्गत परस्पर्य की प्रभा के समान अधिकतर रमणीय रूप प्राप्त करेगा।

## जन्मतियि और जन्मस्थान—

संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश साहित्य के मूर्धन्य प्रणेता, कल्किलालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र का जन्म गुजरात के प्रधान नगर अहमदाबाद से ६० मील दक्षिण-पश्चिम कर्ण में स्थित 'धुनुका' नगर में विक्रम संवत् ११४५ में कार्तिकी पूर्णिमा की राति में हुआ था। संस्कृत ग्रन्थों में इसे 'धुनुक नगर' या 'धुनुकपुर' भी कहा गया है। यह प्राचीनकाल में स्वातन्त्र्य एव सन्तुष्टिशाली नगर था।

## माता पिता और उनका धर्म—

हमारे चरितनामक के पिता मोदवशात्पन्न 'चाचिग' नामक व्यापारी (सेत) और माता पाहिणी देवी थी। इनके वंशजों का विकास मानेरा ग्राम से हुआ था, अतः ये मोदवशी कहलाते थे। आज भी इस पद के श्रेष्ठ श्रीमाठ वगैरे कह जाते हैं। उनकी कुलदेवी 'चामुण्डा' और कुलदेव 'गणेश' था, अतः माता-पिता ने देवता प्रत्यर्थ उक्त दाना देवताओं के आग्रह अन्तर्गत लेन-बाणक का नाम 'चाङ्गदेव' रखा। यही चाङ्गदेव आचार्य चन्द्रसूरिपद प्राप्त होने पर हेमचन्द्र कहलाया।

इनकी माता पाहिणी और माता नैमिनाग जैन धर्मावलम्बी थी, किन्तु इनके पिता का जैनधर्मी कहा गया है। प्रबन्धचिन्तनामक अनुसार ये शैव प्रतीत होते हैं यद्यपि उदयन मन्त्री द्वारा रुपये दिये जाने पर इन्होंने 'शिवनिर्मल्य' शब्द का व्यवहार किया है और उन धर्मों का शिवनिर्मल्य का समान त्याग्य कहा है। कुलदेवी चामुण्डा का होना भी यह संकेत करता है कि वंशपरम्परा से इनका परिवार शिव-धर्मी का उदासक था। गुजरात में ग्यारहवीं शती में शैव मत का प्रादुर्भाव भी रहा, क्योंकि चालुक्य के समय में गुजरात में गाँव गाँव में सुन्दर शिवालय सुशोभित थे। संख्या समय उन शिवालयों में होने वाली शिव-पूजा और ध्यान-नाद से गुजरात का वायुमण्डल शैवधर्मनाम हा जाता था।

पाहिणी का जैन धर्मावलम्बी और चाचिग का शैवधर्मी बनकर होकर एक साथ रहने में कोई विरोध नहीं आता है। प्राचीन काल में दक्षिण और गुजरात में धर्म अन्तर्गत परिवार थे, जिनमें पति और पति का धर्म भिन्न भिन्न था।

१. जैन प्रमातृक चरित का हेमचन्द्रसूरि प्रबन्ध पृष्ठ ११-१२.

२. एकदा नैमिनागनामा आकृष्ट सन्तुष्टय श्रीदेवचन्द्रसूरिन् जगौ दीक्षा पाचते।



के पाठनाय वैशाख में क्रि. सं० ११५४ माघ शुक्ल १४ शनिवार को धूमधामपूर्वक दीक्षा संस्कार सम्पादित किया और चाङ्गदेव का दीक्षा नाम सोमचन्द्र रखा।

हेमचन्द्र का शैशवकालीन उक्त इतिवृत्त प्रबन्धचिन्तामणि के आधार पर लिखा गया है। ऐतिहासिक प्रबन्ध ज्ञान सुनारसायनम्, चन्द्रप्रमद्वि निश्चित प्रमानकचरित एवं राजशेखरद्वि निश्चित प्रबन्धकौश में यह इतिवृत्त कुछ सुशान्तरित मिलता है। प्रमादकचरित में बताया गया है कि पाहिणी ने स्वप्न देखा, कि उसने चिन्तामणि रत्न अपने आध्यात्मिक परामर्श-दाता को सौंप दिया है। उसने यह स्वप्न चाणु देवचन्द्राचार्य के सम्मुख कट सुनाया। देवचन्द्र ने इस स्वप्न का निवेदन करते हुए कहा कि ठने एक ऐसा पुत्र रत्न प्राप्त होगा, जो जैन विद्वान् का सर्वत्र प्रचार और प्रसार करेगा।

जब चाङ्गदेव पांच वर्ष का हुआ, तब वह अपनी माता के साथ देवमन्दिर में गया और जब माता पूजा करने लगी तो आचार्य देवचन्द्र भी गद्दी पर बैठ कर बैठ गया। आचार्य ने पाहिणी को स्वप्न की याद दिलायी और उसे आदेश दिया कि वह अपने पुत्र को शिष्य के रूप में उन्हे समर्पित कर दे। पाहिणी ने अपने पति की ओर से बलिदान उपस्थित होने की बात कही, इस पर देवचन्द्राचार्य मौन हो गए। इस पर पाहिणी ने अनिच्छापूर्वक अपने पुत्र को आचार्य को भेंट कर दिया। तत्पश्चात् देवचन्द्र अपने साथ लड़के को स्वच्छन्दता से गए जो आधुनिक समय में काम्बे बहलाना है। यह दीक्षा संस्कार क्रि. सं० ११५० में माघशुक्ल १४ शनिवार को हुआ।

ज्योतिष की दृष्टि से काव्यगयना करने पर माघ शुक्ल १४ की शनिवार क्रि. सं० ११५४ में पड़ता है, क्रि. सं० ११५० में नहीं। अतः प्रमानक चरित का उक्त संस्कृत अशुद्ध मालूम पड़ता है।

दीक्षा काल के संसंध में एक तीसरी कथा ऐसी उल्लेख है, जो न तो प्रमानक चरित में मिलती है और न मेरुतुंग की प्रबन्धचिन्तामणि में। इस कथा के लेखक राजशेखरद्वि हैं। उन्होंने अपने प्रबन्धकौश में बताया है कि देवचन्द्र की धर्मोपदेश-सभा में नेमिनाग नामक क्षत्रिय ने उत्तर कहा कि 'मन्त्र' ! यह मेरा नामका आनकी देवता तुम्हें प्रदुद हो दीक्षा मांगता है। जब यह श्रुति में था तब मेरी बहन ने स्वप्न में एक आनका तुम्हें कृत देखा था, जो म्याना-मन्त्र में बहुत पर्याप्त होता हुआ दिग्गजायी पड़ा। सुरवी ने कहा 'इन्ने निदा की अटनति आन्यक है।' इसके पश्चात् माना नेमिनाग ने अपनी बहन

के घर पहुँच कर मानने की प्रस्तावना की चर्चा की। माता पिता के निषेध करने पर भी चाङ्गदेव ने दौटा घास कर ली।

कुमारनाथ प्रबंध ने लिखा है, कि एक बार पाहिणी ने देवचन्द्र से कहा, कि मैंने स्वप्न में ऐसा देखा है कि मुक्त चिन्तामणि रत्न प्राप्त हुआ है जो मैंने आपको दे दिया। गुरु जा ने कहा कि इस स्वप्न का यह फल है कि—तेरे एक चिन्तामणि दुन्दुभ पुत्र उत्पन्न होगा, परन्तु गुरु का सौँप देने से वह सुरिराज हागा, एइत्य नहीं। कालान्तर में जब चाङ्गदेव गुरु के आसन पर जा बैठा, तब उन्होंने कहा देख पाहिणी सुभादिक ! तू एक बार जा अरने स्वप्न की चर्चा की थी उसका फल आँख के सामने आ गया है। अनन्तर देवचन्द्र सप के साथ चाङ्गदेव की याचना करने पाहिणी के घर पहुँचे। पाहिणी न घरवालों का विरोध सहकर भी अपना पुत्र देवचन्द्र को सौँप दिया।

### रिज्ञा और सूरिपद—

दक्षित होने के उपरान्त सानचन्द्र का विद्याध्ययन प्रारम्भ हुआ। तर्क, रूप्य एवं साहित्य विद्या का बहुत थोड़े हा समय में पाखित्य प्राप्त कर लिया। देवचन्द्र सूरि न सप्त वर्ष, आठ महीने एक स्थान से दूसरे स्थान पर परीभ्रमा करते हुए और चार महीने किन्हीं सद्गुरुइत्य के यहाँ निवास करते हुए व्यतीत किए। सानचन्द्र भी उनके साथ बराबर थे, अतः अन्नापु में ही इन्होंने देश-देशान्तरो के परभ्रमा से अरने शास्त्रय और व्यावहारिक ज्ञान की वृद्धि की। इमें इनका नागपुर में धनद नामक ल के यहाँ तथा देवेन्द्रनूरि और मयगिरि के साथ मयदेश के खिल्लर ग्राम एवं रत्न काश्मर में जाना मिलता है। इक्कीस वर्ष का अवस्था में ही इन्होंने समस्त शास्त्रों का आलोडन-विलाडन कर अपने ज्ञान को वृद्धिगत किया था।

ज्ञान के साथ-साथ चरित्र भी अदूर्व काण्टि का था। चतुर्विंश सध इनके गुणों से अत्यधिक प्रभावित था। आचार्य के ३६ गुण इनमें आमततात् हो चुके थे, अतः नागपुर के धनद नामक व्यवहारा न विक्रम सं० ११६६ में सूरि पद प्रदान महोत्सव सम्पन्न किया। सानचन्द्र की हेम के समान कान्ति और चन्द्र के समान आरादकता होने के कारण—तदनुकूल 'हेमचन्द्राचार्य' यह सजा रखी गयी। इक्कीस वर्ष की अवस्था में सूरि पद का प्राप्त कर हेमचन्द्र न साहित्य और समान की सेवा करने का आपास आरम्भ किया। इस नवीन आचार्य की विद्वत्ता, तेज, प्रभाव और सुहृदीय गुण, दर्शकों का सहज ही में अपनी आर आकांक्ष करने लगे।

हेमचन्द्र ने अपने गुरु का नामोल्लेख किन्नी भी कृते में नहीं किया है।

प्रभाव चरित और कुमारपाल प्रबंध के उल्लेखों से ऐसा प्रतीत होता है, कि हेमचन्द्र के गुरु देवचन्द्र ही रहे होंगे। देवचन्द्राचार्य को हम एक-सुयोग्य विद्वान् के रूप में पाते हैं। अतः इसमें आशंका की गुजायश नहीं कि हेमचन्द्र को किसी अन्य विद्वान् आचार्य ने शिष्य प्रदान की होगी। हाँ, यह सत्य प्रतीत होता है, कि हेमचन्द्र का कुछ काल के उपरान्त अपने गुरु से अच्छा संबंध नहीं रहा। इसी कारण उन्होंने अपनी कृतियों में गुरु का उल्लेख नहीं किया है। मेरुगु ने एक उपाख्यान लिखा है जिससे उनके गुरु-शिष्य संबंध पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। बताया गया है कि देवचन्द्र ने अपने शिष्य को स्वर्ण बनाने की कला प्रदान से इन्कार कर दिया, जब शिष्य ने अन्य सरल विज्ञानों की सुचारु रूप से शिक्षा प्राप्त नहीं की थी। अतएव स्वर्ण गुटिका की शिक्षा देना उन्होंने अनुचित समझा। हो सकता है उक्त घटना ही गुरु-शिष्य के मनमुटाव का कारण बन गयी हो।

प्रधानचरित से ज्ञात होता है कि हेमचन्द्र ने ब्राह्मीदेवी—जो विद्या की अभिधानी मानी गयी है—का साधना के निमित्त काश्मीर की एक यात्रा आरम्भ की। वे इस साधना द्वारा अपने समस्त प्रतिद्वंद्वियों को पराजित करना चाहते थे। मार्ग में जब ताम्रलिप्त होते हुए रैक्तगिरि पहुँचे, तो नेमिनाथ स्वामी की इस पुण्यभूमि में इन्होंने योगविद्या की साधना आरम्भ की। इस साधना के अवसर पर ही सरस्वती उनके सम्मुख प्रकट हुई और कहने लगी—‘वत्स ! तुम्हारी समस्त मनोकामनाएँ पूर्ण होंगी। समस्त वादियों को पराजित करने की क्षमता तुम्हें प्राप्त होगी। इस वाणी को सुनकर हेमचन्द्र बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने अपनी आगे की यात्रा स्थगित कर दी और चारस लौट आये।<sup>१</sup>

उपर्युक्त घटना असम्भव नहीं मान्य होती है। इसका समर्थन ‘अभिधान चिन्तामणि, से भी होता है। भारत में कई मनीषी विद्वानों ने मन्त्रों की साधना द्वारा ज्ञान प्राप्त किया है। हम नैषधकार श्रीहर्ष तथा कालिदास के संबंध में भी ऐसी बातें सुनते हैं।

**आचार्य हेमचन्द्र और सिद्धराज जयसिंह—**

हेमचन्द्र का गुजरात के राजा सिद्धराज जयसिंह के साथ सर्वाग्रिम बन और कंठे मिलन हुआ इसका संतोषजनक इतिवृत्त उपर्युक्त नहीं होता है। कहा जाता है कि एक दिन सिद्धराज जयसिंह हाथी पर सवार होकर पाटण के राजमार्ग से जा रहे थे। उनकी दृष्टि मार्ग में ईर्ष्यायुक्त गुड्डिपूर्वक जाते हुए हेमचन्द्र पर

१. विशेष के लिए देखें—स्तरुण्ण भाव हेमचन्द्र द्वितीय अध्याय।

तथा शब्दानुशासन की अंग्रेजी प्रस्तावना पृ. cclxvi-cclxix.

पत्नी। मुनीन्द्र को शान्त मुद्रा ने राजा को प्रभावित किया और अभिसादन के पश्चात् उन्होंने कहा, प्रभो ! आप मरुत में पधारकर दर्शन देने की कृपा करें। तदनन्तर हेमचन्द्र ने यथास्वर राजसभा में प्रवेश किया, और अम्नी विद्वत्ता तथा चरित्रशुद्धि से राजा को प्रसन्न किया। इस प्रकार राजदरबार में इनका प्रवेश आरम्भ हुआ और इनके पाण्डित्य, दूरदर्शिता और सर्वधर्म स्नेह के कारण इनका प्रभाव राजसभा में उत्तरोत्तर बढ़ता गया।

सिद्धराज को धर्मचर्चा सुनने की बड़ी अभिरुचि थी। एक बार उन्होंने हेमचन्द्र से कहा कि इन दर्शन ग्रन्थों में अपने मत की स्तुति और दूसरों के मत की निन्दा सुनते हैं। प्रभो ! कतलाद्ये कि समार-सागर से पार करने वाला कोनसा धर्म है ? इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने पुराणात्त ज्ञान का निम्नलिखित आख्यान कहा —

‘शेखर ने शान्द नामक एक सेठ और यशोमति नाम की उरुत्री स्त्री रक्षी थी। पति ने अम्नी पत्नी में अप्रसन्न होकर एक दूसरी स्त्री से विवाह कर लिया। अब वह नवोदा के बस होकर बेचारी यशोमति को पूर्य आँगो ने दानना मीं डुरा समझते ल्या। यशोमति का अपने पति के इस व्यवहार से बड़ा ब्य़ हुआ और वह प्रतिकार का उपाय सोचने लगी।

एक बार कोई कयानार गोड देव से आशा। यशोमति ने उरुत्री पूर्ण श्रद्धा-निष्ठ से सेवा की और उरुते एक ऐसी औषधि ले ली, जिसके द्वारा पुत्र्य पशु बन सकता था। यशोमति ने आनेवाला एक दिन मोहन में मिलाकर उक्त औषधि को अपने पति को खिला दिया, जिन्हने वह तत्काल देव बन गया। अब उरुते अपने इस अप्रुरे ज्ञान पर बड़ा दुःख हुआ और सोचने लगी कि वह बँल को पुत्र्य किन्न प्रकार बनाने। अतः लज्जित और दुःखित होकर जंगल में किसी पासवाली भूमि में एक वृक्ष के नीचे कैठ रुची पति को घास चराया करती थी और बैठी बैठी क्लान करती रहती। दैवयोग से एक दिन शिव और पार्वती निमान में बैठे हुए आकाश मार्ग से उरी ओर जा रहे थे। पार्वती ने उसका कला निगम सुनकर राकर मगनान् से पूज—स्वामिन् ! इसके दुःख का कारण क्या है ? शंकर ने पार्वती का समाधान किया और कहा कि—इस वृक्ष की छाया में ही इस प्रकार की औषधि विद्यमान है जिसके सेवन से यह पुनः पुत्र्य बन सकता है। इस संवाद को यशोमति ने मीं सुन लिया और उसने तत्काल ही उरु छाया को रेखाङ्कित कर दिया और उसने मध्यर्त्ती समस्त घास के अंशुओं को तोड़-तोड़ कर बँल के मुख में डाल दिया। घास के साथ औषधि के चते जाने पर वह बँल पुनः पुत्र्य बन गया।

आचार्य हेमचन्द्र ने आख्यान का उत्तरवहार करते हुए कहा—राजन् !

जिस प्रकार नाना प्रकार की घासों के मिल जाने से यद्योमति को औषधि की पहिचान नहीं हो सकी, उसी प्रकार इस युग में कई धर्मों से सत्य धर्म तिरोभूत हो रहा है। परन्तु समस्त धर्मों के सेवन से उस दिव्य औषधि की प्राप्ति के समान पुरुष को कभी न कभी शुद्ध धर्म की प्राप्ति हो ही जाती है। जीव दया, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के सेवन से बिना किसी विरोध के समस्त धर्मों का आराधन हो जाता है। आचार्य के इस उत्तर ने समस्त समासदों को प्रभावित किया।

आचार्य हेमचन्द्र और सिद्धराज जयसिंह के प्रथम मिलन के संबंध में एक इस प्रकार का उल्लेख भी उपलब्ध होता है कि—जयसिंह एक बार हाथी पर सवार हो नगर का परिभ्रमण करने निकले। मार्ग में सूरि को एक दूकान पर खड़े देखा और उनसे कुछ कहने को कहा। सूरि ने राजा की प्रशंसा में निम्न श्लोक कहा :—

कारय प्रसरं सिद्धहस्तिराजमशङ्कितम् ।

प्रस्पन्तु दिग्गजाः कितैर्मूर्त्तव्यैबोद्धृता यतः ॥

कहा जाता है कि इस श्लोक को सुनकर जयसिंह प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने दरवार में सूरि को बुलाया। मालव की विजय के उपरान्त जब सिद्धराज जयसिंह को आशीर्वाद देने के लिए सभी धर्मवाले एकत्र हुए थे, उस समय जैनधर्म का प्रतिनिधित्व हेमचन्द्र सूरि ने ही किया था। यह मिलन विक्रम सं० ११९१-११९२ में हुआ होगा।

सिद्धहर्म क्य और कैसे लिखा गया—

कहा जाता है कि हेमचन्द्र के द्वारा पड़े गये श्लोक<sup>१</sup> की गम्भीर अर्थचातुरी से उपरिपन्न समस्त विद्वान् अधिक चमत्कृत हुए और सूरि की प्रशंसा करने लगे। इस अवसर पर एक अज्ञहिष्णु ने कहा कि यह हमारे सनातन शास्त्रों का ही प्रभाव है, उन्हीं के अध्ययन से इन्हें ऐसी निद्वत्ता प्राप्त हुई है। राजा ने हेमचन्द्र से पूछा—‘क्या यह यथार्थ है?’ उन्होंने उत्तर दिया कि हम तो उस जैनेन्द्र व्याकरण का अध्ययन करते हैं, जिसका महावीर ने इन्द्र के समक्ष बाल्यकाल में व्याख्यान किया था। राजा ने कहा—‘इस पुरानी बात को जाने दीजिए और किसी दूसरे इधर के व्याकरण का नाम लीजिए।’ हेमचन्द्र ने उत्तर दिया—‘यदि आप सहायक हो तो एक नवीन पञ्चाङ्ग व्याकरण तैयार किया जाय।’ सिद्धराज जयसिंह के द्वारा स्वीकृति मिलने पर कारनीर देश के प्रसरपुर के भारती कोष से तथा अन्य देशों से कई प्राचीन व्याकरणों की प्रतियाँ मँगवाई गईं

और व्याकरण शास्त्र के कई विद्वान् देश-देशान्तरों से बुलाये गये। हेमचन्द्र ने एक वर्ष में समस्त व्याकरण ग्रन्थों का अन्वगाहन कर पञ्चाङ्गपूर्ण—सूत्र, उणादि-गण-त्रय, रणपाठ, लिङ्गानुशासन एवं धातुपाठतुक्त व्याकरण ग्रन्थ रचा। अपने इन अभिन्न व्याकरण ग्रन्थ का नाम सिद्धहैनशब्दानुशासन रखा। कहा जाता है कि सुदानुद की परीक्षा के बाद यह ग्रन्थ राजकीय कक्ष में स्थापित किया गया और ३०० लेखकों द्वारा तीन वर्ष तक इसकी प्रतियाँ तैयार कराई गईं और राजाशा से अठारह देशों में अन्यमन-अव्याप्तार्थ भेजी गईं।

सिद्धहैनशब्दानुशासन की रचना के हेतु के सम्बन्ध में यह भी बताया जाता है कि—मालव निजय में अनेक प्रकार की वस्तुओं के साथ जमसिंह को अन्नकी का पुस्तकालय भी उपलब्ध हुआ था। दरबारी लोग राजा को अन्नकी के पुस्तकालय की विभिन्न पुस्तकें दिखाना रहे थे, उस समय राजा की दृष्टि अनेक बहुमूल्य रचनाओं पर पड़ी। राजा ने उन पुस्तकों के परिचय की जिज्ञासा प्रकट की। इसपर हेमचन्द्र ने बताया कि ये उत्तम रचनाएँ मौज की विद्वत्ता एवं विद्वत्प्रियता का परिणाम हैं। इसी कारण उस पुस्तकालय के दुर्लभ ग्रन्थों में अलंकार व्याकरण, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि विभिन्न विभिन्न विषयों के ग्रन्थों की बहुलता है। उस पर जमसिंह के मन में साहित्यिक ईर्ष्या जागृत हुई और उन्होंने कहा, कि क्या इनारे यहाँ श्रेष्ठ व्याकरण की रचना नहीं हो सकती है? उपस्थित लोगों ने आचार्य हेमचन्द्र की ओर सङ्केत किया और हेमचन्द्र ने राजाशा प्राप्तकर कारनाम से व्याकरण की आठ पुस्तकें मँगवाईं तथा प्रस्तुत शब्दानुशासन की रचना की।

उपर्युक्त पन्ना में मने ही नाटकीय संवेदन हो, पर इतना सत्य है कि मालव और गुजरात की द्वेषभावना राजनीतिक ही नहीं थी, अपितु साहित्यिक और मानकृतिक भी थी। अतः समभव है कि गुजरात का पृथक् व्याकरण तैयार कराने के लिये जमसिंह ने हेमचन्द्र को प्रेरित किया हो और उर्सा प्रेरणा के

१. देवे पुरातत्त्व ( पुस्तक चतुर्थ ) गुजरात नुं प्रधान व्याकरण पृ० ६१ तथा—‘अन्वया सिद्धराजोऽपि जित्वा मालवमण्डलम् । समागमान तस्मै चाक्षिर्षं दर्शयित्वा तद्गुः ॥ ७०—७१ ॥ प्रमादकचरित पृ० ३००—३०१

गौराशंकर ओझा ने अपने राजपूताने के इतिहास भाग १ पृ. १९६ में लिखा है कि जमसिंह ने यशोवर्मा को वि. स. ११९२—११९५ के मध्य हराया था। उज्जयिनी के शिलालेख से ज्ञात होता है कि मालवा विक्रम स. ११९५ ज्येष्ठसदि १४ का सिद्धराज जमसिंह के अधीन था। इस उल्लेख के आधार पर ‘सिद्धहैन व्याकरण’ की रचना संवत् ११९० के लगभग हुई होगी।

बुद्धि प्रकाश, मार्च १९३५ के अंक में प्रकाशित।

पल्लवरूप हेमचन्द्र ने उपलब्ध विभिन्न व्याकरणों का सम्यक् अध्यायन कर अपना नया व्याकरण, सिद्धराज ज्यसिंह के नाम को अपने नामके साथ जोड़ कर 'सिद्धहेमराज्यानुशासन' नामका ग्रन्थ रचा ।

हेमचन्द्र और कुमारपाल—

सिद्धराज ज्यसिंह ने वि. सं. ११५१-११९९ तक राज्य किया । इनके स्वर्ण-वासी होने तक हेमचन्द्र की आयु ५४ वर्ष की थी । वे अब तक अच्छी प्रतिष्ठा पा चुके थे । सिद्धराज के कोई पुत्र नहीं था; इससे उनके पश्चात् गद्दी का झगड़ा उठा और अन्त में कुमारपाल नामक व्यक्ति वि० सं० ११९४ में मार्गशीर्ष कृष्ण १४ को राज्याभिषिक्त हुआ । सिद्धराज ज्यसिंह इस कुमारपाल को मारने की चेष्टा में था; अतः यह अपने प्राण बचाने के लिए गुप्त वेष धारण कर भागता हुआ स्तम्भनीर्य पहुँचा । वहाँ पर यह हेमचन्द्र और उदयन मंत्री से मिला । दुःखी हो कुमारपाल ने सूरि से कहा—'प्रभो ! क्या मेरे भाग्य में इली तरह कष्ट भोगना लिखा है या और कुछ भी ?' सूरिन्द्र ने विचार कर कहा 'मार्गशीर्ष कृष्ण १४ वि० सं० ११९९ में आप राज्याधिकारी होंगे । मेरा यह कथन कभी असत्य नहीं हो सकता है' । उक्त वचन सुनकर कुमारपाल बोला—'प्रभो ! यदि आपका वचन सत्य सिद्ध हुआ, तो आप ही पृथ्वीनाथ होंगे, मैं तो आप के पादपत्रों का सेवक बना रहूँगा ।' हँसते हुए सूरिन्द्र बोले—'हमें राज्य से क्या काम ! यदि आप राजा होकर जैन धर्म को सेवा करेंगे तो हमें प्रसन्नता होगी ।' तदनन्तर सिद्धराज के भेजे हुए राजपुरुष कुमारपाल को दौड़ते हुए स्तम्भनीर्य में ही आ पहुँचे । इस अवसर पर हेमचन्द्र ने कुमारपाल को बलानि के भूमिग्रह ( तहरयाने ) में जिना दिया और उसके द्वार को पुस्तकों से ढँक कर प्राण बचाये । तदनन्तर सिद्धराज ज्यसिंह की मृत्यु हो जाने पर हेमचन्द्र की भविष्यवाणी के अनुसार कुमारपाल सिंहासनासीन हुआ<sup>१</sup> ।

राजा बनने के समय कुमारपाल की अवस्था ५० वर्ष की थी । अतः उसने अपने अनुभव और पुरुषार्थ द्वारा राज्य को सुदृढ़ व्यवस्था की । यद्यपि यह सिद्धराज के समान विद्वान् और नियारत्निक नहीं था, तो भी राज्य-व्यवस्था के पश्चात् धर्म और विद्या से प्रेम करने लगा था ।

कुमारपाल की राज्यप्राप्ति सुनकर हेमचन्द्र कर्मावली से पाठ्य आये । उदयन मन्त्री ने उनका प्रवेशोत्सव किया । इन्होंने मन्त्री से पूछा—'अब राजा हमें याद करता है या नहीं ?' मन्त्री ने संकोच का अनुभव करते हुए स्तब्ध

१. देखें नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग ६ पृष्ठ ४४३-४६८

( कुमारपाल को कुल में हीन समझने के कारण ही सिद्धराज उसे मारना चाहते थे ) ।

कहा—‘नहीं अब याद नहीं करता।’ सूरीश्वर ने मन्त्री से कहा ‘आज आप राजा से कहें, कि वह अपनी नयी रानी के महल में न जावें। वहाँ आज दैवी उत्पात होगा। यदि राजा आप से पूछे कि यह बात किसने बतलाई, तो बहुत आग्रह करने पर ही मेरा नाम बतलाना। मन्त्री ने ऐसा ही किया। रात्रि को महल पर बिजली गिरी और रानी की मृत्यु हो गयी। इस चमत्कार से अति विस्मित हो राजा मन्त्री से पूछने लगा, कि यह बात किस महात्मा ने बतलायी थी। राजा के विशेष आग्रह करने पर मन्त्री ने गुरु जी के आगमन का समाचार सुनाया और राजा ने प्रमुदित होकर उन्हें महल में बुलवाया। सूरीश्वर पधारे। राजा ने उनका सम्मान किया और कहा कि—उस समय आपने हमारे प्राण बचाये और यहाँ आने पर आपने हमें दर्शन भी नहीं दिये। लीजिए अब आप अपना राज्य संभालिए। सूरि ने कहा—राजन् ! अगर आप कृतज्ञता स्मरण कर प्रत्युत्कार करना चाहते हैं, तो आप जैनधर्म स्वीकार कर उस धर्म का प्रचार करें। राजा ने शनैः शनैः उस आदेश का स्वीकार करने की प्रतिज्ञा की, इतने अल्पे समय में प्राणिभय, माताहार, असत्यभाषा, द्यूतव्यसन, वेश्यागमन, परधनहरण आदि का निषेध कर दिया। कुमारपाल के जीवन चरित से अवगत होता है कि उसने अन्तिम जीवन में पूर्णतया जैनधर्म स्वीकार कर लिया था।

कुमारपाल और हेमचन्द्र के मिलने के संबंध में डा० बुल्हर<sup>१</sup> ने बताया है कि हेमचन्द्र कुमारपाल से तब मिले, जब राज्य की समृद्धि और विस्तार हो गया था। डा० बुल्हर की उस मान्यता की आलोचना काञ्चानुद्यासन की भूमिका में डा० रत्नकाल पारिख ने की है और उन्होंने उस कथन को विवादास्पद सिद्ध किया है।<sup>२</sup>

जिन मण्डन ने कुमारपाल प्रबन्ध<sup>३</sup> में दोनों के मिलने की घटना पर प्रकाश

1 See Note 53 in Dr Bulher's Life of Hem chandra PP. 83-84.

2. See Kavyanushasan Introduction pp. cclxxxiii-cclxxxiv.

3. कुमारपाल प्रबन्ध पृ० १८-२२.

See the Life of Hemchandracharya, Hemchandra's own account of Kumarpal's Conversion pp. 32-40.

देखें—कुमारपाल प्रतिबोध पृ० ३. श्लो० ३००-४००.

तथा देखें—आचार्य विजयकल्लम सूरि के स्मारक ग्रन्थ के अन्तर्गत—हेमचन्द्राचार्य, एम नुं जीवन अनेककाल' शीर्षक गुजराती निबन्ध।



और कहा कि—हमारा विचार शीघ्र ही प्रयाण करने का है जिसे अनुष्ठय और गिरनार आदि महातीर्थों की भी यात्रा कर हम आपके पहुँचते २ देवस्तन पहुँच जावें। राजा ने यात्रा प्रारम्भ की। वे देवस्तन के निकट आ पहुँचे, परन्तु आचार्य हेमचन्द्र के दर्शन नहा हुए। पर जय नगर में राजा का प्रवेशोत्सव सम्पन्न किया जा रहा था उस समय सुरीश्वर भी उपस्थित थे। राजा ने बहुत भक्ति से सोमेश्वर के लिङ्ग की पूजा की और हेमचन्द्र से कहा कि यदि आपको कोई आपत्ति न हो तो आप भी त्रिसुदनेश्वर श्री सोमेश्वर देव का अर्चन करें। हेमचन्द्र ने यहाँ सोमेश्वर का अर्चन किया, निजनिर्मित श्लोकों द्वारा उनकी स्तुति की। कहा जाता है कि—हेमचन्द्र ने यहाँ राजा को साक्षात् महा देव के दर्शन कराये, जिसे राजा ने कहा कि महर्षि हेमचन्द्र सप्त देवताओं के अवतार और त्रिकालत्र हैं। इनका उपदेश मोक्षमार्ग को देने वाला है।

कुमारपाल ने जीवहिंसा का सर्वत्र निषेध करा दिया था। इनकी कुलदेवी कण्टेश्वरी देवी के मन्दिर में बलिदान होता था। आश्विनमास का शुक्लपक्ष आया तो पुजारियों ने राजा से निवेदन किया, कि यहाँ पर सप्तमी को ७०० पशु और सात मैसे, अष्टमी को ८०० पशु और धाट मैसे तथा नवमी को ९०० पशु और ९ मैसे राज्य की ओर से देवी को चढाये जाते हैं। राजा इस बात का सुनकर हेमचन्द्र के पास गया और इस प्राचीन कुलचार का दर्शन किया। हेमचन्द्र ने कान में ही राजा को समझा दिया, जिसे सुनकर उसने कहा—अच्छा ! जो दिया जाता है, वह हम भी यथाक्रम देंगे। तदनन्तर राजा ने देवी के मन्दिर में पशु भेजकर उनको ताले में बन्द करा दिया और पहरा रत दिया। प्रातः काल स्वयं राजा आया और देवी के मन्दिर के ताले खुलवाए। वहाँ सप्त पशु आनन्द से लेटे थे। राजा ने कहा—देखा, ये पशु मने देवी को भेंट किए थे, यदि इन्हें पशुओं की इच्छा होती, तो वे इन्हें खा लेतीं। परन्तु उन्होंने एक को भी नहीं खाया। इससे स्पष्ट है कि उन्हें मांस अच्छा नहीं लगता, तुम उपासकों को ही यह माता है। राजा ने सब पशुओं को छुड़वा दिया। दशमी की रात को राजा को कण्टेश्वरी देवी स्वप्न में दिखाई दी और शाप दे गई, जिसे वह काटी हा गया। उदयन ने बलि देने की सलाह भी दी, परन्तु राजा ने किसी के प्राण देने की अपेक्षा अपने प्राण देना अच्छा समझा। जय आचार्य हेमचन्द्र को इस भक्त का पता लगा, तो उन्होंने जय मण्डित करके दे दिया, जिसने राजा का दिव्य रूप हाँ गया।<sup>१</sup> इस प्रकार हेमचन्द्र की महत्ता

१. देखें—कुमारपालेन अमारी प्रारब्धाया आश्विन सुदिपद समागाम् ।

... राजादोगुणुदेव इव दिव्यरूपं सम्पन्ना भक्तश्च समधिक्म् ।

के सवध में अनेक आख्यान उपलब्ध होते हैं ।

कहा जाता है कि काशी से विश्वेश्वर नामक कवि पागण आया और वहाँ हेमचन्द्र की मित्रत्वमिति में सम्मिलित हुआ । उसने कहा “पातु वो हैमगोपालः कम्बल दग्धमुद्रहन्” अर्थात् कम्बल और लठ्ठ लिए हुए हेम (चन्द्र) खाल तुम्हारी रक्षा करें । इतना कह चुप हा गया । कुमारपाल भी वहा विद्यमान थे । इस वाक्य को निन्दा विधायक समझ उनकी त्वारी चढ गयी । कवि को तो वहाँ पर लोगों के हृदय और प्रसिद्ध की परीक्षा करनी थी, उसने यह दृश्य देख तुरन्त अधोलिखित श्लोकार्थ पटा—“पडदर्शनपनुग्राम चारयन् जैनगोचरे”१ । अर्थात् वह गोपाल, जो पडदर्शन रूपी पशुओं को जैन तृणक्षेत्र में हाँक रहा है । इस उत्तरार्थ से उसने समस्त अर्थों का सतुष्ट कर दिया ।

### हेमचन्द्र की रचनाएँ—

हेमचन्द्र की रचनाओं की संख्या त्रिकोटि—तीन करोड बनायी जाती है । यदि इसे हम अतिशयोक्ति मान लें, तो भी १०० से अधिक इनकी रचनाएँ होंगी । इन्हें कल्किल सर्वज्ञ की उपाधि से भूषित किया गया था । इनकी रचनाओं के देखने से यह स्पष्ट है कि हेमचन्द्र अपने समय के आद्वितीय विद्वान् थे और अमल साहित्य क इतिहास में किसी दूसरे ग्रन्थकार की इतनी अधिक मात्रा में विविध विषयों की रचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं । महत्त्वपूर्ण रचनाएँ निम्न प्रकार हैं —

( १ ) पुराण—त्रिप्रतिशालका पुरुष चरित ।—इसमें इन्होंने संस्कृत में काव्यशैली द्वारा जैनधर्म के २४ तीर्थङ्कर, १२ चक्रवर्त्तियों, ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण एवं ९ बलदेव इन ६२ प्रमुख व्यक्तियों के चरित का वर्णन किया है । यह ग्रन्थ पुराण और काव्य कला दोनों ही दृष्टियों से उत्तम है । परिदिष्ट पर तो भारत के प्राचीन इतिहास की गवेषणा में बहुत उपयोगी है ।

( २ ) काव्य—कुमारपाल चरित, इसे द्वाधाश्रय काव्य भी कहते हैं । इस नाम के दो कारण हो सकते हैं । प्रथम कारण तो यह है कि—यह संस्कृत और प्राकृत दोनों ही भाषाओं में लिखा गया है । द्वितीय कारण यह भी सम्भव है कि—इस कृति का उद्देश्य अपने समय के राजा कुमारपाल का चरित वर्णन करना है और इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य अपने संस्कृत और प्राकृत व्याकरण के सूत्र क्रमानुसार ही नियमों के उदाहरण प्रस्तुत करना है । यह कितना कठिन कार्य है ? इसे सहृदय काव्यरसिक जन ही जान सकते हैं ।

( ३ ) व्याकरण—शब्दानुशासन । इसमें आठ अध्याय हैं, प्रथम सात

अध्यापों में संस्कृत भाषा का व्याकरण है और आठवें अध्याप में प्राकृत भाषा का। संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं के लिए यह व्याकरण उन्नयोगी और प्रामाणिक माना जाता है।

(४) कोष—इनके चार प्रसिद्ध कोष हैं।

(१) अग्निधानचिन्तामणि (२) अनेकार्थसंग्रह (३) निघण्टु और (४) देशीनाममाला। प्रथम—अमरकोष के समान संस्कृत की एक वस्तु के लिए अनेक शब्दों का उल्लेख करता है। दूसरा—कोष, एक शब्द के अनेक अर्थों का निरूपण करता है। तीसरा—अग्ने नामानुसार कल्पतिशान्त्र का कोष है एवं चौथा ऐसे शब्दों का कोष है, जो उनके संस्कृत एवं प्राकृत व्याकरण से सिद्ध नहीं होते और जिन्हें इसी कारण देशी माना है। प्राकृत, अपभ्रंश एवं आधुनिक भाषाओं के अध्यापन के लिए यह कोष बहुत ही उन्नयोगी और महत्वपूर्ण है।

(५) अलङ्कार—काव्यानुशासन। यह अपने विषय का वाङ्मोहाङ्ग पूर्ण ग्रन्थ है। ग्रन्थकार ने स्वयं ही छन्द, अलङ्कार चूनामणि नाम की वृत्ति एवं विद्वेक नाम की टीका लिखी है। इसमें मम्मट की अपेक्षा काव्य के प्रयोजन, हेतु, अर्थालङ्कार, गुण, दोष, पानि आदि सिद्धान्तों पर हेमचन्द्र ने विस्तृत और गहन अध्यापन प्रस्तुत किया है। 'दृष्टं साधर्म्यमुपमा' यह उपमा का लक्षण कितने अपनी ओर आकृष्ट न करेगा।

(६) छन्द—छन्दोऽनुशासन। इसमें संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश साहित्य के छन्दों का निरूपण किया गया है। मूल ग्रन्थ सूत्रों में ही है। आचार्य ने स्वयं ही इसकी वृत्ति भी लिखी है। इन्होंने छन्दों के उदाहरण अपनी मौलिक रचनाओं द्वारा दिये हैं। इसमें रसगंगाधर के समान सब कुछ आचार्य का अपना है।

(७) न्याय—प्रमाणमोमाञ्ज। इसमें प्रमाण और प्रमेय का सञ्चित विवेचन विद्यमान है। अनेकान्तवाद, प्रमाण, पारमार्थिक प्रत्यक्ष की तात्त्विकता, इन्द्रियदान का व्यापारक्रम, परोक्ष के प्रकार, अनुमानादयों की प्रायोगिक व्यवस्था, कथा का स्वरूप, निष्पत्त्यदान या व्यवसाय व्यवस्था, प्रमेय प्रमाता का स्वरूप एवं सर्वज्ञत्व का समर्थन आदि मूल मुद्दों पर विचार किया गया है।

(८) योगशास्त्र—हेमचन्द्र ने योगशास्त्र पर बड़ा ही महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा है। इसमें उन्मथर्म ही आध्यात्मिक शब्दानुशासन का प्रयोग किया है। इसकी शैली फलश्रुति के योगशास्त्र के अनुसार ही है; पर नियम और दानक्रम दोनों में मौलिकता और मिश्रता है।

( ९ ) स्तोत्र—द्वारिकाएँ । स्तोत्र साहित्य की दृष्टि से हेमचन्द्र की उत्तम कृतियाँ हैं । वीनराग और महारंग स्तोत्र भी सुन्दर माने जाते हैं ।

हेमचन्द्र का व्यक्तित्व और अवसान—

हेमचन्द्र का व्यक्तित्व बहुमुणी था । ये एक ही साथ एक महान् सन्त, शार्ङ्गिक विद्वान्, वैनाकरण, दार्शनिक, काव्यकार, योग्य लेखक और लोक चरित्र के अमर सुधारक थे । इनके व्यक्तित्व में स्वर्णिम प्रकाश की वह आभा थी जिसके प्रभाव से सिद्धराज जयसिंह और कुमारपाल जैसे सम्राट् आकृष्ट हुए । ये विश्वचन्द्र के पौत्र और अपने युग के प्रकाशस्तम्भ ही नहीं अपि तु युग-युग के प्रकाशस्तम्भ हैं । उस युगपुरुष को साहित्य और समाज सर्वदा नतमस्तक हो नमस्कार करता रहेगा ।

कुमारपाल ३० वर्ष ८ महीने और २७ दिन राज्य करके सन् ११७४ में मुरपुर सिंगारे । इनके छ महीने पूर्व हेमचन्द्र ने ऐर्हकलीग समाप्त की थी । राजा को इनका विषाग असह्य रहा । हेमचन्द्र के शरीर को मर्म को इतने लागी ने अपने मन्त्रक पर लगाया कि अन्त्योष्ट्रिया के स्थान पर एक गद्दा हो गया, जा हेमसाइड नाम से प्रसिद्ध हुआ ।



## द्वितीय अध्याय

### संस्कृत शब्दानुशासन का एक अध्ययन

व्याकरण के क्षेत्र में हेमचन्द्र ने पाणिनि, भट्टानि दीक्षित और भट्टि का कार्य अकले ही किया है। इन्होंने सूत्र, वृत्ति के साथ प्रक्रिया और उदाहरण भी लिखे हैं। संस्कृत शब्दानुशासन का अन्वेषण और प्राकृत शब्दानुशासन एक अध्याय में, इस प्रकार कुल आठ अध्यायों में अपने अणुशब्दानुशासन को समाप्त किया है।

संस्कृत शब्दानुशासन के उदाहरण संस्कृत द्वयाक्षयकाव्य में और प्राकृत शब्दानुशासन के उदाहरण प्राकृत द्वयाक्षय काव्य में लिखे हैं। प्रस्तुत अध्याय में संस्कृत शब्दानुशासन का एक अध्ययन उपस्थित किया जाता है —

#### प्रथमाध्याय • प्रथम पाद—

प्रथम पाद का सबसे पहिला सूत्र 'अहम्' १।१।१ है। यह मङ्गलार्थक है। इस पाद का दूसरा महत्त्वपूर्ण सूत्र 'सिद्धिं स्याद्वादात्' १।१।२ है। इस सूत्र द्वारा हेम ने समस्त शब्दों की सिद्धि—निष्पत्ति और शक्ति अनेकान्तवाद द्वारा ही स्वीकार की है।—वास्तविकता भी यही है। शब्दों की सिद्धि—निष्पत्ति और शक्ति का परिचय स्याद्वाद सिद्धान्त द्वारा ही होता है, एकान्त द्वारा नहीं। 'लघात्' १।१।३ सूत्र द्वारा हेम ने व्याकरण शास्त्र के लिए लौकिक व्यवहार की उपयोगिता पर प्रकाश डाला है। १।१।४ सूत्र से सामान्य सहाओं का विवेचन प्रारम्भ होता है। इस पाद में निम्नलिखित संज्ञाएँ प्रधान रूप से परिगणित की गई हैं।

१ स्वर २ ह्रस्व ३ दीर्घ ४ प्लुत ५ नामी ६ समान ७ सन्ध्यक्षर ८ अनुस्वार  
९ विसर्ग १० व्यञ्जन ११ घुट् १२ वर्ग १३ अघोष १४ घोषवत् १५ अन्तर्य  
१६ शिट् १७ स्व १८ प्रथमादि १९ विभक्ति २० पद २१ वाक्य २२ नाम  
२३ अव्यय और २४ संख्यादत् ।

( १ ) औदन्ता स्वरा १।१।४ । ( २ ) एकद्विनिमात्रा ह्रस्वदीर्घप्लुता १।१।५ । ( ३ ) अनर्गा नामी १।१।६ । ( ४ ) लृदन्ता समाना १।१।७ । ( ५ ) ए ऐ ओ औ सन्ध्यक्षरम् १।१।८ । ( ६ ) अ अ अनुस्वारविसर्गम् १।१।९ । ( ७ ) कादिर्व्यञ्जनम् ( ८ ) अघञ्जमान्तस्थो घुट् १।१।११ । ( ९ ) पञ्चमो वर्ग १।१।२० । ( १० ) आद्यद्वितीयशपला अघोषा १।१।२३ । ( ११ ) अन्यो घोषवान् १।१।२४ । ( १२ ) यत्न अन्तर्या १।१।२५ । ( १३ ) अ अ अघोष शपसा शिट् १।१।२६ । ( १४ ) एत्वन्त्यानास्यप्रयत्न स् १।१।२७ । ( १५ ) स्वीञ्जमौशान्भ्या १।१।२८ । ( १६ ) स्यादि विभक्ति १।१।२९ । ( १७ ) तदन्त पदम् १।१।३० । ( १८ ) सन्दिशपनाख्यात वाक्यम् १।१।३६ । ( १९ ) अघातुविभक्तिवाक्यमर्थदत्ताम् १।१।३७ । ( २० ) एत्वन्तुकरान्त १।१।३९ ।

इत संज्ञाओं में पद, अव्यय एवं संख्यान् इन् तीन सज्ञाओं का अलग अलग एक-एक प्रकरण है अर्थात् विशेष रूप में भी इन सज्ञाओं का विवेचन किया गया है, जैसा सामान्य रूप से स्याद्यन्त आर त्वाद्यन्त को ( १।१।२० ) पद कह देने के पश्चात् मवदीय आदि में निहित मन्त् आदि का पदत्व विधान किया गया है। अव्यय संज्ञा के सामान्य विवेचन करने के अनन्तर— १-१-३१-१-१-३६ सूत्रों तक विशेष रूप से अन्य सज्ञा का निरूपण किया गया है। इसी प्रकार संख्यावन् संज्ञा का कथन सामान्य रूप से कर दिया गया है, किन्तु बाद में पाद के अन्तिम सूत्र १।१।४२ तक विशेष रूप से इस सज्ञा की विवेचना की गई है। उस वृत्ति में स्वयं ही आचार्य हेम ने उक्त सज्ञाओं का स्पष्टीकरण सोदाहरण किया है। अतएव स्पष्ट है कि इस पाद में केवल सज्ञाओं का निरूपण किया गया है। आगत सभी सज्ञाएँ सामान्य ही हैं, केवल कुछ संज्ञाओं का वर्तन विशेष रूप में आया है।

### द्वितीय पाद—

सज्ञा प्रकरण के अनन्तर लाक्षणानुसार वर्ग कार्यों का विवेचन होना चाहिए; फलतः हेम ने भी यही क्रम रखा है। इस पाद में सर्वप्रथम दीर्घ सन्धि का कथन है। तत्पश्चात् क्रम से गुण, वृद्धि, पूर्वगुम्, य्, अयादि, परलुक्, अक्सन्धि, असन्धि एवं अनुनासिक इन विभिन्न स्वर सन्धियों का सन्दर्भ विवेचन किया गया है।

१।२।३ । सूत्र द्वारा र्, लृ को भी स्वर माना गया है। पाणिनीय शास्त्र में अर्वा और ऋ के संयोग से गुण और वृद्धि अ तथा आ के रूप में होती है तथा उनके साथ अन्त में 'र' लगाने के लिए 'उरपरपर' १।१।५१ एक पृथक् सूत्र लिखा है, किन्तु हेम ने एक ही सूत्र द्वारा संख्या से कार्य चला लिया है। पाणिनि ने ए अव्यय ओ के पूर्व रहने वाले अ को ए, ओ में विच्यन के लिए पर रूप तथा उसके बाद रहने वाले 'अ' को ए, ओ में द्वितीकीकण के लिए पूर्व रूप सज्ञा दी है किन्तु हेम ने दोनों अवस्थाओं में ही अ' को लुक् कर दिया है। हेम को यह सरलता इनकी एक दृष्टि उद्भव है।

अयादि सन्धि के लिए पाणिनि का 'एचोऽपवायाः' ६।१।७८ एत ही सूत्र है पर हेम ने इसके दा टुकड़े कर दिये हैं—एदोताऽयाच् १।२।२३ तथा ओदोतोऽयाच् १।२।४। पाणिनि ने 'आ' के स्थान पर 'अन्' का विधान किया है और ङ को अनुबन्ध मानकर हटाया है। हेम ने सीधे 'आ' के स्थान पर 'अन्' का दिया है। प्रायः हेम अनुबन्ध के हटाने से सर्वत्र दूर रहे हैं। उनको पहुँचने साथे प्रकृति और प्रत्यय के उस अक्षर पर हानो है, जहाँ विना

किसी भी प्रकार का विचार किये साधनिका की प्रक्रिया का उपयोग हो जाता है।

जहाँ कोई सन्धि नहीं होती, वहाँ ज्यों का त्यों रूप रह जाता है। इसे पाणिनि ने प्रकृति भाव कहा है, किन्तु हेम ने इसे असन्धि कह कर सन्धियों का निषेध कर दिया है<sup>१</sup>।

तृतीय पाद —

द्वितीय पाद में २२ सन्धियों का विवेचन किया गया है। क्रमानुसार इस तृतीय पाद में व्यञ्जन सन्धि का निरूपण किया गया है। इस प्रसंग में अनुनासिक, चतुर्थ व्यञ्जन, छ-विधि आदि विधियों के कथन के पश्चात् विसर्ग सन्धि के कतिपय नियम '२ क ख प फ या <रु><पीः' १।३५; 'शपसे शपसं वा' १।३।६ एवं चटते द्वितीये' १।३।७ सूत्रों में बताये गये हैं। १।३।८ सूत्र से पुनः व्यञ्जन सन्धि का अनुक्रमण आरम्भ हो जाता है। इस प्रसंग में यह बात उल्लेखनीय है कि पाणिनि ने कहीं २ अन्तिम न तथा म को र करके और उसका विसर्ग बनाकर तत्र 'स' किया है। हेम ने सीधे न् और म् के स्थान पर 'स' आदेश कर दिया है। कहीं कहीं हेम ने 'न्' के स्थान पर 'र' भी किया है यथा 'ननः पेपु वा' १।३।१० सूत्र द्वारा 'नृन् पाई' की सिद्धि के लिए 'न्' के स्थान पर 'र' करना पड़ा है। हम हम की इस संप्रदाय में सरलीकरण की प्रक्रिया का पूरा उपयोग पाते हैं। कुछ दूर तक व्यञ्जन सन्धि के प्रचलित रहने के अनन्तर पुनः विसर्गसन्धि की बातें आ जाती हैं। इस प्रकरण के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि हेमचन्द्र विसर्ग सन्धि का अन्तर्भाव व्यञ्जन सन्धि में ही करते हैं। अतोऽत रो रुः १।३।२० तथा घोपवात् १।३।२१ सूत्रों से स्पष्ट है कि इन्होंने विसर्ग को व्यञ्जन के अन्तर्गत ही माना है और इसी कारण व्यञ्जन सन्धि के विवेचन में साथ ही विसर्ग सन्धि की बातें भी बतला दी गई हैं। इसके अनन्तर इस पाद में व्यञ्जन लुक् प्रकरण आया है। इसमें 'य्' और 'व्' का लोप विधान है। ईपत्सृष्टर शब्दों के लोप का विधान भी इसी पाद में वर्णित है। इसके अनन्तर य विधान, छ विधान, द्वित्व विधान, टलोप विधान, सलोप विधान, विपर्यय, विसर्गविधान, तर्सा का चर्सा विधान, तर्सा का टर्सा विधान, तर्सा का ल विधान एवं स का श और पश्व विधान आदि प्रकरणाश्च आये हैं। इनमें द्वित्व विधान की प्रक्रिया बहुत ही विन्यूत है। इस पाद में 'शिटयाशस्य द्वितीयो वा' १।३।१९ द्वारा 'रुनीरम्, धीरम् तथा अफरा, अनराः जैसे शब्दों की सिद्धि प्रदर्शित की है। हिन्दी का 'नीर' शब्द हेमचन्द्र के 'रुनीरम्' के बहुत नजदीक है। अतएव होता है कि हेमचन्द्र के समय में इस शब्द का प्रयोग होने लगा था।

हेम ने इस पाद में व्यञ्जन और विसर्ग इन दोनों सन्धियों का सम्मिलित रूप में निवेचन किया है। इसमें कुछ सूत्र व्यञ्जन सन्धि के हैं तो कुछ विसर्ग के और आगे बटने पर विसर्ग सन्धि के सूत्रों के पश्चात् पुनः व्यञ्जन संधि के सूत्रों पर लौट आते हैं अनन्तर पुनः विसर्ग सन्धि की बातें बतलाने लगते हैं। सामान्यतया देखने पर यह एक गड़बड़ जाला दिखाई पड़ेगा, पर वास्तविकता यह है कि हेमचन्द्र ने व्यञ्जन सन्धि के समान ही विसर्ग सन्धि को व्यञ्जन सन्धि ही माना है, यन् दोनों का एक जाति या एक ही कोटि का स्वरूप है। दूसरी बात यह है कि प्रायः यह देखा जाता है कि व्यञ्जन सन्धि के प्रसंग में आक्षरकृतानुसार ही विसर्ग कार्य का समावेश हो जाता करता है। अतएव इस निष्कर्ष का मानने में कोई आपत्त नही होनी चाहिए कि हेम ने विसर्ग को प्रधान न मानकर 'र' को ही प्रधान माना है तथा स और र इन दोनों व्यञ्जनों के द्वारा विसर्ग का निर्वाह किया है। अतः इस एक ही पाद में सम्मिलित रूप से दोनों—विसर्ग और व्यञ्जन सन्धियों का निवेचन उचित संगत और वैज्ञानिक है। निम्न को संक्षिप्त करने की इस प्रक्रिया में हेम ने बलुनः एक नयी दिशा की ओर संकेत किया है। शब्दानुशासन की दृष्टि से हेम का यह अनुशासन नितान्त वैज्ञानिक है।

### चतुर्थ पाद—

इस पाद के अंत आः स्यादौ जस भ्याम्ये' १।४।१ सूत्र से 'स्यादन्त प्रत्या' का प्रारम्भ होता है। सर्वप्रथम अकारान्त पुल्लिङ्ग शब्दों की सिद्धि का विधान है। इसके पश्चात् इकारान्त, उकारान्त, ऋकारान्त और इसके अनन्तर व्यञ्जनान्त शब्दों का निपटन किया गया है। इस प्रकरण की एक प्रमुख विशेषता यह है कि एक शब्द के सभी विभक्तियों के समस्त रूपों की पूर्णतया सिद्धि न बनाकर सामान्य विशेष भाव से सूत्रों का निन्दन किया गया है; जैसे अकारान्त शब्दों के कुछ विभक्ति रूपों का सिद्धि प्रकार बताया गया है, इसके बाद बीच में ही इकारान्त, उकारान्त शब्दों के रूप भी उक्त विभक्तियों में ही बतला दिने गये हैं। अभिप्राय यह है कि अकारान्त, इकारान्त, उकारान्त और ऋकारान्त शब्दों की जिन २ विभक्तियों में समान कार्य होता है, उन २ विभक्तियों में शब्द रूपों की साधनिका समान रूप से बतला दी गयी है। जब विशेष कार्य का अन्तर आया है तब विशेष रूपों का विधान कर दिया गया है। उदाहरणार्थ 'अन्' विभक्ति के संयोग से रूप बनाने के लिए पहिले निपटन बनाना छोड़ दिया गया है और देवन्, मालान्, मुनेन्, नदीन्, चायुन् एवं वयून् आदि शब्दों की सिद्धि के लिए 'समानादयो ऽतः' १।४।४६ सूत्र लिखा है। इसी प्रकार 'दीर्घानान्यतिष्ठतसुप्.' १।४।४७ सूत्र द्वारा तिष्ठ, चतसृ, घान्त और रान्त शब्दों को छोड़कर नाम के बाद में रहने



पर पूर्ण स्वर को दीर्घ बनाने का विधान किया है। इस नियम के अनुसार ज्ञानान्, सुनीनान्, गाधूनान्, नितूनान् प्रभृति रूप सिद्ध होते हैं। इसके पश्चात् 'नुर्वा' १।४।४८ सूत्र से वैकल्पिक दीर्घ होता है। जैसे नृगान्, नृगान् आदि। विशेष सूत्रों में अरवाद सूत्र भी परिगणित है। हेम की इस प्रक्रिया के कारण स्वान्त शब्दों के साथ व्यञ्जनान्त शब्दों का भी निपटन होता गया है, जैसे 'संख्या सायवे रहस्याहन् ङी वा' १।४।५० सूत्र स्वान्त शब्दों के मध्य में व्यञ्जनान्त शब्दों का भी निपटन करता है।

प्रथम अध्याय के तीन पादों में सन्धियों की चर्चा है। अतः श्रुतानुसार चतुर्थ पाद में शब्द रूपों की विवेचना की गई है। इसकी भी एक सामेय विशेषता यह है कि इस पाद में सूत्रों के आधीन आये हुए सन्धि नियमों का विवेचन किया गया है। यत्र शब्द सिद्धि के साथ सन्धि का सम्बन्ध बना रहता है। इसी कारण इस पाद में भी सन्धि की कतिपय बातें आयी हैं। वास्तविकता यह है कि प्रत्येक कार्य में सन्धि की आवश्यकता पड़ती ही है, अतः सन्धि नियमों की चर्चा करना इस पाद में भी आवश्यक था।

### द्वितीयाध्याय : प्रथम पाद—

इस पाद का आरम्भ 'त्रिचतुरस्तिष्ठत्सुखादौ' २।१।१ सूत्र द्वारा त्रिशब्द (त्र्यलिङ्ग) से होता है। इस पाद में इसी प्रकार के व्यञ्जनान्त शब्दों का अनुशासन किया गया है। त्र्यलिङ्ग त्रि और चतुर के अनन्तर ज्वा (जस्) अर्, रै तथा युष्मद् और अस्मद् शब्दों का अनुशासन किया गया है। यद्यपि जस् और युष्मद् के बीच "अस्" और "रै" शब्द का आ जाना कुछ संकटका सा है, किन्तु जब हेम की सूत्र प्रक्रिया पर दृष्टिगत करते हैं, तो हमें यह नितान्त उचित प्रतीत होता है, कि उक्त शब्दों का बीच में आना आनुप्रसङ्गिक नहीं है बल्कि प्रासङ्गिक है। इन शब्दों के पश्चात् इदम्, तत्, अदस् शब्दों की प्रक्रिया का निरूपण है। इसके पश्चात् इषह और दीर्घ विधान उपलब्ध होता है। यह प्रकरण भी व्यञ्जनान्त शब्दों की ओर संकेत बनाये रखने की सूचना देता है। हेम ने पहिले निना प्रकरण के जो सूत्र लिखे हैं, उनका कारण यह है कि उक्त सूत्रों में उदाहरण (स्वतन्त्र) दे दिये गये हैं। और जब व्यञ्जनान्त शब्दों का प्रकरण आरम्भ हुआ है, उस समय उनकी प्रक्रिया का निर्वाह किया गया है। कुछ सूत्र प्रकरण निरुद्ध ने प्रणीत होते हैं, किन्तु संगति निर्वाह के लिए उनका आना भी आवश्यक है। यही कारण है कि इस पाद में करी २ तिङन्त, वृद्धन्त और उद्धित के सूत्र भी बीच में टक पड़ते हैं। इसका कारण यही है कि साधनिका के लिए उपर्युक्त प्रकार के सूत्रों की आवश्यकता पहले ही प्रतीत हुई, अतः ये सूत्र अप्रासङ्गिक जैन आनालित होते हैं। मूल बात यह है कि इस पाद में

व्यञ्जनान्त शब्दों का अनुशासन लिखा गया है और इसमें सहायक तद्धित, वृद्धन्त और निवृद्धन्त के कुछ सूत्र भी आ गये हैं।

### द्वितीय पाद—

इस पाद में कारक प्रकरण है। इसमें सावधानी से सभी कारक-नियमों को निवृद्ध करने की चेष्टा की गई है। कारक की परिभाषा देते हुए “क्रियाहेतुः कारकम् २।२।१ क्रियाया निमित्तं कर्त्रादिकारकं स्यात्। अन्वर्थान्नयणाच्च निमित्तत्वमात्रेण हेत्वादेः कारकसंज्ञा न स्यात्।” लिखा है। इससे स्पष्ट है कि हेम ने पाणिनि के समान विभक्त्यर्थ में ‘कारके’ १।४।२३ सूत्र द्वारा कारक का अधिकार नहीं माना; बल्कि—आरम्भ में ही कारक की परिभाषा लिख कर कारक प्रकरण की घोषणा की। हेम ने कर्म कारक की परिभाषा में ‘कर्तुर्व्याप्य कर्म’ २।२।३ कर्त्रा क्रियया याद्विशेषेणाप्तुमिष्यते तत्कारकं व्याप्य कर्म च स्यात्। तत्रेवा निर्वर्त्यं विकार्यं व्याप्यं च” अर्थात् निर्वर्त्य, विकार्य और व्याप्य इन तीनों अर्थों में कर्म कारक माना है। पाणिनि ने ‘कर्तुरीप्सितनमं कर्म १।४।४९ कर्तुः क्रियया आप्तुमिष्टतमं कारक कर्म संज्ञं स्यात्” अर्थात् कर्त्ता क्रिया के द्वारा जिस द्रष्टव्य को प्राप्त करना चाहता है उसको कर्म संज्ञा बनायी है। इन दोनों संज्ञाओं की तुलना करने से ज्ञान होता है कि हेम ने पाणिनि के द्रष्टव्य का अन्तर्भाव व्याप्य में कर लिया है। विकार्य और निर्वर्त्य के लिए पाणिनि को अगले सूत्रों में व्यवस्था देनी पड़ी है। हेम ने इस एक सूत्र द्वारा ही सब कुछ सिद्ध कर दिया है।

इस प्रकरण में ‘अन्वन्वध्याङ्वसः २।२।२१ सूत्र पाणिनि का १।४।४६ ङों का त्यो रखा है। स्वतन्त्रः कर्त्ता २।२।२, साधकतमं करणम् २।२।२४ हेम के ये दोनों सूत्र पाणिनि के १।४।५४ और १।४।४२ सूत्र हैं। शब्दानुशासन की दृष्टि से हेम ने उन सभी अर्थों में विभक्तियों का विधान प्रदर्शित किया है, जिन अर्थों में पाणिनि ने। हेम के इस प्रकरण में एक नई बात यह आई है कि बहुवच भाव करने वाले सूत्रों ( २।२।१२१, २।२।१२२, २।२।१२३ तथा २।२।१२४ ) को कारक प्रकरण में स्थान दिया है। पाणिनि ने इस बहुवच भाव को शेष प्रकरण में स्थान दिया है, कारक में नहीं। यतः पाणिनि की दृष्टि में बहुवच भाव कारकीय नहीं है, पर हेम ने इसे कारकीय मानकर अपनी वैज्ञानिकता का परिचय दिया है। क्योंकि एक वचन या द्विवचन के स्थान पर बहुवचन का होना अर्थात् सि ( पाणि० सु ), ओ के स्थान पर जस का हो जाना कारकीय जैसा ही प्रतीत होता है। अतः हेम ने उक्त चारों सूत्रों को कारक पाद के अन्त में तत्त्वदृष्ट होने से ग्रथित कर दिया है। इस बहुवच भाव का संबंध आगे वाले पादों से नहीं है। इससे स्पष्ट है कि हेमचन्द्र ने बहुवच भाव को भी कारक जैसा विधान ही माना है।

तृतीय पाद—

इस पाद में प्रधानरूप से सत्व, पत्व और णत्व त्रिधि का प्रतिपादन किया गया है। सत्वविधि 'नमस्पुरसो प्रातेः करपफि रः सः' २।३।१ से आरम्भ हो कर 'सुगः स्यसनि' २।३।६२ सूत्र तक चलती रहती है। इस प्रकरण में र का स—नामिनस्तयोः प २।३।८ से २।३।६२ तक स के स्थान पर पत्व-विधि का कथन किया गया है। इस विधि द्वारा अव्यय, समास, क्रिया के संबंध पदाभ्यन्तरीय, स्वतन्त्रपदों, उपसर्गसन्निधियुक्त, पदादि, धात्वादि, धातुगत उपसर्ग के संयोग एवं अर्थ विशेष बोधक धातुओं में र एवं स का पत्वविधान किया गया है।

इसके पश्चात् णत्वविधान आरम्भ होता है। यह विधान २।३।६३ से २।३।९७ तक चलता है इसमें समास, कृदन्त, तद्धित, तिङन्त, उपसर्ग अव्यय आदि के संयोग और उनकी भिन्न भिन्न स्थितियों में णत्वभाव दिखाया गया है। इसके पश्चात् इस पाद में 'अरल्लरूपोऽऋषीटांदपु' २।३।९९ से 'परैर्धाऽङ्क्यागे' २।३।१०३ सूत्र तक र का लत्व विधान सिद्ध किया गया है। इस विधान का आधार भी उपसर्गयोग, विशेष क्रिया वाची शब्द एवं अन्य कतिपय शब्द हैं। अनन्तर 'ऋफिडादीना ढञ्चलः' २।३।१०४ सूत्र में ऋफिड, ऋतक, कपरिका के ऋ, र और ङ का लत्व विधान दिखाया है। इस पाद का अन्तिम सूत्र 'नपा दीना यो ऋः' २।३।१०५ प को वैकल्पिक रूप से ऋ होने का विधान करता है और इसके उदाहरणों में जवा, ज्वा, पारावत्—परिपत्. शब्दों को उपस्थित किया गया है।

सक्षेपतः इस पाद में पत्व, णत्व, लत्व एवं दत्व विधियों का प्ररूपण किया गया है। पत्व २।३।६२ में समाप्त हो कर णत्व त्रिधि २।३।९७ तक चलती है। इस प्रकरण के अनन्तर 'य सोऽष्ट्यैष्ठि वप्य्य' २।३।९८ सूत्र पुनः पत्व विधान का आ गया है। बीच में इस सूत्र के आने का क्या हेतु है? हेम ने इस सूत्र को णत्व विधि के अन्त में क्यों रखा है? हमें इसके दो कारण मालूम पन्ते हैं। पहला तो यह है कि—इस प्रकरण में पत्व त्रिधि को ही प्रधान माना गया है अतः णत्व विधि का कथन के अनन्तर उपसर्गार रूप से पत्व विधायक सूत्र लिखा है। दूसरा कारण यह है कि इस पत्व विधायक सूत्र का पूर्वकर्ता 'पाठे धात्वादेशों न २।३।९७ सूत्र है और इसकी अनुवृत्ति २।३।९८ सूत्र में करनी है। यद्यपि पहला णत्व विधायक है और दूसरा पत्व विधायक है तो भी दोनों का सम्बन्ध यह है कि—दोनों के भिन्न भिन्न कार्य होने पर भी निमित्त समान है। अतः आवश्यक था कि दोनों को एक साथ रखा जाय—पत्व प्रकरण में या णत्व प्रकरण में। अतः प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि ऐसी अवस्था में णत्व विधायक सूत्र को ही

एत्व प्रत्यय में क्यों नहीं रूप दिया ? इसका उत्तर स्पष्ट है—उक्त एत्व विधायक सूत्र के जा निमित्त हैं, उनके कुछ अंशों के लिए एत्वविधायक सूत्र अपवाद भी है। जैसे २।३।१८ सूत्र 'ए', 'इति' तथा 'एक' में महा ल्याता है। तीसरी बात यह भी हो सकती है कि सम्भवतः हम न २।१।१८ को सूत्र विधायक मानकर एत्व और एत्व दोनों प्रकरणों के अन्त में लिया और पूर्व सूत्र से सम्बद्ध भी कर दिया। निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि यह पाद बहुत मौलिक और टोस है। 'सन' मभी प्रकाश की सूत्र, एत्व एत्व, रूप और क्व विधियों का प्रतिपादन किया गया है। शब्दानुशासन की उक्त प्रक्रिया को एक ही पाद में एक साथ क्रमबद्ध अर्थात् हेमचन्द्र ने शब्दविज्ञानसुभों का मार्ग बहुत ही सरल और सुकर कर दिया है। हमारी दृष्टि में यह पाद बहुत ही महत्वपूर्ण है।

### चतुर्थ पाद—

इस पाद में स्त्रीप्रत्यय प्रकरण है। इसमें सभी स्त्रीप्रत्ययों का अनुशासन किया गया है। स्त्रीप्रत्यय की समस्त विधे और प्रक्रियाओं को बतलाने वाले सभी सूत्र इस एक ही प्रकरण में आ गए हैं। स्त्रीप्रत्यय की सहायता करने वाले कुछ तद्धित के सूत्र भी आ गये हैं किन्तु उन सूत्रों का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। स्त्रीप्रत्ययों के सहायक रूप में ही उन्हें उपस्थित होना पड़ता है। जैसे २।४ सूत्र 'य' का लोप करने के लिए आया है अन्यथा मनुष्य शब्द से स्त्रीप्रत्ययान्त रूप मानुषी कैसे बन सकता था। 'मूर्यागमस्ययारीय च' २।४।२१ से २।४।२५ सूत्र तक लुक् करने वाले सूत्रों से स्त्रीप्रत्यय का कोई सम्बन्ध नहीं है; पर जब लुक् प्रकरण आया तो उस सम्बन्धी सभी सूत्रों को यहाँ लिख दिया गया है। इसके अनन्तर २।४।२६ सूत्र में २।४।२७ सूत्र तक ह्रस्व का प्रकरण आ जाता है। इस प्रकरण का कारण भी पूर्वोक्त ही है। तदनन्तर इकार का प्रकरण आरम्भ होता है, यह प्रकरण सामान्य या परम्परा स्त्रीप्रत्ययान्त शब्दों की सिद्धि में सहायक है। अनेक स्त्रीप्रत्ययान्त शब्द इसी प्रकरण से सिद्ध होते हैं। यथा स्त्रिका, स्त्रका, त्रिका, त्रका, अजिका, अजका, पुत्रिका, पुत्रका, बर्तिका, बर्तका आदि स्त्रीप्रत्ययान्त शब्दों का सातुच दिखाया गया है।

### तृतीय अध्याय : प्रथम पाद—

इस पाद के आरम्भ में धातु के पूर्व उदसर्ग के प्रयोग का निलना किया है 'अर्याद्यनुकरणेति ङाचञ्च गातः' ३।१।१ सूत्र से आरम्भ कर ३।१।१७ सूत्र तक गनिसञ्चानिधायक सूत्रों का प्रतिपादन किया है। इस पाद का प्रधान धर्म निधय समाव है। अत्र ३।१।१८ सूत्र सामान्य समाव विधायक है। पाणिनि ने सहस्रपा २।१।४ से जो काम किया है वही काम हेम ने उक्त सूत्र से किया है। यहाँ एक प्रश्न यह उठता है कि हेम ने इस सामान्य समाव विधायक सूत्र से पहले

गतिसंज्ञक सूत्रों को क्यों लिखा है? वाधारणतः विचार करने पर यह एक असां-  
गत ही प्रतीत होगी, पर विशेष रूप में ध्यान देने में यह स्पष्ट हो जाता है कि  
ये गतिसंज्ञाविधायक सूत्र भी समाससङ्ग हैं अतः इनके द्वारा पहले संज्ञानु-  
कार्य सम्पन्न किया गया है। 'गतिश्चान्यन्तत्पुष्पः' ३।१।४२ सूत्र गतिसंज्ञकों  
में समास का निषेध करता है। पाणिनि ने 'कृतातिप्रदायः' ३।१।१८ सूत्र में  
जो कार्य लिखा है, हेम ने उक्त सूत्र से वही कार्य साधा है।

इसके पश्चात् ३।१।१९ सूत्र से बहुव्रीहि समास का प्रकरण आरम्भ होता है।  
यहाँ कुछ भ्रमणों का प्रतीत होना है; यतः तत्पुरुष, अन्यपीमाव समासों  
का निरूपण इसके पश्चात् किया है। इसका समाधान स्वयं हेम ने ३।१।१८ की  
श्रुति में 'लक्ष्मामिदमधिकारश्च तेन बहुव्रीह्यादिसंज्ञमाऽभावं यत्रैवार्थता  
तत्रानेनैव समासः' अर्थात् बहुव्रीहि आदि के अभाव में जहाँ एकार्थता है, वहाँ  
३।१।१८ से समास होता है। अतः यह स्पष्ट है कि बहुव्रीहि समास करने वाले सूत्र  
वीह आये हैं। इनके बाद ३।१।२६ सूत्र अन्यपीमानुविधायक आता है। इसमें  
भी एक कारण है—'विशेषु विशेषेण अन्वयाय इदं पुञ्जं प्रहरन्' इस अर्थ में वृ-  
त्तिसंज्ञा की प्राप्ति है और होना चाहिए यहाँ अन्यपीमाव। श्रुति  
बहुव्रीहि का अन्वयस्वरूप उक्त सूत्र यहाँ रखा गया है। यह प्रकरण ३।१।४१  
सूत्र तक चलता है और अन्यपीमानुसंधी सभी कार्य स्तितापूर्वक सम्पन्न  
गये हैं। ३।१।४२ सूत्र में ३।१।१५ तक तत्पुरुष समास का प्रकरण आता है।  
इसमें तत्पुरुष समास संबंधी सभी प्रकार के अन्वयान्त प्रस्तुत किये गये हैं।  
तदनन्तर—'विशेषणं विशेष्येणैव चार्थं कर्मधारयश्च' ३।१।१६ में कर्मधारय  
का वर्णन आरम्भ होता है। यह समास ३।१।१५ सूत्र से चलता रहता है।  
तत्पुरुष समास भी समाप्ति करते हुए मयूरव्यंतजेष्यादयः ३।१।१६ में निष्ठात्वे  
तत्पुरुष समास का वर्णन किया है। अनन्तर इन्द्र समास का प्रकरण है,  
यह भी एक रहस्य ही है। इन्द्र समास के प्रयोगपरम्ये में दोनों पद प्रथमान्त  
ही होते हैं, जैसे कर्मधारय के। प्रथमान्त का ही कर्मधारय और इन्द्र समास  
होता है। दोनों में अन्तर यह है कि कर्मधारय के पद विशेष्य-विशेषण  
होते हैं तथा इन्द्र के दोनों विशेष्य (प्रधान)। इस प्रकार दोनों की  
विभक्तता होने में व्यपदेशभाव एकदम अनिश्चित है परन्तु निश्चिन्तान्  
होने से कर्मधारय के बाद इन्द्र का रचना सुचितंगत है।

इन्द्र समास में एकशेष का अन्वय महत्त्व है, इसे इन्द्र का ही एक  
विशेष रूप कहा जाता है। एकशेष का अर्थ होता है समास के अन्तर्गत आये  
हुए अनेक पदों में से एक पद का शेष रहना—बचे रहना तथा अंतर्गत का शेष  
जाना। इन्द्र प्रकरण में ही एकदमाव की चर्चा है। इसका तात्पर्य यह है

कि उन्म समास में अनेक प्रमाण पदों के रहने पर भी एकचयन विभक्ति का आना। जैसे देवाथ असुराद्य=देवसुरम्। एतदभा होने पर अनुसकलिये हा जाता है। इसने पश्चात् 'प्रथमोक्त प्राक्' ३।१।१४८ सूत्र से ३।१।१६३ तक 'किस समास में किस शब्द को पहले स्थाना चाहिए' इसका अनुशासन उपलब्ध होता है। यह प्राक्प्रयोग (पूर्वनिपात) प्रकरण निरृता और स्पष्ट है। हेम ने इस अन्तिम प्रकरण का ग्रन्थन कर समास प्रकरण को पुष्ट बनाया है। इसी प्रकरण के साथ यह पाद समाप्त हो जाता है।

### द्वितीय पाद—

इस पाद में समास की परिशिष्ट चर्चा है अर्थात् समास होने के बाद तथा समास ने मित्तक अनिर्णय कार्य होने के पश्चात् सामासिक प्रयोगों में कुछ विशेष कार्य होते हैं जैसे अन्, सुत्रुक, ह्रस्व प्रभृति नियमों का इस प्रकरण में समासेय किया गया है।

इस पाद में सर्वप्रथम 'अन्' की प्रकृतिका आयी है, जो ३।१।५ सूत्र तक है और इसके उपरान्त लुप् (लपे) और लुप्-निषेध की चर्चा है। इस प्रकरण में जहाँ मध्यगत विभक्तियाँ समास में भ्रमण रह जाती हैं उनके लोपमान का निर्देशन आरम्भ हो गया है। यह पूर्वपद का कार्य हुआ, क्योंकि ३।१।२८ सूत्र तक पूर्वपद की विभक्ति का लोपमान अनुसोच है। इन पूर्वपद के अन्त्य कार्य की प्रकृति में ३।१।३९ से आरम्भ कर प्रकरण आ जाता है। मातापुत्री, होतापुत्री आदि में 'पुत्रे' ३।१।४० सूत्र आरम्भ का विधान किया गया है। इसी में अन्त्य का 'ई' लोप (आत्परिमोक्ष अम्पीरकृती) ३।१।४२ सूत्र द्वारा तथा ३।१।४३ सूत्र द्वारा अन्त्य 'इ' का भी विधान किया गया है। इसके पश्चात् पूर्वपद (सगुले) की विभक्ति की चर्चा आती है। चार्त्तुशिक्षी=दिव् पृथिवी आदि उदाहरण उक्त सूत्रों की चरितार्थ करते हैं। पुनरभा, अगूट् इत्यादि की बीच में शब्दोत्पत्ति पूर्वपद का निषेध भी किया गया है। ३।१।६३ सूत्र तक विधि निषेधपूर्वक पुनरभा का प्रकरण चलता है। इस प्रकार इस पाद में समासकार पूर्व में स्थित द्रव्यों में जो-जो विभक्तियाँ सम्भव हैं, उन सबका संक्षेपन किया गया है।

यहाँ यह स्मरणिय है कि इसमें प्रथम समास के अन्त में आने वाली विभक्ति के 'अन्' बनाने का विधान है और पुनः उसके लोप का विधान विशेष स्थानों के लिए किया गया है। इस लुप् के प्रकरण में ही समास के पूर्वपद के लुप् की चर्चा का प्रयोग आ गया है। यही नहीं, यहाँ समास की अन्तिम विभक्ति का लुप्-निषेध समाप्त-होना है, उसी स्थिति को प्रदर्शित करते हुए समास के बीच में रहने वाली विभक्ति का लोप-निषेध करने का

प्रकरण आ जाता है। समास के बीच में रहने वाली विभक्ति पूर्वपद की ही हो सकती है। इसलिए इसके अनन्तर पूर्वपद-सम्बन्धी सभी कार्यों के नियमन का भार आ जाता है। यह पाद हेम का बहुत उपयोगी और मौलिक है। प्रकरणों का क्रम भी तर्कसंगत है। कई कार्यों का समावेश हो जाने पर भी इसमें किसी भी प्रकार की त्रुटि नहीं आने पायी है; क्योंकि कार्यमात्र के संग्रहणार्थ हेम ने अपने प्रकरण नहीं बनाये हैं, किन्तु कार्य पद (शब्द) के अनुगामी हैं अर्थात् जिन शब्दों में एक अक्षर के या एक भाग के जो-जो कार्य संभावित हैं, उन सभी कार्यों का समावेश हेम ने इस प्रकरण में किया है। संस्कृत व्याकरण के दो आवश्यक कार्य हैं—प्रथम संक्षेप और द्वितीय सूत्र-सूत्राद्य की सूत्रान्तर में अनुवृत्ति। हेम ने इस पाद में उक्त दोनों ही बातों का आश्रय ग्रहण किया है।

### तृतीय पाद—

यह पाद क्रिया प्रकरण से संबंध रखता है, इसमें सामान्यतः वृद्धि, गुण तथा धातुज्ञान की आवश्यकता निरन्तर बनी रहती है। अतः इसके लिए तीन सूत्र इस पाद में सर्वप्रथम आये हैं। 'न प्रादिरप्रत्ययः' ३।३।४ सूत्र में बतलाया गया है कि उपसर्ग का प्रयोग धातु के पहले होता है, बाद में नहीं। ३।३।५ में 'दा', 'धा' के विशेष नियमों पर प्रकाश डाला गया है। ३।३।६ सूत्र से क्रिया-प्रत्ययों का निर्देश आरम्भ किया है। हेम का यह क्रिया-प्रकरण पाणिनि की शैली पर नहीं लिखा गया है बल्कि कण्डाप या कातन्त्र की शैली पर निर्मित है। कातन्त्र के समान हेम ने भी क्रिया की दश अवस्थाएँ स्वीकार की हैं (१) वर्त्तमाना (२) सतमी (३) पंचमी (४) ह्यस्तनी (५) अद्यतनी (६) परोक्षा (७) आशीः (८) श्वस्तनी (९) भविष्यन्ती एवं (१०) क्रियातिपत्ति। पाणिनि के समान हेम ने लकारों का विधान नहीं किया है। पाणिनि और हेम की रूपसाधनिका की प्रक्रियाओं में बहुत अन्तर है। पाणिनि पहले लकार लाते हैं, पश्चात् उनके स्थान पर तिप् तसु सि आदि अटारह प्रत्ययों का आदेश करते हैं, तत्पश्चात् क्रियारूप की सिद्धि होती है। हेम इस समस्त द्रविड़ प्राणायाम से बच गये हैं। इन्होंने 'वर्त्तमाना आदि क्रियावस्थाओं के प्रत्यय पृथक्-पृथक् गिन दिये हैं। इससे प्रक्रिया में बड़ी सरलता आ गई है। वर्त्तमाना के प्रत्यय बताते हुए—'वर्त्तमाना तिप् तसु अन्ति, तिप् थस् थ, मिन् वस् मस्; ते आते अन्ते, से आये ध्वे, ए वहे महे' ३।३।६; सतमी के 'सतमी यात् याता युस्, यास् यान् यात, यां याव याम; ईत् ईयानाम् ईरन्, ईयान् ईयायाम् ईध्वन्, ईय ईवद् ईमद्' ३।३।७ प्रत्यय बतलाये हैं। इस प्रकार समस्त विभक्तियों के प्रत्यय

बनलाशर आत्मनेपद और परस्मैपद के अनुसार प्रक्रिया बतलायी गयी है। इन विभक्तियों का विवेचन तीनों पुरुष और तानों वचनों में किया गया है। 'ननागानि शतृक्स्व च परस्मैपदम्' ३।३।१९ एवं 'परागि काननशौ चात्मनेपदम्' ३।३।२० तानों द्वारा परस्मैपद और आत्मनेपद प्रत्ययों का वर्गीकरण किया है। परस्मैपद और आत्मनेपद का यह प्रकरण ३।१।१९ से आरम्भ होकर ३।३।१०८ मंत्र तक चला गया है। पाणिनि द्वारा निरूपित आत्मनेपद प्रक्रिया के सभी अनुशासन और विधान इस प्रकरण में आ गये हैं। विस्तार और मौलिकता इन दोनों ही दृष्टियों से हेम का यह प्रकरण बहुत ठोस है। हेम ने आत्मनेपद प्रक्रिया का अलग निबद्ध नहीं किया बल्कि क्रिया-प्रकरण के आरम्भ में ही परस्मैपद और आत्मनेपद की जानकारी प्राप्त कराने के लिए उक्त नियमों का निरूपण कर दिया है। इनका ऐसा निरूपण करना उचित भी है, क्योंकि जब तक यह बात नहीं कि किस अर्थ में कौन सी क्रिया आत्मनेपदी है और कौन सी परस्मैपदी है; तब तक उस क्रिया का पूरी साधनिका उपान्वित नहीं की जा सकती। अतः एव हेम ने पहिले उक्त समूह पर ही निचार कर लेना आवश्यक और युक्तिसंगत समझा। व्याकरण के क्रम की दृष्टि से भी यह आवश्यक था कि क्रिया के अनुशासन के पूर्व क्रिया की शब्द और अर्थ दोनों ही दृष्टियों से प्रकृति और स्थिति का परिचय कर लिया जाय। हेम ने क्रिया की दश अक्षर्याएँ मानी हैं। पाणिनि के लोट लृटकार को हेम ने सर्वथा छोड़ दिया है। इसका कारण यह है कि हेम ने लौकिक संस्कृत का व्याकरण लिखा है, वैदिक का नहीं। पाणिनि ने वेद का भी व्याकरण लिखा, अतः उनको लोट का प्रतिपादन करना आवश्यक था।

### चतुर्थ पद—

३।३।३ मंत्र द्वारा घातु की पहिचान करायी जा चुकी है तथा घातुसंबंधी अनेक कार्य भी पूर्वपाद में आ चुके हैं। इस पाद में प्रत्यय विशिष्ट घातुओं का निरूपण है। कई घातुओं के बाद कुछ ऐसे प्रत्यय जुड़ते हैं, जिन्हें मिलाकर पूरे को भी घातु कहा जाता है। इस सिद्धान्त का स्वीकार किये बिना प्रक्रिया का निरोह नहीं हो सकता। पाणिनि ने भी सनाद्यन्ता घातवः ३।३।३२ सूत्र द्वारा यही सिद्धान्त उद्घोषित किया है।

इस प्रकरण में घातुओं के सार्थिक सभी प्रत्यय निरूपित किये गये हैं—३।४।१ तथा ३।४।४ द्वारा आन, ३।४।२ द्वारा मिञ्, ३।४।३ द्वारा ङीप्, ३।४।५—७, २१ द्वारा स्वन्, ३।४।८ द्वारा यक्, ३।४।९—१२ द्वारा यञ्, ३।४।१४—१६ द्वारा यङ्लोप-निधान, ३।४।१७—१८ द्वारा मिच्, ३।४।२२ द्वारा काम्य, ३।४।२३—२४, २६ द्वारा क्वन्, ३।४।२५ द्वारा क्विन् एवं ३।४।२६—३।४।२५ द्वारा



चतुर्थ पाद—

यह पाद धातुओं के आदेश विधान से प्रारम्भ होता है। आदेश-विधान को सम्पन्न करने वाले कार्य 'अस्तिब्रूनेर्भूवच्चादशिते' ४।४।१ सूत्र से आरम्भ होकर ४।४।२९ सूत्र तक चलते हैं। वाच में एकाध रूप ऐसा भी आया है, जिसे धातु के अन्तिम वर्ग को 'इ' बनाने का कार्य किया है। इस प्रकार विभिन्न आदेश-सम्बन्धी वर्ण आया है। ४।४।३० सूत्र से इट् प्रत्यय का विधान आरम्भ हुआ है। यह प्रकरण ४।४।३१ सूत्र तक चला रहा है। इसमें धातु की विभिन्न परिस्थितियों में इडागम तथा इडागमामात्र का निरूपण किया गया है। इसके अनन्तर कुछ स्वरान्तक और कुछ व्यञ्जनात्मक आगमों की चर्चा है। व्याकरण शास्त्र में आगम उसे कहा जाता है जो मित्रन्त् स्वरान्तरूप से प्रयोग में आ जाता है। आदेश तो किसी के स्थान पर होता है। पर आगम सदा स्वतन्त्र रूप में होता है। 'अतो म आने' ४।४।११४ सूत्र पचमानः प्रयोग में 'म' का आगम करता है। इसमें धातु 'पच्' और प्रत्यय 'आन' (वृदन्तीय) है। किन्तु उक्त सूत्र वहीं 'म' का आगम करता है जहाँ आन के पूर्व अ ह्रस्व हो, दूसरा वर्ण कोई भी रहने पर 'म' का आगम नहीं हो सकता। इसके निषेध रूप में 'आसीन' ४।४।११५ सूत्र आता है। यह सूत्र आस के बाद 'आन' के 'आ' को 'ई' बना देता है। इसके पश्चात् पुनः धातुसंबन्धी विहितियों का वर्णन है। ४।४।११६ सूत्र श्रुदन्त धातुओं के क्ति प्रत्यय रहने पर श्रुत् को ईर् कर देता है; तीर्णम् और क्ति प्रयोगों की सिद्धि इसी आधार पर की गई है। ४।४।११७ सूत्र द्वारा उपयुक्त स्थिति में ही श्रुत् को उद् बनाया गया है और इस सिद्धान्त द्वारा 'यू' दुर्भृति, उद्भृति जैसे प्रयोगों की सिद्धि की गई है। ४।४।११९-२० सूत्रों द्वारा 'मिन्धी' और 'आशी' प्रयोगों की सिद्धि के लिये 'इ' का विधान किया गया है। ४।४।२०१ सूत्र द्वारा विशेष परिस्थिति में प् व् व्यञ्जन के लुक् का विचार किया है और इस पाद के अन्तिम सूत्र ४।४।२०२ में कृत के स्थान पर कौर्त् आदेश किया गया है। इस पाद के अन्तिम सूत्र से आख्यात प्रकरण के समाप्त होने की सूचना भी मिल जाती है। आख्यात-संबन्धी समस्त नियम और उपनियमों का प्रतिपादन उपसंहार के रूप में इस पाद में आया है। जिन नियमों को तृतीय और चतुर्थ अध्याय के पादों में छोड़ दिया गया था या प्रकरणदश जिनकी आवश्यकता वहाँ नहीं थी, उन आगम और आदेश-संबन्धी नियमों का निरूपण इस पाद में किया गया है।

पञ्चम अध्याय : प्रथम पाद—

इस पाद के प्रथम सूत्र से ही वृदन्त प्रत्ययों के वर्णन की सूचना मिल जाती

है। 'आतुमोऽव्यादि कृत्' ५।१।१ धातोर्धिधीयमानत्पादिदन्तो वक्ष्यमाण प्रत्यय र मभिन्याय कृत् स्यात्। अर्थात् धातुओं में लगाये जाने वाले प्रत्ययों को कृत् कहा गया है और कृत् प्रत्ययों के संयोग से बने हुए शब्द कृदन्त कहलाते हैं। कृत् प्रत्यय लगने पर क्रिया का प्रयोग दूसरे शब्द-न्तों की तरह होता है। प्रथम पाद क आरम्भ में ११ सूत्र कर्त्ता में प्रत्यय करने वाले हैं। इसके बाद १२वाँ सूत्र आधार अर्थ में क प्रत्यय करता है। 'इद देश शयितम्' उदाहरण में शयितम् का अर्थ है शयन करने का स्थान, अतः सिद्ध है कि हेम ने आहारार्थक और गयर्थक धातुओं से आधार अर्थ में उक्त सूत्र द्वारा 'क' का विधान किया है।

'कृत्वातुमम् मावे' ५।१।१३ सूत्र द्वारा धात्वर्थमात्र में 'क्त्वा', 'तुम्' और 'अम्' का विधान किया है। ५।१।१५ द्वारा हेम ने उणादि प्रत्ययों का विधान उक्त सामान्य प्रत्ययों के साथ ही कर दिया है। पाणिनि ने उणादि प्रत्ययों के लिए अलग एक प्रकरण लिखा है और उनके नियमन के लिए 'उणादयो बहुलम्' ३।३।१ इस सामान्य सूत्र की रचना की है, किन्तु हेम ने इस पाद में उणादि प्रत्ययों के संकलन के लिये अलग कोई प्रकरण नहीं लिखा है। हाँ उनका उणादि प्रकरण पृथक् उपलब्ध है।

हेम ने श्रुत्वान्त तथा व्यञ्जनान्त वर्णों से 'श्रुद्वान् व्यञ्जनान्ताद् घ्यण्' ५।१।१७ से 'घ्यण्' प्रत्यय का विधान किया है। पाणिनि ने इसी स्थल में 'श्रुहलोर्न्त' ३।१।२४ सूत्र द्वारा षन्त् का अनुशासन किया है। यद्यपि दोनों वैयाकरणों के प्रत्ययों में अन्तर मालूम पड़ता है, पर प्रक्रयावधि एक ही है और दोनों के मूल प्रत्ययों का तात्पर्य भी एक ही है। हेम के इस घ्यण् प्रत्यय का नियमन ५।१।२६ सूत्र तक चलता है। इन सूत्रों में विभिन्न धातुओं से विभिन्न परिस्थितियों में उक्त प्रत्यय की व्यवस्था की गई है।

'तव्यानीयो' ५।१।२७ सूत्र द्वारा हेम ने तव्य और अनीय प्रत्ययों का विधान किया है। पाणिनीयतन्त्र में इन दो प्रत्ययों के स्थान पर 'तव्यत्-व्यानीयर्' ३।१।२६ सूत्र द्वारा तव्यत्, तव्य और अनीयर् इन तीन प्रत्ययों का अनुशासन मिलता है। अतः तव्य और तव्यत् इन दोनों प्रत्ययों के लगने से शब्द समान ही लग्यार होते हैं। पाणिनि को वैदिकशब्दानुशासन में तिक्त्वर करने के लिए तव्यत् की भी आवश्यकता प्रतीत हुई थी, किन्तु हेम को इसकी कोई आवश्यकता न थी। अतः इन्होंने तीन प्रत्ययों का कार्य दो प्रत्ययों से चला लिया।

इसके पश्चात् इस प्रकरण में य (पाणिनीय यत्), क्यप्, णक् (पाणिनीय षुल्), वृच, अच्, अन्, णिन्, क, उ, श, ण, अकद्, यक्, यण्, अक, अकन्,

निष्, अण्, ष्, ष्, इ, लि, इ, अ, ट, ल, लश्, लि, षु, रुद्रन्, लनट्, सङ्, ड, अ, न, दि, मन्, क्, क्, क्, विच, किन्, ट्, ट्, क्, क्, क्, क्, क् एवं क्तन्तु प्रत्ययों का विधान किया है। पाणिनि ने क तथा क्तवतु प्रत्यय का निष्ठा नाम देकर विधान किया है; हेम ने निष्ठा सज्ञा की कोई आवश्यकता नहीं समझी और उन्होंने 'क्तवतु' १।१।१७४ मूलायाद् धातारेतौ स्याताम् लिखकर सीधे ही इन प्रत्ययों का अनुशासन लिख दिया है।

### द्वितीय पाद—

प्रथम पाद का अन्तिम सूत्र मूलाय-परिचायक है। अतः द्वितीय पाद का पहला सूत्र मूलाय में प्रवृत्त होता है। विशेषतः मूलाय परीक्षा अत्रत्या के लिए आया है। 'भुसदकस्य' परीक्षा का ५।१।१ सूत्र द्वारा परीक्षा का विधान कर उपगुभाक्, उपसजाद, आदि रूपों की सिद्धि की है। सामान्यतया इस सूत्र का संबंध कृदन्त के साथ नहीं है पर परीक्षा के साथ संबंध स्थापित किये जाने पर कृदन्त के साथ संबंध हो ही जाता है। परीक्षा के अर्थ में—मूलाय में परस्मैपदी धातु के परे 'कन्तु' होता है और कन्तु का वस रहता है। कन्तु होने से कन्त्, क् और आकारान्त धातु के परे इत् हाता है। कन्तु होने पर गम्, हन्, निश्, दश् और विद् धातु के परे विकल्प से इत् का अन्तशासन किया गया है। आत्मनेपदी धातुओं के परे कानच् होता है। परीक्षा विभक्ति में जो कार्य होते हैं, कानच् होने से भी वे ही कार्य सम्पन्न किये जाते हैं। ५।१।३ सूत्र द्वारा कन्तु और कानान्त शब्दों का कर्त्तार में वैकल्यात् नियतन किया गया है और समीपिनान्, अनाश्वात् प्रभृति प्रयोगों की सिद्ध बतलायी गयी है।

इसके पश्चात् ५।१।४ सूत्र द्वारा मूलाय अद्यतनी की अत्रत्या का विधान किया गया है। यह प्रकरण केवल तीन सूत्रों में ही समाप्त हो जाता है। अनन्तर ५।१।७ सूत्र से अद्यतनी ह्यन्तनी का अन्तशासन आरम्भ होता है और ५।१।१४ सूत्र तक ह्यन्तनी का प्रसंग चलता रहता है। ह्यन्तनी में जिन कृत् प्रत्ययों का सन्निवेश हुआ है, हेम ने वृत्ति में उनके साथ आख्यात रूपों का भी निर्देश कर दिया है। 'श्मे च कर्त्तमाना' ५।१।१६ सूत्र द्वारा मूलाय उनासो वर्तमाना की प्रयोग किया है और 'कन्तौह पुरा छात्रा' सूत्र की सिद्धि नियमों की है। इसके पश्चात् ५।१।१७, १८ और १९ सूत्रों द्वारा मूलाय में प्रकरप्रकाश के भी चर्चा विस्तारपूर्वक की गई है। ५।१।२० सूत्र द्वारा नियमों का निर विधान किया है और साथ ही शतृ तथा आनश् प्रत्ययों का

करता है। 'वा देत्ते क्त्सु' ५।२।२२ सूत्र द्वारा सदर्थ की जानकारी का अर्थ में विद् धातु से वैकल्पात् क्त्सु प्रत्यय करके विद्वान् शब्द की सिद्धि की है। अन्य दशाकरणों ने अदादिगण्य विद् धातु से हाने वाले शतृ प्रत्यय के स्थान में वस् का आदेश करके विद्वान् शब्द को निष्पन्न किया है। पश्चात् ज्ञान प्रत्यय का विधान कर पदमान, यजमान आदि उदाहरणों का साधुत्व प्रदर्शित किया गया है। इसके आगे वृश्, वृन्, वृष्णु, षणुक्, स्तु, क्वनु, उ, आत्, उत्, आलु, उक्त्, अन्, उक्, त्तिण्, णक्, टक्, दन्, मरक्, घुर, द्रप, र नञि, वर, विन्, डु, इन्, नट्, न्, एव च प्रत्ययों का विधान किया गया है। इन प्रत्ययों में त्तिण् प्रत्यय का अनुशासन ५।२।४ से आरम्भ होकर ५।२।६६ तक चलता रहा है। अवशेष प्रत्ययों में दो-चार प्रत्ययों को छान्दोग्य सभ्य का एक या दो सूत्रों में ही निवेचन कर दिया है।

तृतीय पाद—

इस पाद में भविष्यन्ती अर्थ में प्रत्ययों के सग्रह की चेश की गई है। भविष्यन्ती विभक्ति जिन जिन अर्थों में सम्व है, हेम ने उन-उन समा अर्थों में उसके प्रयोग की व्यवस्था पर प्रकाश डाला है। भविष्यन्ती के अनन्तर श्वस्तनी और श्वस्तनी के बाद वर्त्तमाना का निरूपण किया गया है। वर्त्तमाना की चर्चा ५।३।१० तक चलती है। ५।३।१३ में सूत्र द्वारा भविष्यन्ती के अर्थ में तुम् और णक्त् प्रत्ययों का विधान करके कर्तुं और कारक रूपों की सिद्धि की है। पाणिनीयवन्त म णक्त् के स्थान पर षुल् प्रत्यय का विधान है पर इतक स्थान में अक आदेश हो जाता है। हेम ने सीधे णक्त् प्रत्यय पर प्रक्रिया को सरल कर दिया है। ५।३।१४ सूत्र वृज् धातु को उपपद रहने से अण प्रत्यय का नियमन करता है और कुम्भकार की सिद्धि पर प्रकाश डालता है। हेम ने पाकाय, पच्छे, पचनाय आदि प्रयोगों की सिद्धि के लिए भाववचना ५।३।१५ सूत्र द्वारा भावार्थ में घञ्, चि आदि प्रत्ययों का विधान किया है और बतलाया है कि उक्त प्रत्यय भाव अर्थ में आने पर भविष्यन्ती अवस्था को बतलानेवाले होते हैं। घञ् प्रत्यय का अनुशासन ५।३।१६ और ५।३।१७ में भी किया गया है तथा पाद, रोग, सार, स्थिर, विस्तर आदि प्रयोगों की सिद्धि उक्त प्रत्यय द्वारा बतलायी गयी है।

हेम का मानाकर्त्रो ५।३।१८ सूत्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। पाणिनि ने करण आदि अर्थों में अलग-अलग प्रत्ययों का संविधान किया है, किन्तु हेम ने अत्यन्त सक्षेप कर दिया है अर्थात् आगे आने वाले प्रत्यय भाव अर्थ में तथा कर्तृकारक को छोड़ अन्य सभी कारकों के अर्थ में आते हैं। बीच-बीच में कहीं-कहीं एक ही भाव अर्थ में प्रत्यय का विधान है—जैसे चि-गीति। घञ्

प्रत्यय विधायक सूत्रों के अनन्तर ५।३।२३ से भाव अर्थ में अल प्रत्यय का विधान आरम्भ होता है और यह ५।३।२३ सूत्र तक चलता रहता है। पश्चात् घन, घण और अल प्रत्ययान्त शब्दों के निपातन का प्रकरण आरम्भ होता है और यह ५।३।४१ तक अनुशासन करता रहता है। ५।३।४२ से पुनः अल-विधायक सूत्र उपस्थित हो जाते हैं और ये ५।३।५३ तक अपना कार्य करते रहते हैं। ५।३।५४ से पुनः घन् प्रत्यय का कार्य आरम्भ हो जाता है और यह परम्परा ५।३।८० सूत्र तक चलती रहती है। तदनन्तर भाव अर्थ में कर्त्ता से निम्न अन्य कारकों के अर्थ में क, अयु, चिमक, न, नह्, कि, अन्, जिन्, क्ति, क्यप्, शो, य, अह्, अल, क्विप्, ज, अनि, इप्, णक्, छ, अनट्, घ एवं खल् प्रत्ययों का सविधान किया गया है। ५।३।१३० सूत्र से पुनः घन् प्रत्यय का प्रकरण आरम्भ हुआ है और यह ५।३।१३७ सूत्र तक चलता रहा है। इस घन् प्रकरण में एकाध नई बात भी आयी है। आह् पूर्वक नी धातु से घञ् करके आनाय तमी बनता है, जब कि उस कृदन्तीय शब्द का अर्थ जाल होता है। हेम ने इसके लिए अनुशासन करते हुए—‘आनायो जालन्’ ५।३।१३६ ‘आहपूर्वात्त्रियः करणाधारे पुत्राम्नि जालेऽर्थे घञ् स्यात्’ लिखा है। इससे सिद्ध है कि हेम ने समस्त प्रत्ययों का विधान विशेष-विशेष अर्थों का चोत्तन करने के लिए विशिष्ट परिस्थितियों में किया है।

#### चतुर्थ पाद—

पाणिनि के वर्त्तमान के अर्थ में हेम ने ‘सन्’ का व्यवहार किया है। पाणिनि ने वर्त्तमानवद्भाव के लिए ‘वर्त्तमानसामीप्ये वर्त्तमानन्द वा’ ३।३।१३१ सूत्र लिखा है। हेम ने उसके स्थान पर ‘सत् सामीप्ये सद्बद्धा’ ५।४।१ सूत्र लिखा है। यह पाद इसी सूत्र से आरम्भ होता है। इसके बाद भी कालो के प्रयोग का अनुशासन किया गया है। पाणिनि और हेम की तुलना करने पर यह कहा जा सकता है कि पाणिनि की लकारार्थ प्रक्रिया हेम के इस पाद का कार्य करती है। अर्थात् हेम ने इस पाद में कालविधायक प्रत्ययों का निरूपण किया है। ‘भूत-वच्चाशरये वा’ ५।४।२ सूत्र में यताया है कि भविष्यत् काल के अर्थ में भूतकाल के प्रत्ययों का प्रयोग होता है ५।४।३। में क्षिप्र और आशंसा अर्थ में क्रम से भविष्यन्ती और सप्तमी विभक्ति का विधान किया है। नानद्यतनः प्रबन्धास्योः ५।४।५ सूत्र से अद्यतनी विभक्ति के निषेध का विधान बतलाया गया है।

जिस प्रकार पाणिनि ने कहीं-कहीं लकार विशेष के अर्थ में कृत्यप्रत्ययों का प्रयोग भी उपयुक्त माना है उसी प्रकार हेम ने प्रैषाऽनुशासनरे कृत्यप्रत्ययौ ५।४।२९ तथा ५।४।३० सूत्र द्वारा विधान किया है। हेम ने बीच-बीच में कई विशेष बातों पर भी प्रकाश डाला है।

कालपेलासमये तुम्बाऽऽसरे ५।४।३३ सूत्र द्वारा अन्तर गम्यमान रहने पर काल, वेला अथवा समय ये शब्द उत्पन्न रहें तो धातु में तुम् तथा कृत्य प्रत्यय होते हैं। उत्तरार्त्त ५।४।३४ सूत्र द्वारा हेम ने उक्त स्थिति में सप्तमी (पाणिने का विधिलिट्) का भी नियमन किया है। अभिप्राय यह है कि इस प्रकाश में जिनने भी प्रत्यय आये हैं व सप्त कालिक अर्थ को बनलाने के लिये ही हैं। ५।४।४४ वें सूत्र से क्त्वा का प्रयोग आरम्भ होता है। यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि इस कालिक अनुशासन में क्त्वा कैसे ट्यक् पत्ता? उत्तर सीधा और सरल है कि यहाँ क्त्वा प्रत्यय तमी कहा गया है, जो कि अलम् या खतु का सहप्रयोग होता हो और उसमें अलम् एः खतु निषेधार्थक होकर आवे। 'निषेधे अल्पत्वतो क्त्वा ५।४।४४ सूत्र उक्त अर्थ में ही अङ्कृत्वा, खतुङ्कत्वा प्रयोग की सिद्धि करता है।

क्त्वा का समानार्थी ख्यन् (पाणिने का णमुल्) है। इसका विधान एणम् चानीत्ये ५।४।४८ से आरम्भ होकर ५।४।५३ सूत्र तक रहता है। इसके बाद 'णम्' प्रत्यय का अनुशासन आरम्भ होकर ५।४।८८ पर समाप्त होता है। ५।४।८४ सूत्र से एक विशेषता यह हो जाती है कि णम् प्रत्यय के साथ क्त्वा प्रत्यय और जुड़ जाता है और ५।४।८८ सूत्र तक क्त्वा और णम् दोनों प्रत्ययों का अनुशासन चलता रहता है। 'इच्छार्थे कर्मण सप्तमी' ५।४।८९ सूत्र द्वारा पुन सप्तमी का विधान किया है और इस पाद के अन्तिम सूत्र ५।४।९० में शक्याद्यर्थ और इच्छार्थ धातुश्रो के समर्थियों में नाम के उत्पन्न रहने पर कर्मभूत धातुओं से तुम् प्रत्यय का सन्निधान किया है। अभिप्राय यह है कि उक्त सूत्र द्वारा विशेष विशेष अन्तरो में तुम् प्रत्यय का नियमन किया गया है।

### षष्ठ अध्याय : प्रथम पाद—

हेम ने जिस प्रकार पूर्व अध्याय के प्रारम्भ में ५।१।१ सूत्र द्वारा यह बतलाया है कि कौन-कौन प्रत्यय हृत् हैं उसी प्रकार तद्धित प्रत्ययों के सम्बन्ध में 'तद्धितोऽणादि' ६।१।१ पहला प्रतिज्ञासूत्र है अर्थात् अण् आदि वक्ष्यमाण प्रत्यय तद्धित कहलाते हैं। तात्पर्य यह है कि धातु को छोड़ कर अन्य प्रकार के शब्दों के आगे प्रत्यय लगने से जो शब्द बनते हैं वे तद्धित कहलाते हैं। हेम ने उक्त प्रकार के ही वक्ष्यमाण प्रत्ययों की तद्धित सजा बतलायी है। तद्धित प्रत्यय एक प्रकार के प्रत्ययों की सामान्य संज्ञा है। तद्धित प्रकरण में कुछ विशेष सजाएँ भी हाती हैं। एसी संज्ञाओं का प्रवेश इसी प्रसंग में वृद्ध, युवा आदि सजाएँ बनवा कर करा दिया गया है।

तद्धित प्रत्ययों में सर्वप्रथम 'अण्' प्रत्यय आता है। 'पाणिने' ने

अपत्यमान में अण् प्रत्यय करने के लिए 'तन्पापत्यम्' ४।१।१२ सूत्र लिखा है। हेम के सभी सूत्र विशेष रूप से ही आये हुए हैं। हेम ने अण् प्रत्यय के अनन्तर 'ञ्' प्रत्यय का नियमन किया है। यह नियमन ६।१।१५ सूत्र से प्रारम्भ है। 'बहिपणीकञ् च' ६।१।१६ से 'दीकण्' और 'ञ्' प्रत्ययों का अनुशासन किया गया है तथा 'बाहीक' और 'बाह्य' इन रूपों की सिद्धि की गई है। पश्चात् ६।१।१७ सूत्र द्वारा कलि और अग्नि शब्दों से 'एयञ्' प्रत्यय का अनुशासन कर 'कालेयम्' तथा 'आग्नेयम्' शब्दों की साधनिका प्रस्तुत की है। ६।१।१८ सूत्र द्वारा पृथिवी शब्द से 'जा' और 'जी' प्रत्यय किये गये हैं, जिनसे पार्थिवा और पार्थिवी उदाहरणों का साधुत्व प्रदर्शित किया गया है। ६।१।१९ सूत्र द्वारा उत्सादि शब्दों से अञ् प्रत्यय का विधान कर औत्स और औदपातम् की सिद्धि की गई है। यह अञ् का प्रकरण आग वाले सूत्र में भी वर्तमान है। ६।१।२१ सूत्र द्वारा देव शब्द से यञ् और अञ् प्रत्ययों का विधान करके देव्यम् तथा देव्यन् का साधुत्व दिखलाया है। ६।१।२२ और ६।१।२३ सूत्रों द्वारा स्थान् और लोन् शब्दों से 'अ' प्रत्यय का अनुशासन करके अबत्याम् और उड्डलोमा शब्दों का साधुत्व प्रदर्शित किया है। ६।१।२४ सूत्र में प्रत्यय लुप् की बात कही गई है। ६।१।२५ सूत्र द्वारा भव अर्थ में स्त्री और पुन् शब्द से नञ् एव स्तञ् प्रत्ययों का विधान करके स्त्री तथा पौंश्च उदाहरणों की सिद्धि की गई है। ६।१।२६ सूत्र ने विकल्प से उक्त प्रत्ययों का नियमन करते हुए च् वा न्नी नियमन किया है। 'गो स्वरे य' ६।१।२७ सूत्र से य प्रत्यय का विधान कर गव्यन् की सिद्धि की गई है। पश्चात् अनत्यार्थ में अगादि का विधान करते हुए 'औपगव' जैसे शब्दों का साधुत्व बतलाया गया है। 'अत इञ्' ६।१।३१ सूत्र से हेम ने अनत्यार्थ में अदन्त षष्ठ्यन्त से इञ् का विधान कर दाडि की सिद्धि की है। हेम का यह कथन पाणिनि के 'अत इञ्' ४।१।१५ से मिलकुल मिलता है। दोनों ही अनुशासकों के सूत्र और उदाहरण मिलते हैं। हेम का यह इञ् प्रत्यय का अनुशासन ६।१।४१ सूत्र तक चला है। ६।१।४२ सूत्र से यञ् का नियमन आरम्भ होता है और ६।१।४५ सूत्र तक चला रहता है। ६।१।४७ सूत्र से जायन् और ६।१।४८ सूत्र से आयनञ् प्रत्ययों का अनुशासन किया है। ६।१।५३ से आयनञ् प्रत्यय का अनुशासन आरम्भ होता है और यह अनुशासन ६।१।५९ सूत्र तक चला है। ६।१।६० सूत्र से अनत्यार्थक अण् का प्रकरण प्रारम्भ होता है और यह प्रकरण ६।१।६८ सूत्र तक जाता है। ६।१।६९ सूत्र से पुन अनत्यार्थक एयञ् प्रत्यय का कथन आरम्भ हो जाता है और ६।१।७८ सूत्र तक इसका अनुशासन

कार्य करता रहता है। पश्चात् ६।१।७९ सत्र द्वारा षैर प्रत्यय और ६।१।८० तथा ६।१।८१ सूत्रों द्वारा एरण् प्रत्यय का विधान किया गया है। तदनन्तर अन्त्यार्थ में णार, एयन्, एयण्, इकण्, ऐरुण्, व्य, ईय, टेय, पीयण्, य, इय, या, ईन, एयकज, अन, ईनञ्, ज्य, इञ्, ज्य, आयनिञ्, यूनीष्ण्, द्विरज, द्विरण्, द्विरिज, द्विर्य एव द्विद्वर्चण् प्रत्ययों का विधान किया गया है। आयन प्रत्यय का निजमन ६।१।१०८ से आरम्भ होकर ६।१।११४ तक चलता रहता है। हेम ने ६।१।१२० से प्रत्ययों के लोप का प्रकरण आरम्भ किया है जो इस पाद के अन्त तक चलता रहा है।

इस पाद के अधिकांश सूत्र पाणिनि से भाव या शब्द अथवा दोनों में पर्याप्त साम्य रखते हैं। तुलना के लिए कतिपय सूत्र यहाँ उद्धृत किए जाते हैं :—

### हेम व्याकरण

गर्गादीर्यन् ६।१।४०  
शिवादेरण् ६।१।६०  
कन्या त्रिप्रेया कानीनत्रिणं च ६।१।६८  
नडादिभ्य आयनण् ६।१।५३  
हरितादेरञ् ६।१।५५  
सुभ्रादिभ्य ६।१।७३  
कुल्याया वा ६।१।७८  
भ्रुवो भ्रुव च ६।१।७६  
गोघाया दुष्टे णारश्च ६।१।८१  
क्षुद्रादिभ्य एरण् वा ६।१।८०  
भ्रातुर्व्यं ६।१।८८  
कुर्वदीर्यं ६।१।१००  
प्राग्भरते बहुस्त्रादिञ् ६।१।१२९  
शैलादेः ६।१।१४२  
चतुष्पाद्भ्य एयञ् ६।१।८३  
शृश्यादेः ६।१।८४  
कुलादीन् ६।१।९६  
दुष्कुलादीप्या ६।१।९८  
महाकुलाद्वाऽनीनौ ६।१।९९  
पुत्रान्तान् ६।१।१११

### पाणिनि य व्याकरण

गर्गादिभ्यो यञ् ४।१।१०५  
शिवादिभ्योऽण् ४।१।११२  
कन्याया. कनीन च ४।१।११६  
नडादिभ्य णक् ४।१।९९  
हरितादिभ्योऽञ् ४।१।१००  
सुभ्रादिभ्यश्च ४।१।१२२  
कुल्याया वा ४।१।१२७  
भ्रुवो भ्रुक् च ४।१।१२५  
गोघाया दुक् ४।१।१२९  
क्षुद्रादिभ्यो वा ४।१।१३१  
भ्रातुर्व्यश्च ४।१।१४४  
कुर्वादिभ्यो ष्य ६।१।१५१  
बह्वथ इजः प्राच्यभरतेषु २।४।६६  
शैलाया वा ४।१।११८  
चतुष्पाद्भ्यो टञ् ४।१।१३५  
शृश्यादिभ्यश्च ४।१।१३६  
कुलात्त्र ४।१।१३९  
दुष्कुलाद्दक् ४।१।१४२  
महाकुलाद् टञ्जौ ४।१।१४१  
पुत्रान्तादन्यतरस्याम् ४।१।१५९



हैन व्याकरण

गान्धारिणात्पदान्यान् ६।१।१५

सात्कारप्रत्ययक इगऽमकट्टिन

६।१।१९

पन्नादेशोत्रे ६।१।२५

यूने लुक् ६।१।३७

यत्तिन् ६।१।४

धीन्तर्पताद्वा ६।१।५८

द्रोणाद्वा ६।१।५९

द्वितीय पाद—

पणिनीय व्याकरण

माल्लिखन्तागिन्नां च ४।१।६९

सात्कारप्रत्ययक इगऽमकट्टिन

४।१।७३

पत्कादिभ्यो णोत्रे २।१।६३

यूने लुक् ४।१।९०

यत्तिनेश्च ४।१।९१

द्रोणवर्ततेऽन्तादन्तरस्यान्

४।१।९३

इस पाद में रक्त, समूह एवं अवक-विकार आदि अर्थों में उद्धृत प्रत्ययों का विधान किया गया है। 'रागादे रक्ते' ६।१।१९ परते फेन लुटुन्नादिना तदपत्त्वात् सूत्रीयान्तात् रक्तमित्यर्थे यथाविहितः प्रत्ययः स्यात्—अर्थात् इस आरम्भिक सूत्र द्वारा रक्तादि अर्थों में यथाविहित प्रत्ययों के विधान की प्रक्रिया की है। यह रक्तार्थक प्रकरण ६।१।५ सूत्र तक है। ६।१।६ सूत्र से ६।१।८ सूत्र तक काल्पार्थ में प्रत्ययों का नियमन किया गया है। पश्चात् ६।१।९ से समूहार्थनाचो सहित प्रत्ययों का प्रकरण आता है, यह प्रकरण ६।१।२९ सूत्र तक निरन्तर चलता है। इसके बाद विकारे ६।१।३० सूत्र के अर्थात् विकारार्थक प्रत्यय आते हैं। ये प्रत्यय अल्पार्थक भी हैं। इस प्रकार के प्रत्ययों की परम्परा ६।१।६१ सूत्र तक वर्तमान है। लुटुरान्त भ्रातृ अर्थ, दुग्ध अर्थ, राष्ट्र अर्थ, मित्रानादि अर्थ, चातुर-अर्थ, देवता-अर्थ, साऽस्पदेव्या-अर्थ, प्रहरण-अर्थ, तडोत्ति, तदधीन-अर्थ, सामेय अर्थ, ग्री-अर्थ, मक्ष-अर्थ, एवं अस्पादि से भिन्न अर्थ में प्रत्ययों का अनुशासन किया गया है। अन्तिम सूत्र ६।१।४५ के द्वारा यह बतलाया गया है कि अरच आदि ने इतर अर्थों में भी वहीं-वहीं उन अर्थों में विहित प्रत्यय आ जाते हैं जैसे चक्षुषे इदन् चाक्षुषं सन्। अक्षाय अयन् = आशय स्य इत्यादि।

तृतीय पाद—

इस पाद का पहला सूत्र 'अने' ६।१।१ है, जिसका तात्पर्य है कि अरच आदि अर्थों में भिन्न प्राग् कालीय अर्थ में वक्ष्यमाण प्रत्यय होते हैं। इस पाद में एया, इय, एत्य, ईन, य, एयकन्, त्वा, एतनाम्, त्यन्, इका, अकन् अय्, अन्, इया, ईरन्, अकीय, ईय, णिक्, अन्, ईनन्, अय, य, इय, म, अ, च, ऐन, न, तन, एग इत्यादि अनेक प्रत्ययों का संघट्ट इस पाद में किया गया है। इस पाद में २१९ सूत्र हैं और इन सूत्रों में उद्धृतिप्रति प्रत्ययों का अनुशासन आ गया है। यह अनुशासन अन्य व्याकरणों के समान ही है।

यह प्रायः देखा जाता है कि इस प्रकरण में एक प्रत्यय करने वाले समी म्ब्र एक साथ नहीं आये हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि हेम ने प्रत्ययों की अर्थानुसारिणी रखा है अर्थात् एक क्तिन् विशेष अर्थ में जितने प्रत्यय आने वाले होते हैं, वे समी प्रत्यय उस अर्थविशेष में आ जाते हैं और जब दूसरे अर्थ का प्रकरण आता है तो उस अर्थ में प्रयुक्त होने वाले प्रत्ययविधायक सूत्र उन्मथित हो जाते हैं। अत एव एया, इक्षा, आ, एयक्ञ्, दापन्, ईन्, ईन्, अक्ञ् आदि प्रत्ययों के विधायक सूत्र एक साथ न आकर विभिन्ने स्थलों में आये हैं। इसलिए एक ही प्रत्ययविधायक सूत्रों का अनेक स्थलों पर आना अनुचित या अनुपयुक्त नहीं है। हेम की शैली शब्दानुशासन के क्षेत्र में अन्य वैचारकों की अपेक्षा भिन्न है। जहाँ पाणिनि आदि संस्कृत शब्दानुशासकों ने एक प्रत्ययविधानक सूत्रों को एक साथ रखने की चेष्टा की है वहाँ हेम ने एक अर्थ में प्रयुक्त होने वाले प्रत्ययों के विधायकसूत्रों का एक साथ रखने का प्रयास किया है। इसी कारण एक प्रत्ययविधानक सूत्र एक ही जगह नहीं आ पाये हैं। हेम की अर्थानुसार प्रत्ययविधायक इस सूत्रशैली का एक तरह में हृदयगत किए बिना साधारण पाठक का अकर्म और अदस्त्या की आशंका हो सकती है। किन्तु आशयान्त इस पाद के अर्थानुसारी प्रत्ययों के अन्वयेकन करने पर किना भी प्रकार की आशंका नष्ट रह सकती है।

### चतुर्थ पाद—

‘यह पाद तद्धित का ही शेष है’ इस बात का सूचना प्रथम सूत्र की वृत्ति से ही मान्य हो जाती है। प्रथम सूत्र की वृत्ति में हेम ने लिखा है—‘आनादा न्ताग्रदनुक्त स्यात्’ ‘तत्रायमधिकृता शेष’। अर्थात् इस पाद का यह प्रथम सूत्र (इक्षा) पाद की समाप्ति तक जो अर्थ उक्त नहीं है, उन अर्थों में अधिकृत समझना चाहिये। तात्पर्य यह है कि जो अर्थ उक्त हो चुके हैं, उनसे भिन्न अर्थों में आग के सूत्रों के द्वारा इक्षा प्रत्यय हो जाता है। जैसे संस्कृते’ ६।४।३ सूत्र से इक्षा हाने पर दाधिकन्, वैधिकन् आदि रूप बनते हैं। बीच-बीच में कुछ अपवाद प्रत्यय भी आ जाते हैं। उदाहरण के लिए ६।४।४ सूत्र को लिया जा सकता है। यह म्ब्र संस्कृत अर्थों में आ का भी विधान करता है और कौल्यम्, तैत्तरीयम् आदि शब्दों का साजुत्व उक्त अर्थ में बनता है।

इसके अनन्तर ‘सुष्टुष्टे’ ६।४।५, तरति ६।४।९, चरति ६।४।११, जीवति ६।४।१५, निर्वृत्ति ६।४।२०, हरति ६।४।२३, वृत्ति ६।४।२७, हनति ६।४।२९, तिष्ठति ६।४।३०, शृङ्गाति, गच्छति, घावति, पृच्छति, समवेत, चरति, अक्रय

शील, प्रहरण, नियुक्त, वसति, व्यवहरति, अधिगमाह, तद्याति, यज्मान, अधीयान, प्रात, ज्ञेय, शक्त, दक्षिणा, देय, कार्य, शोभमान, परिज्यादि, निवृत्त, भूत, भृत, अधीष्ट, ब्रह्मचर्य, ब्रह्मचारी, चौर, प्रयोजन, मन्य, दग्ध, प्रात, आर्हत्, क्रीत, दाप हेतु (सयोग अथवा उत्पात), ज्ञात, त पचति, हरत्, मान, स्तोम, एवं तं अर्हति आदि विविध अर्थों में तद्धित प्रत्ययों का अनुशासन किया गया है। इस अध्याय के प्रथम तीन पादों के सूत्रों द्वारा जिन अर्थों में प्रत्ययों का अनुशासन अवशिष्ट रह गया है, उन सभी प्रत्ययों का संग्रह इस पाद में कर दिया गया है।

प्रत्ययों की दृष्टि से इस पाद में इक्ण, अण्, अ, इनण्, इक्, इक्ट्, इक्, ईनञ्, इय, कण्, ष्य, डिन्, डक्, ण, ईत्, अञ्, य, कन्, क्क्, इक्ट्, टट्, डण् एवं ईय् आदि प्रत्ययों का नियमन किया गया है। प्रधानतः इक्ण प्रत्यय का अनुशासन ही मिलता है; इस पाद में सबसे अधिक सूत्र इसी प्रत्यय का विधान करने वाले हैं।

सप्तम अध्याय : प्रथम पाद—

इस पाद का आरम्भ 'य' प्रत्यय से हुआ है। पूर्वोक्त अर्थों के अतिरिक्त जो अर्थ शेष रह गये हैं, उन अर्थों में सामान्यतया य प्रत्यय का विधान किया गया है। प्रथम प्रतिज्ञा सूत्र भी इस बात का द्योतक है कि इयात्, अर्वाक् और य ये तीनों प्रत्यय अधिभूत होकर चलते हैं। वहति रय्युगमासङ्गात् ७।१।२ सूत्र द्वारा द्वितीयान्त से वहत्यर्थ में य प्रत्यय का विधान कर द्विरभ्यः, सुन्यः आदि उदाहरणों का साधुत्व दिखलाकर 'धुरो वै यण्' ७।१।३ सूत्र से द्वितीयान्त धुरि से वहत्यर्थ में एयण् प्रत्यय का नियमन किया है। आगं कं सूत्रों में वहत्यर्थ में ही विभिन्न शब्दों से ईन, अर्हन्, इक्ण, अण्, य और ण प्रत्यय का विधान किया है। नौदिपेण तार्यव्ये ७।१।२ सूत्र में तृतीयान्तों से य, न्यायार्थादनपेते ७।१।३ में पञ्चम्यन्तो से य, मत्तमदस्य करणे ७।१।४ में षष्ठ्यन्तो से य एवं ७।१।५ में सप्तम्यन्तो से य प्रत्यय का अनुशासन किया गया है। इसके अनन्तर साधु अर्थ में एयण्, ण, ष्य, इनञ् और इक्ण प्रत्ययों का कथन किया गया है। ७।१।२२ से तदर्थ में य और ष्य प्रत्ययों का अनुशासन आया है। ७।१।२६ से कर्ष अर्थ में य और ७।१।२७ से सगने अर्थ में य प्रत्यय का विधान करता है। ७।१।२८ सूत्र से आतदोऽर्थ का अधिकार चलता है और उक्त अर्थ में य प्रत्यय का अनुशासन किया गया है। 'तस्मै हिते' ७।१।३५ सूत्र से हित अर्थ ण आरम्भ होता है और इस अधिकारीक अर्थ में य, ष्य, ईनञ्, ईन, इक्ण एवं ण प्रत्ययों का प्रतिपादन किया गया है। ७।१।४४ सूत्र से परिणामिनि हेतु—अर्थ का अधिकार चलता है। इस अर्थ

में अञ्, व्य, एय् प्रत्ययों का नियमन किया गया है। ७।१।५१ सूत्र में अर्ह अर्थ में क्त् प्रत्यय तथा ७।१।५२ सूत्र में इत्थार्य और क्रियार्य में क्त् प्रत्यय किया गया है। ७।१।५३ सूत्र में सतम्यन्त से इत्थार्य में और ७।१।५४ सूत्र से षष्ठ्यन्त से इत्थार्य में क्त् प्रत्यय का अनुशासन किया गया है। ७।१।५५ सूत्र में बताया गया है, कि षष्ठ्यन्त से मात्र अर्थ में त्व और तल् प्रत्यय होते हैं। इसने आगे के दोनों सूत्रों में भी त्व और तल् प्रत्ययों का विभिन्न स्थितियों में निम्नान किया गया है। अनन्तर मात्र और कर्म अर्थ में इन्, थ्या, य, एया, अन्, अग्, अकञ्, लिक्ञ्, ईय एवं त्व प्रत्ययों का विधान किया गया है। ७।१।७८ सूत्र से क्षेत्र अर्थ में प्रत्ययों का अनुशासन आरम्भ होता है और इस अर्थ में शाक्य, शाकिन, इन्, एयन् एवं य प्रत्ययों का नियमन किया गया है। ७।१।८४ सूत्र से रज्जि अर्थ में कट्, ७।१।८५ से गम्भार्य इन्, ७।१।८६ से जल्य अर्थ में इन्, ७।१।८७ से पार्य अर्थ में कुण्, ७।१।८८ से तिङ् अर्थ में ईन्, ७।१।९४-९५ से व्याप्नोति अर्थ में ईन्, ७।१।९६ से बद्धेति अर्थ में ईन्, ७।१।९७ से नेय अर्थ में ईन्, ७।१।९८ से अत्ति अर्थ में ईन्, ७।१।९९ से अनुमरति अर्थ में ईनान्तों का निपातन, ७।१।१००-१०४ सूत्रों से गान्निनि-अर्थ में ईन्, ७।१।१०५ से इनान्तों का निपातन, ७।१।१०६-१०७ सूत्रों द्वारा स्वार्थ में ईन्, ७।१।१०८ से तुल्य अर्थ में क्, ७।१।१०९-१११ सूत्रों द्वारा प्रत्ययनेपेध, ७।१।११२-७।१।१२० सूत्रों द्वारा तुल्य अर्थ में य, इय एयन्, एयच्, अत्, इक्, इक्ण् और दीक्ण्, ७।१।१२३-१२४ में 'वेर्विम्भूत-अर्थ में शाल्, शङ्कट्, और कट्, ७।१।१२६ से अभादनत-अर्थ में क्यार और कट अत्रानत अर्थ में टट्, नाट और अट, ७।१।१२८ से नेनान्त-अर्थ में चिक, और चिचिक, ७।१।१२९ से नेनारिन्त्र अर्थ में विड ओग विरीस, चाक्षुष्प-अर्थ में ल, ७।१।३० सूत्र से सनात और दिलार अर्थ में कट और चट, ७।१।३३ से स्थान-अर्थ में गण्, ७।१।१३६ से स्नेह अर्थ में नैल्, ७।१।१३९ से सज्जान अर्थ में इत् ७।१।१४० से पञ्चम्य में प्रमणार्यक शब्दों से मात्र एवं ७।१।१४१ से षष्ठ्यर्थ में विभिन्न प्रत्ययों का विधान किया गया है। इसके पश्चात् संख्यार्थ, मानार्थ, श्रद्धा, पारिजात, काम-अर्थ, सक्त-अर्थ, स्वाङ्क-अर्थ, आपूत अर्थ, घातिणि-अर्थ, धृत्-अर्थ कारिणि-अर्थ, फल-अर्थ, द्रव्य-अर्थ एवं दृक्कादि अर्थ में विभिन्न प्रत्ययों का अनुशासन किया गया है।

हेम की यह प्रत्यय-प्रक्रिया पाणिनि की अपेक्षा सरल है। पाणिनि ने कुछ शब्दों के आगे ठक्, ठब्, आदि प्रत्यय किए हैं तथा ठ को इक करने के लिए 'ठस्येकः' ७।३।५० सूत्र लिखा है। किन्तु हेम ने भीरे ही इक कर दिया है। हेम का यह प्रक्रियालापर शब्दानुशासन की दृष्टि में महत्त्वपूर्ण है।

## द्वितीय पाद—

इस पाद का मुख्य दर्भ्य विषय सहा-विशेषण बनाना है। सर्वप्रथम इस पाद में मनु प्रत्यय आता है। इसके बाद इन, इक, अक, त, म, युस, इल, आरक, ईयस, ऊल, ल, इल, ग्मिन्, र, श, न, अण, म, ईर, डुर, दूर, अनु, व, अ, दिन्, मिन, वल्, य, इक्, इन्, ईय, क, चरट्, अन्, तसु, तस्, न्, दा, इद्युस्, युस, हिं, था, धा, ध्यमन्, घण्, कृत्वस्, सुच्, अत्, स्तात्, अत, आत्, आ, आहि, च्वि, सात्, त्रा, टाच्, शस्, टीकण, मित्र, पेज, द्वयसट्, मात्रट्, कार, धेय, नईन, तन, लन, लल्, ट्वण्, तिक एवं सरन प्रत्ययों का अनुशासन लिखा गया है।

इस पाद में जहाँ सूत्रों से काम नहीं चला है, वहाँ वृत्ति के आदेशों से काम लिया है। जैसे वाचाल या वाग्मी बनाने के लिए। पाणिनि ने व्यर्थ अधिक बोलने वाले के लिए वाचाल शब्द बनाया है तथा सार्थक और अधिक बोलने वाले के लिए वाग्मी। हेम के यहाँ वाचाल बनाने के लिए 'वाच आ-लाटौ' ७।२।२४ सूत्र है। जिसका सूत्रानुसार अर्थ है—वाच शब्द के बाद अन् प्रत्यय होता है और वाग्मी बनाने के लिए हेम ने 'ग्मिन्' ७।२।२५ सूत्र लिखा है। दोनों सूत्र एक रूप से मत्वर्थ में लगते हैं। उक्त सूत्रों के अनुसार वाचाल तथा वाग्मी दोनों का अर्थ समान होना चाहिए, जो ठीक नहीं। अतः हेम का 'वाच आगौ' ७।२।२४ की वृत्ति में "क्षेपे गन्धे" अर्थात् अन् प्रत्यय क्षेप-निन्दा अर्थ में होता है। अतः स्पष्ट है कि हेम ने वृत्ति में मात्र सूत्रार्थ का ही स्पष्ट नही किया है बल्कि कई विशेष बातों पर भी प्रकाश डाला है।

## तृतीय पाद—

यह पाद प्रकृतार्थक मयन् प्रत्यय से प्रारम्भ होता है। प्रकृत का अर्थ म्बन् हेमचन्द्र ने गिवा है—'प्राचुर्येण प्राधान्येन वा कृतम्' ७।३।१ की वृत्ति अर्थात् प्राचुर्य वा प्राधान्य के द्वारा किया गया। पाणिनि शास्त्र में सभी अव्यय तथा सर्वनामों में 'टि' के पहले अक्षर करना आवश्यक है। इसका लिए उन्होंने 'अव्ययसर्वनाम्नामकृच् प्राक् टेः' ५।३।१ सूत्र का विधान किया है। हेम ने उक्त विधान का कुछ विशिष्टता के साथ बढलाने के लिए त्यादिसन्दि म्बरेणन्त्यात्पूर्वोऽक ७।३।१-२० सूत्र बनाये हैं। जहाँ पाणिनि ने टच् आदि सभी समासान्तों को तद्धित मान कर तद्धित कार्य किया है, पर उन्हें म्बान, समासान्त प्रकरण में ही दिया है, वहाँ हेम ने सभी समासान्तों ( समास के अन्त में होने वाले प्रत्ययों ) को तद्धित प्रकरण में रख कर तद्धित माना है।

इस पाद में मुख्य रूप से विभिन्न समासों के बाद जो जो प्रत्यय आते हैं उन सब का सन्निवेश किया गया है। यह समासान्त तद्धित प्रत्ययों का प्रकरण ७।३।६९ से आरम्भ होकर ७।३।१८० सूत्र तक निरन्तर चलता रहता है। यद्यपि इस पाद के आरम्भ में कुछ दूसरे प्रकार के प्रत्ययों का भी उल्लेख है परन्तु-प्रधानता समासान्त तद्धित प्रत्ययों की ही है।

इस प्रकरण के यहाँ आने का एक विशेष कारण भी है। यतः जिस समास के बाद समासान्त तद्धित प्रत्यय आते हैं, वे प्रायः सम्पूर्ण शब्द को विशेषण बना देते हैं। यह पहले ही कहा जा चुका है कि हेम ने सप्तम अध्याय के द्वितीय पाद से ही संज्ञा-विशेषणों का कथन आरम्भ कर दिया है। अतः इस पाद में संज्ञा विशेषणों की व्युत्पत्ति के लिए समासान्त तद्धित प्रत्ययों का स्थान दिया।

### चतुर्थ पाद—

इस पाद में मुख्य रूप से तद्धित प्रत्ययों के आ जाने के बाद स्वर में जो विक्रान्ति होती है उसका निर्देश किया गया है। अित् (जिस प्रत्यय से अ हटा हो) अथवा पित् (जिस प्रत्यय से ण हटा हो) तद्धित प्रत्यय के बाद में हो तो पूर्व स्थित नाम के आदिम स्वर की वृद्धि होती है। जैसे दध् + इत् = दद्धि, मृग् + अत् = मार्गव इत्यादि। यहाँ से ही यह पाद आरम्भ होता है। उक्त प्रत्ययों के संगोपन में और भी कई तरह के कार्त्त हाते हैं तथा कहीं कहीं पर तत् तत् कार्त्तों का निषेध भी किया गया है। विधि एव—निषेध के द्वारा प्रचलित प्रवृत्ति—जिसमें कई कार्त्त आये हैं—७।४।६० में समाप्त होती है। ६० वाँ सूत्र वैकल्पिक लुक् करता है। अतः यहाँ से लुक् करनेवाले सूत्र प्रवृत्त होने लगे हैं। लुक् का प्रकरण ७।४।७१ सूत्र पर समाप्त होता है। इसके बाद ७।४।८० सूत्र तक शुद्ध लुक् का प्रकरण है। ७।४।८१ से पित् लुक् का प्रसंग है, जो द्वित्व प्रकरण के अन्दर ही प्रकरणावशात् आ गया है। इसीलिए आगे भी पुनः द्वित्व प्रकरण छूटने नडा पाया है। द्वित्व की समाप्ति ८९ वें सूत्र से की गई है। इसके आगे षुत् का प्रकरण आया है। हेम ने षुत् करनेवाले सूत्रों को इसी पाद में रखा है।

अनन्तर इसी पाद में कुछ ऐसे सूत्र आते हैं, जो एकदम अत्रासंगिक हैं अथवा सामान्य सूत्र होने के कारण अन्त में न रखकर आरम्भ में रखने ल्यायक हैं। ७।४।१०४ सूत्र से लेकर ७।४।१०८ तक सभी सूत्र परिमाणा-सूत्र हैं। ये सूत्र कार्यकारी सूत्रों के मार्गदर्शक हुआ करते हैं। इसके बाद १०९ तथा ११० सूत्र 'स्थानिवद्भाव' करनेवाले तथा १११ और ११२ ये दो सूत्र स्थानिवद्भाव के निषेधक हैं। इसी प्रकार इस पाद की समाप्ति तक के सभी सूत्र या तो

परिभाषा-सूत्र हैं या अतिदेश सूत्र, जिनकी विशेष रूप से तद्धित प्रकरण में कोई आवश्यकता नहीं है।

अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि हेम ने इन सूत्रों को इस तद्धित प्रकरण में क्यों जोड़ा ? इनका यह जोड़ना युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता। विचार करने पर ज्ञात होता है कि—ग्रन्थारम्भ में सर्वप्रथम हेम ने सामान्य रूप से संज्ञाओं का प्रकरण दिया है। इसके अनन्तर विभिन्न सधिया आयी हैं, पश्चात् स्यन्तप्रकरण, कारकप्रकरण, स्त्रीप्रत्यय, समास, वृदन्तवृत्ति, एवं तद्धितवृत्ति-प्रकरण आये हैं। इन प्रकरणों में भी कहीं भी परिभाषानियमक तथा अतिदेश सूत्रों की रखने की गुजायश मालूम नहीं होती। वास्तव में उपर्युक्त सभी प्रकरण विशेष विशेष रूप से अपने-अपने कार्य करने वाले हैं। अतएव उनके अन्त में इन सामान्य सूत्रों को जोड़ा गया है।

इस विचार-विनियम के उपरान्त यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि उक्त सामान्य सूत्रों का एक अलग पाद ही क्यों न निर्मित कर दिया गया। इस जिज्ञासा का समाधान भी स्पष्ट है कि उक्त प्रकार सूत्र ७।४।१०४ से ७।४।१२२ तक सत्र मिलाकर १९ ही हैं। अतः यह समभव नहीं था कि इतने थोड़े से सूत्रों को लेकर एक पृथक् पाद निर्मित किया जाता।

यहाँ एक शंका और बनी रह जाती है कि अतिदेश सूत्रों के पूर्व प्लुत सूत्र क्यों आये ? पहले अध्याय के दूसरे पाद में असन्धि प्रकरण आ चुका है। जिसमें प्लुत समकथ कार्य भी हैं, इस शंका का समाधान हमारे मत से यह हो सकता है कि प्रथम अध्याय का विषय है सन्धिका अभाव। जिन २ साधनों के रहने पर सन्धिया नहीं होती है, उन बातों को असन्धि प्रकरण में स्पष्ट किया गया है। वहाँ आया हुआ प्लुत भी साधन के रूप में ही उपस्थित है। इस संस्कृत शब्दानुशासन के अन्तिम अध्याय के अन्तिम पाद में द्विरुक्त प्रक्रिया का आना यथार्थ है। ज्ञातव्य है कि द्वित्व प्रकरण में ही ७।४।८९ में प्लुत विधान मी आ गया है, यतः ७।४।८९ वाँ सूत्र दोनों कार्य करता है। यहाँ प्लुत-द्वित्व-संयुक्त होकर आये हैं। अतः इनका समावेश यहाँ ही होना सर्वथा उपयुक्त है। द्वित्व तद्धित में प्लुत का सन्निवेश हेम की मौलिकता प्रकट करता है, जिसका पाणिनीय शास्त्र में मिलकुल अभाव है। ऐसा मालूम होता है कि हेम के समय में इस प्रकार के प्लुतो का प्रयोग बढ गया था; इसके संग्रहण करके हेम को अपनी भाषा शास्त्रीय प्रतिभा के प्रदर्शन का अवसर मिला।

# तृतीय अध्याय

## हेम शब्दानुशासन के खिलपाठ

व्याकरण शास्त्र के सूत्र-रचयिता सूत्रपाठ का लघु बनाने के लिए उसमें सम्बद्ध विम्बृत विषयों को जिन ग्रन्थों में सम्बद्ध करते हैं, वे शब्दानुशासन के खिलपाठ या परिशिष्ट कहलाते हैं। प्रायः प्रत्येक शब्दानुशासन के धातुपाठ, गणपाठ, उणादि और लिङ्गानुशासन ये चार खिड होते हैं। हेम शब्दानुशासन के उक्त सभी खिलपाठ उपर्युक्त हैं।

धातुपाठ—धातुसारायण व्याकरण का एक उपरगो अंग माना जाता है। मार्य धातु-परिचयन के अभाव में व्याकरण-सम्बन्धा ज्ञान अपूरा ही माना जाता है। हेम ने हेमवतु-भारायण नामक मूलग्रन्थ से दशैज ग्रन्थ लिखा है, जिसका आदि श्लोक निम्न है—

श्रीसिद्धहेमचन्द्रव्याकरणनियेशितान् स्वकृतधानून् ।  
आचार्यहेमचन्द्रो विद्वरोत्यहं नमस्कृत्य ॥

धातुसारायण का विरुति में बताया गया है—

इह तावत्सद्व्यर्थज्ञानद्वारोन्पन्न हेयोपादेयज्ञान च नयनिक्षेपादिभि-  
रधिगमोपायैः परमार्थतः। व्यवहारतन्तु प्रकृत्यादिभिरिति। पूर्वाचार्यप्रसिद्धा  
एव सुम्बप्रहृषस्मरणकार्यसंसिद्धये विशिष्टानुबन्धसम्बन्धक्रमाः सद्धार्येन  
प्रकृतयः प्रस्तूयन्ते। तत्र यद्यपि नामधातुपदभेदान् राज्ञा जयति।

इस वृत्ति में धातु प्रकृति को दो प्रकार की माना है—रूढ़ा और प्रत्ययान्ता शुद्ध में मू, रन्, फट, कृप् आदि एवं प्रत्ययान्ता में गोपाय, कामि, बुगुस, कण्डय, बोमूय, बोमू, चोरि, भावि आदि परिगणित हैं। हेम ने प्रत्येक धातु के साथ अनुबन्ध की भी चर्चा की है। इन्होंने अनिट् धातुओं में अनुन्धार को अनुबन्ध माना है, यथा पा पाने, ब्रूङ्क व्यक्त्याया वाचि ( धा० पा० २, ६० ) आदि। उभयपदी धातुओं में ग अनुबन्ध बतलाया है। ऐसा लगता है कि हेमने पाणिनि के धातु अनुबन्धों में पर्याप्त उलट फेर किया है।

हेम अनुबन्ध

इ ( ड )

ई ( ग )

उ

ऊ

ऋ

ॠ

औ

पाणिनीय अनुबन्ध

इ

ई

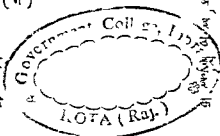
उ

ऊ

ऋ

ॠ

औ





हेम धातुपाठ में कुल १९८० धातुएँ उपलब्ध हैं। इनका क्रम निम्न प्रकार है—

म्नादिगण	अनुबन्धाभाव	१०५८
अदादिगण	अनुबन्ध	७१+१४
×	×	×
दिवादिगण	अनुबन्ध	१४२
स्वादिगण	ट् ,	२९
तुदादिगण	त् ,	१५८
रुधादिगण	प् ,	२६
तनादिगण	न् ,	९
क्रयादिगण	ग् ,	६०
चुरादिगण	प् ,	४१३

हेम की कुछ धातुओं के अर्थ बहुत ही सुन्दर हैं, इन अर्थों से भाषा सन्बन्धी अनेक प्रवृत्तियाँ अद्भुत होती हैं। यथा—

डुष्पी धातु को बीजसन्तान अर्थ में, पक्क को निर्गोप अर्थ में, खोडु को घात अर्थ में, जम्, झम्, जिम् को भोजन अर्थ में, पूनी को तृपोन्वय अर्थ में और मुय् के आक्षेप तथा मर्दन अर्थ में माना है।

आचार्य हेम ने धातुपाठ में धातुओं को अर्थसहित गय के अतिरिक्त पद्य में भी पठित किया है। ये पद्य इनके पर्याप्त करव हैं।

मुसलक्षेपहुंकारस्तोमैः कलमखाण्डनि ।  
 कुचविष्कम्भमुत्तभ्रान्निष्कृभ्रवीव ते स्मरः ॥  
 नीपान्नोन्दोलयत्येष प्रेङ्खोलयति मे मनः ।  
 पवनो बीजयन्नाशा ममाशामुच्चुनुम्पाति ॥

इस प्रकार हेम का धातुपाठ ज्ञानवर्धन होने के साथ मनोरंजक भी है।

गणपाठ—जितने शब्द-समूह में व्याकरण का एक नियम लागू होता है, उतने शब्द-समूह को गण कहते हैं। हेमने अपने संस्कृत और प्राकृत दोनों प्रकार के शब्दानुशासनो में गणों का उल्लेख किया है। जितने ही गणों का पता तो बृहद् वृत्ति से लग जाता है; पर ऐसे भी कुछ गण हैं, जिनका पता उस वृत्ति में नहीं लग पाता। अतः निजनीति स्मि ने सिद्ध हेम बृहत्त्रयिया में हेम के सभी गणपाठ दिये हैं।

हेमने ३।१।६२ में भितादि गणका जिक्र किया है। इसमें भित्, अतीत; पतित, गत, अस्परत, प्राप्त, आपन्न, गामिन्, अगामिन् शब्दों को रखा है।

प्रियादिर्ण में प्रिया, मनोज्ञा, कल्याणी, सुभगा, दुर्भगा, स्वा, क्षान्ता, यान्ता, वामना, समा, सचिवा, चपला, बाला, तनया, दुहितृ, और मस्ति शब्दों को परिगणित किया है। हेमने व्याकरण के लिए उपयोगी गणसत्रों का पूर्ण निर्देश किया है।

### उणादिसूत्र—

हेम ने 'उणादय' ५।२।१३ सूत्र लिखकर उणादि का परिचय कराया है। इस सूत्र के ऊपर 'सदृथाद् धातोः उणादयो बहुलस्यु' वृत्ति लिखकर सदथक धातुओं से उणादि प्रययों का अनुशासन किया है। उण् सूत्र को आरम्भ कर "कृ-वा-जि-स्तदि-साध्य-शौ-ट-स्ना-सनि-जानि-रह-ण्य उण्" लिखा है। यथा—कृ + उण् = काह, कारुणापितादि, वा + उण् = वायु ।

उणादि द्वारा निम्न कितने ही ऐस शब्द हैं, जिनसे हिन्दी-गुजराती और मराठी भाषा की अनेक प्रवृत्तियों पर प्रकाश पड़ता है। यथा—कर्कर लुद्राशमा = काकर, ककट, गर्गरी महाकुम्भ = गागर, दवरो-गुण = डाग, गावर, पटाका वैजयन्ती = पनाका, पटाका ।

उणादि सूत्र के ऊपर हम की स्वोपज्ञ वृत्ति भी उपलब्ध है। इसका आरम्भिक और निम्न प्रकार है—

श्रीसिद्धहेमचन्द्रव्याकरणनिवेशिनामुणादीनाम् ।

आचार्यहेमचन्द्रः करोति विवृतिं प्रगम्यार्हम् ॥

### लिङ्गानुशासन—

संस्कृत भाषा का पूर्ण अनुशासन करने के लिए हेम ने 'हेमलिङ्गानुशासनम्' लिखा है। पाणिनि के नाम पर भी एक लिङ्गानुशासन उपलब्ध है, पर यह पाणिनि का है या नहीं, इस पर आज तक विवाद है। अतः अणध्यायी के मूल सूत्रों के साथ लिङ्गानुशासन करने वाले सूत्रों का सम्बन्ध नहीं है। अतः ऐसा मालूम होता है कि पाणिनि की अष्टाध्यायी को सभी ऋषियों से पूर्ण धनाने के लिए लिङ्गानुशासन का प्रकरण पीछे से जोड़ दिया गया है।

अमर ऋषि ने अमरकोश में भी लिङ्गानुशासन का प्रकरण रखा है। उन्होंने श्लोकद्वय शैली में प्रयय एवं अर्थ-साम्य के आधार पर शब्दों का सकलन कर लिङ्गानुशासन किया है। अनुभूति स्वरूपाचार्य के द्वारा लिखित लिङ्गानुशासन भी उपलब्ध है, पर हम का यह लिङ्गानुशासन अपने दग का बनाया है। हेम लिङ्गानुशासन की अवचूरि में बताया गया है—  
"लिङ्गानुशासनमन्तरेण शब्दानुशासन नाधिकलामार्ति सामान्यविशप-  
लक्षणाभ्या लिङ्गमनुशिष्यते"। अर्थात् लिङ्गानुशासन के अभाव में शब्दा

नुशासन अधूरा है, अतः सामान्य-निरोध लक्ष्मी द्वारा लिङ्ग का अनुशासन किया जाता है। इसमें स्पष्ट है कि हेम ने अपने शब्दानुशासन में पूर्णता लाने के लिए खिल पाठों के अन्तर्गत लिङ्गानुशासन को स्थान दिया है। हेम के इस लिङ्गानुशासन में जितने अधिक शब्दों का समावेश है, उतने अधिक शब्द किसी भी लिङ्गानुशासन में नहीं आये हैं।

हेम ने अपना लिङ्गानुशासन अमरकोष की शैली के आधार पर लिखा है। पद्यबद्धता के साथ इसमें खोलिङ्ग, पुंलिङ्ग और नपुंसक इन तीनों लिङ्गों में शब्दों का कर्त्तव्य भी बहुत अर्थों में अमर कवि के दृष्टि का है इतना होने पर भी हेम लिङ्गानुशासन में निम्न निरोधताएँ दिखाने हैं—

१—हेम ने यथोचित स्थान पर ललित प्रकार के अनुकूल शब्दों को रखकर तथा पद्यबद्धता के कारण गमता का समावेश कर शब्दों के लिङ्ग ज्ञान को सहज, सुलभ और बोधगम्य बनाने का अद्वितीय प्रयास किया है। रचनाक्रम में चारुता के साथ मोहकता और मन्वता भी दिखाने हैं।

२—हेम ने इसमें दिवाल शब्दराशि का समावेश किया है। इसमें आये हुए शब्दों के साथ संकल्प से एक बृहद् शब्दकोष तैयार किया जा सकता है। यही कारण है कि हेम लिङ्गानुशासन की अन्वयुरि एक छोटा सा कोष बन गयी है। हेम ने खरि, ललित और बोधगम्य शब्दों के साथ कृ और कृतेर शब्दों का भी संकल्प किया है।

३—इस लि. अनुशासन में शब्दों का समावेश निम्न लक्ष्मी के आधार पर किया गया है।

४—तीनों लिङ्गों में शब्द-संग्रह की दृष्टि से निरोध के निम्न लिङ्गों की चर्चा भी की गयी है। इस चर्चा द्वारा उक्त तीनों लिङ्गों की शब्दावली का कर्त्तव्य भी किया गया है।

५—एकत्रय द्वारा शब्दों के लिङ्ग-निर्णय की चर्चा की है। यी ली इस तरह की चर्चाएँ पालिनीय टन्त्र में भी उपलब्ध होती हैं, किन्तु हेम का यह प्रकरण मौलिक है।

६—प्रकरण की दृष्टि से यह स्वीकार करना पड़ेगा कि हेम ने नाना प्रकार के नानार्थनाचा शब्दों को खोलिङ्ग, पुंलिङ्ग और नपुंसक लिङ्ग भेदों में निम्न किया है।

७—अर्थ एवं शब्द व्युत्पत्तियों को ध्यान में रखकर विचार करने में स्पष्ट होता है कि हेम ने इस लिङ्गानुशासन में निम्नार्थक शब्दों का प्रयोग एक साथ अनुप्रास लाने तथा ललित उत्पन्न करने के लिए किया है।

इन उपर्युक्त निरोधताओं के अतिरिक्त शब्द-संकल्प के भेदों पर विचार

कर लेने से इस ग्रन्थ के वैशिष्ट्यों का पता और भी सहज में लग जायगा। समस्त त्रिलिङ्गी शब्दों को निम्न प्रकारों में विभक्त किया जा सकता है।

- १—सामान्यतया प्रत्ययों के आधार पर
- २—अन्तिम अकारादिक्यों के क्रम पर
- ३—शब्द-साम्य के आधार पर
- ४—अर्थ-साम्य के आधार पर
- ५—विषय के आधार पर
- ६—वस्तु विशेष या वाचक विशेष की समता के आधार पर-

अब क्रमशः प्रत्येक प्रकार के वर्गीकरण पर थोड़ा-सा निवार कर लेना आवश्यक है। हेम ने अपने लिङ्गानुशासन के पहले उलोक में क ट ण थ प म म, य र ष सान्त तथा स्न्न्त शब्दों को पुल्लिङ्ग बताया है। हेम ने इस स्थल पर शब्दों का चयन प्रत्ययों के आधार पर ही किया है। पाणिनीय लिङ्गानुशासन तो समूचा ही प्रत्ययों के आधार पर संकलित है। पर हेम ने कुछ ही शब्दों का चयन प्रत्ययों के आधार पर किया है। पाणिनि की अपेक्षा इस लिङ्गानुशासन में शैलीगत भिन्नता के अतिरिक्त और भी कई नवीनताएँ न्यिमान हैं। उदाहरण के लिए कुछ पद्य उद्धृत किने जाते हैं—

पुद्गिङ्गकटणथपभमयरपसस्वन्तामिमनलो किश्चित् ।  
न नडौघघवोदः किर्भावे रसोऽकर्तारि च कः स्यात् ॥

अर्थात् कप्रत्ययान्त आनक आदि; टप्रत्ययान्त कक्षापुट आदि, णप्रत्ययान्त गुा आदि; थप्रत्ययान्त निशीय, शम्भ आदि; पप्रत्ययान्त लुप आदि, मप्रत्ययान्त दर्भ आदि; मप्रत्ययान्त गोधूम आदि; यप्रत्ययान्त भागधेय आदि, रप्रत्ययान्त निर्दर आदि; षप्रत्ययान्त गवाञ्च आदि; सप्रत्ययान्त कूर्पस, हंस आदि; उप्रत्ययान्त तर्कु, मन्तु आदि; अन्त प्रत्ययान्त पर्यन्त, विशान्त आदि; इमम् प्रत्ययान्त, प्रथिमा, म्रदिमा, द्रदिमा आदि; न और नङ् प्रत्ययान्त स्वन, विज्ञान, प्रश्न, किश्न आदि, घ और घञ् प्रत्ययान्त कर, पाद, भाव आदि; नाव अर्थ में सप्रत्ययान्त 'आशितमवः' आदि एवं अकर्तारि अर्थ में कप्रत्ययान्त आन्वृथ, दिघ्न आदि शब्दों को पुल्लिङ्ग बताया है।

हेम लिङ्गानुशासन में प्रत्ययों का आधार वाला क्रम अधिक दूर तक नहीं अपनाया गया है। शब्दों को त्रिलिङ्गों में विभक्त कर यथोचित रूप से उन्हें क्रमपूर्व लिखा है।

हेम शब्दानुशासन में शब्दों के लिङ्गों की सूचना नहीं दी गयी है, यतः हेम को लिङ्गानुशासन के द्वारा शब्दों के लिङ्गों का निर्देश करना अभीष्ट था।

पाणिनि ने प्रत्ययों की चर्चा कर प्रायः तद्धितान्त और कृदन्तान्त

शब्दों का ही संकल्पन किया है। यह संकल्पन हेम की अपेक्षा बहुत छोटा है। हेम ने नादानुकरण का आधार लेकर शब्द के अन्तरंग और बहिरंग व्यक्तित्व को पहिचानने की चेष्टा की है।

हेम का त्रिलिङ्गी में शब्दों का पूर्वोक्त दिशा क्रम से निर्देश करना उनके सफल वैयाकरण होने का प्रमाण है।

अनुभूति स्वरूपाचार्य ने भी पाणिनि के आधार पर प्रत्ययों के अनुसार या गणों के वर्गीकृत शब्दों के आधार पर त्रिलिङ्गी शब्दों की एक लम्बी तालिका दी है। परन्तु इस तालिका को देखने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि हेम की तालिका की अपेक्षा उक्त तालिका अल्प ही है। अतएव वैयाकरण हेम का महत्त्व शब्दानुशासन के लिए जितना है, उससे कहीं अधिक लिङ्गानुशासन के लिए है। लिङ्गानुशासन में अधिभूत शब्दों का विवेचन, उनकी विशिष्टता, क्रमबद्धता आदि का सूचक है।

प्रत्ययों के आधार पर पुल्लिङ्ग शब्दों का विवेचन हेम ने उपर्युक्त श्लोक में किया है। त्रिलिङ्गी शब्दों के संकल्पन में प्रत्ययों का आधार गृहीत नहीं है। अतएव यह क्रम नपुंसकलिङ्गी विधायक शब्दों में भी पाया जाता है। यथा—

द्वन्द्वैकत्वाव्ययीभावो क्रियाव्ययविशेषरे।

कृत्याः क्तानाः खल् जिन् भावे आत्वात्-त्वादिः समूहजः ॥ ९ ॥

गायत्र्याद्यण् स्वार्थेऽव्यक्तमथान्वृत्तमध्यायः।

तत्पुरुषो बहुनां चेच्छायाशालां विना समा ॥ १० ॥

(नपुंसकलिङ्ग प्रकरण)

अर्थात्—द्वन्द्वैकत्व शब्द सुखदुःखं, अव्ययीभाव में एकत्वविधायक शब्द दण्डादण्टि, पञ्चनदं, पारेगङ्गम् आदि; क्रियाविशेषण साधु पचति, शीघ्रं गच्छति आदि, अव्यय के विशेषण उदग्, प्रायग आदि, भाव अर्थ में निहित कृत्या, क्ताना, खल्, जिन् आदि प्रत्ययान्त शब्द तथा कार्ये, पाक्यं, कर्त्तव्यं, करणीयं, देय, ब्रह्मभूय, ब्रह्मत्वं, ग्रहणम्, पेषानम्, निर्वाणम्, दुराद्यं भवं, सारानिन्म्, वाणिज्यं, कापेयम्, द्वैपम्, वापलम्, आचार्यकम्, होत्रीयम्, मैत्रम्, औग्गन्कम्, कंदार्यम्, काञ्चिकम्, अश्वीयम्, पार्श्वम्, शौकम्, पीरुपेयम् आदि शब्द नपुंसकलिङ्गी होते हैं। गायत्री आदि में स्वार्थिक अथ प्रत्ययान्त शब्द गायत्रम्, आनुष्टुभम्, आदि; अव्यक्त लिङ्गवाची शब्द जैसे कि तस्या गमं जातम्, यत्तत्रोत्पद्यते तदानय आदि शब्द नपुंसकलिङ्गी होते हैं।

नम् समास और कर्मधारय समास को छोड़कर अन्य छायान्त तत्पुरुष समासान्त प्रयोग नपुंसकलिङ्गी होते हैं। जैसे—शल्पन्च्छायन्, शरन्च्छायन् आदि शब्द। शाला अर्थ को छोड़कर अन्य अर्थों के साथ समास शब्द तथा तदन्तिक

तत्पुरुष समासान्त शब्द भी नपुंसकलिङ्गी होते हैं। जैसे—स्त्रीसमं, दासीसम, मनुष्यसम, आदि समासन्त तत्पुरुष समासान्तवाची शब्द।

हेम ने उपर्युक्त आधार पर शब्दों का सकल उभयलिङ्गी शब्दों के वर्गीकरण के प्रकरण में भी किया है।

अन्तिम अकारादि वर्णों के क्रम से स्त्रीलिङ्ग के प्राय सभी शब्द संकलित हैं। इस प्रकरण के म्यारहवें श्लोक से २४ वें श्लोक पर्यन्त अन्तिम आकारान्त शब्दों का संग्रह किया गया है। २५ वें श्लोक से २९ वें श्लोक तक अन्तिम इकारान्त शब्द, ३० वें श्लोक से ३२ वें श्लोक पर्यन्त अन्तिम ईकारान्त एव ३३ वें श्लोक में स्त्रीलिङ्गवाची अन्तिम उकारान्त तथा हलन्त शब्द सङ्गृहीत हैं। उदाहरण के लिए कुछ श्लोक उद्धृत किये जाते हैं। इन श्लोकों के अन्वय से यह स्पष्ट हो जायगा कि हेम का यह शब्द-सकलन किनना वैज्ञानिक है। पाठक को हेम पठित क्रम से तत्तत् लिङ्गवाची शब्दों को ग्रहण करने में बड़ी सगलता का अनुभव होता है—

ध्रुवका क्षिपका कनीनिका शम्बुका शिविका गवेधुका ।

कणिका केका विपादिका महिका यूका मक्षिकाष्टका ॥ ११ ॥

कूर्चिका कूर्चिका टीका कोशिका केणिकोमिका ।

जलौका प्राविका धूका कालिका दीर्घिकोष्टिका ॥ १२ ॥

जहा चञ्चा कञ्जा पिच्छा पिञ्जा गुञ्जा खजा प्रजा ।

मस्मि घण्टा जटा घोण्टा पोटा भिस्मटया छटा ॥ १४ ॥

अर्थात् उपर्युक्त श्लोकों में अन्तिम आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों का सकलन किया गया है ध्रुवका, क्षिपका, कनीनिका, शम्बुका, शिविका, गवेधुका, कणिका, केका, विपादिका, महिका, यूका, मक्षिका, अष्टिका, कूर्चिका, कूर्चिका, टीका, कोशिका, केणिका, उर्मिका, जलौका, प्राविका, धूका, कालिका, दीर्घिका, उष्टिका, जहा, चञ्चा, कञ्जा, पिच्छा, पिञ्जा, गुञ्जा, खजा प्रजा, इटा, घटा, जटा, घोटा, पोटा, भिस्मटया और छटा शब्दों को स्त्रीलिङ्गवाची माना है। इन शब्दों के सकलन पर दृष्टिगत करने पर ज्ञात होता है कि यह सकलन वा दृष्टिकोणों से किया गया होगा। पहला दृष्टिकोण तो शब्दसाम्य का भी हो सकता है और यहाँ उष्टिका तक के सभी शब्दों में का वर्ण का साम्य विद्यमान है। चञ्चा से लेकर छटा तक चञ्चर्ण एव टर्ण का साम्य उपलब्ध है। अतः इस साम्य को शब्दसाम्य भी कहा जा सकता है।

इसी प्रकार के आगे वाले शब्दों के साथ विचार करने से एक साम्य अन्तिम स्वरों में भी मिला है। अर्थात् उपर्युक्त सभी शब्दों में अन्तिम आ वर्ण का साम्य विद्यमान है। यही अन्तिम स्वर वर्ण-साम्य दूसरा

दृष्टिकोण हो सकता है। अन्तिम आकारान्त शब्दों के अनन्तर आने वाले इकारान्त और उकारान्त शब्दों में इस ऋण का स्पर्शकरण और अधिक हो जाता है।

मृचिः सूचिसाची रनिः ग्यानिन्वारी रलिः कीलिनली रुमिर्वादि धृली ।  
कृपिः स्यालिहिण्डी वृटिर्वेदिनान्दी किकिः कुक्कृटिः काकलिः शुक्तिरड्की ॥२६॥

× × × ×

काण्ठी गल्ली मदी घटी गोणी रण्टोत्येपणी द्रुणी ।

तिलपर्णा केवली गटी नधोग्यसर्त्या च पातली ॥ ३१ ॥

अर्थात्—मृचि-कान्ति, सूचि-मेरुनी, साची-तिर्यग, खानि, खारी—मान-विशेष, खली-पिङ्गाकादि, कीलि—कीलिका-गुलि-चित्र-वृषिका, कृमि-कृम, वारि-वृष, धूलि-पातु, कृपि-कर्षण, स्यालि-उखा, हिण्डी—रात्रि में घूमने वाले रथान्तर, वृटि-उद्यर और अल्प, वेदि-यज्ञोपकरण मूमि, नान्दि—पूर्वगङ्गारङ्ग, किकि-पिकिषेप, कुक्कृटि-कुट्टनी, काकलि-धर्मनिषेप, शुक्ति-कपाल-शकल एवं पंक्ति-दश सरया शब्दों को स्त्रीलिङ्ग अनुशासित किया है। उपर्युक्त सभी शब्दों में अन्तिम इकार की उपलब्धि होती है। अतः इन्हें अन्तिम इकारान्त कहा गया है। काण्ठी-वेदनिषेपक ग्रन्थ, खल्ली—दृष्टपादाकर्मदर्शनाररोग, मदी-दृषेकनु विशेष, घटी-रत्नवट, गोणी-धान्यमात्र विशेष, रण्टोली-सरसा और नैलमान, एपणी-दैन्यलाका, द्रुणी-कान्तिका, तिलपर्णा-रक्त-चन्दन, केवली-ज्योतिःशाल, खयी-खट्नी, नधो-ध्री, रतती-महान्त एवं पातली-वागुरा शब्द स्त्रीलिङ्गी हैं। हेमने उपर्युक्त शब्दों में अन्तिम ह्रस्व इकारान्त शब्दों के अनन्तर अन्तिम दीर्घ ईकारान्त शब्दों का संकल्प किया है। इसके पश्चात् अन्तिम उकारान्त और उकारान्त शब्दों का संग्रह किया है। हेमने अन्तिम स्वरान्त शब्दों के पश्चात् व्यञ्जनान्त शब्दों का लिङ्गनिश्चय किया है।

हेम ने तीसरे प्रकार का शब्दसंग्रह शब्दसाम्य के आधार पर किया है। पुलिङ्गी, स्त्रीलिङ्गी और नपुंसकलिङ्गी शब्दों को लिखते समय अन्तिम या आदि स्वर अथवा व्यञ्जन-साम्य के आधार पर शब्दों का चयन किया गया है। नाचि अन्तिम (इ) के साम्य के आधार पर उपर्युक्त नपुंसकलिङ्गी शब्दों की तालिका दी जाती है। इस प्रकार के शब्द नपुंसकलिङ्ग प्रकरण में आये हैं। ८ वें श्लोक से लेकर ११ वें श्लोक तक अन्तिम इकारान्त, ११ वें श्लोक के अन्तिम पाद तथा १२ वें श्लोक में अन्तिम उकारान्त, गकारान्त, घकारान्त, चकारान्त, छकारान्त और अकारान्त शब्दों का संग्रह किया है। १३ वें श्लोक में अन्तिम उकारान्त, टकारान्त, और टकारान्त शब्दों का संकल्प है। इसके आगे वाले श्लोकों में अन्तिम

टकारान्त, डकारान्त, टकारान्त, णकारान्त, तकारान्त, थकारान्त, दकारान्त  
धकारान्त, नकारान्त, पकारान्त, फकारान्त, वकारान्त, उकारान्त एवं हकारान्त  
शब्दों का संकलन किया गया है। उदाहरणार्थ, वैनीतक, भ्रमरक, मरक,  
दलीक, वल्मीक, बल्क, दुलक, परक, व्यलीक, विञ्जल्क, बल्क, कणिक, स्तवक,  
निगङ्क, वचस्व, चूचुक, तडाक, तङ्क, बालक, फलक, मालक, अलक, मूलक,  
तिलक, पंक, पातक, कारक, करक, कन्दुक, अन्दुक, मनीक, निष्क, चपक, विशेषक,  
शाटक, कटक, टङ्क, विदङ्क, पञ्चक, पल्पङ्क, मेचक, नाक, पिनाक, पुस्तक,  
मस्तक, मुस्तक, शाक, वाँक, मोदक, मूषिक, मुष्क, चण्डातक, चरक, रोचक,  
कञ्चुक, मस्तक, वाक्क, करटक, तण्डक, आतङ्क, शूरक, सरक, कटक, सुल्क,  
पिम्बाक, इक्षारक और हसक शब्द अन्तिम ककारान्त होने से शब्दसाम्य  
के आधार पर नपुंसकलिङ्गवाचियों में पठित किये गये हैं।

शब्दसाम्य का यह आधार केवल अन्तिम शब्दों में ही नहीं मिला  
बल्कि कहीं-कहीं तो नादानुकरण भी मिलता है; जिसे समस्त शब्द गाने,  
स्थिति एवं नाद आदि के अनुकरण के आधार पर नित्कुल मिलते-जुलते  
से दिखलायी पड़ते हैं। हेम ने उक्त प्रकार के शब्दों को लेकर और शब्द-  
साम्य के आधार पर उनका वर्गीकरण कर शब्दों का चयन किया है।  
उदाहरण के लिए निम्न श्लोक उद्धृत हैं—

गुन्द्रा मुद्रा लुद्रा मद्रा मन्त्रा छत्रा यात्रा मात्रा ।

दंष्ट्रा फेला वेला मेला गोला शाला माला ॥ २१ ॥

मेखला सिष्मला लीला रसाला सवेला बला ।

कुहाला शङ्कुला हेला शिला सुवर्चला कला ॥ २२ ॥

( स्त्रीलिङ्ग प्रकरण )

उपर्युक्त पद्यों में आगत गुन्द्रा, मुद्रा, लुद्रा और मद्रा में, मन्त्रा, छत्रा,  
यात्रा, मात्रा और दंष्ट्रा में एवं फेला, वेला, मेला, गोला, शाला, माला, मेखला,  
सिष्मला, लीला, रसाला, सवेला, बला, कुहाला, शङ्कुला, हेला, शिला, सुवर्चला  
और कला शब्दों में केवल अन्तिम वाँ की ही समता नहीं है, अन्तिम उक्त  
शब्दों के उच्चारण तत्त्व और श्रवणीय तत्त्वों में पूर्ण समता है। अतः उपर्युक्त  
शब्दों में शब्द-साम्य माना ही जायगा। एक सामान्य व्यक्ति भी गुन्द्रा, मुद्रा,  
लुद्रा और मद्रा में शब्दसाम्य का अनुभव करेगा।

अतः हेम ने शब्द-संकलन का एक प्रमुख क्रम शब्दसाम्य माना है और  
इस आधार पर शब्दों का संचयन प्रायः समस्त लिङ्गानुशासन में बहुधा से  
उपलब्ध होता है।



अर्थ साम्य के आधार पर भी हेम ने लिङ्गानुशासन में शब्दों का संग्रह किया है। अगवाचक, पशु-पक्षीवाचक, दासवाचक, दलवाचक, वृत्त एव वृक्ष के अग विशेष पल्लव, पुष्प, शाखावाचक तथा वस्तुवाचक कतिपय शब्दों का अर्थानुसारी सकलन किया गया है। निम्न श्लोक में अगवाची शब्दों का सकलन दर्शनीय है।

हस्तस्तनौष्ठनखदन्तकपोलगुल्फकेशान्धुगुच्छदिवसर्तुपतद्महाणाम् ।

निर्यासनाकरसकण्ठकुठारकोष्ठहैमारिवर्षविषत्रोत्तरथाशनीनाम् ॥ २ ॥

—पुल्लिङ्ग

अर्थात्—हस्त, स्तन, ओष्ठ, नख, दन्त, कपोल, गुल्फ और केश इन अगवाची शब्दों का पुल्लिङ्गी शब्दों में अर्थानुसारी सकलन किया गया है। यद्यपि यह सत्य है कि हेम ने शब्दों के संग्रह में शब्दसाम्य का आधार ही प्रधान रूप से ग्रहण किया, तो भी औपधियों के नाम, पशु-पक्षियों के नामों में अर्थानुसारी या विषयानुसारी क्रम आ ही गया है।

हेम लिङ्गानुशासन में अन्तिम-वर्ण की समता के आधार पर ही प्रायः शब्दों का सकलन उपलब्ध होता है। इन शब्दों के क्रम में लालित्य एव अनुप्रास का भी पूरा ध्यान रखा गया है। जैसे—

कर्पूरनूपुरकुटीरविहारवारकान्तारतोमरदुरोदरवासराणि ।

कासारकेसरकरीरशरीरजीरमञ्जीरशेखरयुगंधरवज्रप्रभा ॥ २७ ॥

आलमालपलभालपलाला पल्वल रालचपालविशालाः ।

शूलमूलमुकुतास्तलतैली तूलकुट्टमलतमालकपालाः ॥ २८ ॥

कवलप्रवालवृक्षशम्बलोत्पलोपलशीलशैलशकलाङ्गुलाङ्गुलाः ।

कमल मल मुशालशालकुण्डलाः कलल नल निगलनीलमङ्गलाः ॥ २९ ॥

—पुनपुसकण्ठि

अर्थात् कर्पूर, नूपुर, कुटीर, विहार, वार, कान्तार, तोमर, दुरोदर, वासर, कासार, केसर, करीर, शरीर, जीर, मञ्जीर, शेखर, युगंधर, वज्र एव वृष शब्दों को पुनपुसकण्ठि कहा गया है। इन शब्दों के रखने के क्रम में कर्पूर अन्तिम स्वर का ही साम्य नहीं है अपितु कर्पूर और नूपुर में, कुटीर और विहार में, वार और कान्तार में, तोमर और दुरोदर में, वासर कासार में, करीर और शरीर में, जीर और मञ्जीर में, शेखर और युगंधर में तथा वज्र और वृष में पूर्णतया अनुप्रासगतित्य एव शब्दसाम्य का ध्यान रखा गया है।

आल, माल, पल, भाल, पाल, पल्वल, राल, चपाल, विशाल, शूल, मूल, मुकुल, तूल, तैल, तूल, कुट्टमल, तमाल, कपाल, कवल, प्रवाल, वृक्ष, शम्बर, उत्पल, उपल, शील, शैल, शकल, अङ्गुल, चचल, कमल, मल, मुशल, शाल,

कुण्डल, कलल, नल, निगल, नील और मंगल शब्दों को पुंनपुंसकलिङ्गी बताया है। उपर्युक्त शब्दों के संकलन में दो या तीन शब्दों का एक क्रमविशेष मान कर शब्द चयन किया है। जैसे—आलवाल और पल में, माल और पलाल में, पल्लल और खल में, चपाल और विशाल में, शूल, मूल और मुकुल में, तल और तैल में, तूल और कुडमल में, तमाल और कपाल में, कवल और प्रवाल में, बल और शम्बल में, उत्पल और उपल में, शील और शैल में, शकल और अङ्गल में, चंचल और कमल में, मल और मुशल में, शाल और कुण्डल में, कलल और नल में, एवं निगल, नील और मंगल में एक अद्भुत प्रकार का साम्य है। अतः हेम ने लिङ्गानुशासन में शब्द-संचयन के समय शब्द-साम्य पर पूरा ध्यान रखा है। हेम ने इस लिङ्गानुशासन में पुंलिङ्गी, स्त्रीलिङ्गी, नपुंसकलिङ्गी, पुं-स्त्रीलिङ्गी, पुं-नपुंसकलिङ्गी, स्त्री-स्त्रीलिङ्गी, स्वतःस्त्रीलिङ्गी और परलिङ्गी शब्दों का संग्रह किया है। पुं-स्त्रीलिङ्गी शब्दों के संकलन में पुंलिङ्गी शब्दों को बताकर उन्हींका स्त्रीलिङ्गी रूप ग्रहण करने का निर्देश किया है। यथा—

विधकूपकलवजित्यध्र्याः सहचरमुद्गरनालिकेरहाराः ।

बहुकरकृसरौ कुठारशारौ बहुरशफरमसूरकीलरालाः ॥ ८ ॥

पटोलः कम्बलो मल्लो दंशो गण्डूपवेतसौ ।

लालसो रभसो वर्तिवितस्तिवुटयस्त्रुटिः ॥ ९ ॥

अर्थात् विध, कूप, कलम्ब, जित्य, ध्र्य, सहचर, मुद्गर, नालिकेर, हार, बहुकर, कृसर, कुठार, शार, बल्लर, शर, मसूर, कील, राल, पटोल, कम्बल, मल्ल, दंश, गण्डूष, वेतस, लालस, रभस, इदंवर्ति, इदंवितस्ति, और त्रुटि इन स्त्रीलिङ्गी शब्दों को स्वयमेव ग्रहण करना पड़ता है।

हेम ने स्वतःस्त्रीलिङ्गी शब्दों का एक पृथक् प्रकरण रखा है। पाणिनि, अनुभूति स्वप्पाचार्य और अमर तीनों की अपेक्षा हेम का यह प्रकरण मौलिक है। यद्यपि प्रत्ययान्त शब्दों का निर्देश करते हुए पाणिनि ने स्त्रीलिङ्गी शब्दों के प्रकरण में, स्वतःस्त्रीलिङ्गी शब्दों का निर्देश किया है, परन्तु उनका यह निर्देश मात्र निर्देश ही है। हेम ने उन सभी शब्दों का एक अलग प्रकरण बना दिया है, जिनका विशेष-विशेष्य भाव के आधार पर लिङ्ग निर्धारण नहीं किया जाता है; बल्कि जिनमें स्वतः ही स्त्रीलिङ्ग विद्यमान है। ऐसे शब्दों की तालिका में मयपान अर्थ में सरक; श्वाक्त्रिमीन् वाच्यार्थ में शक्य; अश्वोपल अर्थ में करक, बीजकोश, खडगपिधान और प्रत्याकार अर्थ में कोश; केदार अर्थ में बहज, धान्य, पन्ने और स्थान अर्थ में खल शब्द को स्वतः स्त्रीलिङ्ग कहा है। इसके आगे नक्षत्र अर्थ में अधिनी; चित्रा,

पुर अर्थ में अमरावती, अलका; आमरण अर्थ में मेटला; वृष अर्थ में मल्लातकी, आमलकी, हरीतकी, विमीतकी; दनुज अर्थ में तारका; मानविशेष में आटकी; भाजन विशेष और फोट अर्थ में पिरका; अग्निवण अर्थ में स्फुलिङ्ग; औषधिविशेष अर्थ में विडङ्गा; दन्तविशेष अर्थ में पटी; पत्र-भाजन अर्थ में पुटी; न्यग्रोध, तद तथा रस्सी अर्थ में वटी; वृत्ति अर्थ में वाटी; छोटे फिवाड़ों के अर्थ में कपाटी; छोटी गाड़ी के अर्थ में ककटी; आश्रम विशेष अर्थ में मटी; भाजनमेद के अर्थ में कुण्डी; शृंग अर्थ में विषाणी; केश मार्जन अर्थ में कंकनी; घाण अर्थ में तूणी, तूणा; कन्दविशेष में मुस्ता; वर्ण कञ्जल में कुषा; वृक्षविशेष अर्थ में इहुदी; जम्माई अर्थ में जम्मा; वृक्ष अर्थ में दाडिमा; स्थाली अर्थ में पिठरी; सेना के पिछले हिस्से के अर्थ में प्रतिहरा; भाजन अर्थ में पानी; गुफा के अर्थ में कन्दरी, कन्दरा; नखाम अर्थ में नखरी, नखरा; आतपत्र अर्थ में छत्री; देशस्मूह अर्थ में मण्डली; कमल बंटल अर्थ में नाली, नाला; घर के ऊपरी भाग तथा अक्षिरोग के अर्थ में पट्टी; रज्जु अर्थ में शृंखला; घास के बँधे हुए गठुर के अर्थ में पूली, पूला एवं अवठा अर्थ में ।अवहेला आदि स्वतः स्त्रीलिङ्गी शब्दों का निरूपण किया गया है ।

हेम ने द्वन्द्व समास में, सपाद्यर्थ में, धान्यार्थ में, अपत्यर्थ में, त्रियोपाधि में, स्वार्थ में, प्रकृत्यर्थ में एवं निवासादि अर्थों में परलिङ्ग का निर्देश किया है । यह 'हेमलिङ्गानुशासन' पुँलिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसकलिङ्गवाची शब्दों की पूर्णजानकारी कराने में सक्षम है ।



## चतुर्थ अध्याय

### हेमचन्द्र और पाणिनि

संस्कृत व्याकरण की रचना बहुत प्राचीनकाल से होती आई है। संस्कृत के प्रकाश वैयाकरण महर्षि पाणिनि के पूर्व भी कई प्रभावशाली वैयाकरण हो चुके थे, किन्तु पाणिनि के व्याकरण की पूर्णता एवं प्रभावशालिता के कारण सूर्य के सामने नक्षत्रों की भाँति उनकी प्रभा विलीन हो गयी और व्याकरण जगत में पाणिनीय प्रकाश व्याप्त हो गया। इतना ही नहीं अपितु इस भान्तर प्रकाश के सामने बाद में भी कोई प्रतिभा उद्भासित नहीं हो सकी। विष्णु की बारहवीं शताब्दी में एक हीमी प्रतिभा ही इसके अनवाद रूप में जागरित हुई। यह प्रतिभा केवल प्रकाश ही लेकर नहीं आई अपितु उस प्रकाश में रसमयी शीतलता का सहयोग भी था। हेम ने शब्दानुशासन के साथ शब्दप्रयोगात्मक द्रव्याश्रय कान्य की भी रचना की।

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने शब्दानुशासन को पाणिनीय शब्दानुशासन की अपेक्षा सरल बनाने की सफल चेष्टा की है, साथ ही पाणिनीय अनुशासन से अवशिष्ट शब्दों की सिद्धि भी बतलायी है। संक्षेप में यह कह सकते हैं कि शब्दानुशासन प्रक्रिया में पाणिनीय वैयाकरणों के समस्त मस्तिष्कों से जो काम पूरा हुआ है, उसे अकेले हेम ने कर दिखाया है। सब कहा जाय तो इस दृष्टि से संस्कृत भाषा का कोई भी वैयाकरण चाहे वह पाणिनि ही क्यों न हो, हेम की बराबरी नहीं कर सकता। हमें ऐसा लगता है कि हेम ने अपने समय में उपलब्ध कातन्त्र, पाणिनीय, सरस्वतीकण्ठामरण, जैनेन्द्र, शाकटायन आदि समस्त व्याकरण ग्रन्थों का आलोचन कर सारग्रहण किया है और उसे अपनी अद्भुत प्रतिभा के द्वारा विस्तृत और चमत्कृत किया है।

प्रस्तुत प्रकरण में शब्दानुशासन की समस्त प्रक्रियाओं को ध्यान में रखते हुए हेम की पाणिनि के साथ तुलना की जायगी और यह बतलाने का आयात रहेगा कि हेम में पाणिनि की अपेक्षा कौन सी विशेषता और मेलिकता है तथा शब्दानुशासन को दृष्टि से हेम का विधान कैसा और कितना मौलिक एवं उपयोगी है।

सर्वप्रथम पाणिनि और हेम के संज्ञाप्रकरण पर विचार किया जायगा और दोनों की तुलना द्वारा यह बतलाने की चेष्टा की जायगी कि हेम की संज्ञाएँ पाणिनि की अपेक्षा कितनी सटीक और उपयोगी हैं।

संस्कृत भाषा के प्रायः सभी ग्रन्थों में सर्वप्रथम पारिभाषिक संज्ञाओं का एक प्रकरण दे दिया जाता है। इससे लाम यह होता है कि आगे संज्ञा शब्दों द्वारा संक्षेप में जो काम चलाये जाते हैं वहाँ उनका विशेष अर्थ समझने में बहुत कुछ सहूलियत हो जाया करती है। संस्कृत के व्याकरण ग्रन्थ भी इसके अपवाद नहीं। वास्तव में व्याकरणशास्त्र में इस बात की और अधिक उपयोगिता है; यतः विशाल शब्दराशि की व्युत्पत्ति की विवेचना इसके बिना संभव नहीं है। उसमें विशेष कर संस्कृत व्याकरण में जहाँ एक-एक शब्द के लिए संविधान की आवश्यकता पड़ती है।

संस्कृत के शब्दानुशासकों ने विभिन्न प्रकार से अपनी-अपनी संज्ञाओं के साकेतिक रूप दिये हैं। कहीं-कहीं एकता होने पर भी विभिन्नता प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। यही तो कारण है कि जितने विशिष्ट शब्दाकरण हुए उनकी रचनाएँ अलग-अलग व्याकरण के रूप में अभिहित हुईं। विवेचन शैली की विभिन्नता के कारण ही एक संस्कृत भाषा में व्याकरण के कई तन्त्र प्रसिद्ध हुए।

हेमचन्द्र की सर्वत्र व्यावहारिक प्रवृत्ति है; इन्होंने संज्ञाओं की संख्या बहुत कम रखकर काम चलाया है। इन्होंने स्वरों का संज्ञाओं में वर्गीकरण करते हुए, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, नाग्नि, समान और सन्ध्यश्च ये छः सामान्य संज्ञाएँ प्रस्तुत की हैं। इसी प्रकार व्यंजनों के, संज्ञाओं द्वारा विभाजन प्रसंग में छः संज्ञाएँ संकल्पित हैं। ये हैं—धुट्, वर्ग, घोषवान्, अघोष, अन्तस्थ और शिट्। स्वर संज्ञाओं तथा व्यंजन संज्ञाओं का विवेचन कर लेने के बाद एक स्व संज्ञा का विधान है, जिसका उपयोग स्वर एवं व्यंजन दोनों के लिए समान है।

स्वर तथा व्यंजन विधान संज्ञाओं के विवेचन के अनन्तर विभक्ति, पद, नाम, और वाक्य संज्ञाओं का बहुत ही वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया है। पाणिनीय व्याकरण में इस प्रकार के विवेचन का ऐकान्तिक अभाव है। पाणिनि तो वाक्य की परिभाषा देना ही भूल गये हैं। परवर्ती वैयाकरण कात्यायन ने संभालने का प्रयत्न अवश्य किया है, पर उन्होंने वाक्य की जो परिभाषा “एकतिङ्-वाक्यम्” दी है, वह भी अधूरी ही रह गयी है। बाद के पाणिनीय तन्त्रकारों ने इसे व्यस्तित्व करना चाहा है, किन्तु वे “एकतिङ् वाक्यम्” के दायरे से दूर नहीं जा सके हैं। फलतः उनकी वाक्य-परिभाषा सीधा स्वरूप लेकर उपस्थित नहीं हो सकी है और उसकी अपूर्णता ज्यों की त्यों बनी रही है। किन्तु हेम ने वाक्य की बहुत स्पष्ट परिभाषा दी है “सविशेषणमाख्यातं वाक्यम्” १।१।२६ “त्पाद्यन्तं पदमाख्यातम्, साक्षात् पारम्पर्येण वा यान्चाख्यातविशेषणानि तैः प्रयुज्यमानैरप्रयुज्यमानैर्वा सहितं प्रयुज्यमानमप्रयुज्यमानं वा आख्यातं वाक्यसंज्ञं भवति”। अर्थात् मूल सूत्र में सविशेषण आख्यात वाक्य की वाक्यसंज्ञा बतलायी

गई है। यहाँ आख्यात के विशेषण का अर्थ है अयय, कारक, कारकविशेषण और क्रियाविशेषणों का साक्षात् या परम्परया रहना। आगे वाले वृत्त्यश से स्पष्ट है कि प्रयुज्यमान अयवा अप्रयुज्यमान विशेषणों के साथ प्रयुज्यमान अयवा अप्रयुज्यमान आख्यात को वाक्य कहा गया है। यहाँ विशेषण शब्द द्वारा केवल सजाविशेषण का ही ग्रहण नहीं है, अपितु साधारणतः अप्रधान अर्थ लिया गया है और आख्यात को प्रधानता दी गयी है। वैयाकरणों का यह सिद्धान्त भी है कि—वाक्य में आख्यात का अर्थ ही प्रधान होता है। तात्पर्य यह है कि हेम की वाक्य परिभाषा सर्वाङ्गपूर्ण है। इन्होंने इस परिभाषा का सम्बन्ध वाक्य प्रदेश “पदाद्युक्तिमक्त्यैकवाक्ये वस्तुतै बहुत्वे” २।१।२१ सूत्र से भी माना है। पाणिनि या अन्य पाणिनीय तन्त्रकार वाक्यपरिभाषा को हेम के समान सर्वाङ्गी नहीं बना सके हैं। यों तो ‘एकतिङ्वाक्यन्’ से कामचलाऊ अर्थ निकल आता है और किसी प्रकार वाक्य की परिभाषा बन जाती है, पर समीचीन और स्वरूप म वाक्य की परिभाषा सामने नहीं आ पाती है। अतः आचार्य हेम ने वाक्य परिभाषा को बहुत ही स्वरूप में उपस्थित किया है।

हेम ने सात सूत्रों में अव्ययसज्ञा का निरूपण किया है। इस निरूपण में सबसे बनी विशेषता यह है कि निपातसज्ञा को अव्ययसज्ञा में ही विलीन कर लिया है। इन्होंने चादि को निपात न मानकर सीधा अव्यय मान लिया है। यह एक सञ्चितिकरण का लघुतम प्रयास है। इत् प्रत्यय और सम्भावत् सज्ञाभा का विवेचन भी पूर्ण है। हेम ने अनुनासिक का अर्थ व्युत्पत्तिगत मान लिया है, अतः इसके लिए पृथक् सूत्र बनाने की आवश्यकता नहीं समझी है। सज्ञाप्रकरण की हेम की सज्ञाएँ शब्दानुसारी हैं, किन्तु आगे वाली कारकीय सज्ञाएँ अर्थानुसारी हैं। पाणिनि के समान हेम की सज्ञाओं का तात्पर्य भी अधिक से अधिक शब्दावली को अपने अनुशासन द्वारा सनेद्यना मालूम पड़ता है। अतः हेम ने पाणिनि की अपेक्षा कम सज्ञाओं का प्रयोग करके भी कार्य चला लिया है। यह सत्य है कि हेम ने पाणिनीय व्याकरण का अवलोकन कर भी उनकी सज्ञाओं का ग्रहण नहीं किया है। ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत सज्ञाएँ पाणिनि ने भी लिखी हैं किन्तु हेमने इन सज्ञाओं में स्मृता और सहज बोधगम्यता लाने के लिए एक, द्वि और त्रिमात्रिक को क्रमशः ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत कह दिया है। वस्तुतः पाणिनि के “उकालाऽद्भ्रस्वदीर्घप्लुत.” १।१।२७ सूत्र का भाव ही प्रकट करके हेम ने एकमात्रिक, द्विमात्रिक और त्रिमात्रिक कहकर सर्वसाधारण के लिए स्वीकरण किया है। हेम के “औदन्ताः म्वराः १।१।४ की अनुवृत्ति में उक्त संज्ञाओं में विद्यमान है।

पाणिनि का सर्वसज्ञा विधायक “दुल्यायस्वप्रयत्न सर्वान् १।१।९ सूत्र है।

हेम ने इसी संज्ञा के लिये "तुल्यस्थानाम्यप्रयत्नः स्वः" १।१।१७ सूत्र लिखा है। इस संज्ञा के रूप में हेम की कोई विशेषता नहीं है, बल्कि पाणिनि का अनुकरण ही प्रतीत होता है। हाँ, सर्वसंज्ञा के स्थान पर हेम ने स्वसंज्ञा नाम-करण कर दिया है। दोनों ही शब्दानुशासकों का एक सा ही भाव है।

हेम और पाणिनि की संज्ञाओं में एक मौलिक अन्तर यह है कि हेम प्रत्याहार के मामले में नहीं पड़े हैं, उनकी संज्ञाओं में प्रत्याहारों का विलुप्त अभाव है। वामाला के वर्णों को लेकर ही हेम ने संज्ञाविधान किया है। पाणिनि ने प्रत्याहारों द्वारा संज्ञाओं का निरूपण किया है जिससे प्रत्याहारभ्रम को रमरण किये बिना संज्ञाओं का अर्थबोध नहीं हो सकता है। अतः हेम के संज्ञाविधान में सरलता पर पूर्णध्यान रखा गया है।

पाणिनि ने अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय को व्यञ्जन-विकार कहा है। वास्तव में अनुस्वार, मृदार या नकारजन्य है। विसर्ग सकार या वही रेखजन्य होता है। जिह्वामूलीय और उपध्मानीय दोनों ऋणः क, ख तथा प फ के पूर्व स्थित विसर्ग के ही विवृत रूप हैं। पाणिनि ने उक्त अनुस्वार आदि को अपने प्रत्याहार सूत्रों में—दण्डमाला में, स्वतंत्र रूप से कोई स्थान नहीं दिया है। उत्तर कालीन पाणिनीय ध्याकरणी ने इसकी बड़ी बेरदार चर्चा की है कि इन वर्णों को स्वरों के अन्तर्गत माना जाय अथवा व्यञ्जनों के। पाणिनीय शास्त्र के उद्भूत विद्वान् कात्यायन ने इसका निर्णय किया कि इनकी गणना दोनों में करना उपयुक्त होगा। पाणिनीय तत्त्ववेत्ता पतञ्जलि ने भी इसका पूर्ण समर्थन किया है। हेम ने अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय और उपध्मानीय को "अं अः क् प शपाः शिट्" १।१।१६ सूत्र द्वारा शिट् संज्ञक माना है। इससे स्पष्ट है कि हेम ने अपने शब्दानुशासन में विसर्ग, अनुस्वार, जिह्वामूलीय और उपध्मानीय को व्यञ्जनों में स्थान दिया है। हेम की शिट् संज्ञा व्यञ्जनवर्णों की है तथा व्यञ्जन वर्णों की संज्ञाओं में हेम ने उक्त विसर्गदि को स्थान दिया है। शाकटायन व्याकरण में भी अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय और उपध्मानीय को व्यञ्जनों के अन्तर्गत माना है। ऐसा व्यता है कि हेम इस स्थल पर पाणिनि की पेशा शाकटायन से ज्यादा प्रभावित हैं। हेम का अनुस्वार, विसर्ग आदि का व्यञ्जनों में स्थान देना अधिक तर्कसंगत जंचता है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम संक्षेप में इतना ही कह सकते हैं कि हेम ने अपनी आवश्यकता के अनुसार संज्ञाओं का विधान किया है। जहाँ पाणिनि के निरूपण में क्लिष्टता है वहाँ हेम में सरलता और व्यावहारिकता है।

पाणिनि ने जिसे अच् सन्धि कहा है हेम ने उसे स्वर सन्धि। हेम ने गुण

सन्धि में श्रु के स्थान पर अर् और लृ के स्थान पर अल् किया है। पाणिनि को इसी कार्य की सिद्धि के लिए पृथक् "उरण रपरः" १।१।५१ सूत्र लिखना पड़ा है। हेम ने इस एक सूत्र की वृत्त कर १।१।३ सूत्र में ही उक्त कार्य को सिद्ध कर दिया है। हेम ने ऐ और औ को सन्धि-स्वर कहा है, पाणिनि और कात्यायन ने नहीं। उत्तरकालीन व्याख्याकारों ने इनकी सन्ध्यधरो में गणना की है।

पाणिनि ने "एङि पररूपम् ६।१।९४। सूत्र द्वारा पहले अ हो और बाद में ए ओ हो तो पररूप करने का अनुशासन किया है। हेम ने "बौष्टौतो समासे" १।२।१७ द्वारा लुक् का विधान किया है। पाणिनि ने अयादि सन्धि के लिए "एचोऽयवायावः" ६।१।७८ सूत्र का कथन कर समस्त कार्यों की सिद्धि कर ली है, किन्तु हेम को इस अयादि सन्धि कार्य के लिए "एदौतोऽयाय्" १।२।२३ तथा "ओदौतो वाव्" १।२।२४ इन दो सूत्रों की रचना करनी पड़ी है। स्वरसन्धि में हेम का "ह्रस्वोऽपदे वा" १।२।२२ विस्तुल नवीन है। पाणिनि व्याकरण में इसका जिक्र नहीं है। मालूम होता है कि हेम के समय में "नदि एपा" और "नद्येपा" ये दोनों प्रयोग प्रचलित थे। इसी कारण इन्हें उक्त रूपों के लिए अनुशासन करना पड़ा। गव्यति, गव्यते, नाव्यति, नाव्यते, लव्यम् एवं लाव्यम् रूपों के साधुत्व के लिए हेम ने "ध्यक्ये" १।२।२५ सूत्र लिखा है। इन रूपों की सिद्धि के लिए पाणिनि के "वान्तो यि प्रत्यये" ६।१।७९ तथा "घातोस्तन्निमित्तस्यैव" ६।१।८० ये दो सूत्र आते हैं। अभिप्राय यह है कि हेम ने लव्यम् और लाव्यम् की सिद्धि भी १।१।२५ से कर ली है, जब कि पाणिनि को इन रूपों के साधुत्व के लिए ६।१।८० सूत्र पृथक् लिखना पड़ा है। पाणिनि के पूर्वरूप और पररूप का कार्य हेम ने लुक् द्वारा चला लिया है। पाणिनि ने जिसे प्रवृत्तिमाव कहा है, हेम ने उसे असन्धि कहा है।

उ, इति, विति तथा ऊँ इति इन रूपों की साधनिका के लिए पाणिनि ने "उञ्जः" १।१।१७ तथा "ऊँ" १।१।१८ ये दो सूत्र लिखे हैं। हेम ने उक्त रूपों की सिद्धि "ऊँ चोञ्" १।२।३९ सूत्र द्वारा ही कर दी है।

पाणिनि ने जिसे ह्रस्व सन्धि कहा है, हेम ने उसे व्यंजन सन्धि। हेम ने व्यंजन सन्धि में कवर्गादि क्रम से वर्णों का ग्रहण किया है, जब कि पाणिनि ने प्रत्याहारक्रम ग्रहण किया है। पाणिनि ने विसर्ग को जिह्वामूलीय और उपध्मानीय बताया है, पर हेम ने रुः क्स्वप्नयोः × क × पौ १।३।५ सूत्र में रेफ को ही विसर्ग तथा जिह्वामूलीय और उपध्मानीय कहा है। जो काम पाणिनि ने विसर्ग से चलाया है, वह काम हेम ने रेफ से चलाया है।

हेम ने "नोऽप्रदानोऽनुस्वारानुनासिकौ च पूर्वस्यादुट् परे" १।३।८ सूत्र



मानकर काम चलाया है। यह भी हेम की लाघव दृष्टि का सूचक है।

पाणिनि ने आम् को साम् बनाने के लिए नुट् का आगम किया है, पर हेम ने “अर्द्धस्यामः साम्” १।४।१५ सूत्र द्वारा आम् को सीधे साम् बनाने का अनुशासन किया है।

अजन्त स्त्रीलिङ्ग में ल्तायै, ल्तायाः और ल्तायां की सिद्धि के लिए पाणिनि ने बहुत द्रविड प्राणायाम किया है। उन्होंने “याढानः” ७।३।११३ सूत्र से याट् किया; पुनः वृद्धि की, तब ल्तायै बनाया तथा दीर्घ करने पर ल्तायाः और ल्तायां का साधुत्व सिद्ध किया। पर हेम ने १।४।७ सूत्र द्वारा सीधे यै, याम् और याम् प्रत्यय जोड़कर उक्त रूपों का सहज साधुत्व दिखलाया है। हेम की यह प्रक्रिया सरल और लाघवसूचक है।

मुनि शब्द की औ विभक्ति को पाणिनि ने पूर्वसर्ग दीर्घ किया है। हेम ने “श्रुतोऽस्त्रेरीदूत्” १।४।२१ के द्वारा इकार के बाद औ हो तो दीर्घ ईकार और उकार के बाद औ हो तो दीर्घ ऊकार का विधान किया है। हेम की यह प्रक्रिया भी शब्दशास्त्र के विद्वानों को अधिक रन्ध्र और आनन्ददायक है।

“मुनौ” प्रयोग में पाणिनि ने ‘अन्च घेः’ ७।३।११९ के द्वारा इ को अ और ङि को औ किया है, तथा वृद्धि कर देने पर मुनौ की सिद्धि की है, किन्तु हेम ने १।४।५ के द्वारा ङि को औ किया है जिससे यहाँ ट का अनुबन्ध होने के कारण मुनि शब्द का इकार स्वयं ही हट गया है, अतएव मुनि शब्द के इकार के स्थान पर हेम को अकार करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई।

“देवानाम्” में पाणिनि ने नुट् का आगम किया है, किन्तु हेम ने “ह्रस्वाभ्” १।४।३२ के द्वारा सीधे आम् को नाम् कर दिया है। हेम ने पाणिनि के “त्रिज्यः” ६।१।५३ सूत्र को ज्यो का त्यो ‘त्रिज्यः’ १।४।३४ में ले लिया है। इसी तरह “ह्रस्वस्य गुणः” ७।३।१०८ को भी १।४।४१ में ज्यो का त्यो ले लिया है। पाणिनि ने नपुंसक लिंग में क्तरद् प्रयोग की सिद्धि के लिए “अद्इडतारादिभ्यः पञ्चम्यः” ७।१।२५ सूत्र द्वारा मु और अम् विभक्ति को अद् का विधान किया है और अ् का लोप किया है, पर हेम ने षि और अम् को सिद्धि “द्” बनाकर क्तरद् की सिद्धि की है। इससे इन्होंने अकार लोप को बचाकर लाघव प्रदर्शित किया है।

पाणिनि ने कुर्वत् शब्द से पुल्लिङ्ग में कुर्वन् बनाने के लिए ‘उगिदच्चां सर्वनामस्थानेऽघातोः’ ७।१।७० द्वारा “कुम्” और ‘संयोगान्तस्य लोपः’ ८।२।२३ द्वारा “त्” के लोप होने का नियमन किया है। हेम ने सीधे ‘श्रुदुदितः’ १।४।७० द्वारा “त्” के स्थान पर “न्” कर दिया है।

उचनस शब्द के सम्बोधन में रूप सिद्ध करने के लिए कात्यायन ने “अस्य सम्बुद्धौ चानेङ् नलोपश्च वा वाच्य” वार्तिक लिखा है। इस वार्तिक के सिद्धान्त को हेम ने ‘बोधनसोनश्चामथ्यौ’ १।४।८० में रख दिया है।

पाणिनि ने अपने पूर्ववर्ती अनेक वैयाकरणों का नाम लिया है, कहीं-कहीं ये नाम मात्र प्रशंसा के लिए ही आते हैं, किन्तु अधिकतर वहाँ उनसे सिद्धान्त का प्रतिपादन ही किया जाता है। जहाँ सिद्धान्त का प्रतिपादन रहता है, वहाँ स्वयमेव विकल्पार्थ हो जाता है। हेम ने अपनी अष्टाध्यायी में पूर्ववर्ती आचार्यों का नाम नहीं लिया है। विकल्प विधान करने के लिए प्रायः “वा” शब्द का ही प्रयोग किया है।

युष्मद् और अरमद् शब्दों के विविधरूपों की सिद्धि के लिए हेम ने अपने सूत्रों में तत्तद्रूपों को ही सकाल्त्त कर दिया है, जब कि पाणिनि ने इन रूपों को प्रक्रिया द्वारा सिद्ध किया है।

इद् शब्द के पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग के एकवचन में रूप बनाने के लिए पाणिनि के अलग नियम हैं। उन्होंने ‘इदमो म’ ७।२।१०८ के द्वारा म विधान और ‘इदोऽय् पुत्ति’ ७।२।१११ के द्वारा इद् को अय विधान किया है। स्त्रीलिङ्ग में “इयम्” बनाने के लिए पाणिनि ने ‘य सौ’ ७।२।११० से इद् के “इ” को “य” बनाया है, किन्तु हेम ने सीधे ‘अयमियम् पुस्त्रयो सौ’ २।१।३८ क द्वारा अय और इय रूप सिद्ध किये हैं। यहाँ पाणिनि की अपेक्षा हेम की प्रक्रिया सीधी, सरल और हृदयग्राह्य है। हेम की प्रयाग सिद्धि की प्रक्रिया से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि ये शब्दानुशासन में सरलता और वैज्ञानिकता को समान रूप से महत्त्व देते हैं। पाणिनि की प्रक्रिया वैज्ञानिक अवश्य है, पर कहीं-कहीं जटिल और बोझिल भी है। हेम अपनी सूक्ष्म प्रतिभा द्वारा प्रायः सर्वत्र ही जटिलता के बोझ से मुक्त हैं।

पाणिनि ने त्वद्, यद् आदि शब्दों के पुल्लिङ्ग में रूप बनाने के लिए ‘त्यदादीनाम’ ७।२।१०२ सूत्र द्वारा अकार का विधान किया है, इस प्रक्रिया में त्वद् आदि से लेकर द्वितक का ही ग्रहण होना चाहिए, इसके लिए भाष्यकार ने “द्विपर्यन्तानामेवेष्टि” द्वारा नियमन किया है। हेम ने भाष्यकार के उक्त सिद्धान्त को मिलाते हुए ‘आद्वेर’ २।१।४१ के द्वारा उसी बात को स्पष्ट किया है। पाणिनि ने ‘अचि श्नुधातुभ्रुधात्वारियन्वहौ’ ६।४।७७ क द्वारा इ को इयद् का विधान किया है। हेम ने ‘धातोरिदणोवर्णस्येनुव् स्वर प्रत्यये’ २।१।५० के द्वारा इय्, उव् मात्र का विधान कर एक नया दृष्टिकोण उपस्थित किया है।

पाणिनि ने विदुष्य शब्द की सिद्धि के लिए, “दसो सम्प्रसारणम्” ६।४।१३१

सूत्र द्वारा सम्प्रसारण किया है तथा पत्व विधान करने पर विदुषः का साधुत्व प्रदर्शित किया है। हेम ने 'कस्युमती च' २।१।१०५ सूत्र से विदुस् के व-स् को उप कर दिया है। वृध्नः बनाने के लिए पाणिनि ने हन् में से हकार के अकार का लोप कर ह् के स्थान पर घ् बनाने के लिए 'हो हन्तेऽग्निनेषु' ७।३।५४ सूत्र लिखा है। हेम ने हन् को 'हनो हो घ्नः' २।१।११२ के द्वारा सीधे घ्नः बना दिया है। हेम का यह प्रक्रियालाघव शब्दानुशासन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

हेम ने कारक प्रकरण आरम्भ करते ही कारक की परिमाणा दी है, जो इनकी अपनी विशेषता है। पाणिनीय अनुशासन में उनके बाद के आचार्यों ने "क्रियान्वयित्वम् कारकत्वम्" अथवा "क्रियाजनकत्वं कारकत्वम्" कहकर कारक की परिमाणा बतायी है, किन्तु पाणिनि ने स्वयं कोई चर्चा नहीं की है। हेम और पाणिनि दोनों ने ही कर्त्ता की परिमाणा एक समान की है। पाणिनि ने द्वितीयान्त कारक जिसे कर्मकारक कहते हैं, बताने के लिए कभी तो कर्मसंज्ञा की है और कभी कर्मप्रवचनीय तथा इन दोनों संज्ञाओं द्वारा द्वितीयान्त पदों की सिद्धि की है। "कर्मणि द्वितीया" तथा "कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया" सूत्रों द्वारा द्वितीया के विधान के साथ सीधे द्वितीयान्त का भी विधान किया है। हेम ने कर्मकारक बनाते समय सर्वप्रथम कर्म की सामान्य परिमाणा 'कर्तृव्याप्यं कर्म' २।२।३ सूत्र में बतायी है, इसके पश्चात् विशेषपद, के सन्निधान में जहाँ द्वितीयान्त बनाना है, वहाँ कर्मकारकत्व का ही विधान है अर्थात् कर्म कह देने से द्वितीयान्त समझ लिया जाता है। हेम के अनुसार कर्म स्वतः सिद्ध द्वितीयान्त है, उसमें द्वितीया विभक्ति लाने के लिए सामान्यतः किसी नियमन की आवश्यकता नहीं है। किन्तु एक बात यहाँ विशेष उल्लेखनीय है, वह यह है कि जहाँ पाणिनि ने यह स्वीकार किया है कि द्वितीयान्त धन जाने से ही कर्मकारक नहीं कहलाया जा सकता, बल्कि उसमें कर्म की परिमाणा भी घटित होनी चाहिए, फिर भी द्वितीयान्तमात्र होने के कारण उन रूपों का भी कारक प्रकरण के कर्मभाग में संग्रह कर दिया गया है। अतः पाणिनि की दृष्टि में विभक्ति और कारक पृथक् वस्तु हैं। विभक्ति अर्थ की अपेक्षा रखती है, पर कारक शब्द सापेक्ष है। हेम ने भी 'क्रियाविशेषणात्' २।२।४१ तथा 'कालाघ्नोर्व्याप्तौ' २।२।४२ में इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। हेम का यह प्रकरण पाणिनि के समान ही है।

हेम का 'उपान्वधादव्यय' २।२।२१ सूत्र पाणिनि के १।४।४८ के तुल्य तथा 'साधकतम करणम्' २।२।२४ सूत्र पाणिनि के १।४।४२ के तुल्य हैं। पाणिनि ने "भ्रुज्मपायेऽपादानम्" १।४।२४ सूत्र में "भ्रुज्" शब्द का प्रयोग किया है, जिसकी व्याख्या परवर्ती आचार्यों ने अवधि अर्थ द्वारा की है। हेम इस प्रकार के श्मेले

में नहीं पडे हैं। इन्होंने सीधे “अपायेऽवधिरपादानम्” २।२।२९ सूत्र लिखा है। पाणिनि के रचित सूत्र में सन्देह के लिये अवकाश था, जिसका निराकरण टीकाकारों द्वारा हुआ। परन्तु हेम ने सूत्र में ही अवधि शब्द का पाठ रख कर अर्थ सन्देह की गुजायश नहीं रखी है।

‘सन्धोधने च’ २।३।४७ पाणिनि का सूत्र है पर हेम ने “आमन्त्रे च” २।२।३२ सूत्र सन्धोधन का विधान करने के लिए लिखा है।

पाणिनीय तन्त्र में क्रियाविशेषण को कर्म बनाने का कोई भी नियम नहीं है, वाद के वैयाकरणों और नैयायिकों ने “क्रियाविशेषणाना कर्मत्वम्” का सिद्धान्त स्वीकार किया है। हेम ने ‘क्रियाविशेषणात्’ २।२।४१ सूत्र में उक्त सिद्धान्त को अपने तन्त्र में सङ्गीत कर लिया है।

पाणिनि ने ‘नमस्वस्तिस्वाहास्वधाऽल्ब्यङ्गोऽन्व’ २।३।१६ सूत्र द्वारा अलं शब्द के योग में चतुर्थी का विधान किया है, किन्तु हेम ने शक्त्यर्थक सभी शब्दों के योग में चतुर्थी का नियमन किया है, इससे अधिक स्पष्टता आ गयी है। पाणिनि के उक्त नियम को व्यावहारिक बनाने के लिए उपर्युक्त सूत्र में अलं शब्द को पर्याप्तार्थक मानना पड़ता है। अन्यत्र “अलं महीपालं तव श्रमेण” इत्यादि वाक्य व्यवहृत हो जायेंगे। हेम व्याकरण द्वारा सभी बातें स्पष्ट हा जाती हैं, अतः किसी भी शक्त्यर्थक या पर्याप्तार्थक शब्द के साधुत्व में कहीं भी विरोध नहीं आता है।

पाणिनि ने अनादान कारक की व्यवस्था के लिए ‘भुवनपायेऽपादानम्’ १।४।२४ सूत्र लिखा है, किन्तु इस सूत्र से उक्त कारक की व्यवस्था अधूरी रहती है। अतः एव वार्तिककार ने वार्तिक और पाणिनि ने अन्य सूत्र लिखकर इस व्यवस्था को पूर्ण बनाने का प्रयत्न किया है। इस प्रकरण में ‘जुगुप्साविराम प्रमादार्यानामुपलब्धानम्’ ( का० वा० ), ‘भीत्रार्याना मयदेतु’ १।४।५, ‘परत्प्रेखाद’ १।४।२६, ‘वारणार्यानामीप्सिन्’ १।४।२७, ‘अन्तर्धो येनादर्शन मिच्छति’ १।४।२८, ‘जनिकर्तुं प्रव्रति’ १।४।०, ‘भुव प्रमत्र १।४।२१, ‘पञ्चमी निमक्ते’ २।३।४, ‘वतश्चाध्वक्काऽनिर्माणं तत्र पञ्चमी’ ( का० वा० ) सूत्र और वार्तिक लिखे गये हैं। पर आचार्य हेम ने “अपायेऽवधिरपादानम्” २।२।२९ इस एक सूत्र में ही उक्त समस्त नियमों का अन्तर्मुक्त कर लिया है। इस सूत्र की टीका में बताया है—“अपायश्च कायसर्गपूर्वको बुद्धसंसर्गपूर्वको वा दिनाग उच्यते, तेन “बुद्धया समीहितैकत्वान् पञ्चालान् कुरुभर्यदा। बुद्ध्या निमज्जते वक्ता तदापाय प्रतीयते” ॥ इत्यत्रापादानत्वं भवति। एव अधर्मान्तुगुप्सते, अधर्माद्विरमात, धर्मात् प्रमाद्यति, अत्र यः प्रज्ञापूर्वकारी भवति स बुद्धदेतुमधर्म बुद्ध्या प्राप्य नानेन इत्यनस्तीति ततो निवर्तते। नास्तिक्स्तु बुद्ध्या धर्म प्राप्य नैन करिष्यामीति ततो निवर्तते इति निवृत्त्यङ्गेषु जुगुप्साविरामप्रमादेभ्येते धातवा

वर्तन्त इति बुद्धिसंसारपूर्वकोऽनायः । तथा चौरैर्म्यो विभेति, चौरैर्म्य उद्धिजेते, चौरैर्म्यन्नापते, चौरैर्म्यो रक्षति, अत्र बुद्धिमान् वषण्धनरिक्लेयकारिणश्चैरान् बुद्ध्या प्राप्य तेभ्यो निवर्तते, चौरैर्म्यन्नापते शपयानि कश्चित् मुहद् यदीमं चौराः पर्येयुर्नमस्य धनमनहरेपुरिति बुद्ध्या व चौरैः सयोगे तेभ्यो निवर्तयतीत्यनाय एव । अध्ययनात् पराज्यते, भोजनात् पराज्यते, अत्रानि अध्ययनं मोजनं वाऽसहमानस्ततो निवर्तते इत्यनाय एव । यवेभ्यो गा रक्षति, यवेभ्यो गा निषेधयति, कृपादग्धं वारयति, इहापि गगार्देयवादिस्मर्कं बुद्ध्या समोक्षान्वतरस्य विनाश परयन् गवादीन् यवादिभ्यो निवर्तयतीत्यनाय एव । उराध्यापादन्तर्धत्ते, उराध्यापाद् निलीयते, या मानुषाध्यापोऽद्राशीदिति तिरोमवति इत्यनान्नायः । मृद्धान्धो जायते..... ।

इस प्रकार हेमचन्द्र ने पाणिनि के उक्त कार्यों का एक ही सूत्र में अन्तर्गत कर लिया है । यद्यपि महानाभ्य में 'ध्रुन्नरायेऽपादानम्' १।४।२४ में हेम की उक्त समस्त बातें पायी जाती हैं, तो भी यह मानना पड़ेगा कि हेम ने महानाभ्य आदि ग्रन्थों का सम्बद्ध अध्ययन कर मौलिक और संछिन्न शैली में विषय को उपस्थित किया है ।

पाणिनीय तन्त्र में जातिवाचक शब्दों के बहुवचन का विधान कारक के अन्तर्गत नहीं है । पाणिनि ने "जात्याख्यायामेकस्मिन्बहुवचनमन्यतरस्याम्" १।२।५८ सूत्र द्वारा विकल्प से जातिवाचक शब्दों में एक में बहुवचन का विधान किया है और अनुशासक सूत्र को तदुत्तर्य समास में स्थान दिया है । पर हेम ने इसी तात्पर्यवाले 'जात्याख्यायां नवैकोऽसंख्यो बहुवत्' २।२।१२१ सूत्र को कारक के अन्तर्गत रखा है । ऐसा मालूम होता है कि हेम ने यह सोचा होगा कि एकवचनान्त या बहुवचनान्त प्रयोगों का नियमन भी कारक प्रकरण के अन्तर्गत आना चाहिए । इसी आधार पर दूसरे अध्याय के दूसरे पाद के अन्तिम चार सूत्र लिखे गये हैं । हेम के कारक प्रकरण का यह अन्तिम भाग पाणिनि की अपेक्षा विशिष्ट है । उक्त चारों सूत्र एकार्य होने पर भी बहुवचन विभक्तियों के विधान का समर्थन करते हैं । विभक्ति-विधायक किसी भी तरह के सूत्र को कारक से सम्बद्ध मानना ही पड़ेगा । अतः इन चारों सूत्रों का यद्यपि विभक्ति नियमन के साथ साक्षात् सम्बन्ध नहीं है, फिर भी परम्परागत सम्बन्ध तो है ही; किन्तु विभक्त्यर्थ के साथ एकवचन या बहुवचन के नियमन का सीधा सम्बन्ध नहीं है, इसी कारण हेम ने इन्हें कारक प्रकरण के मध्य में स्थान नहीं दिया । कारक के साथ उक्त विधान का पारस्परिक सम्बन्ध है, यह बात बतलाने के लिए ही इन्होंने कारक प्रकरण ने दूर कर के उसीके अन्त में स्थित किया है ।

पाणिनि की अष्टाध्यायी का स्त्रीप्रत्यय प्रकरण चौथे अध्याय के प्रथम पाद से आरम्भ होकर ७७ वें सूत्र तक चलता है। आरम्भ में सुप् प्रत्ययों का विधान है। इसके पश्चात् तृतीय सूत्र "स्त्रियाम्" ४।१।३ के अधिकार में उक्त सभी सूत्रों को मानकर स्त्रीप्रत्यय विधायक सूत्र निश्चित किये गये हैं। प्रत्ययों में सर्वप्रथम टाप और ङीप् आये हैं, अनन्तर डाप्, ङीन्, ङीप् और ती प्रत्यय आये हैं। हेमव्याकरण में दूसरे अध्याय के सम्पूर्ण चौथे पाद में स्त्री प्रत्यय समाप्त हुआ है। सुप् प्रत्ययों का समावेश न कर के 'त्रिया नृतोऽस्वसा देहो' २।४।१ सूत्र में ही "स्त्रियाम्" पद आया है जिसकी आवश्यकता स्त्रीत्व ज्ञान के लिए है, हेम ने यही से स्त्रीत्व का अधिकार मान लिया है। पाणिनि ने श्रुकारान्त और नकारान्त शब्दों से ङीप् करने के लिए "श्रुन्नेभ्यो ङीप्" ४।१।५ अत्र सूत्र लिखा है तथा "न पट् स्वसादिभ्य" ४।१।१० द्वारा यहाँ ङीप्, टाप का प्रतिषेध किया है। पाणिनि ने "उगितश्च" ४।१।६ क द्वारा मन्तो, प्राची जैसे दो तरह के शब्दों का साधन कर लिया है, परन्तु हेम ने इसके लिए 'अघातूदित' २।४।२ और 'अञ्च' २।४।३ ये दो सूत्र बनाये हैं। अत्यन्त लाघवेच्छु हेम का यहाँ गौरव स्पष्ट है।

पाणिनि ने बहुव्रीहि समाससिद्ध शब्दों को स्त्रीलिंग बनाने के लिए प्राय बहुव्रीहि रिपय के सामान्य सूत्रों की रचना की, लेकिन हेम यहाँ विशेष रूप से ही अनुशासन करते दिखलायी पवते हैं। अशिशु से अशिशी बनाने के लिए 'अशिशो' २।४।८ सूत्र की अत्रा रचना की है।

पाणिनि ने सर्वप्रथम स्त्रीप्रत्यय में 'अजायतट्याप' ४।१।४ सूत्र लिखा है, हेम ने इस प्रकरणिका में ही परिवर्तन किया है। हेमव्याकरण में पहले ङीप् प्रत्यय का प्रकरण है, उसके अन्त में उसका निषेध करने वाले 'नोपान्त्यवत्' २।४।१३ और 'मन्' २।४।१४ ये दो सूत्र हैं। उक्त दोनों सूत्रों के कारण जिन शब्दों में अन् और मन् प्रत्यय लगे होते हैं, उनके बाद स्त्रीलिंग बनाने के लिए ङी प्रत्यय नहीं आता है। इस प्रकार ङी प्रत्यय को स्त्रीलिंग बनाने के लिए 'ताभ्या वाप् ङित्' २।४।१५ सूत्र द्वारा आम् प्रत्यय का विधान किया है। तत्पश्चात् 'अजाये' २।४।१६ सूत्र को रखा है। पाणिनि ने कुमारी आदि शब्दों को सिद्ध करने के लिए "व्यसि प्रप्ये" ४।१।२० सूत्र की रचना की, जिसका तात्पर्य है कि प्रथम अवस्था को बतलाने वाले शब्द से स्त्रीलिंग बनाने के लिए ङीप् प्रत्यय हाता है। हेम के यहाँ उक्त सूत्र के स्थान पर 'वयस्य नन्त्ये' २।४।२१ सूत्र है। इसमें अन्तिम अवस्था बुढापा से भिन्न अर्थ का बतलाने वाले सभी शब्दों के आगे ङी प्रत्यय लाता है। जैसे—कुमारी, किशोरी और बधूती आदि। पाणिनि के उक्त सूत्रानुसार बधूती और किशोरी शब्द

नहीं बनने चाहिए, क्योंकि ये शब्द प्रथम अवस्थावाची नहीं हैं, अतः इनकी सिद्धि उक्त सूत्र से नहीं हो सकती है। अत एव किशोरी और बधूटी के स्थान पर पाणिनि के अनुसार किशोरा और बधूटा ये रूप होने चाहिए। पर हेम के सूत्र में उक्त सभी उदाहरण सिद्ध हो जाते हैं। हेम ने 'व्यत्यनन्त्ये' २।४।२१ सूत्र बहुत सोच समझ कर लिखा है।

पाणिनि के दोषपरिमार्जन के लिए कात्यायन ने "व्यत्यचरमे इति वाच्यम्" बार्तिक लिखा है। सचमुच में हेम का उक्त अनुशासन अध्ययन पूर्ण है।

पाणिनि ने समाहार में द्विगु समास माना है और उसको "द्विगो." ४।१।२१ के द्वारा त्रिलोकी को नित्य स्त्रीलिङ्ग माना है। हेम ने उसके लिए "द्विगोस्समाहारात्" २।४।२२ सूत्र लिखा है। यहाँ समाहारात् शब्द जोड़ने का कोई विशेष तात्पर्य नहीं मालूम होता।

पाणिनि ने बद्धादिगा पठित शब्दों को स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए वैकल्पिक ढंग का विधान किया है। उक्त गण के अन्तर्गत पदति शब्द को भी मान लेने पर पदतिः, पदती इन दो रूपों की सिद्धि होती है जिसको "पदते." २।४।३३ के द्वारा हेम ने भी स्वीकार किया है। स्त्रीप्रत्यय प्रकरण में आया हुआ 'यूनस्तिः' ४।१।८७ सूत्र दोनों में एक है।

अव्ययीभाव समास के प्रकरण में पाणिनि की अपेक्षा हेमव्याकरण में निम्न मौलिक विशेषताएँ हैं—

( १ ) पाणिनि ने "अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धिव्युत्पर्याभावात्प्रययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भावपश्चाद्ययानुपूर्व्ययौगपद्यसादृश्यसम्तिसाकृत्यान्तवचनेषु" २।१।६ सूत्र लिखा है। प्रयोग की प्रक्रिया के अनुचार एक सूत्र रखने में संगति नहीं देखी, क्योंकि केवल अव्यय का विभक्ति आदि अर्थों के अतिरिक्त भी समास होना चाहिए, इसके लिए उत्तरकालीन पाणिनीय व्याख्याकारों ने अव्यय का योग-विभाग करके काम चलाया है, पर हेम ने अपने व्याकरण को इस ममेले से बचा लिया है। इन्होंने २।१।२१ वाँ सूत्र 'अव्ययम्' पृथक् लिखा है। इसके अतिरिक्त इन्होंने एक विशेषता और भी बतलायी है, वह यह है कि इसके द्वारा निष्पन्न समस्त शब्दों को बहुव्रीहि संज्ञा दी है।

( २ ) पाणिनि ने केश्या-केशि, मुसला-मुसलि, दण्डा-दण्डि इत्यादि शब्दों में बहुव्रीहि समास माना है। उक्त प्रयोगों में 'अनेकमन्यरदायें' २।२।२४ सूत्र द्वारा बहुव्रीहि समास हो जाने के बाद "इच्च कर्मव्यतिहारे" ५।४।१२७ तथा "द्विदण्डयादिभ्यश्च" ५।४।१२८ सूत्रों द्वारा इच्च प्रत्यय का विधान किया है। किन्तु हेम ने इसके विपरीत उपर्युक्त प्रयोगों में अव्ययीभाव

समास माना है। इस प्रक्रिया के लिए हेम ने “युद्धेऽन्यमीभाव” ३।१।२६ सूत्र की रचना की है। हेम की यह मौलिक विशेषता है कि इन्होंने उक्त स्थलों पर अन्यमीभाव का अनुशासन किया है।

( ३ ) पाणिनीय व्याकरण में ‘अन्यय विभक्ति’ इत्यादि सूत्र में यथा शब्द आया है। वैयाकरणों ने उसके चार अर्थ किये हैं।

( १ ) योग्यता, ( २ ) वीप्सा, ( ३ ) पदार्थानतिवृत्ति और ( ४ ) सादृश्य।

उपर्युक्त व्याख्या के अनुसार ही पाणिनि का वाद में आया हुआ सूत्र ‘यथाऽसादृश्ये’ ३।१।७ सगत होता है। उक्तका अर्थ है यथा शब्द का समास सादृश्य अर्थ से भिन्न अर्थ में हो। इसका उदाहरण ‘यथा हरिस्तथा हर’ में समास को रोकना है। अर्थात् यथा के अर्थ में कई अव्यय हैं, जिसमें स्वयं यथा का समास सादृश्य भिन्न अर्थ में होता है।

हेम ने “विभक्तिसमीपमृदिव्यद्वयमीभाव—अन्यम् - १।१।२९ सूत्र से यथा को हटा दिया और “योग्यतावीप्सार्थानतिवृत्तिमादृश्ये” ३।१।४० अलग सूत्र लिखा, इसका तात्पर्य यह है कि इन चारों अर्थों में किसी अव्यय का समास हो जाता है। यथा—अनुरूप, प्रथम, यथाशक्ति, समीपम् इत्यादि। इसके बाद “यथाऽथा” ३।१।४१ सूत्र द्वारा यथा हरि तथा हर प्रयोगों की सिद्धि भी हेम ने कर ली है। उपर्युक्त प्रकरण में हेम ने अपनी अच्युत कुशल्या का परिचय दिया है। हेम के अनुसार यथा शब्द दो प्रकार के होते हैं—

( अ ) प्रथम प्रकार का यथा शब्द यत् शब्द से “था” प्रत्यय लगाने पर बनता है।

( ब ) द्वितीय प्रकार का यथा शब्द स्वयं सिद्ध है। यथा शब्द के इन दो रूपों के अनुसार समासस्थलीय और असमासस्थलीय ये दो भेद हैं। जिस यथा शब्द में ‘या’ प्रत्यय नहीं है, ऐसे यथा शब्द का तो समास होता है जैसे—यथारूप चेत्ये, यथासूत्रम् अर्थात्, किन्तु जहाँ यथा शब्द “था” प्रत्ययवान् है, जहाँ समास नहीं होता है। जैसे—यथा हरिस्तथा हर यहाँ समास नहीं है। इसी प्रकार यथा चैत्रस्तथा मैत्र में भी समास का अभाव है।

इस प्रकार हेम ने अन्यमीभाव समास में पाणिनि की अपेक्षा मौलिकता और नवीनता दिखलायी है। हेम ने यथा शब्द का व्याख्यान कर शब्दानुशासक की दृष्टि से अपनी सूक्ष्म प्रतिभा का परिचय दिया है। समास प्रकरण में हेम की प्रक्रिया पद्धति में लाघव और सरलता ये दोनों गण विद्यमान हैं।

हेम का तत्पुरुष प्रकरण ‘गतिमन्वस्तत्पुरुष’ ३।१।४२ से आरम्भ होता है। इस सूत्र के स्थान पर पाणिनि ने “कृगति प्रादय” ३।१।२८ सूत्र लिखा। उनके यहाँ गति और प्रादि अलग अलग हैं, किन्तु हेम ने दोनों का समावेश



पाणिनि ने द्विगु समास के लिए "संख्यापूर्वो द्विगु" सूत्र लिखा है जिसकी शुद्धि का पाणिनि ने "समाहारे चार्थान्तरते" नोटिक भाग की है। इसी प्रकरण में पाणिनि ने लङ्कार, लङ्कार और समाहार में बहुवचन समास करने के लिए "लङ्कारार्थान्तरसमाहारे च" ३।१।५१ सूत्र लिखा है। हेम ने इस वृत्त प्रक्रिया के लिए एक ही "संख्या समाहारे च द्विगु आतान्तरयन्" ३।१।६६ सूत्र रचा है। प्रायः यह देखा जाता है कि जहाँ पाणिनि ने संज्ञित शैली को अपनाया है, वहाँ हेम की शैली प्रसार प्राप्त है, किन्तु लल्लुच स्थल में हेम का संक्षिप्तकरण स्वाभाविक है। यहाँ एक नए नयी निरीक्षा यह है कि जहाँ पाणिनीय लङ् में विवृत प्रक्रिया होने का भी विशेषण नहीं हो पाया है। वहाँ हेम की संज्ञित शैली ने भी पदक को विशेष संरक्षणे में अधिक कालना होती है।

पाणिनि ने "चित्रा गावो यम्य स चित्रगुः" में बहुव्रीहि समास किया है, किन्तु साथ ही चित्रागो में कर्मधारय समास मानकर चित्रा का पूर्व निरात किया है। हेम ऐसे स्थलों में एक मात्र बहुव्रीहि समास मानते हैं, अतः चित्रा पद की व्युत्पत्त्या के लिए "द्वीपेर्लंवा" ३।१।५० सूत्र का प्रयुक्त निर्माण किया है। इससे शक होता है कि—बहुव्रीहि में विशेषण का पूर्व निरात करने के लिए प्रयुक्त नियम बनाना आवश्यक है, क्योंकि बहुव्रीहि समास स्थल में विशेष्य विशेषण पदों में व्युत्पत्त्या समास हेम के मत में नहीं होता है।

यदि हाता तत्र ता चित्रा शब्द का पूर्व निपात हो ही जाता, किन्तु हेम के सिद्धान्तानुसार बहुव्रीहि समास हो जाने के उपरान्त विशिष्य विशेषण समास का निषध हो जाता है, पर इसमें यह शदेह नहा रहता कि विशेषण का पूर्व निपात हा या विशेष्य का। इस सन्देह का निरसन करने के लिए हेम ने विशेषण का स्पष्ट रूप से पूर्व निपात करने का पृथक् विधान कर दिया है।

पाणिनि के उद्दीचा—उत्तरवासियों के मन में “मातरपितरौ” को शुद्ध माना है अर्थात् उसके अनुसार “मातरपितरौ” और ‘मातापितरौ’ ये दाना प्रयोग होने चाहिए। हेम ने भी मातरपितर वा ३।२।४७ में वैसा ही विधान र्चकार किया है, परन्तु इनके उदाहरणाम मतभिन्नता भी प्रकट होती है। पाणिनि ने द्वन्द्व समास की विभक्ति में ही “मातरपितर” रूप ग्रहण किया है। किन्तु हेम ने सभी विभक्तियों के योग में ‘मातरपितर’ रूप ग्रहण किया है, जैसे—मातरपितरया आदि। इससे ऐसा ज्ञात होता है कि हेम के समय में मातरपितर, यह वैकल्पिक रूप सभी विभक्तियों के योग में व्यवहृत होने लगा था।

दृष्टत में यह साधारण नियम है कि नञ् समास में दूसरा पद जहाँ व्यन्नादि हाता है, वहाँ न के स्थान पर अ हाता है। और उत्तरपद स्वरादि हा तो न के स्थान पर अन् होता है। पाणिनि ने इन प्रयोगों की सिद्धि के लिए क्लिष्ट प्रक्रिया दिखलायी है। उन्होंने व्यन्नादि शब्द के सम्पर्क में रहने वाले “न” के न् का लोप किया है और स्वरादि उत्तरपद के पूर्व स्थित न में न् का लोपकर अन्शिष अ के वाद तु का आगम कर अन् बनाया है। हेम ने इस प्रसंग में अत्यन्त सीधा एवं स्पष्ट तरीका अपनाया है। इन्होंने नञत् ३।०।१२५ सूत्र के द्वारा सामान्य रूप से न के स्थान में अ का विधान किया है और अन् स्वर ३।२।१२९ सूत्र के द्वारा अपवाद स्वरूप स्वरादि उत्तरपद होने पर अन् का विधान किया है।

निवृत्त प्रकरण पर विचार करने से ज्ञात होता है कि—हेम के पूर्वकाल सम्बन्धी प्रक्रिया के लिए दो विधियाँ प्रचलित थीं। प्रथम कातन्त्र प्रक्रिया की विधि, जिसमें वर्तमाना, सप्तमी, पंचमी, हस्तनी, अथतनी, परोडा, आशाश्वस्तनी, अन्विन्ती एवं त्रियातिपत्ति ये दश काल की अन्त्याएँ मान्य थीं। दूसरी पाणिनिकी प्रक्रिया, जिसमें लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लेट्, लोट्, लृट्, लृट्, लृट् एवं लृट् ये दश लकार काल्पितक मान गये थे। हमने कातन्त्र पद्धति को अपनाया है। इसका कारण यह है कि पाणिनीय तन्त्र में एक ता प्रक्रिया न अर्थ ज्ञान के पूर्व एक मूल काट का ज्ञान आवश्यक था अर्थात् लकार के स्थान में आदेशों को समझना पड़ता था और साथ ही अर्थों को भी, किन्तु

कातन्त्र तन्त्र में केवल अर्थों के अनुसार प्रत्ययों की समझना आवश्यक था। अतएव हेम ने सरलता की दृष्टि से कातन्त्र पद्धति को ग्रहण किया। हेम का यह सिद्धान्त समस्त शब्दानुशासन में पाया जाता है कि ये प्रक्रिया को जटिल नहीं बनाते। जहाँ तक समझ होता है, वहाँ तक प्रक्रिया को सरल और बोधगम्य बनाने का आयास करते हैं।

पाणिनि के लट् ( ह्रस्तनी हेम ) का विधान अनद्यतन सूत्र के लिए किया है और परोक्ष के लिए लिट् का। इसमें यह कठिनाई हो सकती है कि अनद्यतन परोक्ष में लिट् लकार का ही सर्वथा प्रयोग किया जाय। हेम ने उक्त कठिनाई का निराकरण "अनद्यतने ह्रस्तनी" के व्याख्यान में तथा "अपिदिते" ५।१।१४ सूत्र द्वारा कर दिया है अर्थात् इनके मत में परोक्ष होते हुए भी जो विषय दर्शन अविवक्षित शक्य हो वहाँ तथा परोक्ष—जहाँ परोक्ष की विज्ञान न हो, वहाँ ह्रस्तनी का ही प्रयोग होना चाहिए।

हेम के तिङन्त प्रकरण में पाणिनि की अपेक्षा निम्नांकित धातु नवीन मिलनी हैं। धातुरूपों की प्रक्रिया पद्धति में दोनों शब्दानुशासकों का समान ही शासन उपरान्त होता है।

धातु	अर्थ	रूप
अधुङ्	गत्याक्षेप	अदृषते, अदृषिष्य, आनदृषे।
अर्ज्ज	प्रतियत्न	अर्जयति, अर्जिजत्, अर्जवाञ्चकार।
अदुङ्	गति	अष्टते, आष्टिष्य, आनष्टे।
आश्शाम्कि,	इच्छा	आशास्ते, आशासिष्य, आशाशास्ते।
इ	गति	अयति, अयेत्, अयत्, आयत्, ऐपीत्, द्याय, ईयात्, एता, एष्यति, ऐष्यत्।
इडुङ्	गति	ऐडिष्यत्, इड्वाञ्चके, इड्वासात्, इड्वाञ्चभूत्।
उगु	गति	उड्वाञ्चकार, उड्वासात्, उड्वाञ्चभूत्।
उप	दाह	ओपति, ओपेत्, ओपत्, औपत्।
उर्दि	मान और मीढा	ऊर्दते, और्दिष्य, ऊर्दाञ्चके।
ओवे	शोषण	ओवयात्, ओव्यास्तान्, ओव्यानु।
कज्ज	व्ययन	कज्जति, कज्जं, कज्जात्, कज्जिता, कज्जिष्यति, अकज्जिष्यत्।
किष्किण्	हिंसा	किष्क्यते, अचिकिष्कत, किष्क्याञ्चके।
कुत्सिण्	अवक्षेप	कुत्सयते, अकुत्सत, कुत्सयाञ्चके।
कृणिण्	सकोचन	कृणन्ते, अकृणुत, कृण्याञ्चके।

धातु	अर्थ	रूप
ख्, खुब्	स्तेय	खोजति, कोजति, खोजेत्, कोजेत्, खोजतु, खोजतु, अखोजत्, अकोजत्, अखोजीत्, अकोजीत्, ख्रुजो, कुकोज, खुज्यात् ।
कृ	हिंसा	कृणाति, कृणीषान्, कृणातु, अकृणात्, अकारीन्, चकार, कीर्यात् ।
केवत्	तेभ्य	केवते, अकेविष्ट, चिकेवे ।
कनथे	हिंसा	कनथति, अकनाथीत्, अकनथीत्, चकनाथ ।
गड	तेचन	गडति, अगाडीन्, अगडीत् ।
गग्ध	हसन	गग्धति, गग्धेत्, गग्धतु, अगग्धत्, अगग्धीत्, गगग्ध ।
गुंत्	पुरीषोत्सर्ग	गुगति, गुवेत्, गुवतु, अगुवन्, अगुपीन्, जुगाव, गूयात् ।
उेघड्	गति	उेघते, अजेधिष्ट, जिजिषे ।
दुड	निमज्जन	दुडति, अदुडीन्, दुयेड ।
डंभि, डिभि	संघात	डम्भयते, डिम्भयते, अडडम्भन्, अडोडिम्भन्, डम्भयाञ्चक्रे, डिम्भयाञ्चक्रे ।
डडु, डिडुण	ह्येन	डम्भयति, डिम्भयति, अडडम्भन्, अडिडिम्भत्, डम्भयाञ्चकार ।
तुडुण्	मर्दन	तुन्वयति, अतुतुन्वत्, तुन्वयाञ्चकार ।
त्तर	ह्युद्गति	त्तरति, अत्तारीत्, तत्तार ।
नल	गति	नलति, नलेत्, नलतु, अनलन्, अनलीत्, ननाल, नलयात् ।
नर्वं	गति	नर्वति, अनर्वीत्, ननर्वं ।
निडु	सोचन	निन्वति, अनिन्वीत्, निनिन्व ।
निपू	सेचन	नेषति, अनेषीत्, निनेष ।
पिच्चन्	कुट्टन	पिच्चयति, अपिपिच्चन्, पिच्चयाञ्चकार ।
प्लीश	दरण	प्लिनाति, अप्लैषीत्, प्लिणाय ।
प्लेष्यन्	दर्शन	प्लेष्यति, अपिप्लेष्यन्, प्लेष्ययामास ।
भ्रुडत्	संघान	भ्रुडति, अभ्रुडीन्, दुभ्रुडिम ।
मिथग्	मेधा और हिंसा	मेधते, अमेधीत्, मिमेध, मेयते, अमेधिष्ट, मिमेधे ।
मेथग	संगमे	” ” ” ” ”

समता है। हेम ने अपने इस प्रकरण को पर्याप्त पृष्ठ बनाने का प्रयास किया है।

वृद्धन्त के अनन्तर हेम ने तद्धित प्रत्ययों का अनुशासन किया है। यद्यपि पाणिनीय अनुशासन में तद्धित प्रकरण वृद्धन्त के पहिले आ गया है। भट्टोजि दीक्षित ने पाणिनीय तन्त्र की प्रक्रिया को व्यग्रमित रूप देने के लिए तिङान्त कौमुदी का पाणिनीय संस्करण तैयार किया है। इसमें उन्होंने प्रतिपादित शब्दों के साधुत्व के अनन्तर उनके विकारी तद्धित रूपों की साधना प्रस्तुत की है। यह एक साधारण सी बात है कि मुद्धन्त शब्दों का विकार तद्धित-निष्पन्न शब्द है, और तिङन्त शब्दों का विकार वृद्धन्त शब्द है। अतः घ्रावरण के क्रमानुसार वर्णमाला, सन्धि, सुबन्त शब्द, उनके स्त्रीलिङ्ग और पुंलिङ्ग विधायक प्रत्यय, अर्थात्कार विभक्तिविधान, सुबन्तों के सामासिक प्रयोग, मुद्धन्तों के विकारी तद्धित प्रत्ययों से निष्पन्न तद्धितान्त शब्द, तिङन्त, तिङन्तों के विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त प्रक्रिया रूप एवं तिङन्त के विकारी वृत् प्रत्ययों के प्रयोग ने निष्पन्न वृद्धन्त शब्द आते हैं। हेम ध्याकरण में तिङन्तों के अनन्तर वृद्धन्त शब्द और उनके पश्चात् विभिन्न अर्थों में, विभिन्न तद्धित प्रत्ययों ने निष्पन्न सुबन्त विकारी तद्धितान्त शब्द आये हैं। हेम का क्रम इस प्रकार है कि पहले य सुबन्त, तिङन्त की समस्त चर्चा कर लेते हैं, इसके पश्चात् उनके विकारों का निरूपण करते हैं। इन विकारों में प्रथम तिङन्तविकारी वृत् प्रत्ययान्त वृद्धन्तों का प्ररूपण है, अनन्तर सुबन्तों के विकारी तद्धितान्त शब्दों का कथन है। अतः हेम ने अपने क्रमानुसार तद्धित प्रत्ययों का अपने अन्त में अनुशासन किया है। हम हेम और पाणिनि की तुलना में इस प्रकरण को इसलिए अन्त में रखते हैं कि हेम के प्रकरणानुसार ही हमें दिनेचन करना है।

पाणिनि ने ष्य प्रत्यय के द्वारा दिति से दैत्य, अदिति और आदित्य दोनों से आदित्य तथा पत्यन्त बृहस्पति आदि शब्दों से बार्हस्पत्य आदि शब्दों की व्युत्पत्ति की है। हेम ने आनन्दम्यणपवादे य दित्यादित्यादित्ययमपत्युत्तर पदाब्ज्यः ६।१।१५ द्वारा नवप्रयुक्त याम्य शब्द की भी व्युत्पत्ति उक्त शब्दों के साथ प्रदर्शित कर पाणिनि की अवशिष्ट-पूर्ति की है।

पाणिनि ने गोधा शब्द ने गौधरः, गौधारः और गौधेयः इन तीन तद्धितान्त रूपों की सिद्धि की है। हेम ने भी गौधारः और गौधरः की सिद्धि गोधाया दुष्टे शारश्च ६।१।२१ के द्वारा की है। पाणिनीय तन्त्र में गौधारः और गौधरः की सामान्यतः व्युत्पत्ति भर कर दी गयी है अर्थात् गोधा के अस्त्य अर्थ में उक्त शब्दों का साधुत्व प्रदर्शित किया गया है। पर हेम ने व्यार्थिक दृष्टि से एक विशेष प्रकार की नवीनता दिखलायी है। इनके तन्त्र में ६।१।२१ के द्वारा

निष्पन्न गौधार और गौधेर उभे मात्र गोधा के अपत्यवाची ही नहा हैं, किन्तु दुः अपत्यवाची हैं ।

पाणिनीय व्याकरण के अनुसार मनोरपत्यम् अर्थ में अण् प्रत्यय कर मानव शब्द की सिद्धि की गयी है । हेम ने भी मानव शब्द की सिद्धि के लिए वही प्रयत्न किया है किन्तु हेम ने इस प्रयोग में एक नवीन शब्द की उद्घाटना भी की है । माणव कुल्यासाम् ६।१।९५ सूत्र द्वारा कुलित अर्थ में मानव में ण्व विधान कर 'मनारपत्य मूढः माणवः' की सिद्धि भी की है ।

पाणिनीय तन्त्र में सम्राज् शब्द से तद्धितान्त भाववाची साम्राज्य शब्द ता बन सकता है, पर कर्तृवाचक नहा । हेम ने साम्राज्य शब्द का कर्तृवाचक भी माना है, जिसका अर्थ है क्षत्रिय । इसकी साधनिका सम्राज् क्षत्रिय ६।१।१०१ सूत्र द्वारा उल्लेखी गयी है । अर्थात् पाणिनीय व्याकरण के अनुसार 'सम्राज् भाव या सम्राज् कर्म' इन विग्रहों में साम्राज्य शब्द निष्पन्न हा सकता है, जिसका अर्थ सम्राट् का स्वभाव या सम्राट् सम्बन्धा होगा । पर हेम के अनुसार 'सम्राज् अन्त्य पुमान्' इस विग्रह में भी साम्राज्य शब्द बनता है, जिनका अर्थ हागा सम्राट् की पुरुष स्तान्त, इस प्रकार यहाँ यह देखा जाता है कि साम्राज्य शब्द के कर्तृवाचक स्वरूप का आर या तो पाणिनि का ध्यान ही नहीं गया था अथवा उनके समय में इसका प्रयोग ही नहीं हाता था । ५।१।१०१ भी हो, पाणिनि की उस कमी की पूर्ति हेम ने अपने इस तद्धित प्रकरण में की है ।

पाणिनीय इन्दानुशासन में वस घातु से ति प्रत्यय करने पर वसति रूप बनता है, हेम के यहाँ भी वसति रूप सिद्ध हाता है । इस वसति शब्द से राष्ट्र अर्थ में अकञ् और अण् करण पर वासातक तथा वासात ये दो रूप बनते हैं । इन दोनों रूपों की सिद्धि के लिए हेम ने वसातेर्वा ६।१।६७ सूत्र की रचना की है, जिनके लिए पाणिनीयतन्त्र में कोई अनुशासन नहा है ।

पाणिनि ने 'युवत्तर्जया यस्य' इस अर्थ में बहुव्रीहि समास का विधान करने के बाद जाया के अन्तम आकार को निङ् आदेश करण का नियमन किया है । पश्चात् उसके पूर्ववताय का लपकर युवजान प्रयोग बनाने का विधान है, यह एक बहुत क्लृप्त प्रक्रिया मानलूम पन्ता है, रसीलए हम न सरलतापूर्वक उक्त प्रयोग का सिद्ध के लिए जायाया जानिः ७।१।१२४ के द्वारा जाया शब्द का जान के रूप में आदिष्ट किया है । तद्धित का यह प्रयोग हेम के सरल अनुशासन का अच्छा परिचायक है ।

हेम और पाणिनि दोनों ही महान् हैं । दोनों ने सस्कृत भाषा का श्रेष्ठ व्याकरण लिखा है । हम से पाणिनि बहुत पहले हुए हैं । अत इन्हें

१ प्रमात्र कृत	जैन व्याकरण
१० अमरसिंह कृत	शौद्ध व्याकरण
११ सिंहनन्दी कृत	जैन व्याकरण
१२ भद्रेश्वर कृत	शौद्ध व्याकरण
१३ ध्रुतपाल कृत	व्याकरण
१४ शिवास्वामी या शिवयोगी कृत	व्याकरण
१५ बुद्धिचरण कृत	बुद्धिचरण व्याकरण
१६ कश्यप कृत	कश्यपीय व्याकरण
१७ विनतिकीर्ति कृत	व्याकरण
१८ निशानन्द कृत	निशानन्द व्याकरण

इनके अनिरेक्त यम, वरा सौम्य आदि व्याकरण ग्रन्थों का उल्लेख और मिलना है पर हमें इस अध्याय में शतान्त्रकार, भोजदेव साखरन्तव्याकरणकार और कश्यपदेव की तुलना हेमचन्द्र से करनी है। यह जैन व्याकरणों का विचार उक्त अध्याय में बिना जायगा। पाणिनिपर व्याकरणों में जिन व्याकरणों का प्रचार विशेषरूप से हो रहा है, उनमें उक्त चार व्याकरणों के व्याकरणग्रन्थ ही आते हैं।

सर्वे प्रथम कातन्त्र व्याकरण के साथ हम व्याकरण की तुलना की जाती है। यह सत्य है कि हेम ने कातन्त्र का मुख्य अध्याय किया है और यत्र तत्र उनका सार भी ग्रहण किया है। हेम अपने शब्दानुशासन में जितने पाणिनि न प्रभावित हैं, लगभग उनमें ही कातन्त्र व्याकरण से भी।

कातन्त्र में संज्ञाओं का कोई स्वतन्त्र प्रकरण नहीं है, संज्ञि प्रकार का पहले पाद में प्रायः सभी प्रमुख संज्ञाओं का उल्लेख कर दिया गया है। कातन्त्र व्याकरण की "सिद्धो वर्णसमाप्तायः" यह प्रथमस्त्रीय घोषणा अत्यन्त गम्भीर है। इस सूत्र में वर्णों की नित्यता स्वीकार की गयी है। इस व्याकरण में स्त्रियों की सर्व संज्ञा बतायी गयी है, स्त्री संज्ञा नहीं। पर हेम ने "दुन्दस्थानास्यप्रथम स्त्री" १।१।१७ द्वारा स्त्रियों की स्वसंज्ञा बतायी है। कातन्त्र में "तत्र चतुर्दशद्वी स्त्रियाः" १।१।१० सूत्र में स्त्रियों को वर्णमाला के अनुसार गिना दिया है, हम ने इस प्रकार स्त्रियों की गणना को नहीं गिनाया है। हाँ, कातन्त्र के 'दश समाना'

१—कातन्त्र व्याकरण रचयिता शर्ष कर्मा माने जाते हैं। इस व्याकरण पर वह जैन टीकाएँ उपलब्ध हैं, अथ बुद्धिचरण इत्ते जैन व्याकरण मानते हैं। पर व्याकरण शास्त्र के इतिहास-लेखकों ने इत्ते जैनपर व्याकरण ग्रन्थ माना है अथ हम हेम के साथ इस ग्रन्थ की तुलना इत्ते अध्याय में कर रहे हैं।

१।१।३ के निकट हेम का 'लृदन्ता' समानाः' सूत्र अवश्य है। कातन्त्र में 'अनुनासिका ह्यनमा' १।१।१३ में पाणिनि की अनुनासिक सज्ञा को ही प्रश्रय दिया गया है, पर हेम व्याकरण में इसका कोई स्थान नहा है। नामी, घोषव्, अघोष, अन्तस्य एव व्यञ्जन सज्ञाएँ कातन्त्र की ही हेम व्याकरण में पायी जाती हैं। हेम की घुट्, शिट्, वाक्य, विभक्ति, अव्यय और संख्याव् सज्ञाएँ कातन्त्र की अपेक्षा विलम्ब नयी हैं।

कातन्त्र व्याकरण के 'लोकोपचाराद् ग्रहणसिद्धि' सूत्र का प्रभाव हेम के 'लोकान्' १।१।३ पर है। व्यञ्जन शब्दों में पञ्चदशतमक वर्णों की स्थापना हेम की कातन्त्र के तुल्य ही है। अतः यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि हेम व्याकरण के संज्ञा प्रकरण में सर्वाधिक कातन्त्र का अनुसरण विद्यमान है। दोनों व्याकरणों के संज्ञासम्बन्धी कथन बहुत अंशों में मिलते जुलते हैं। इस प्रकार हेम संज्ञाओं के लिए कातन्त्र के आभारी हैं, इसने कोई इन्कार नहीं कर सकता। यदि यह कहा जाय कि हेमने संज्ञा प्रकरण में कातन्त्र का ग्रहण एवं पाणिनि का सर्वथा परित्याग किया है, तो अत्युक्ति नहीं होगी। इतना हाने पर भी भाषा की प्रगतिशीलता और लोकानुसारिता का तत्त्व हेम में कातन्त्र की अपेक्षा अधिक है।

कातन्त्र और हेम व्याकरण के सन्धि प्रकरण पर विचार करने से ज्ञात होता है कि दोनों शब्दानुशासनों में दीर्घ सन्धि का प्रकरण समान रूप से आरम्भ हुआ है। कातन्त्र में, 'समान सर्वो दीर्घो भवति परश्च लोपम्' १।१।१ सूत्र द्वारा समान सज्ञक वर्णों को सन्धि परे रहने पर दीर्घ होता है और पर का लोप होता है, का विधान किया है। इस सूत्र में समान संज्ञक वर्णों को दीर्घ कर पर के लोप होने का विधान बनाया गया है, जैसे दण्ड-अग्रम् में ण्ड को दीर्घ कर अग्रम् के अकार का लोप कर देने से दण्डाग्रम् बनता है। यहाँ अकार लोप की प्रक्रिया गौरव स्रोतक है। हेम ने 'समानाना तेन दीर्घ' १।२।१ सूत्र द्वारा पाणिनि की तरह पूर्व वर्ण का पर के सहयोग से दीर्घ कर देने का नियमन किया है। अतः हेम अकार लोपवाली गौरव-प्रक्रिया से मुक्त हो गये हैं।

कातन्त्र के सन्धि प्रकरण में 'शालश्रुष्य लृ श्रुषमः' जैसी सन्धियों की सिद्धि का कोई विधान नहीं है; किन्तु हेमने "श्रुलृति हस्तो वा" १।२।२, १।२।३, १।२।४ और १।२।५ सूत्रों द्वारा उर्जुक्त प्रकार की अनेक सन्धियों का साधुत्व दिसलाया है। हेम के उक्त चारों सूत्र कातन्त्र की अपेक्षा सर्वथा नवीन हैं। कातन्त्र में इस प्रकार का कोई अनुशासन नहीं मिलता है।



गुणसन्धि के प्रयोग में कातन्त्र के १११०, १११३, १११४ तथा १११५ इन चार सूत्रों के स्थान पर हेमका अवर्णम्येवर्णादिनेदोदरलु १११६ सूत्र अकेला ही आया है तथा गुण सन्धि के समस्त ऋषय इस अकेले ही सूत्र में सिद्ध हो जाते हैं। कातन्त्र में प्राणम्, दशानम्, वसनाणम्, शीतार्त्तम्, परमर्तः, प्राञ्छंते, प्राणमीयन्त आदि सन्धिरूपों की सिद्धि के लिए अनुशासन का अभाव है; परन्तु हेम ने अन्य सभी सन्धिरूपों के लिए अनुशासन किया है। जहाँ कातन्त्र के दीर्घ और गुणसन्धि में दोनों ही प्रकरण अधूरे हैं, वहाँ हेम के ये दोनों प्रकरण पुष्ट और पूर्ण हैं। वृद्धिसन्धि के कातन्त्र के अवर्णस्येवर्णादिनेदोदरलु १११६ और १११७ सूत्र हेम के ऐदीन् मध्यस्तरः ११११० में अन्तर्भूत हो जाते हैं।

हेम ने वृद्धि सन्धि में अनियोगे लुगोवे ११११६ में १११२० सूत्रों तक अर्न्त के लुक् का विधान किया है और इहेव तिष्ठ, विन्वोथी, अगोदा, प्रोदते आदि रूपों के वैकल्पिक प्रयोग बताये हैं। कातन्त्र की अपेक्षा हेम का यह प्रकरण नवीन और मौलिक है। कातन्त्रकार ने सामान्यतः विचारों के लिए उासर्ग सूत्रों की ही रचना की है, अपवाद सूत्रों को नहीं। पर हेमने प्रत्येक विचार के लिए दोनों ही प्रकार के सूत्र लिखे हैं।

कातन्त्र में यासन्धि विधायक चार सूत्र आये हैं हेम ने इन चारों को इदणदिरस्वे स्तरे यत्तलन् १११०१ में संश्लेषित किया है। इतना ही नहीं, बल्कि नदी एपा-नद्येपा, मधु अन्न-मध्वन्न जैसे नवीन सन्धि प्रयोग भी १११२२ में सिद्ध किये हैं। अयादि सन्धि के लिए कातन्त्र में चार सूत्र हैं, पर हेम ने उस संविधान का कार्य दो ही सूत्रों द्वारा चला दिया है। इस प्रकरण में हेम ने कातन्त्र की अपेक्षा गव्यूतिः, विव्यम्, गवाञ्जः, गवाग्रन्, गवेन्द्रः आदि सन्धि प्रयोगों की सिद्धि अधिक ही है। कातन्त्र में जिसे प्रवृत्तिभाव कहा गया है, हेम ने उसे असन्धि कहा है। इस प्रकरण में भी हेम ने 'उ इति', 'उँ इति' आदि वैकल्पिक सन्धिरूपों को चर्चा की है, जिनका कातन्त्र में अत्यन्तभाव है।

व्यञ्जन सन्धि प्रकरण में भी हेम का कातन्त्र की अपेक्षा लाघव दृष्टिगोचर होता है। हेम ने इस प्रकरण में भी नूँँवादि, नूँँवादि; कास्वान्, काँस्वान् आदि ऐसे अनेक सन्धि रूपों का अनुशासन किया है, जिनका कातन्त्र में अस्तित्व नहीं है। कातन्त्र के प्रथम अध्याय के पञ्चमपाद में विभर्ग सन्धि का निरूपण किया गया है; हेम ने विभर्गसन्धि का अनुशासन रेफ-प्रकरण द्वारा किया है और उसकी गाना व्यञ्जन सन्धि में ही कर ली है।

सन्धि के पश्चात् दोनों अनुशासनों में नाम प्रकरण आया है। कातन्त्रकार ने इस प्रकरण के आरम्भ में "धातुविभक्तिवर्जमर्थवत्त्विद्भम्" द्वारा लिङ्ग संज्ञा का

निर्देश किया है। हेम ने इसी अर्थ को लेकर एदेशः पदान्तेऽभ्य लुक् १।१।७ सूत्र में नाम सज्ञा का ब्ययन किया है। कातन्त्र में 'मित्तैस्वा' १।१।८ सूत्र है, हेम ने इसके स्थान पर एदाप १।४।४० सूत्र लिखा है। इसी प्रकार 'मिन्' १।१।७ का रूपान्तर 'हे ग्मिन्' १।४।८ में ८९७७ है। कातन्त्रकार ने प्रा विभक्ति बहुवचन में नुरागम एव नुरागम किये हैं, पर हेम ने इस प्रयोज्य का स्वीकार नही किया इन्होंने सीधे 'आम्' का ही स्थान देना दिया है। यह सत्य है कि हेम ने अपने नाम प्रकरण का क्रम कातन्त्र के अनुसार ही रखा है अर्थात् एक शब्द की समस्त विभक्तियों में एक साथ समस्त सूत्रों का न बताना कर सामान्य किञ्च भाव ने सूत्रों का सम्बन्ध जलयाया गया है और इस क्रम में अनेक शब्दों के रूप साथ-साथ चलते रहे हैं। एक ही विभक्ति में कई प्रकार के शब्दों का सामान्य कार्य जहाँ होता है, वहाँ कातन्त्र व्याकरण में एक सूत्र आ जाता है। जैसे ह्रस्व, नदी और शब्दा सञ्ज्ञक शब्दों के सम्बन्धन तथा प्रथी विभक्ति बहुवचन में एक ही साथ कार्य दिखलाये गये हैं। सम्बन्धन में हे वृष, हे अग्ने, हे धेनो, हे नदि, हे वसु, हे अद्ने, हे माने की सिद्धि के लिए 'ह्रस्वदीश्रद्वाभ्य सिलोपम्' १।१।७१ सूत्र लिखा गया है तथा इन्हीं शब्दों से प्रथी बहुवचन की सिद्धि के लिए नुरागम का नियान कर वृषाणाम्, अग्नीनाम्, धेनूनाम्, नदीनाम्, रथूनाम्, श्रद्धानाम्, मासानाम् का साधुत्व प्रदर्शित किया है। हेम ने भी इन शब्दों की सिद्धि के लिए उक्त प्रक्रिया अपनाया है और 'ह्रस्वापञ्च' १।४।३० द्वारा ह्रस्वान्त आन्त, स्त्री शब्द और उकारान्तों से परे आम् के स्थान पर नाम् का अन्वशासन कर देवानाम्, मालानाम्, स्त्रीणाम् और वधूनाम् की सिद्धि की है। इस प्रकरण की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि हेम ने नदी और शब्दा जैसी सज्ञाओं को स्थान न देकर स्थान रूप से नामों का उल्लेख कर दिया है।

कातन्त्र व्याकरण में 'त्रैन्वयश्च' १।१।७३ सूत्र द्वारा त्रि के स्थान पर त्रय आदेश किया है और नुरागम भी। हेम ने भी 'त्रैन्वय' १।४।२४ सूत्र द्वारा त्रि के स्थान पर त्रय आदेश किया है, किन्तु आम् के स्थान पर सरदाना षणाम् १।४।३३ की अनुवृत्ति से ही नाम् कर दिया है, पृथक् नुरागम की आवश्यकता नही प्रकट की है। हेम ने जहाँ भी कातन्त्र का अनुकरण किया है, अपनी कोई मौलिकता अवश्य दिखलायी है।

कातन्त्रकारने 'अन्यादेश्युत्' १।१।१३ सूत्र द्वारा अन्यत्, अन्यतरत्, न्तरत्, व्तरत् आदि शब्दों के साधुत्व के लिए सि और अम् प्रत्यय का लप् कर नुरागम किया है, किन्तु हेम ने पञ्चतौऽन्यादेरनेस्तरस्य षः १।४।५८ द्वारा सीधे सि और अम् प्रत्यय को ही त् बना दिया है।

हेम की सुप्पद् और अरमद् शब्दों की प्रक्रिया भी प्रायः कान्तर के समान है। कातन्त्रकार ने “त्वमहम् सविभक्त्यो.” २।३।१० सूत्र लिखा है, हेम ने इसके स्थान पर “त्वमहसिना प्राक् चाक्” २।१।१२ सूत्र का निर्माण किया है। दोनों ही सूत्रों का भाव प्रायः समान है। इस प्रकार सम्बन्धी कान्तर के २।३।११, २।३।१२, २।३।१३, २।३।१८, २।३।१९, २।३।१५ और २।३।१६ सूत्र क्रमशः हेम व्याकरण के २।१।१३, २।१।१४, २।१।१५, २।१।१६, २।१।१७ २।१।१८ और २।१।२० सूत्रों से पूर्णतः मिलते हैं। जिस प्रकार कातन्त्रकार ने इनके साधुत्व के लिए प्रक्रिया न देकर सिद्धरूपों का ही विधान दिया है, उसी प्रकार हेम ने भी। यहाँ हेम की कोई मौलिकता दृष्टिगोचर नहीं होती।

कातन्त्रकार ने जरा शब्द को जरस आदेश करने के लिए ‘जराजन्त् स्वरे वा’ २।३।२४ सूत्र लिखा है, हेम ने इसी कार्य के लिए ‘जराया जरन्वा’ २।१।३ सूत्र रचा है। यद्यपि हेमका उक्त सूत्र कातन्त्र में मिलता जुलता है, तो भी हेम ने जरा के साथ अतिजरा शब्द को ग्रहण कर अपनी मौलिकता और वैज्ञानिकता का परिचय दिया है। वस और नस के आदेश का प्रकरण हेम व्याकरण में कातन्त्र की अपेक्षा विस्तृत है। हेम ने उनके अपवादों की भी चर्चा की है।

कारक प्रकरण के आरम्भ में हेम ने कारक की परिभाषा दी है, पर कातन्त्र में इसका सर्वथा अभाव है। कातन्त्रकार ने कर्म की परिभाषा देते हुए लिखा है “यत्क्रियते तत्कर्म” २।४।१३ अर्थात् कर्त्ता जिसे करता है उसकी कर्म संज्ञा होती है। जैसे कट करोति, ओदनं पचति में कर्त्ता कट-चटाई को करता है, ओदन—भात को पकाता है; अतः इन उदाहरणों में कट और ओदन ही कर्त्ता के द्वारा किये जाने वाले हैं, इसलिए इनको कर्म कहा जायगा।

विचार करने पर कर्म की यह परिभाषा सदोष दिखलाई पड़ती है; क्योंकि घालकः तिष्ठति, रामः जीवति, नदी प्रवहति आदि अकर्मक प्रयोगों में भी कर्म की उक्त परिभाषा घटित होगी, यतः उक्त उदाहरणों में घालक ठहरने रूप कार्य को करता है, राम जीता है में भी कर्मत्व विद्यमान है तथा नदी का प्रवहमान होना भी नदी का कार्य है, अतएव उपर्युक्त प्रयोगों में भी कर्मत्व मानना पड़ेगा; जिससे प्रायः सभी अकर्मक प्रयोग सकर्मक हो जायेंगे। अतः कातन्त्र की कम परिभाषा में अतिव्याप्ती दोष होने के कारण पर्याप्त शैथिल्य विद्यमान है। इसी शैथिल्य को दूर करने के लिए हेम ने ‘कर्त्तुर्व्याप्तं कर्म’ २।१।३ सूत्र में कर्त्ता क्रिया के द्वारा जिसे विशेष रूप से प्राप्त करने की अभिलाषा करता है, उसे कर्म बतलाया है तात्पर्य यह है कि हेम ने पलाश्रय को कर्म कहा है, पलाश्रयता ही कर्म का चोत्कृष्ट है। यह तीन प्रकार का होता है—निर्जर, विनाय और प्राप्य। इस प्रकार हेम की कर्म परिभाषा कातन्त्र की अपेक्षा शुद्ध और विशिष्ट है।

कातन्त्र में 'नेन क्रियते तत् करणम्' २।४।१० सूत्र द्वारा कर्ण की परिभाषा दी गई है। यहाँ नेन शब्द से स्पष्ट नहीं होता कि कर्ता ग्रहण किया जाय या साधन। अतः इसका यह अर्थ है कि जिसके द्वारा कार्य किया जाता है, वह करण है। करण की इस परिभाषा में कर्ता और साधन दोनों का ग्रहण होने से अन्वयान्ति और अज्ञान्ति दोनों दोष हैं। यत् कुम्भकारेण घटः क्रियते, रामेण गन्धने, इन वाक्यों में कुम्भकार के द्वारा घट किना जा रहा है, राम के द्वारा क्या जा रहा है, में कुम्भकार और राम दोनों की करण सहा हा जायगी, परन्तु कुम्भकार और राम करण कारक नहीं हैं कर्ता कारक हैं, अतः यहाँ अज्ञान्ति दोष विद्यमान है। 'गात्रेण रगं' इस प्रयोग में गात्रेण में तृतीया-विभक्ति है पर उक्त सूत्र द्वारा यह सम्भव नहीं है, अतएव यहाँ अज्ञान्ति दोष भी विद्यमान है क्योंकि उक्त सूत्र द्वारा प्रतिपादित करण कारक का लक्षण समस्त करण कारकीय प्रयोगों में घटित नहीं होता है। अतः हेम ने उक्त परिभाषा का परमार्जन कर 'साधकत्वमम् करणम्'<sup>१</sup> २।२।४ सूत्र लिखा है अर्थात् क्रिया के प्रत्ययकारक को ही करण सहा हाती है।

कातन्त्रव्याकरण का कारक प्रकरण अपूर्ण है, पर हेम ने उसे सभी तरह से पूर्ण बनाने का प्रयास किया है। विनिन्दय—क्यन्त्रियार्थ और घृत दिव्य अर्थ में णि और व्यञ्ज घातुओं से हेम ने विकल्प रूप से कर्म सहा करके शतन्व शत वा ण्यति, दशाना दश वा व्यञ्जहरति आदि प्रयोगों का अन्वयान्ति किया है। कातन्त्र में इनका किञ्चुल अभाव है। इसी प्रकार हेम ने शतन्व शत वा प्रदीप्यति की सिद्धि २।२।१७ सूत्र द्वारा, अधान् दीप्यति और अपैशान्ति की सिद्धि २।२।१९ सूत्र द्वारा, ग्रामदुपचरति, अधिनरति और आन्तरति की सिद्धि २।२।२१ सूत्र द्वारा, मासमास्ते, क्रोध रोते 'मादोद्दमास्ते और कुचमास्ते की सिद्धि २।२।२३ द्वारा, स्तोक पचति, सुल स्थाता की सिद्धि २।२।४१ द्वारा, मास गुडघाना, कल्याणी अधीते वा, क्रोध गिरि, कुटिला नदी, क्रोशन्धीते वा की सिद्धि २।२।४१ द्वारा, मासेन मासाम्या मासैर्वा आन्तरकमधीत, क्रोशेन क्रोशाम्या क्रोशैर्वा प्राश्नन्धीतम् की सिद्धि २।२।४३ द्वारा, पुष्पेण पुष्पे वा पायनन्शीवात् की सिद्धि २।२।४८ द्वारा, माना मानर वा सज्जानीते की सिद्धि २।२।५१ द्वारा, दिजाय ग प्रतिभूति आम्भति वा का सिद्धि २।२।५६ द्वारा, गुर्वे प्रतिष्ठाति, अनुष्ठाति की सिद्धि २।२।५७ द्वारा एव अधिका द्रोग ख्यायां ख्यायां वा की सिद्धि २।२।१११ सूत्र द्वारा का है। इन समस्त प्रयोगों का कातन्त्र में अभाव है। कारक प्रकरण में हेम ने कातन्त्र की अपेक्षा ठीक नये प्रयोग लिखे हैं। विद्वान्ति निरूपण

१—यही पाणिनि का सूत्र भी है।

की दृष्टि में हेम का यह प्रकरण कातन्त्र की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक और विस्तृत है।

कातन्त्र व्याकरण में द्विगोषा, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, और गतनी विभक्तियों का पूर्ण अनुशासन नहीं किया गया है। इन विभक्तियों का विभिन्न अर्थों और विभिन्न धातुओं के संज्ञा में व्याकरणिक नियमन का अभाव है। हेम ने समस्त विभक्तियों के नियमन को सर्वज्ञीय और पूर्ण व्यवस्था की है। आः संज्ञेय में इतना ही कहा जा सकता है कि हेम का कारक प्रकरण कातन्त्र की अपेक्षा मूलिक, विस्तृत और नवीन है।

कारक प्रकरण के अनन्तर कातन्त्र और हेम दोनों व्याकरणों में ह्य, पर्य और ल्य विधान उदरग्य होता है। कातन्त्र का यह प्रकरण बहुत ही छोटा है, हेम में यह प्रकरण अति विस्तृत है। इसमें अनेक नये सिद्धान्तों का प्रवृत्त हुआ है। इसके आगे दोनों व्याकरणों में स्त्री प्रत्यय का विधान है। कातन्त्र में जहाँ इस विषय के लिए २१४९-२१५२ तक कुछ चार ही सूत्र मिलते हैं, वहाँ हेम में ११३ सूत्रों का एक समस्त पाद ही स्त्रीप्रत्ययों की व्यवस्था के लिए आया है। कातन्त्र की अपेक्षा हेम का यह अनुशासन विधान बहुत विस्तृत और मौखिक है। हेम व्याकरण के इस प्रकरण में कातन्त्र की अपेक्षा सैकड़ों नये प्रयोग और प्रत्यय आये हैं। कातन्त्र में यह प्रकरण जहाँ नवज्ञान विस्तृत है; वहाँ हेम व्याकरण में यह पूर्ण प्रौढरूप में उपलब्ध होता है।

कातन्त्र और हेम इन दोनों व्याकरणों के समास प्रकरण पर विचार करने से अद्वयता होता है कि कातन्त्र के इस प्रकरण का अनुशासन कुछ २९ सूत्रों में किया गया है, जब कि हेम व्याकरण में इस प्रकरण को अनुशासित करने वाले दो पाद हैं; जिनमें क्रमशः १६३ तथा १५६ सूत्र आये हैं। अतः हेम व्याकरण में इस प्रकरण का पूर्ण विस्तार विद्यमान है। समास सम्बन्धी समस्त पहलुओं पर साक्षोपास विचार किया है। हेम ने तत्पुरुष, अव्ययी भाव, द्वन्द्व, द्विगु, कर्मधारय और बहुव्रीहि समासों की व्यवस्था का नियमन पूर्ण विस्तार के साथ किया है। समास निरूपण आरम्भ करने के पहले हेम ने गतिसंज्ञकों को गिनाया है। इसका तात्पर्य यह है कि आगे विभिन्न गतिसंज्ञकों में तत्पुरुष समास का अनुशासन करना है, इसके लिए यह पृष्ठ भूमि आवश्यक है, अतएव गतिसंज्ञकों को पूर्व में ही गिना देना इन्होंने आवश्यक समझा है।

कातन्त्र का समास विधायक सबसे पहला सूत्र 'नाम्नां ममासे युक्तार्थ' २।५।१ है और हेम व्याकरण में भी प्रायः इसी आशय का "नाम नाम्नैकार्ये समासो बहुलम्" ३।१।८ आया है। कातन्त्रकार ने समास के सामान्य नियमों के अनुशासन के उपरान्त कर्मधारय समास की व्यवस्था की है। इस व्याकरण में उक्त समास के अनुशासन के लिए केवल यही एक सूत्र है। कातन्त्र के वृत्तिकार दुर्गादेव ने इस सूत्र के उदाहरणों में निपातन से सिद्ध होने वाले मयूरखंसक, कम्बोजमुग्ध, द्याकपार्थिव आदि प्रयोगों को भी रख दिया है। गोनामः, अश्वकुञ्जरः, कुमारश्रमगा, भोग्योष्णम्, कनरकठः, गोगृष्टि, युवपलितः, पलापलिका आदि उदाहरणों को बलपूर्वक ही उक्त सूत्र में रखा है। यत् तुल्याधिकरण में कर्मधारय समास विधायक सूत्र उक्त प्रयोगों का नियमन करने में सर्वथा असमर्थ है। हेम ने उक्त उदाहरणों के साधुत्व के लिए विशिष्ट विशिष्ट सूत्रों का प्रणयन किया है। हेम व्याकरण में कर्मधारय समास की चर्चा ३।१।९६ सूत्र से ३।१।११६ सूत्र तक मिलती है।

समास के पश्चात् कातन्त्र व्याकरण में तद्धित प्रकरण है, पर हेम व्याकरण में धातु प्रकरण आता है। हेम ने धातु विकार और नाम विकारों के नाम और धातुआ के पश्चात् ही निबद्ध किया है। कातन्त्र के तद्धित प्रकरण की अपेक्षा हेम व्याकरण का तद्धित प्रकरण पर्याप्त विस्तृत है। हेम ने छठवें और सातवें इन अर्थात् में तद्धित प्रत्ययों का निरूपण किया है। कातन्त्र व्याकरण में इस प्रकरण को आरम्भ करते ही अण, यण, आयनण, एयण, ङण आदि प्रत्ययों का अनुशासन आरम्भ हो गया है, पर हेम व्याकरण में ऐसा नहीं किया है। इसमें 'तद्धितोऽणादि' ६।१।१ सूत्र द्वारा तद्धित प्रत्ययों के कथन की प्रतिज्ञा की है। अनन्तर तद्धित सम्बन्धी सामान्य विवेचन किया गया है।-

कातव्य व्याकरण में सामान्य अर्थ में अण, यण, ध्यण आदि प्रत्ययों का विधान किया है, पर हेम ने विशेषरूप से ही सभी सूत्रों का क्रम रखा है। तद्धित प्रत्ययों का लुक् प्रकरण हेम का कातन्त्र की अपेक्षा बिल्कुल नवीन है। कातन्त्र में अण, ष्य, आयनण, एयण ङण, इकण, य, ईय, यत्, वत्, त्त, ता, मन्तु, वन्तु, विन्, इन्, ड, य, तीय, था, तमट्, तत्, यमु, ह और दा प्रत्ययों का ही निर्देश किया गया है, पर हेम व्याकरण में ये प्रत्यय तो हैं ही साथ ही एकञ्, ईन, एत्य, णिक्, अञ्, ईनञ्, अ, ञ्, ष्य, तन, त्त, अकञ्, मयट्, ञ्, वय, यञ्, डामहट्, व्य, डुल्ल, वल्ल, इञ्, र, कीय, का, क, टण्, अच्, त्यच्, णिक्, नञ्, ईयण, ततट्, न, अक, इकट

इन, इप्, इण्, इट्, ईनन्, लिङ्कन्, शाकट, शाकिन, षट्, कुण, जाह, नि, एलु, उग, आलु, डीकन्, रीट, नाट, भुट, निक्, विट, विगीय, ल, षट्, पट, गोष्, हेल, ट, इत्, तयट, निपट, इयट् थट्, तीय, थ, इत्, न, अन्, ईर, इर, व, पुम्, ऐपुम्, हि, धमेन्, मन्, एध, धन्, पुर, अन्, अन्, अन्, रूपन्, ज, क्, इतर, इतम, दि, इन्, अत्, अट एवं इ प्रत्ययों का भी विधान किया है। हेम के इस तद्धित प्रकरण में सबको नये प्रयोग आये हैं।

हेमने उपर्युक्त प्रत्ययों का विधान अण्य, गोष्, रक्त, शाम्यदेवता, तद्धित-तदधीते, राष्ट्रीय, सन्द्, काल, विकार, निवास, नभ्यार्थ, भाव, साम, जात, प्रती, भक्ष, रंघ, प्रहणाति, तद्व्याति, योनिस्त्रन्ध, तरदेद, संशुष्, तरति, चरति, जीवति, निवृत्त, हरति, वर्तते, धानि, तिष्ठति, प्रहृणाति, गण्डति, धाकति, घृणति, हुवति, समुषेत, अवक्रम, शीत्, प्रहरण, नियुक्त, वसति, ध्यवहरति, अभिगमार्ह, यजनान, अपीयमान, प्राप्तसेव, शक्त, दधिना, देय, कार्य, शोभमान, परिजन, भूत, भूत, अपीष्, ब्रह्मचर्य, चौर, प्रयोजन, मन्य, दण्ड, प्राण, अहित्, श्रित, वाप, रेत्त, शत, पचति, इरत्, मान, स्तोम आदि विभिन्न अर्थों में किया है। अन् हेम व्याकरण का तद्धित प्रकरण सभी दृष्टिकोणों से कातन्त्र की अपेक्षा समृद्धिशाली और महत्वपूर्ण है।

तिहन्त प्रकरण में कालवाची क्रियाओं का नामकरण हेम ने समान कातन्त्र के ही किया है। वर्तमाना, परीक्षा, सप्तमी, पञ्चमी, ह्यन्तनी, अधस्तनी, आशीः, श्वरतनी, मविष्यन्ती और क्रियातिपत्ति इन दस अवस्थाओं को हेम ने कातन्त्र के आधार पर ही संभवतः रक्षिकार किया है। इन अवस्थाओं के अर्थ भी हेम ने कातन्त्र के समान ही निरूपित किये हैं। किन्तु हेम का तिहन्त प्रकरण कातन्त्र से बहुत विरुद्ध है। इसमें कातन्त्र की अपेक्षा कई सौ अधिक और नवीन धातुओं का प्रयोग हुआ है। धातुओं के विकार का अनुशासन तथा नकारान्त, पकारान्त, जकारान्त, चकारान्त, पकारान्त आदि धातुओं के विशिष्ट अनुशासनों का निरूपण हेम का कातन्त्र की अपेक्षा विशिष्ट है। धातु के अन्तिम वष के विकार के प्रसंग में हेम ने ऐसी अनेक नयी बातें बतलायी हैं, जो कातन्त्र में नहीं हैं।

कृदन्त प्रकरण भी हेम का कातन्त्र की अपेक्षा कुछ विशिष्ट है। इसमें हेम ने कई ऐसे नये प्रत्ययों का अनुशासन किया है, जिनका कातन्त्र में नामोनिशान भी नहीं है। हेम ने “आनुमोऽस्यादिः कृत् ५।१।१ सूत्र द्वारा कृत् प्रत्ययों के प्राप्तिपादन की प्रतिज्ञा की है, इसके अनन्तर हेम ने प्रक्रिया पद्धति का प्रदर्शन किया है। कातन्त्र का काम भी हेम जैसा ही है।

कातन्त्र के कतिपय सूत्रों की छाया हेम में उपलब्ध है। कातन्त्रकार ने “प्याय पी स्वाङ्गे” ४।१।४३ सूत्र से प्या के स्थान पर पी आदेश किया है, हेम ने भी इस कार्य के लिए ‘प्याय पीः’ ४।१।९१ सूत्र ग्रन्थित किया है। यहाँ ऐसा लगता है कि हेम ने कातन्त्र का उक्त सूत्र प्यों का त्यो ग्रहण कर लिया है। एक बात यह भी है कि कातन्त्र व्याकरण का वृदन्त प्रकरण भी पर्याप्त विस्तृत है। अतः जहाँ तहाँ हेम ने इसका अनुसरण किया है। इतना होने पर भी यह सत्य है कि हेम का वृदन्त प्रकरण कातन्त्र की अपेक्षा प्रिशिष्ट है।

### आचार्य हेमचन्द्र और भोजराज

जिस प्रकार हेम का व्याकरण गुजरात का माना जाता है, उसी प्रकार भोजराज का व्याकरण मालवा का। कहा जाता है कि सिद्धराज ज्यसिंह ने सरस्वती कण्ठाभरण को देखकर ही हेम को व्याकरण ग्रन्थ लिखने के लिए प्रेरित किया था। कालक्रमानुसार विचार करने से भी हेम और भोज में बहुत थोड़ा अन्तर मालूम पड़ता है, अतः भोज के व्याकरण की तुलना हेम व्याकरण के साथ करना भी आवश्यक है।

संज्ञा प्रकरण की दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि हेम ने सभित्त और सरलरूप में संज्ञाओं का विवेचन किया है। सब बात तो यह है कि वैयाकरणों में हेम ही एक ऐसे वैयाकरण हैं, जिन्होंने आवश्यक संज्ञाओं की चर्चा थोड़े में ही कर दी है। इसके प्रतिकूल भोजराज ने अपने ‘सरस्वती कण्ठाभरण’ नामक व्याकरण शास्त्र में सभी व्याकरणों की अपेक्षा संज्ञाओं का अधिक निर्देश किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि जिन संज्ञाओं की अत्यन्त आवश्यकता नहीं है अथवा जिनसे काम संज्ञा नाम न देने का भी चल सकता है, हेम ने उनका निरर्थक संयोजन करना अच्छा नहीं समझा। हेमचन्द्र सबसे स्पष्ट अनुशासन के बच्चा हैं, पर भोजराज में इस गुण का अभाव है। उनके सामने शब्दान्वाख्यानक जितनी प्रक्रियाएँ विस्तार के साथ परिब्याप्त थीं, वे उनके व्यामोह में पड़ गये तथा सूत्र शैली में उन सबको समाविष्ट करने की असमर्थ चेष्टा उन्होंने की। पर वे यह भूल गये कि सूत्र शैली के द्वारा किसी भी शास्त्र को पूर्णरूप से समेटा नहीं जा सकता। फलतः उनका शब्दानुशासन व्याख्यात्मक हो गया है। हेम ने इस प्रवृत्ति से बचने के लिए अल्प शब्दावली में ही विभिन्न प्रवृत्तियों और भिन्नियों का अनुशासन कार्य किया है।

भोजराजीय व्याकरण व्याख्यात्मक होने के कारण परिभाषाओं से अत्यन्त भरत है। यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि उक्त व्याकरण पाणिनीय व्याकरण के



ज्ञान बिना दुर्बल है। कई मुष्ता हुआ परिज्ञान ही उसे मान मति समत सम्य है। परिभाषाओं के लिए यह अध्याय आन्तरिकता प्रतीत होता है कि पहले परिज्ञान ज्ञान कर लिया जान। परिज्ञान में मां परिभाषाओं का कोई बड़ा प्रयोग प्रयुक्त नहीं किया है, परन्तु पर्याय आदि उदाहरणों पर परिज्ञान देना करने में अनेक विभिन्न परिभाषाओं का महत्त्व तथा परीक्षा किया है। नगेश का परिभाषाद्वयनेत्र नामक विद्याकाय ग्रन्थ इही परिभाषाओं का विवरणक मद्र है। भावराज ने अनेक परिभाषा प्रयोग में उन सभी परिभाषाओं का यथा-यथा रूप में मद्र कर दिया है। इस कारण इन ग्रन्थ में प्रारम्भिक उद्योग आ गयी है।

हेम ने परिभाषाओं की आवश्यकता नहीं समझी है। ये परिभाषाओं की व्याख्या विशेष आवश्यकताद्वारा विविध निर्देशों द्वारा ही करते हैं। इनके दो ही रूप परिभाषा के रूप में माने जा सकते हैं। प्रथम है 'विद्वि म्यादादात्' ३।१।० और अर्थात् है 'लक्ष्म' ३।१।३। हेम ने इन दोनों का भी मद्र के रूप में ही मद्र किया है। इस प्रकार भोजराज ने सभी परिभाषाओं में अनेक व्याख्या का उदाहरण दिया है, यहाँ हेम ने अनेक व्याख्यान की परिभाषा की उदाहरण ने विस्तृत मुक्त रखा है।

भोजराज का मनी प्रथम बहुत ही देवीदा है। सर्व प्रथम उनमें टार की प्रशिक्षा दितारई गई है। टार प्रथम के लिए मानान्य रूप 'अन्तर' ३।१।० है, जिम्मे सभी अकारान्त शब्दों के आगे खलित् बनाने के लिए टार प्रथम का विधान है। इन्में आगे ३।१।१४ सूत्र उक्त मनी सूत्र टार प्रथम करने वाले आये हैं, किन्तु हेम ने अर्थात् मत्र मानकर एक ही सूत्र 'अर्थात्' से आर प्रथम के द्वारा सभी निर्देश कर लिया है।

भोजराज ने वृद्ध कुमारी शब्द बनाने के लिए 'कुमारदन्दादा' ३।१।२० एक अलग सूत्र की रचना की है। उनको मन्देह या कि जो की कुमारी (कुमारी) रह कर वृद्ध हो गई हो, यहाँ 'व्यस्यचरमे' ३।१।२७ सूत्र में निर्देश नहीं होगा। अतः अचरनाक्या में ही उक्त रूप द्वारा टार का विधान किया गया है। वृद्ध कुमारी में तो वृद्ध कुमारी है, जिन्की अवस्था चरम (अल्पिन) है, अतः भोज ने ३।१।२० एक विशेष सूत्र रचा है, जिन्के द्वारा उक्त प्रयोग की विधि की गई है। किन्तु हेमने ऐसा करना आवश्यक नहीं समझा। इन्होंने कुमार शब्द से सीधे ही कुमारी शब्द बना दिया है। यदि वृद्धा नी कुमारी बनी रह जायगी अर्थात् अनिवाहिता रहेगी तो उसे कुमारी तो वास्तविक रूप में नहीं कहेंगे, क्योंकि कुमार शब्द अवस्थावाची तरफ शब्द की पूर्वजागत अवस्था का बोधन करता है। यह अवस्था है बालिका के विनाह करने के पूर्व की। यदि

किन्ती स्त्री का वृद्धावस्था तक भी विवाह नहीं हुआ हो तो इसका मतलब यह नहीं हो सकता वह कि कुमारावस्था में ही है। कुमारी उन्हे इसलिए कहा जाता है कि वह अब भी (वृद्धावस्था में भी) विवाह की पूर्वतन अवस्था का पालन कर रही है। इस प्रकार वृद्धाकुमारी में कुमारीत्व का आरोप ही समझा जा सकता है; नहीं तो मला व्यवहार में ही वृद्धा कैसे कुमारी हो सकती है, यह सोचने की बात है। निष्कर्ष यह है कि कुमारी शब्द अवस्थावाची है, अतः अविवाहिता वृद्धा स्त्री में यह अवस्था विधान नहीं है। हेमचन्द्र अनुशासन शास्त्र के पूर्ण पण्डित थे, फलतः उक्त तथ्य को ही इन्होंने स्वीकार किया है। इसी कारण उक्त प्रयोग के लिए कोई पृथक् अनुशासन की व्यवस्था प्रस्तुत नहीं की। इतने हेम के शब्दार्थ व्यवहार की कुशलता का सङ्ग में ही पना चल जाता है।

मोजराज ने आचार्य शब्द से एक ही स्त्रीलिङ्ग शब्द आचार्यानी बनाया है, किन्तु हेम ने मातुल एवं उपाध्यय के समकक्ष आचार्य शब्द से भी आचार्यानी तथा आचार्या इन दो स्त्रियों की सिद्धि बनवाई है। यह इनके भाषा शास्त्रीय विरोध ज्ञान का ही द्योतक है। स्त्री प्रत्यय प्रकरण में हेम वैयाकरण के नाते मोजराज से बहुत आगे हैं।

मोजराज ने हेतु, कर्त्ता, करण तथा इत्यभूत लक्षण में तृतीया करने के लिए चार सूत्रों की अलग-अलग रचना की है; किन्तु हेम ने एक ही “हेतुर्कर्तृकरणे-त्यं मूललक्षणे” के द्वारा सुगमतापूर्वक चारों का काम चला दिया है। यह हेम की मौलिक शैली है कि ये कठिन एवं विस्तृत प्रक्रिया विधि को बहुत सरलता एवं सन्धेन के द्वारा उपस्थित करते हैं तथा इस शैली में इन्हें सर्वत्र सरलता भी मिली है।

पाणिनि ने अपने व्याकरण में वैदिक तथा लौकिक इन दोनों प्रकार के शब्दों का अनुशासन करना उचित समझा। पर मोजराज के समय में तो वैदिक भाषा विन्दुन पुस्तकीय हो गई थी। हम ऐसा नहीं कहते कि इस अवस्था में किसी भाषा का व्याकरण ही नहीं लिखा जाना चाहिए; किन्तु इतना अवश्य कह सकते हैं कि वैसी भाषा की समीक्षा तथा उसका अनुशासन जिने दूसरी भाषा के साथ नहीं किया जा सकता। मोज के ध्यान में यह तथ्य नहीं आ सका और उन्होंने पाणिनि से स्वर मिलाकर वैसा करना अच्छा समझा। मोजने ‘तित्त्वरितार्थ’ तव्यन् प्रत्यय का भी विधान किया है।

हेमचन्द्र भाषा के व्यवहारिक विद्वान् तथा वर्तन शैली के महान् पण्डित थे। इनके समय में भाषा की स्थिति बदल चुकी थी। पाणिनि के युग में वैदिक तथा भेष संस्कृत का धनिष्ठ सम्बन्ध था। फलतः पाणिनि ने अपने अनुशासन में

दोनों को स्थान दिया। नोज और हेम के समय में माया की अगली कौरि भी उत्पन्न हो चली थी अर्थात् प्राकृत और संस्कृत के साथ अन्तर्ग्रह माया भी आदिभूत होने लगी थी। अतः हेम ने अपने ध्याकरण को समयावधि की बनाने के लिए संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं के ध्याकरण के साथ अन्तर्ग्रह माया का ध्याकरण भी लिया। इन्होंने अन्तर्ग्रह को प्राकृत का ही एक भेद मान लिया और प्राकृत ध्याकरण में उसका विस्तृत विवेचन किया। अतः हेम का ध्याकरण भोज के ध्याकरण की अपेक्षा अधिक उपयोगी, अधिक व्यावहारिक और अधिक सरल है। हेम ध्याकरण के तिदन्त, वृदन्त और तद्विदित प्रकरणों में भी भोज के ध्याकरण की अपेक्षा अनेक विरूपताएँ दिखाने हैं।

### हेम और सारस्वत व्याकरणकार—

सारस्वत ध्याकरण के विषय में प्रसिद्धि है कि अनुमृति रत्नानाचार्य को सरस्वती ने इन श्लो की प्रतीत हुई और इसी कारण इस ध्याकरण का नाम सारस्वत पड़ा। सारस्वत ध्याकरण के अन्त में “अनुमृति रत्नानाचार्यविरचिते” पाठ उपलब्ध होता है। कुछ विद्वान् इस ध्याकरण का रचयिता अनुमृति रत्नानाचार्य को नहीं मानते; किन्तु वे प्रमाण प्रमेय कठिना के रचयिता आचार्य नरेन्द्रसेन को बताते हैं। सुषिष्ठिर भीमसेन ने भी इस बात की ओर संकेत किया है और अजितसेन के शिष्य नरेन्द्रसेन को चान्द्र, धातन्त्र, जैनेन्द्र और पाणिनीय तन्त्र का अधिकारी विद्वान् बतलाया है। हमें भी इस ध्याकरण को देखने में ऐसा लगता है कि यह जैन कृति है और इस पर जैनेन्द्र, शाकटायन और हेम का पूरा प्रभाव है। इस ध्याकरण पर जैन और जैनेतर सभी टीकाएँ मिलकर व्यास्य शीघ्र की संख्या में उपलब्ध हैं।

यह सत्य है कि सारस्वत ध्याकरण हेम के पीछे का है, अतः उसमें पाणिनीय, धातन्त्र और हेम का साक्षात्कार दिखलायी पड़ता है। सारस्वत की रचना प्रकरणानुसार की गयी है। हमें भी प्रत्याहार के बन्दाहे को स्वीकार न कर हेम के समान वर्णमाला ही स्वीकार की गयी है, अथवा जो कहा जाय कि धातन्त्र और हेम के समान इसे समान्याय को ही सारस्वत में स्थान दिया गया है। जिस प्रकार हेम ने “तृदन्ताः समानाः” १।१।७ सूत्र की वृत्ति में अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ लृ को समान संज्ञक माना है, उसी प्रकार सारस्वत में भी “अ इ उ ऋ समानाः” सूत्र द्वारा उऊ ऋ को समान संज्ञक कहा है। सारस्वत में हेम की कुछ संज्ञाएँ ज्यों की त्यों दिखाने हैं; जैसे नानी, लघ्यञ्ज आदि। सारस्वत ध्याकरण में एक नयी

जात यह आयी है कि संज्ञाओं का कथन आलंकारिक शैली में किया गया है। जेते—

वर्णदर्शनं लोपः । वर्णविरोधो लोपश्च । मित्रवदागमः । शत्रुवदादेशः ।

इस व्याकरण का यह अपना मौलिक ढंग कहा जायगा। हेम व्याकरण शान्त्र लिखन समय निशुद्ध वैज्ञानिक ही रहते हैं, अतः अपनी भाषा और शैली का भी आलंकारिक होने से बचाते हैं। सारस्वत व्याकरण के रचयिता ने पूर्ववर्ती समस्त तन्त्रों का सार लेकर इस ग्रन्थ की रचना की है। यदि यों कहा जाय कि पाणिनीय तन्त्र के सूत्रों का व्याख्यात्मक संकल्पन इस व्याकरण में है तो भी अतिशयोक्ति नहीं होगी। वास्तव में यह भी एक व्याख्यात्मक व्याकरण है, इसके सूत्रों का ही व्याख्या की शैली में लिखा गया है। अतः सज्ञा प्रकरण पर भी उक्त शैली की छाया वर्तमान है। हेमका सज्ञा प्रकरण इससे कई गुना उपयोगी और वैज्ञानिक है।

सन्धि प्रकरण पर विचार करने से ज्ञात होता है कि हेम के 'लृत्स्वा' १।१।१ सूत्र की सारस्वत के 'लृदादौ नामधातौ वाडश्' ४३ स्व. सं. सूत्र पर पूर्णतया छाप है। व्याख्यात्मक शैली होने के कारण सारस्वतकार ने हेम के उक्त सूत्र को व्याख्या करके ही ग्रहण किया है। इसी प्रकार हेम के १।२।९ सूत्र की ४१ स्वा सं० सूत्र पर १।१।१० की ४० स्वा सं० सूत्र पर १।१।११ की ४२ स्वा सं० पर, १।१।४२ की ३० स्वर सं० सूत्र पर एवं १।२।१७ सूत्र की १६ स्वा सं० सूत्र पर पूर्णतया छाया विद्यमान है। व्यञ्जन सन्धि पर भी हेम के आठ दस सूत्रों की छाया है। सारस्वतकार ने सूत्रों को ज्यों के त्यों रूप में नहीं ग्रहण किया है; किन्तु व्याख्यात्मक रूप से उन्हें अपनाया है।

सारस्वत व्याकरण में हेम व्याकरण की विभक्तियों को भी ग्रहण किया गया है। सि औ जस्; अन् औ शस्; दा म्याम् भिस्; डे भ्याम् भ्यस्; इत् ओस् आम्; डि ओस् मुप् इन विभक्तियों का सारस्वत में विधान किया है। अतः यह निश्चित है कि सारस्वत में पाणिनि के समान विभक्तियाँ नहीं आयी हैं, बल्कि हेम के अनुसार ग्रन्थित हैं।

सारस्वत व्याकरण में अनेक स्थलों पर विकर्ग के स्थान में सत्त्वं तथा षत्त्वं करने के लिए वाचस्पत्यादि गण माना गया है और उस गण में निहित शब्दों में निपातन द्वारा सत्त्वं एवं षत्त्वं का अनुशासन किया है। इसमें विभिन्न प्रकार के प्रयोग आते हैं, जो किसी भी प्रकार सजातीय नहीं कहे जा सकते। यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि विकर्ग स्थानिक स तथा ष के लिए सारस्वत में एक ही सूत्र है—'वाचस्पत्यादयो निपातात्सिध्यन्ति' ५ वि. सं.। किन्तु हेम ने

इस विषय पर द्वितीय रूप में भी अनुशासन किया है। इन्होंने पाणिनीय टीका के अनुसार तत्पर्यायानो पर विनोद अनुशासन की पद्धति को अन्वयाने हुए कुछ प्रयोगों में नैसर्गिक मध्य तथा पर का अनुशासन किया है। यद्यपि इन्होंने भी दोनों विधानों के अर्थ २।१।१४ सूत्र की रचना की है, तो भी हमें ऐसा नहीं लगता है कि हेम ने यहकर ऐसा किया होगा। हेम ने एक ही सूत्र में वही निष्पत्ता के साथ आनुष्पुमादि एवं क्कादि दो मग मानकर प्रथम में पर एवं द्वितीय में सत्व का अनुशासन किया है। इस प्रकरण में मान्य होना है कि सारस्वतकार ने पाणिनि की अपेक्षा जहाँ मौलिकता लाने की चेष्टा की है, वहाँ उनका प्रकरण जैसे ही छोड़ा हो गया हो, किन्तु उन्हें निश्चिन्ता ही हाथ लगी है; परन्तु हेम ने पाणिनि की अपेक्षा जहाँ वही भी नवीनता लाने की चेष्टा की है, वहाँ उनका मूलमूल आधार प्रयोग का भरल एवं वैज्ञानिक साधन रहा है, इसी कारण हेम का व्याकरण पाणिन्युत्तर-वाज़ीन समस्त व्याकरण ग्रन्थों में मौलिक सिद्ध हुआ है, मारस्वतकार तो पद-बद्ध पर हेम से प्रभावित दिखलायी पड़े हैं। इन पर जितन शून्य पाणिनिका है, उससे कम हेम का नहीं।

हेम ने कारक प्रकरण में 'आमन्थे' २।२।३० सूत्र द्वारा सम्बोधन में प्रथमा निमित्त का विधान किया है 'सारस्वत कारने भी' आमन्थे च' सूत्र में हेम की बात को दुहराया है। हेम का कारक प्रकरण सर्वज्ञपूर्ण है, पर सारस्वत व्याकरण में यह प्रकरण बहुत ही संक्षिप्त है। व्याख्याओं के रहने पर भी इसके कारकीय ज्ञान पूर्वरूपेण नहीं हो सकता है।

समास प्रकरण में भी हेम की कई बातों को सारस्वत में ग्रहण किया गया है। जिस प्रकार हेम ने अव्ययीभाव के आरम्भ में 'अव्ययन्' १।१।११ सूत्र को अधिकार सूत्र बताया है, पश्चात् 'निमित्त समीर' इत्यादि सूत्र से अव्ययीभाव समास का विधान किया है, उसी प्रकार सारस्वत प्रकरण में अव्ययीभाव का प्रकरण आया है। हाँ, एक बात अनर्थ ही ज्ञातव्य है कि सारस्वत में अव्ययीभाव समास विधायक सूत्र में पाणिनीय व्याकरण का ही अनुसरण किया है; पर उसके आगेवाला सम्बन्ध हेम के अनुसार है। अतः सारस्वत के समास प्रकरण पर हेम और पाणिनि दोनों बेबाकानो की छान नियमान है। एक दूसरी विशेषता यह भी है कि सारस्वत की अपेक्षा हेम व्याकरण का समास पूर्ण है। सारस्वत में यहब्रौहि और तत्पुरुष समास का विवेचन कम हुआ है।

सारस्वत व्याकरण का तिङन्त प्रकरण हेम के तिङन्त प्रकरण के समान है। हेम की शैली के आधार पर ही अनुभूति स्वरूपचार्य ने भी

वर्तमाना, आशी, प्रेरणा, अद्यतनी, परोक्षा आदि क्रियावस्थाओं का ही जिक्र किया है और उन्होंने प्रत्यय भी हेम के समान ही बतलाये हैं। धातुरूपों के साजुत्व की प्रक्रिया विल्कुल हेम से मिलनी जुलती है तथा धातु प्रकरण का नाम तिङन्त न रखकर हेम के समान आर्यात रखा है। लकारार्थ निरूपक प्रक्रिया भी सारस्वत की हेम से बहुत कुछ अरों में समता रखती है। कर्म-कर्तृ प्रक्रिया में हेम के कई सूत्रों का व्याख्यात्मक प्रयोग किया गया है। उदाहरण भी हेम के उदाहरणों से प्रायः मिलते-जुलते हैं।

सारस्वत व्याकरण का तद्विदित प्रकरण बहुत छोटा है। हेम की तुलना में तो यह प्रकरण शिशु मान्य पड़ता है। इस प्रकरण में हेम की सारस्वत की अपेक्षा लगभग पाँच सौ प्रयोग अधिक हैं। शाकट, शाकन, कच्, जाह, कप्, डाच् आदि ऐसे अनेक तद्विदित प्रत्यय हैं, जिनका सविधान सारस्वत में नहीं आया है। साक्षी, कर्मण, सर्षपतैल्म, अद्यतन, वार्द्धकम्, जनता, अधन्य आदि प्रयोगों की सिद्धि सारस्वत व्याकरण में ठीक हेम के समान उपलब्ध होती है। आनु प्रत्यय का नियमन सारस्वत में केवल हेम व्याकरण के अनुसार नहीं है, बल्कि इसमें पाणिनीय व्याकरण के भी उदाहरण सृष्टीत किये गये हैं।

सक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है कि सारस्वत व्याकरणकार ने हेम से बहुत कुछ ग्रहण किया है। इन्होंने पाणिनि और कातन्त्र से भी बहुत कुछ लिया है, तो भी यह व्याकरण हेम के समान उपयोगी और वैज्ञानिक नहीं बन सका है। हेम ने अपनी मौलिक प्रतिभा के कारण सर्वत्र मौलिकताओं का स्तोत्र किया है। जहाँ उन्होंने पूर्वाचार्यों से ग्रहण भी किया है, वहाँ पर भी ये अपनी नवीनता और मौलिकता को अद्भुत बनाये रखे हैं।

### हेम और बोपदेव—

पाणिन्युत्तरकालीन प्रसिद्ध वैयाकरणों में बोपदेव का नाम आदर के साथ लिया जाता है। इनका समय १३००-१३४० ईस्वी के लगभग माना जाता है। इसका द्वारा रचित 'मुग्धबोध व्याकरण' बहुत प्रसिद्ध है। इस व्याकरण पर १३-१४ टीकाएँ भी उपलब्ध हैं।

मुग्धबोध व्याकरण बहुत जटिल है। इससे क, की, क्, टी, टी, ड, डी, टी, त, ती, त्व, य, थी, द, दा, दी, ध धि धु नि, नी, नु, प आदि प्रायः बीज-गणित के बीजाक्षरों के समान एकाक्षरी सजाएँ आयी हैं। मुग्धबोधकार की सजाएँ अपनी हैं, और इन्होंने इन सजाओं को अन्वयार्थ नहीं माना

इस विषय पर विशेष रूप से भी अनुशासन किया है। इन्होंने पाणिनीय शैली के अनुसार तत्पर्यायों पर विशेष अनुशासन की पद्धति को अन्नाते हुए कुछ प्रयोगों में नैसर्गिक सब तथा पञ्च का अनुशासन किया है। यद्यपि इन्होंने भी दोनों विधानों के त्रि २।३।१४ सूत्र की रचना की है, तो भी हमें ऐसा नहीं लगता है कि हेम ने शक्य होना किया होगा। हेम ने एक ही सूत्र में वही निष्ठा के साथ भ्रातृपुत्रादि एवं कृत्वादि दो रूप मानकर प्रथम में पञ्च एव द्वितीय में सत्त्व वा अनुशासन किया है। इस प्रकार से मालूम होता है कि सारस्वतकार ने पाणिनि की अपेक्षा जहाँ मौलिकता करने की चेष्टा की है वहाँ उनका प्रकरण मत्ते ही छोड़ा हो गया हो, किन्तु उन्हें मिलता ही हाथ लगी है परन्तु हेम ने पाणिनि की अपेक्षा जहाँ कहीं भी नवीनता लाने की चेष्टा की है, वहाँ उनका नूतन आधार प्रयोग का सरल एवं वैज्ञानिक साधन रहा है, इसी कारण हेम का व्याकरण पाणिन्युत्तर-वाचीन समस्त व्याकरण ग्रंथों में मौलिक सिद्ध हुआ है, सारस्वतकार तो पद-पद पर हेम से प्रभावित दिखलायी पते हैं। इन पर जितन श्रुत पाणिनिका है, उतसे कम हेम का नहीं।

हेम ने चारक प्रकरण में 'आमन्त्र्ये' २।३।३० सूत्र द्वारा सम्बोधन में प्रथमा निमित्त का विधान किया है 'सारस्वत करने भी' आमन्त्र्ये च' सूत्र में हेम की बात को दुहराया है। हेम का चारक प्रकरण सर्वज्ञपूर्ण है, पर सारस्वत व्याकरण में यह प्रकरण बहुत ही संक्षिप्त है। व्याख्याओं के रहने पर भी इतने कारणीय ज्ञान पूर्वरूपेण नहीं हो सकता है।

समास प्रकरण में भी हेम की कई बातों को सारस्वत में ग्रहण किया गया है। जिस प्रकार हेम ने अव्ययीभाव के आरम्भ में 'अव्ययम्' ३।१।११ सूत्र को अधिकार सूत्र बताया है, पश्चात् 'निमित्तं चोपर' इत्यादि सूत्र से अव्ययीभाव समास का विधान किया है, उन्ही प्रकार सारस्वत प्रकरण में अव्ययीभाव का प्रकरण आया है। हाँ, एक बात अवश्य ही शतव्य है कि सारस्वत में अव्ययीभाव समास विधायक सूत्र में पाणिनीय व्याकरण का ही अनुसरण किया है, पर उक्त आगेवाला सम्बन्ध हेम के अनुसार है। अतः सारस्वत के समास प्रकरण पर हेम और पाणिनि दोनों पैदाकारों की छाप विद्यमान है। एक दूसरी विशेषता यह भी है कि सारस्वत की अपेक्षा हेम व्याकरण का समास पूर्ण है। सारस्वत में चण्वीहि और तत्पुरुष समास का किञ्चन कम हुआ है।

सारस्वत व्याकरण का तिङन्त प्रकरण हेम के तिङन्त प्रकरण के समान है। हेम की शैली के आधार पर ही अनुसूचित स्वरूप-आचार्य ने भी

वर्तमाना, आशीः, प्रेरणा, अद्यतनी, परोक्षा आदि क्रियावस्थाओं का ही चिह्न किया है और उन्होंने प्रत्यय भी हेम के समान ही बनलाये हैं। धातुरूपों के साजुत्व की प्रक्रिया विन्तुल हेम से मिलती जुलती है तथा धातु प्रकरण का नाम निन्त न रखकर हेम के समान आख्यात रखा है। लकारार्थ निन्पक प्रक्रिया भी सारस्वत की हेम से बहुत कुछ अशों में समता रखती है। कर्म-कर्तृ प्रक्रिया में हेम क कई सूत्रों का व्याख्यात्मक प्रयोग किया गया है। उदाहरण भी हेम के उदाहरणों से प्रायः मिलते-जुलते हैं।

सारस्वत व्याकरण का तद्धित प्रकरण बहुत छोटा है। हेम की तुलना में तो यह प्रकरण शिशु मालूम पड़ता है। इस प्रकरण में हेम की सारस्वत की अपेक्षा लगभग पाँच सौ प्रयोग अधिक हैं। शकट, शकन, कच्, जाह, कच्, डाच आदि ऐसे अनेक तद्धित प्रत्यय हैं, जिनका सविधान सारस्वत में नहीं आया है। साभा, कर्मा, सर्पपतैल्म्, अद्यतन, वार्द्धकम्, जनता, अधन्य आदि प्रयोगों की सिद्धि सारस्वत व्याकरण में ठीक हेम के समान उपलब्ध हाता है। आतु प्रत्यय का निगमन सारस्वत में केवल हेम व्याकरण क अनुसार नहीं है, बल्कि इसमें पाणिनीय व्याकरण क भी उदाहरण सृष्टीत किये गये हैं।

सक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है कि सारस्वत व्याकरणकार ने हेम से बहुत कुछ ग्रहण किया है। इन्होंने पाणिनि और कातन्त्र से भी बहुत कुछ लिया है, तो भी यह व्याकरण हेम के समान उपयोगी और वैज्ञानिक नहीं बन सका है। हेम ने अपनी मौलिक प्रतिभा के कारण सर्वत्र मौलिकताओं का स्फोटन किया है। जहाँ उन्होंने पूर्वाचार्यों से ग्रहण भी किया है, वहाँ पर भी ये अपनी नवीनता और मौलिकता को अक्षुण्ण बनाये रखे हैं।

### हेम और बोपदेव—

पाणिन्युत्तरकालीन प्रसिद्ध वैयाकरणों में बोपदेव का नाम आदर के साथ लिया जाता है। इनका समय १३००-१३४० ईस्वी के लगभग माना जाता है। इसके द्वारा रचित 'मुग्धबोध व्याकरण बहुत प्रसिद्ध है। इस व्याकरण पर १३-१४ टीकाएँ भी उपलब्ध हैं।

मुग्धबोध व्याकरण बहुत जटिल है। इससे क, की, क्, यी, टी, ड, डी, दी, त, ती, त्य, य, थि, द, दा, दी, घ धि धु नि, नी, नु, प आदि प्रायः बीज-रहित के बीज-शरों के समान एकाक्षरी सजाएँ आयी हैं। मुग्धबोधकार का सजाएँ अपनी है, और इन्होंने इन सजाओं को अन्वयार्थ नहीं माना



है। स्वेच्छया समास, कृत्य प्रत्यय, प्रत्यय, अव्ययी भाव, तद्धित प्रत्यय प्रभृते के लिए एकाधरी संज्ञाएँ लिखी हैं। हेम का यह प्रकरण मुग्धबोध से विलुल भिन्न है। सज्ञाओं के लिए वोपदेव जैनेन्द्र व्याकरण क तो कुछ श्रुतों में अवश्य आभारी हैं, पर हेम के नहीं। हेम की संज्ञाएँ वोपदेव की संज्ञाओं से नितान्त भिन्न हैं। शब्दानुशासक की दृष्टि से हेम की संज्ञाएँ बेजोड़ हैं। हेम व्याकरण में जहाँ कुछ श्रुत संज्ञाएँ उपलब्ध होती हैं, वहाँ मुग्धबोध में पूरी एक सौ सत्रह संज्ञाओं का जिक्र है। इन संज्ञाओं की जटिलता ने मुग्धबोध की प्रक्रिया को उलझन पूर्ण बना दिया है।

हेम व्याकरण में अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ लृ आदि क्रम से वर्गमाला को ग्रहण किया गया है, पर मुग्धबोध में प्रत्याहार का क्रम है। अतः प्रत्याहार विचार की दृष्टि से वोपदेव हेम की अपेक्षा पाणिनि के अधिक आभारी हैं। यों तो यह व्याकरण अपने ढंग का है, इनमें दूसरे व्याकरण की शैली का अनुकरण बहुत कम हुआ है फिर भी सन्धि प्रकरण में हेम शाकटायन और पाणिनि इन तीनों शब्दानुशासकों का प्रभाव स्पष्ट दृष्टि-गोचर होता है।

मुग्धबोध में सि और जत् आदि विभक्तियों को हेम के अनुसार ही ग्रहण किया है। रूपसाधनिका भी प्रायः हेम और पाणिनि के समान है।

मुग्धबोध के स्त्री प्रत्यय में आर विधायक ६-७ सूत्र आये हैं। 'त्रियामन्त आर' २४९ वें सूत्र द्वारा सामान्यतया आर का निर्देश किया गया है। हेम ने जिस कार्य को एक सूत्र द्वारा चलाया है, मुग्धबोध में उसी कार्य के लिए कई सूत्र आये हैं। मुग्धबोध में नारी, सखी, यवानी, यवनानी, हिमानी, अरम्यानी, मानवी, पतिवती, अन्तर्वती, पत्नी, मागी, गोपी, नागी, स्थयी, कुण्डी, काली, कुशी, वायुकी, घटी, कक्षरी, आशिल्वी आदि स्त्रीप्रत्ययान्त शब्दों को निपातन द्वारा सिद्ध किया है। हेम व्याकरण में उक्तसमस्त प्रयोगों के लिए साधुत्व प्रक्रिया दिखलायी गयी है। मुग्धबोधकार ने प्रक्रिया का साधव दिखलाने के लिए हेम और पाणिनि से अधिक शब्दों का निपातन किया है। वास्तव में निपातन एक कमजोरी है; जब अनुशासन विधायक नियमन नहीं मिलता तब धक्कर वैयाकरण निपातन का सहारा ग्रहण करते हैं।

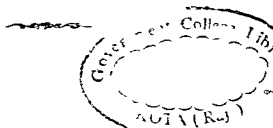
हेम व्याकरण में दीर्घपुच्छी, मणिपुच्छी; उलूकपुच्छी, शरूनसो, चन्द्रदुग्धी, आदि स्त्री प्रत्ययान्त प्रयोगों का साधुत्व दिखलाया गया है, पर मुग्धबोध में उक्त प्रयोगों का अभाव है।

तिङन्त प्रकरण में जिस प्रकार हेम ने निम्न भी अस्त्या विशेष के अनुसार वर्तमाना, अद्यतनी, ह्यस्तनी, आदि विभक्तियों के प्रत्यय बतनाये हैं, उसी

प्रकार मुग्धबोध में की, ली गी, घी, टी, टी डी, टी, ती और थी सदाएँ रखकर हेमोक्त प्रत्ययों का ही निर्देश कर दिया है। घातु रूपों की साधनिका में भी हेम का पर्याप्त अनुकरण किया है। वृद्धन्त प्रकरण के प्रत्ययों में अ, अक्, अन्, अन, अनट्, अनि, अनीय, अन्त, अल्, अस्, आद्य, आष, आयु, इ, इक्, इक्क, इत्र, इष्णु, इस्, उ, उस्, अक्, क, कानि, कि, क्र, केलि, छ, छवत्, छि, छाच्, क्रु, कार, क्यप्, क्तु, क्तुक्, क्तुनिप्, क्तुमु, कि, क्तिप्, स्वरप्, ख, खनट्, खल्, खश्, लि, विशु, लुकज, घ, घन्, पुर, ट्यन्, ट्या, ड, ड्यज्, चाम्, चतुम्, ट, टक्, ड, डर, डु, ण, णक्, णन्, णनट्, णिन्, तक, तिक्, तृन्, थ, थक्, थक्, नड्, नम्, य, र, स, वनिप्, पर, विच्, विट्, विण, श, शत्, शान, पैक, षा, ष्यक्, सक्, स्तु, स्तृ और स्तमान कृत् प्रत्ययों का समावेश किया है। ये सभी प्रत्यय हेम व्याकरण में भी आये हैं तथा साधन प्रक्रिया भी दोनों व्याकरणों में समान है। ऐसा लगता है कि बोपदेव ने कृत् प्रत्ययों के लिए पाणिन से अधिक हेम को अपना आदर्श रखा है।

मुग्धबोध में अ, अयट्, अस्, आ, आल्, आरक्, आलु, आहि, इट्, इत्, इन, इन, इन, इनन्, इय, इर, इल्, इत्र, ईयमु, ईर, उर, उल्, एधुस् एन, कट्, कड्य, का, कल्प, किन्, कुण, गोपुण, गोष्ठ, चक्रत्वत्, चण, चतयाँ, चनरा, चन, चरट्, चराच्, चसात्, चित्, चञ्चु, च्वत्, च्वि, जातीय, जाह, ड, डट्, डतम, डतर, डति, डान्, डिन्, ण, नायत्य, णीन, णीयत्, तम, तयट्, तयट्, तर, तम्, ति, तियट्, तु, तौल, त्य, त्या, च, चाच्, त्व, यन्, याच्, दध्मट्, दा, दानी, देशीय, मट्, मयट्, मात्रट्, ष्येय, ष्णीक्, बल्, विन् एवं रूप आदि तद्धित प्रत्यय आये हैं। मुग्धबोध के इन प्रत्ययों में हेम की अपेक्षा कुछ अधिक प्रत्ययों की संख्या है। मुग्धबोध कार के तद्धित प्रत्ययों की शैली पाणिनि की नहीं है, हेम की है। पाणिनीय तन्त्र में प्रथम एक प्रत्यय करते हैं, पश्चात् उसके स्थान पर दूसरे प्रत्यय का आदेश हो जाता है; किन्तु मुग्धबोध में यह बात नहीं है।

संक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है कि हेम का मुग्धबोध पर प्रभाव है, पर उसकी अन्य शैली हेम से भिन्न है।



## पष्ठ अध्याय

### हेमचन्द्र और जैन वैयाकरण

मुग्ध बोध के रचयिता पं० बोधदेव ने जिन आठ वैयाकरणों का उल्लेख किया है, उनमें इन्द्र, शाक्यपन और जैनेन्द्र भी शामिल हैं कुछ ग्रन्थान् जैनेन्द्र और ऐन्द्र को एक ही व्याकरण मानते हैं। कहा जाता है कि— 'भगवान् महावीर जब आठ वर्ष के थे, उस समय इन्द्र ने शब्द उग्य रुन्दन्वी कुछ प्रश्न उनसे किये और उनके उत्तर रूप यह व्याकरण रचवाया गया, जिन्मे इसका नाम जैनेन्द्र या ऐन्द्र<sup>१</sup> पड़ा।

कल्प सूत्र की किये गये कुछ सुबोधिका टीका में बताया गया है कि भगवान् महावीर को उनके माता पिता ने पाठशाला में गुरु के पास पढ़ने भेजा, जब इन्द्र को यह समाचार श्रात हुआ तो वह स्वर्ग में आया और पण्डित के घर बड़ा भगवान् से, बड़ा गया। उसने भगवान् से 'पण्डित के मन में जो रुन्देह था, उन सब प्रश्नों को पूछा'। अब सब लोग यह सुनने के लिये उल्लसित थे कि—'देखें यह बालक क्या उत्तर देता है, तब भगवान् स्वर्ग ने सब प्रश्नों के उत्तर दिये और उसके पल स्वर्ग यह जैनेन्द्र व्याकरण बना।

हेमचन्द्राचार्य ने अपने योग शास्त्र के प्रथम प्रकाश में लिखा है कि इन्द्र के लिये जो शब्दानुशासन बड़ा गया, उपाध्याय ने उसे सुनकर लोक में 'ऐन्द्र' नाम से प्रकट किया अर्थात् इन्द्र के लिये जो व्याकरण कहा गया, उसका नाम ऐन्द्र हुआ। इन्द्र व्याकरण का उल्लेख शब्दार्थ की टाङ्कन वाली प्रति जो तेरहवीं शताब्दी की लिखी हुई है—ने वर्तमान है अतः जैनेन्द्र व्याकरण से भिन्न कोई व्याकरण ऐन्द्र था, जिसका अनाश प्राचीन काल में ही हो चुका है। संभवतः यह ऐन्द्र व्याकरण जैन रहा होगा।

जैन व्याकरण परम्परा के उल्लेख समस्त व्याकरणों में सबसे प्राचीन शब्दानुशासन देवनाग्नि या पूष्यपाद का जैनेन्द्र व्याकरण है। इसका रचना

१. इन्द्रध्वजः काश्यातन्त्रादिशुली शाक्यपनः । पाणिनिपरजैनेन्द्राः जपनयमै च शान्दिकाः ।

२. आक्षयकम्ब की हारीन्द्रीयवृत्ति पृ० १८० ।

३. मातापितृम्यानन्देषुः प्रारब्धेऽध्याप्नोत्ववे । आः सर्वदत्तस्य शिष्यत्वंमितीन्द्र-  
मनुसादिपतः ॥ ५६ ॥ उपाध्यायान्ने... रतीरितन् ॥ ५७-५८ ॥

काल पाचवीं शताब्दी माना जाता है इस ग्रन्थ के दो सूत्र पाठ उपलब्ध हैं—एक में तीन सहस्र सूत्र हैं और दूसरे में लगभग तीन हजार सात सौ। श्री ५० नाथूराम प्रेमी ने यह निष्कर्ष निकाला है कि देवनाग्नि या पूज्यनाद का बनाया हुआ सूत्रपाठ वही है, जिस पर अभयनन्दि ने अपनी महावृत्त लिखी है।

जैनेन्द्र व्याकरण में पाँच अध्याय हैं, और प्रत्येक अध्याय में चार चार पाद हैं। हेमचन्द्र ने पञ्चाध्यायी रूप जैनेन्द्र का अध्ययन अनश्य किया हागा।

जैनेन्द्र व्याकरण का सबसे पहिला सूत्र 'सिद्धिरनेकान्तात्' १।१।१ है। हेम ने इसी सूत्र को प्रथम अध्याय के प्रथम पाद के द्वितीय सूत्र में "सिद्धिः स्याद्वादात्" १।१।२ रूप में लिखा है। अतः स्पष्ट है कि हेम ने जैनेन्द्र व्याकरण के अनुसार शब्दों की सिद्धि अनेकान्त द्वारा मानी है, क्योंकि शब्द में नित्यत्व, अनित्यत्व, उभयत्व, अनुभयत्व आदि विभिन्न धर्म रहते हैं। इन नाना धर्मों से विशिष्ट धर्मों रूप शब्द की सिद्धि अनेकान्त से ही समझ है। एकान्त सिद्धान्त से अनेक धर्म विशिष्ट शब्दों का साधुत्व नहीं मतलब जा सकता।

जहाँ जैनेन्द्रव्याकरण के रचयिता देवनाग्नि अनेकान्त से ही शब्दों की सिद्धि बतलाकर रुक गये, वहाँ हेम ने एक कदम और आगे बढ़ कर स्याद्वाद के साथ लोक को भी ग्रहण किया। हम ने 'लोकान्' १।१।३ सूत्र की वृत्ति में बनाया है "उत्तातिरिक्ताना क्रियागुणद्रव्यजातिकाललिङ्गस्वाङ्गसंख्यापरिमाणपन्थीषालुगडवर्णादीना सज्ञाना परान्नित्यनिचादन्तरङ्गमन्तरङ्गान्चा नरकाश दलीय इत्यादीना न्यायाना लोकाद् वैयाकरणसमथग्दि प्रामा णिकादेश्च शास्त्रप्रवृत्तये सिद्धिर्भवतीति वेदितव्यम् वर्षसमाभ्रायस्य च" इससे स्पष्ट है कि हेम लोक की उपेक्षा नष्ट करना चाहते हैं, लोक की प्रवृत्ति उन्हें मान्य है। वैयाकरणों के द्वारा प्रतिपादित शब्द साधुत्व को तथा लक्ष प्रसिद्ध पर आश्रित शब्द व्यवहार को भी हेम ने साधुत्व के लिये आधार माना है। शब्दानुशासन की दृष्टि से हेम इस स्थल में जैनेन्द्र से कुछ आगे हैं।

जैनेन्द्रका सज्ञा प्रकरण साकेतिक है। इसमें धातु, प्रत्यय, प्रातिपदिक, विभक्ति, समास, आदि अन्वर्थ महासज्ञाओं के लिये बीज गणित जैसी अतिरुचित सक्त पूर्ण सज्ञाएँ आई हैं। इस व्याकरण में उपसर्ग के लिए 'नि' अन्वय के लिये 'सि', समास के लिए 'स', वृद्धि के लिए 'ऐप्' गुण के लिए 'एप्', सम्प्रसारण के लिये 'जि' प्रथमा विभक्ति के लिए 'वा', द्वितीया के लिये 'रप्', तृतीया विभक्ति के लिये 'मा', चतुर्थी के लिये 'अप' पंचमी के लिये 'का' षष्ठी

शब्द का साधुत्व दोनों ही वैयाकरणों ने निपातन से माना है। विसर्ग सन्धि का जैनेन्द्र में पृथक् रूप से ध्यान है, पर हेम ने रेफ के अन्तर्गत विसर्ग को मान कर व्यञ्जन संधि में ही उसे ग्यान दिया है। यह सत्य है कि हेम की व्यञ्जन-सन्धि में जैनेन्द्र की व्यञ्जन और विसर्ग सन्धि के सभी उदाहरण नहीं आ पाये हैं।

सुबन्त की सिद्धि जैनेन्द्र और हेम में प्रायः समान है। पर दो चार स्थल ऐसे भी हैं जहाँ हेमचन्द्र ने अनुशासन संबंधी विशेषता दिखला दी है। पाणिनि के सामान्य देवन्दी ने भी शब्दों का साधुत्व दिखलाया है। हेमचन्द्र ने अपने यम को बहुत अंशों में उक्त वैयाकरणों के समान रगते हुए भी अपनी मौलिकता प्रदर्शित की है। प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में—पाणिनि और देवन्दी दोनों ने ही 'जस्' के स्थान पर 'शी' आदेश किया है, पर हेम ने सीधे ही जस् के स्थान पर 'रे' आदेश कर दिया है। इसी प्रकार जहाँ देवन्दी ने पठ्य विभक्ति के बहुवचन में सुट और नुट का आगम किया है, वहाँ हेम ने प्रक्रिया लाघव के लिए आम् को ही 'साम्' और 'नाम्' बना दिया है। जैनेन्द्र के समान ही हेम ने दुष्मद् और अरमद् शब्दों के रूपों का निपातन किया है। इदम् से पुल्लिङ्ग में 'अयम्' और स्त्रीलिङ्ग में 'इयम्' रूप बनाने के लिए हेम व्याकरण में "अयमियं पुंल्लिङ्गोः सौ" २।१।२८ सूत्र आया है; किन्तु जैनेन्द्र में पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग रूपों के लिए पृथक् यः सौ, पुंसोदोऽय् ५।१।१६८-१६९ ये दो सूत्र लिखे गये हैं। इस विधान से हेम का जैनेन्द्र की अपेक्षा लाघव सिद्ध होता है।

जैनेन्द्र में जरा शब्द से जरस् बनाने के लिये "जराया वाऽरस्" ५।१।१६० सूत्र द्वारा जरा संबंधी अच् के स्थान पर असडा देय करने का नियमन किया गया है; किन्तु हेम ने सीधे ही जरा के स्थान पर जरस् आदेश कर दिया है और 'एकदेशविकृतस्थानन्वत्वात्' कह कर सीधे ही अतिजरसः, अतिजरस् आदि प्रयोगों का साधुत्व बतला दिया है। इस प्रकार शब्द रूपों की साधनिका में हेम ने प्रायः सर्वत्र ही सारल्य प्रदर्शित करने की चेष्टा की है। हेम की प्रक्रिया में स्पष्टता और वैज्ञानिकता ये दोनों गुण वर्तमान हैं।

स्त्री प्रत्यय प्रकरण में देवन्दी ने पतिवल्नी और अन्तर्वल्नी प्रयोगों की सिद्धि पतिवल्न्यन्तर्वल्न्यौ ३।१।३२ सूत्र द्वारा निपातन से मानी है। हेम ने भी उक्त दोनों रूपों को पतिवल्न्यन्तर्वल्न्यौ भार्यागमिण्योः २।४।५३ सूत्र द्वारा निश्चित अर्थों में निपातन से सिद्ध माना है। अर्थात् हेम ने अविधवा अर्थ में पतिवल्नी शब्द का निपातन और गर्मिणी अर्थ में अन्तर्वल्नी शब्द का निपात-

न स्वीकार किया है। अनुशासक की दृष्टि से हेम का यह अनुशासन निश्चयतः—  
देवनन्दी की अपेक्षा वैज्ञानिक है।

जैनेन्द्र व्याकरण में पत्नी शब्द का साधुत्व निपातन द्वारा माना गया है; पर हेम इसी प्रयोग की सिद्धि प्रक्रिया द्वारा करते हैं। उन्होंने पति शब्द से 'उदाया' २।४।५१ सूत्र द्वारा 'उदा—विवाहिता' के अर्थ में डी प्रत्यय तथा अन्त में 'न्' का विधान कर पत्नी प्रयोग की सिद्धि की है। जैनेन्द्र का 'पत्नी' ३।१।३३ सूत्र पत्नी शब्द का निपातन करता है। अमयनन्दी ने महावृत्ति में पत्नी शब्द का अर्थ 'अस्य पुसः वित्तस्य म्वामिनी' दिया है। महावृत्तिकार की दृष्टि में वित्तम्वामिनी उदा भायां ही हो सकती है, अतः उन्होंने वित्तम्वा-  
मिनी कहकर विवाहिता अर्थ ग्रहण कर लिया है। जैनेन्द्रकार देवनन्दी ने इस पर कुछ भी प्रकाश नहीं डाला है।

व्य अर्थ में 'डी' प्रत्यय विधायक सूत्र दोनों व्याकरणों में एक ही है। अतः  
किशोरी, बधूदी, तरुणी, तलुनी आदि स्त्री प्रत्ययान्त प्रयोगों की सिद्धि दोनों  
वैयाकरणों ने समान रूप से की है।

जैनेन्द्र व्याकरण में नख, मुख आदि खान्तवाले शब्दों से डी प्रत्यय का  
निषेध किया गया है और शूर्पणखा, व्यामणखा आदि प्रयोगों को साधु माना  
है। हेम ने नखमुखादनाम्नि २।४।४० सूत्र द्वारा उक्त शब्दों से वैकल्पिक  
डी प्रत्यय करके शूर्पणखी, शूर्पणखा, चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा आदि प्रयोगों की  
साधनिका उपस्थित की है।

देवनन्दी ने स्त्री प्रत्यय का विधान करते समय सूर्याणी, सूर्या और सूरि के  
लिये कोई नियमन नहीं किया है। पर हेम ने 'सूर्याद्विरतायां वा' २।४।६४  
सूत्र द्वारा देवता अर्थ में विकल्प से डी प्रत्यय का अनुशासन किया है और  
देवता अर्थ में सूर्याणी तथा सूर्या और मानुषी अर्थ में सूरि शब्द का साधुत्व  
दिल्ललाया है। जैनेन्द्र व्याकरण के महावृत्तिकार अमयनन्दी ने अपनी टीका में  
'तेन सूर्याद्विरतायां डी न भवति' लिखकर 'सूर्यस्य भायां सूर्या' रूप बतलाया  
है और देवता भिन्न अर्थ में 'सूर्यो नाम मनुष्यः तस्य सूर्यीति' निर्देश किया  
है। अतः स्पष्ट है कि हेम का यह वैकल्पिक डी विधान बिल्कुल नया है, जिसका  
विक्रम तो देवनन्दी ने किया है और न अमयनन्दी ने।

देवनन्दी ने मनुकी स्त्री मनावी और मनायी प्रयोगों के साधुत्व के लिए  
'मनोरी च' ३।१।४२ सूत्र लिखा है। हेम ने इन्हीं प्रयोगों के लिये 'मनोरी चवा'  
२।४।६१ सूत्र लिखा है। जैनेन्द्र और हेम के उक्त दोनों सूत्रों में केवल 'वा' का  
अन्तर है। अर्थात् हेम ने वैकल्पिक डी का विधान कर मनुशब्द का साधुत्व भी  
इसी सूत्र द्वारा कर लिया है। जैनेन्द्र के महावृत्तिकार ने 'विपाञ्चिन्मनुरित्यपि'

लिखकर बिना किसी अनुशासन के मनुः शब्द का साधुत्व मान लिया है। अतः हेम ने जैनेन्द्र का उक्त सूत्र प्रहण कर भी एक नयी बात रूढ़ दी है, जिनसे हेम की मौलिकता सिद्ध होती है।

जैनेन्द्र व्याकरण में 'कारके' १।२।१०९ को अधिकार सूत्र मान कर कारक प्रकरण का अनुशासन किया है। देवन्दरी ने पदानी निमित्त का अनुशासन स्व से पहले आरंभ किया है। पश्चात् चतुर्थी, तृतीया, क्तनी, द्वितीया और पञ्ची निमित्त का नियमन किया है। उनका यह कारक प्रकरण बहुत संक्षिप्त है। हेम ने कारक प्रकरण को सभी दृष्टियों से पूर्ण बनाने की चेष्टा की है। चतुर्थी का नाना अर्थों में निधान करने वाले विशेष सूत्र जैनेन्द्र में नहीं आये। इसी प्रकार मैत्राय शृवाद्यते, हुते, तिष्ठते, शनते, पाद्याय प्रजति, न त्वा वृत्ताय वृत्नं वा मन्ये आदि प्रयोग जैनेन्द्र की अपेक्षा हेम में अधिक हैं। हेम के कारक प्रकरण की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि हेम ने आरम्भ में ही कारक की परिभाषा दी है तथा कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, असादान और अधिकरण इन छहों कारकों की परिभाषाएँ भी दी हैं। स्त्रीकरण और परिभाषा की दृष्टि से हेम इस विभक्त्यर्थ प्रकरण में जैनेन्द्र से अग्रसर आगे हैं। महावृत्तिकार ने जो परिभाषाएँ टीका के बीच में उद्धृत की हैं, हेम ने उन समस्त परिभाषाओं का उपयोग किया है।

जैनेन्द्र में समास प्रकरण प्रथम अध्याय के तीसरे पाद में आया है। इस प्रकरण में सबसे पहले 'सनर्थः पदविधिः' १।३।१ सूत्र द्वारा परिभाषा उपस्थित की गई है। सामान्यतया समास विधायक सूत्र 'सुप सुग' १।३।३ है। हेमने 'नाम नाम्नैकार्थे समासो बहुवचः' सूत्र द्वारा स्वादियों का स्वादियों के साथ समास किया है। जैनेन्द्र में 'हः' १।३।४ को अव्ययीभाव का अधिकार सूत्र मानकर 'सि निमित्तकल्प्यात्...इत्यादि १।३।५ द्वारा निमित्त, अन्वय, श्रुद्धि, अर्थोभाव, अति, वि असंप्रति, प्रते, व्यद्धि, शब्दप्रभव, पश्चात्, यथा आनुपूर्व, यौगन्ध, सम्भत्, साकल्प और अन्तोक्ति इन सोलह अर्थों में अव्ययीभाव समास का संविधान किया है। हेम ने भी—'अव्ययम्' ३।१।२१ को अधिकार सूत्र बताकर विभक्ति समीप समृद्धिव्युद्धयर्था भावात्ययाऽसंप्रति पञ्चान् क्रमस्याति युगपत् सटक् सम्प्रत्ताकल्यान्तेऽव्ययम् ३।१।३९ सूत्र से उच्चारणों में अव्ययीभाव की व्यवस्था की है।

जैनेन्द्र व्याकरण में 'स्वामाविद्धत्वादमिगानस्वैकरोपानारम्भः' १।१।१०० सूत्र द्वारा बताया गया है कि शब्द स्वभाव ने ही एक शेष की अपेक्षा न कर

एकत्व, द्वित्व और बहुत्व में प्रवृत्त होते हैं अतः एक शेष मानना निरर्थक है। पर हेमचन्द्र ने 'समानामर्थे नैकः शेषः ३१।१२८ में एक शेष का उल्लेख किया है। हेम का समानान्त प्रकरण भी जैनेन्द्र की अपेक्षा विस्तृत है। हेम ने अम्, सुञ्जुक् और ह्रस्व का विधान ही प्रमुख रूप में किया है यद्यपि जैनेन्द्र में भी उक्त प्रकरण है, पर हेम में ये प्रकरण अधिक विस्तृत हैं।

तिङन्त प्रकरण पर विचार करने से अवगत होता है कि जैनेन्द्र में पाणिनि की तरह नव लकारों का विधान है। हेम ने लकारों के स्थान पर क्रिया की अवस्था द्योतक ह्यस्तनी, श्रस्तनी, वर्त्तमाना, पञ्चमी आदि विभक्तियों को रखा है। तिङन्त प्रकरण में हेम को शैली जैनेन्द्र से विलम्ब मित्र है।

देवन्दी ने 'लस्य' सूत्र द्वारा लकार का अधिकार माना है और दश लकारों जैसे लोट् को छोड़ शेष नव लकारों को ही ग्रहण किया है। इनमें पाच लकार द्वित्वरुक् और अन्तिम चार द्वित्वरुक् हैं। उनके यहाँ सर्वप्रथम घातु से लकार होता है, पश्चात् लकार के स्थान पर 'मिन् वष्, नत्, सिप्, यष्, थ, तिप्, तत्, लि ये प्रत्यय परस्मैनेदियों में और इड्, बहि, महि, यास, आयात्, ध्वन्, त, आताम्, इड् ये प्रत्यय आत्मनेनेदियों में होते हैं। पश्चात् भिन्न भिन्न लकारों में भिन्न भिन्न प्रकार के आदेश किये जाते हैं। जैने लट् लकार में आत्मनेनेदी घातुओं में रुचिद्ध करने के लिये टिप् लकारों में आकार को एत्वं किया गया है और मध्यमपुरुष एक वचन में थात् के स्थान पर २।४।६६ सूत्र द्वारा स आदेश किया है। णिट् लकार में मिप् वत् मत् आदि नव प्रत्ययों के स्थान पर णत्, व म, या, थुत्, भात्, णत्, अटुत्, उत् इन नव प्रत्ययों का आदेश किया है। लोट् लकार में २।४।७३ द्वारा इकार के स्थान पर उकार, सि के स्थान पर 'हि' और मि के स्थान पर 'नि 'हो' जाता है। इसी तरह सभी लकारों के प्रत्ययों में विशेष-विशेष आदेश किये हैं।

हेम की प्रक्रिया देवन्दी की प्रक्रिया से विरतीत है। उन्होंने वर्त्तमाना ( लट् लकार ) में तिप्, तम्, अन्ति, सिप्, यष्, यनि, व्, वत्, मत्, ते, आते, अन्ते, से, आपे, ध्वे, ए, वहे, महे प्रत्यय किये हैं। परोक्षा ( लिट् लकार ) के प्रत्ययों में णत्, अतुत्, उत्, थत्, अथुत्, अ, णत्, व, म, ए, आते, इरे, ये, आपे, ध्वे, ए, वहे, महे, प्रत्ययों की गणना की है। पञ्चमी ( लोट् लकार ) में तुप्, तां, अन्तु, हि, तं त, आनिप्, आवव, आमव्, ता, आना, अन्तां, स्व, आया, ध्वं, ऐव, आवह्वेव, आमह्वेव इन प्रत्ययों का विधान किया है, इसी प्रकार ह्यस्तनी, अयतनी, श्रस्तनी आदि विभक्तियों में पृथक् पृथक् प्रत्ययों का विधान किया है इन प्रत्ययों के विधान से हेम उस



आदेश वाली गौरव पूर्ण प्रक्रिया से बच गये हैं। जिस प्रकार जैनेन्द्र में पहिले घातु से लकार का विधान होता है पश्चात् मिन्, वस्, मस् आदि प्रत्यय किये जाते हैं, तत्पश्चात् इन प्रत्ययों के स्थान पर विभिन्न लकारों में विशेष विशेष आदेश किये जाते हैं, उस प्रकार हेम ने आदेश न कर, आदेश-निष्पन्न प्रत्ययों को ही गणना कर दी है। अतः हेम गौरवपूर्ण उक्त बोद्धि प्रक्रिया से मुक्त हैं। इस तद्विन्त प्रकरण में हेम ने जैनेन्द्र की अपेक्षा प्रायः सर्वत्र लाघवपूर्ण सरल प्रक्रिया उपाख्यत की है। यद्यपि यह सत्य है कि हेम ने जैनेन्द्र से बहुत कुछ ग्रहण किया है, पर उस ग्रहण को ज्यों के त्यों रूप में नहीं रखा है। उसमें अपनी मौलिक प्रतिभा का योगकर उसे नया और विशिष्ट बना दिया है।

तद्विन्त प्रकरण जैनेन्द्र व्याकरण में पर्याप्त विस्तार के साथ आया है। हेम ने भी इस प्रकरण का निरूपण छोटे और सातवें दोनों अध्यायों में किया है। जैनेन्द्र की तद्विन्त प्रक्रिया प्रणाली में पण्, टण्, टण्, छ, ष आदि प्रत्ययों का विधान निश्चिन्त है; पश्चात् पण के स्थान में आदन्, टण् के स्थान पर एय, टण् के स्थान पर इक्, छ के स्थान पर ईय आदेश करके तद्विन्तान्त प्रयोगों की सिद्धि की है। पर हेम ने 'पहले प्रत्यय कुछ किया और अनन्तर उसके स्थान पर कुछ आदेश कर दिया' यह प्रक्रिया नहीं अपनायी है। अतः जहाँ जैनेन्द्र में टण् प्रत्यय किया गया है, वहाँ हेम ने एयण्; जहाँ जैनेन्द्र ने टण् प्रत्यय किया गया है वहाँ हेम ने इक्ण् और जहाँ जैनेन्द्र में छ प्रत्यय का विधान है, वहाँ हेम ने ईय प्रत्यय किया है। इस प्रकार हेम की प्रक्रिया अधिक सरल और स्पष्ट है।

हेम ने तद्विन्त प्रकरण में जैनेन्द्र के कुछ सूत्रों को ज्यों का त्यों अपना लिया है; किन्तु उन सूत्रों के अर्थ में इन्होंने विस्तार किया है। जैसे 'कुलयाया वा' ६।१।७८ सूत्र जैनेन्द्र का ३।१।११६ है। हेम ने कुलया शब्द से अपत्यार्थ में एयण प्रत्यय का संविधान करते हुए इस शब्द के अन्त में इन् के संयोग का भी निर्देश किया है। जब कि जैनेन्द्र में इस सूत्र द्वारा वैकल्पिक रूप में केवल इनवादेश किया है और 'स्त्रीभ्यो टण्' ३।१।१०९ टण् प्रत्यय का अनुशासन किया गया है, पश्चात् टण् के स्थान पर एय आदेश कर कौलयेयः, कौलयेयः आदि तद्विन्तान्तरूपों की सिद्धि की है। अतः स्पष्ट है कि हेम ने जिस सूत्र को ज्यों का त्यों अपनाया भी है तो भी उसमें अपनी प्रतिभा को उड़ेल दिया है। जैनेन्द्र में पीला शब्द से अपत्यार्थ में वैकल्पिक अण् कर पैलः और पैलेयः रूपों का सातुत्व बतलाया है; वहाँ हेम ने पीला के साथ साल्वा और मद्रूका को भी ग्रहण किया है, तथा इन तीनों शब्दों से वैकल्पिक अण्

विधान कर पैल, पैलेय, साल्व, साल्वेय, माण्डूक, माण्डूकिः आदि शब्दों की सातुत्व प्रक्रिया लिखी है। जैनेन्द्र में साल्वेयगान्धारिम्यान् ३।१।१५१ में साल्वा और गान्धारी शब्द से टण् प्रत्यय करके साल्वेय आदि रूप बनाये हैं, किन्तु साल्वः प्रयोगका निर्देश नहीं किया है।

गोधा' शब्द से अस्त्वार्थ में जैनेन्द्रकार ने णार और टण् प्रत्यय करके गौमार. और गोधेरः प्रयोगों की सिद्धि की है; किन्तु हेम ने गोधा शब्द से टुष् अस्त्वार्थ में णार और एरण प्रत्यय का विधान किया है। हेम ने इस प्रकरण में जैनेन्द्र के अनेक सूत्र और भावों को ग्रहण किया है।

कृतप्रत्ययों का अनुशासन हेम ने पाचवें अध्याय में किया है। जैनेन्द्र में ये प्रत्यय जहाँ तहाँ विद्यमान हैं। 'षोड्शी' २।१।२२ सूत्र का कृतप्रत्ययों का अधिकारीय सूत्र माना है और तव्य, अनीय आदि प्रत्ययों का विधान किया है। इस प्रकरण के अन्तर्गत यत्, क्यन्, षुल, तृच्, अच्, अन्, गिन्, क, उ, ष, ण, निक्, क्ति, अण्, शतृ, शानच्, क्वा, आमु, यु, य आदि प्रत्ययों का जैनेन्द्र में अनुशासन विद्यमान है। हेम के यहाँ एबुल के स्थान पर अक् और ल्युट् के स्थान पर अन् प्रत्यय का संविधान है। अतः हेम व्याकरण का कृतप्रकरण जैनेन्द्र के समान होते हुए भी विशिष्ट है।

### हेमचन्द्राचार्य और शाकटायनाचार्य

यह सत्य है कि हेमचन्द्र के व्याकरण के ऊपर शाकटायन व्याकरण का सर्वाधिक प्रभाव है। सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण की रचना में पाणिनि, कातन्त्र, जैनेन्द्र, शाकटायन और सरस्वती कण्ठाभरण का आचार ग्रहण किया है। यतः उक्त व्याकरण ग्रन्थों के कतिपय सूत्र तो ज्यों के त्यों हेम में उपलब्ध हैं और कतिपय सूत्र कुछ परिवर्तन के साथ मिलते हैं।

हेम के सिद्ध हेम शब्दानुशासन की शैली उक्त समस्त व्याकरणों की मिश्रित शैली का प्रतिबिम्ब है, पर यह ऐसा प्रतिबिम्ब है, जो दिग्द के अभाव में भी अपना प्रकाश विन्व की अपेक्षा कई गुना अधिक रखता है। हेम व्याकरण के अध्ययन में ऐसा लगता है कि हेम ने अपने समय में उपलब्ध समस्त व्याकरण वाङ्मय का आलोडन-विलोडन कर सनुद्-मन्यन के अनन्तर प्राप्त हुए रत्नों के समान तत्त्व प्रदृष्ट कर अपने शब्दानुशासन की रचना की। इसी कारण हेम वशाकरण में वे श्रुतियाँ नहीं आने पायी हैं, जो उपर्युक्त वैयाकरणों के पृथक् पृथक् ग्रन्थों में यत्किञ्चित् रूप में विद्यमान हैं। हेम ने शक्ति भर अपने शब्दानुशासन को सर्वज्ञ पूर्ण बनाने का प्रयास किया है।

शाकटायन व्याकरण की शैली और भाव को हेम ने एकाध जगह तो ज्यों के त्यों रूप में ग्रहण कर लिया है। उदाहरण के लिये 'पारेमध्ये पष्ट्यावा' ( पाणिनि ), 'पारेमध्ये पष्ट्यावा' ( जैनेन्द्र ) और 'पारे मध्येऽन्तः पष्ट्यावा' ( शाकटायन ) का सूत्र है। हेम ने उक्त सूत्र के स्थान पर 'पारे मध्येऽन्तेऽन्तः पष्ट्या वा' सूत्र लिखा। उपर्युक्त प्रसिद्ध वैयाकरणों के सूत्र की हेम के सूत्र के साथ तुलना करने पर अद्वयता होता है कि हेम ने शाकटायन का सर्वाधिक अनुकरण किया है। आदरणीय प्रोफेसर पाठक ने "Jain Shakatayan-contemporary with Amoghvars शीर्षक निबन्ध में हेम के उपर शाकटायन का सर्वाधिक प्रभाव सिद्ध किया है।

शाकटायन के "न नृ पूजार्थध्वजचित्रे" ३।३।३४ सूत्र पर "नरि मनुष्ये पूजार्थे ध्वजे चित्रे चित्रकर्मणि चाभिधेये कः प्रत्ययो न भवति । संज्ञा प्रतिकृत्योरिति यथासम्भ्र प्राप्तः नरि चञ्चासदृशः । चञ्चामनुष्यः यद्रिका, करकुटी, दासी । पूजार्थे—अर्हन् शिवः स्कन्दः । पूजार्थाः प्रतिकृतयः उच्यन्ते । ध्वजे गरुडः । सिंहः । तालः । ध्वजः । चित्रे दुर्योधनः । भीमसेनः । चिन्तामणि लघुवृत्ति लिखी गई है।

हेमचन्द्र ने 'न नृ पूजार्थ ध्वज चित्रे' ७।१।१०९ सूत्र पर अपनी बृहद् वृत्ति में लिखा है नरि मनुष्ये पूजार्थे ध्वजे चित्रे च चित्रकर्मणि अभिधेये कः प्रत्ययो न भवति । तत्र सोऽयमित्येवाभिसम्बन्धः । संज्ञाप्रतिकृत्योरिति यथासम्भ्र प्राप्ते प्रतिषेधोऽयम् । नृ चञ्चा कृष्णमयः पुरुषः । य क्षेत्र रक्षणाय क्रियते । चञ्चातुल्यतुरुपः चञ्चा । एव बट्टिनका । करकुटी । पूजार्थे अर्हन् । शिवः स्कन्दः पूजार्थाः प्रतिकृतय उच्यन्ते । ध्वजे गरुडः सिंहः तालो ध्वज । चित्रे दुर्योधन भीमसेनः ।

उपर्युक्त शाकटायन के उद्धरण के साथ हेम के उद्धरण की तुलना करने से ऐसा मालूम पड़ेगा कि हेम ने शाकटायन की प्रतिलिपि ग्रहण की है। पर सूक्ष्म दृष्टि से ऊहापोहपूर्वक विचार करने में यह ज्ञात होता है कि हेम में शाकटायन की अपेक्षा पद पद पर नवीनता और मौलिकता विद्यमान है। यद्यपि इस सत्य से कोई इन्कार नहीं कर सकता है कि हेम ने शाकटायन व्याकरण से बहुत कुछ ग्रहण किया है, तो भी प्रक्रिया और प्रयोग साधना की दृष्टि से हेम अवश्य ही शाकटायन से आगे है। हेम ने अपने समय में प्रचलित समस्त व्याकरणों का अध्ययन अवश्य किया है और विशेषतः पाणिनि,

कातन्त्र, जैनेन्द्र और शाकटायन का खूब मन्थन किया है, इसी कारण हेम पर जैनेन्द्र और शाकटायन व्याकरणों का प्रभाव इतना अधिक है कि जिससे साधारण पाठक को यह भ्रम हो जाता है कि हेम ने शाकटायन की प्रति लिपि कर ली है। हमारा तो यह दृष्ट विश्वास है कि हेम ने जहाँ भी पाणिनि, कातन्त्र, जैनेन्द्र या शाकटायन का अनुसरण किया है, वहाँ अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है। उदाहरण में आये हुए प्रयोगों में भी एक नहीं अनेक नये प्रयोग आये हैं तथा प्रक्रिया लाजव भी अपने ढंग का है।

शाकटायन व्याकरण ने प्रत्याहार सूत्रों को अपनाया है। इस व्याकरण में 'तत्रादौ शास्त्रे सव्यवहारार्थं सहासप्रह कथ्यते' लिखकर 'अइउण्, श्रृक्, एओङ्, ऐऔञ्, ह्यवरलण्, अमङ्गणनम्, चन्नाडदश्, श्मघटधप्, ख ञ छ ट थ ट्, चटतव्, कपन्, श ष स अ व्य <क> पर और हल इन तेरह प्रत्याहार सूत्रों का निरूपण किया है। यहाँ एक विशेषता यह है कि शाकटायन में प्रत्याहार सूत्रों का समूह पाणिनि जैसा ही नहीं है, बल्कि उनके सूत्रों में संशोधन और परिवर्द्धन किया है। उदाहरणार्थ शाकटायन में लृकार स्वर का माना ही नहीं गया है। इसी तरह अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय और उपध्मानीय की गणना व्यञ्जनो के अन्तर्गत कर ली गयी है। पाणिनि ने अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय और उपध्मानीय को विद्वृत व्यञ्जन माना है। वास्तव में अनुस्वार मकार या नकार जन्य है, विसर्ग कहीं सकार से और कहीं रेफ से स्वतः उत्पन्न होता है, जिह्वामूलीय और उपध्मानीय दोनों क्रमशः 'क, ख' तथा 'घ, ङ' के पूर्व विसर्ग के ही विद्वृत रूप हैं। पाणिनि ने इन सभी अक्षरों का अपने प्रत्याहार सूत्रों में—जो उनकी वर्णमाला कही जायगी स्वतंत्र रूप से कोई स्थान नहीं दिया। बाद के पाणिनीय वैयाकरणों में से कात्यायन ने उक्त चारों को स्वर और व्यञ्जन दोनों में ही परिगणित करने का निर्देश किया। शाकटायन व्याकरण में अनुस्वार विसर्ग आदि के मूल रूपों को ध्यान में रखकर ही उन्हें प्रत्याहार सूत्रों में रखकर उनके व्यञ्जन होने की घोषणा कर दी गई है।

शाकटायन व्याकरण के प्रत्याहार सूत्रों की दूसरी विशेषता यह है, कि इसमें लृग सूत्र को स्थान नहीं दिया है और लृगों को पूर्व सूत्र में ही रख दिया गया है। इसमें सभी वर्णों के प्रथमादि अक्षरों के क्रम से अलग अलग प्रत्याहार सूत्र दिये गये हैं। केवल वर्णों के प्रथम वर्णों के ग्रहण के लिये दो सूत्र हैं। 'पाणिनीयवर्णसमान्नाय' की भाँति शाकटायन व्याकरण में भी हकार दो बार आया है। पाणिनीय व्याकरण में ४१, ४३, या ४४ प्रत्याहार सूत्रों की उपलब्धि होती है, किन्तु शाकटायन में सिर्फ ३८ प्रत्याहार ही उपलब्ध हैं।

शाकटायन व्याकरण में सामान्य संज्ञाएं बहुत थल्य हैं। इत्संज्ञा और स्त्र (सर्ग) संज्ञा करने वाले, वस ये दो ही संज्ञाविधायक सूत्र हैं और इस व्याकरण में अवशेष दो सूत्र ग्राहक सूत्र बड़े धायेंगे। ग्राहकसूत्रों में प्रथम सूत्र यह है जो स्त्र (व्यञ्जन भी) से उसके जातीय दीर्घादि वर्गों का बोध कराता है और दूसरा प्रत्याहार बोधक 'सात्मेतत्' १।१।१ सूत्र है यहां प्रत्याहारबोधक सूत्र इतना अस्पष्ट है कि इससे आत्मा दत्तो की जान पड़ती है। यदि उसके शब्दों के अनुसार समझना हो वा उसके पूर्व पाणिनि का "आदि-रन्त्येन सहेता" सूत्र अन्वय कर लेना पड़ेगा।

शाकटायन में लृट्वां को ग्रहण नहीं किया है, किन्तु शाकटायन के टीकाकारों ने "श्रुत्वां ग्रहणे लृट्वां स्वापि ग्रहणं भवति.....श्रुत्वांपोरेकान्" द्वारा लृट्वां के ग्रहण को सिद्धि की है।

यह स्पष्ट है कि शाकटायन व्याकरण में संज्ञा सूत्रों की बहुत कमी है। शाकटायनकार ने कारिकाओं में भी व्याकरण के प्रमुख सिद्धान्तों का सन्निवेश किया है। इस व्याकरण के संज्ञा प्रकरण में कुल छः सूत्र हैं—उन में भी दो ही सूत्र ऐसे हैं; जो संज्ञा विधायक बड़े जा सकते हैं।

हेम और शाकटायन व्याकरण के संज्ञा प्रकरण की तुलना करने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि हेम का संज्ञा प्रकरण शाकटायन की अपेक्षा पुष्ट और सर्वोद्गमपूर्ण है। हेम प्रत्याहार के झमेले में नहीं पड़े हैं। इन्होंने वर्णमाला का सीधा क्रम स्वीकार किया और स्वर तथा व्यञ्जनों का विचार एवं उनकी संज्ञाओं का प्रतिपादन शाकटायन से अच्छा किया है। हेम की संज्ञाएं शाकटायन की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक और व्यावहारिक हैं, अतः यह निश्चय है कि हेम संज्ञा प्रकरण के लिए शाकटायन के क्लिष्ट आभारी नहीं हैं। इन्होंने पूर्वाचार्यों से जो भी ग्रहण किया है, उसे अपनी प्रतिमा के सचि में ढालकर मौलिक बना दिया है।

शाकटायन में 'न' १।१।७० सूत्र के द्वारा विताम में सन्धि कार्य का निषेध करते हुए अद्विताम में सन्धि का विधान मानकर...सूत्र को अधिकार सूत्र बताया है। अत्र सन्धि के आरम्भ में सबसे पहिले अयादि सन्धि का विधान एक ही एचोऽव्ययवायात् १।१।६९ सूत्र द्वारा कर दिया है। पश्चात् अन्वे १।१।७२ द्वारा यण सन्धि का निरूपण किया है। हेम ने भी अन्वे शब्दानुशासन में उक्त दोनों सन्धियों का विधान शाकटायन जैसा ही किया है। हा, अयादि सन्धि के लिये जहां शाकटायन में एक ही सूत्र है वहां हेम ने दो सूत्रों द्वारा

उक्त सन्धि काय का अनुशासन किया है। क्रम में अन्तर है। हेम ने सर्व-प्रथम दीर्घ सन्धि का अनुशासन किया है, तत्पश्चात् गुण, वृद्धि, यण और अयादि सन्धियों यण सन्धि के विधान के प्रसंग में शाकटायन में 'ह्रस्वो वाऽपदे' १।१।७४ सूत्र ह इसके द्वारा दधि अत्र, दध्यत्र; नदि एपा, नद्येपा; मधु अपनय, मध्वानय आदि सन्धि प्रयोगों की सिद्धि की है। इस सूत्र द्वारा वैकल्पिक रूप ने ङको—ई ऊ का ह्रस्व किया गया है। हेम ने भी 'ह्रस्वोऽपदे वा' १।२.२२ सूत्र ज्यों का त्यों शाकटायन का ग्रहण कर लिया है और इसके द्वारा ईवादि को असमान सशक वर्ण परे रहने पर ह्रस्व होने का नियमन किया है। यह हेम का अनुकरण मात्र ही नहीं कहा जायगा, वल्कि ज्यों के त्यों रूप में ग्रहण करने की बात स्वीकार की जायगी, अच् सन्धि प्रकरण के शाकटायन के १।१।२५, १।१।२६, १।१।२७, १।१।२७ सूत्र हेम के स्वरसन्धि प्रकरण में १।२।१५ १।२।१८, १।२।१७ और १।२।२० में ज्यों के त्यों उपलब्ध हैं। तुलनान्मक दृष्टि से विचार करने पर ऐसा लगता है कि हेम स्वर सन्धि के लिए जैनेन्द्र और पाणिनि की अपेक्षा शाकटायन के अधिक श्रेणी हैं।

प्रकृति भाव प्रकरण को शाकटायन ने निषेध सन्धि प्रकरण कहा है। हेम ने इसे असन्धि प्रकरण कह दिया है। अतः उक्त नामकरण के लिये भी हेम के ऊपर शाकटायन का श्रेण स्वीकार करना पड़ेगा। हेम व्याकरण में असन्धि प्रकरण ११ सूत्रों में वर्णित है, जब कि शाकटायन में यह प्रकरण केवल चार सूत्रों में आया है। पर यह स्पष्ट है कि—शाकटायन के उक्त चार सूत्रों में से तीन सूत्रों को हेम ने थोड़े से फेर फार के साथ ग्रहण का लिया है। जैसे शाकटायन के 'नष्तुत्स्यानितौ' १।१।९६ को 'स्तुतो नितौ' १।२।३२ में 'चादेरचोऽनाड्' १।१।१०१ को 'चादिः स्वरोऽनाड्' १।२।३६ में और आतः' १।१।१०२ को 'ओदन्त' १।२।३७ में ग्रहण किया है।

शाकटायन में स्वर सन्धि के अन्तर्गत द्वित्व सन्धि को भी रखा गया है। और इसका अनुशासन ९ सूत्रों में किया गया है किन्तु हेम व्याकरण में व्यञ्जन सन्धि में ही उक्त प्रकरण के लिये बारह सूत्र आये हैं। शाकटायन में जिस कार्य के लिये दो सूत्र हैं हेम ने उस कार्य को एक ही सूत्र में कर दिखाया है। जैसे शाकटायन में छकार के द्वित्व विधान के लिये 'दीर्घाच्छा वा' १।१।२२४ और 'अजाह्नाड्' १।१।१२६ ये दो सूत्र आये हैं, पर हेम ने इन दोनों को 'अनाड्माडो दीर्घाच्छ' १।१।२२ सूत्र में ही समेट लिया। द्वित्व प्रकरण का अनुशासन हेम का शाकटायन की अपेक्षा विस्तृत और उपयोगी है।

शाकटायन में जिमे हल् सन्धि कहा गया है, हेम ने उसे व्यञ्जन सन्धि माना है। शाकटायन में क्लों का जश् होने का विधान किया है, पर हेम ने

इसके लिये सीधे ही पदान्त पञ्चम के परे वर्ग के तृतीय वर्ण को पञ्चम होने का अनुशासन किया है। हेम ने प्रत्यय के परे होने पर तृतीय वर्ण के लिये नित्य ही पञ्चम होने का विधान 'प्रत्यये च' १।३।२ सूत्र द्वारा किया है। यही अनुशासन शाकटायन में 'प्रत्यये' १।१।१०७ द्वारा किया गया है। दोनों व्याकरणों में एक ही सूत्र है। हेम ने उक्त सूत्र में केवल 'च' शब्द अधिक जोड़ दिया है, जिसकी साधकता वृत्ति में 'चकार उत्तरत्र विकल्पानुवृत्त्यर्थ' अर्थात् चकार यहाँ इस बात को बतलाने के लिये आया है कि आगे भी विकल्प से अनुशासन होगा, यद्यपि इस सूत्र के पहले भी वैकल्पिक कार्य विधान किया गया है और इसके आगे का अनुशासन कार्य भी वैकल्पिक ही है। यही सूत्र नित्य विधान करता है, अतः इसमें चकार का रखना अत्यावश्यक या अन्यथा आगे का कार्य भी नित्य माना जाता।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हेम ने शाकटायन का सूत्र ग्रहण कर भी उसमें एक चकारमात्र के योग से ही अद्भुत चमत्कार उत्पन्न कर दिया है, जिसकी आवश्यकता एक कुशल वैयाकरण के लिये थी।

सम्राट् शब्द की सिद्धि शाकटायन और हेम दोनों ने ही समान रूप से की है तथा दोनों का सूत्र भी एक ही है। परन्तु समान सूत्र और समानकार्य होने पर भी विशेषता यह है कि जहाँ शाकटायन की वृत्ति में 'समोमकारो निपात्यते क्विबन्ते राजिपरे' कहा गया है, वहाँ हेम ने 'भमो मकारम्य राजतौ क्विबन्ते परेऽनुस्वाराभावो निपात्यते' लिखा है। अर्थात् हेम ने पूर्व से चले आए हुए अनुस्वार प्रकरण का बाध कर मकार का अस्तित्व निपातनात् माना है, वहाँ शाकटायन ने मकार को निपातन से ही ग्रहण कर लिया है। यद्यपि शाकटायन में भी इस सूत्र के पूर्व वैकल्पिक अनुस्वार का अनुशासन विद्यमान है, पर उन्होंने उसके अभाव का जिक्र नहीं किया है। हमें ऐसा लगता है कि निपातन कह देने से ही शाकटायन ने इसलिये सतोष कर लिया क्योंकि निपातन का अर्थ ही है, 'अन्य विकार्य स्थितियों का अभाव'। उन्हें अनुस्वाराभाव कहने की आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई और न उनके टीकाकारों ने ही इसकी आवश्यकता समझी। हेम ने मात्र स्पष्टीकरण के लिए अनुस्वाराभाव का जिक्र कर दिया है।

हलसन्धि में हेम ने शाकटायन के 'उद ह्यास्तम्म' १।१।१३४ 'न शात्' १।१।१३९ 'ल्लि' १।१।१४२ सूत्रों को क्रमशः १।३।४४, १।३।६२ में ज्यों का त्यों रख दिया है। केवल 'ल्लि' के स्थान में 'ल्लि लौ' पाठ कर दिया है। हेम व्याकरण में विसर्जनीय सन्धि का अभाव है, इसका अन्तर्भाव व्यञ्जन-

सन्धि में ही कर लिया है। इस सन्धि में आये हुए शाकटायन के सूत्रों का हेम ने उपयोग नहीं किया है। हेम की विवेचन-प्रक्रिया अपने ढंग की है। जहाँ तक हमारा ख्याल है कि रेफ और सकारजन्य विसर्गसन्धि के विकार को वृज्जन म परिगणित करना हेम की अपनी निजी विशेषता है। इससे इन्होंने लाभ तो लिया ही, साथ ही अनावश्यक विस्तार से भी अपने को बचा लिया है।

शब्द साधुत्व की प्रक्रिया में हेम और शाकटायन इन दोनों ने दो दृष्टि कृण अग्रनाये हैं। शाकटायन ने एक एक शब्द को लेकर उसका सभी विभक्तियों में साधुत्व प्रदर्शित किया है। पर हेम ने ऐसा नहीं किया। हेम ने सामान्य विशेषभाव में सूत्रों का ग्रन्थन कर एक से ही अनुशासन में चलने वाले कई शब्दों की सिद्धि बतलायी है जैसे देवन्, मालान्, मुनिन्, नदीन्, साजुन् और वधून् की सिद्धि के लिये समान कार्य विधायक एक ही 'धनानादमोऽत्' १।४।४६ सूत्र रचा है। इस प्रक्रिया के कारण ही हेम स्वरान्त और वृज्जानन्त शब्दों की सिद्धि साथ साथ करते चले हैं। इसका यह फल लाभ की दृष्टि से अवश्य ही महत्वपूर्ण है। शाकटायनकार ने पाणिनि की प्रक्रिया पद्धति का अनुसरण किया है, पर हेम ने अपनी प्रक्रिया पद्धति भिन्न रूप से स्वीकार की है। हेम का एक ही सूत्र स्वरान्त और वृज्जानन्त दोनों ही प्रकार के शब्दों का नियन्त्रण कर देता है। इस प्रकरण में शाकटायन के कई सूत्रों को हेम ने ग्रहण कर लिया है।

स्त्रीप्रत्यय प्रकरण में शाकटायन ने स्त्रीप्रत्ययान्त शब्दों का साधुत्व ठोठ दिया है। जैसे दीर्घपुच्छी, दीर्घपुच्छा, क्वरपुच्छी, मणिपुच्छी, त्रिपुच्छी, उलूकनक्षी, अश्वक्रीती, मनसाक्रीती आदि प्रयोगों का शाकटायन में अभाव है, पर हेम ने उक्त प्रयोगों की सिद्धि के लिये 'पुच्छात्' २।४।४१ 'क्वरमपि त्रिपुच्छादे' २।४।४२ 'पशाच्चोपनानादे' २।४।४३ एवं 'क्रीतात् करणादे' २।४।४४ सूत्रों का ग्रन्थन किया है। इसी प्रकार शूर्पणवी, शूर्पणवा, चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा आदि स्त्रीप्रत्ययान्त शब्दों के साधुत्व के लिये शाकटायन में किसी भी प्रकार का अनुशासन नहीं है, किन्तु हेम ने 'नरमुखादनानि' २।४।४० सूत्र द्वारा उक्त प्रयोगों का अनुशासन किया है।

स्त्रीप्रत्यय में शाकटायन के 'प्रयस्यनन्त्ये', १।३।१७ 'पाणिपृथीति पत्नी, १।३।२५ 'पतिनन्त्यन्तर्वत्त्वावधिवा गर्मिमा' १।३।४०, 'सत्त्वादी' १।३।४१, 'नारी स्वीनङ्गध्रु' १।३।७५ सूत्र हेम में क्रमशः २।४।५१, २।४।५२, २।४।५३, २।४।५० और २।४।७६ सूत्र हैं, उदाहरण इन सूत्रों के वे ही हैं,



विभक्त प्रयोग शाब्दायन में लिया गया है। कुछ सूत्र ऐसे भी हैं, जो कुछ हेतु पर क साप हेम व्याकरण में आये हैं। ऐतिहासिकी, शाब्दायनी, ऐतिहासिकी, ऐतिहासिकी, आन्त्यायनी, आन्त्यायनी, आन्त्यायनी, आन्त्यायनी, आन्त्यायनी, आन्त्यायनी आदि प्रयोगों के साधुत्व का शाब्दायन में कोई अनुशासन नहीं है। पर हम ने ११४६८, ११४६९, ११४७० और ११४७१ द्वारा सम्बन्ध प्रकार अनुशासन लिया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि शाब्दायन की अनेक ही प्रयोग अन्त्य महत्त्वपूर्ण है। हेम ने इस प्रकार में अनेक नवीन की प्रयोगान्त प्रयोगों को दिखलाया है।

शाब्दायन व्याकरण में कारक की कोई परिभाषा नहीं दी गई है और न कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण कारक के लक्षण ही बताये गये हैं। इस प्रकार में केवल अर्थानुसारिणी विभक्तियों की ही व्यवस्था मिलती है। किन्तु इसके विपरीत हेम व्याकरण में कारक की मानान्य परिभाषा तथा कर्ता, कर्म आदि भिन्न भिन्न कारकों की भिन्न भिन्न परिभाषाएँ भी दी गयी हैं। कारक व्यवस्था की दृष्टि से हेम का यह प्रकरण शाब्दायन की अपेक्षा अधिक समृद्धिशीली है। नैदान्तिक दृष्टि से हेम ने इसमें कारकीय सिद्धान्त को पूर्णतया रखने का प्रयास किया है।

निमित्त्पर्य के आरम्भ में शाब्दायन की शैली हेम व्याकरण से निम्न नामून होती है जैसे ११३१०० सूत्र द्वारा हा, धिक्, समवा, निश्चय, उदरुंररे, अध्याधि अधोऽधो, अत्यन्त, अन्तरा, अन्तरेण, ऐत, अमित्, और उभयत शब्दों के योग में अनभिहित अर्थ में वर्तमान ने अन्, और ; और शब्द का विधान किया है। यहाँ लोके द्वितीया विभक्ति का रूप न पर द्वितीया विभक्ति के प्रयोगों का निर्देश कर दिया है। यह शैली एक विचित्र प्रकार की नामून होती है। यद्यपि इस शैली का शाब्दायन स्वयं निर्दिष्ट नहीं कर सके हैं और आगे चलकर उन्हें विभक्तियों का नाम लेना ही पड़ गया है तो भी ११३१२७, ११३१५२ तथा ११३१७१ आदि सूत्रों में विभक्तियों का निर्देशन कर उनके प्रयोगों का निरूपण कर दिया गया है। हेम ने इस शैली को नहीं अपनाया है और स्वयं रूप में विभक्तियों का निरूपण किया है। चतुर्थी विभक्ति के अनुशासन में द्विजाय गा प्रतिश्रुति आश्रुति वा, गुरवे प्रतिश्रुति, अनुश्रुति, नैत्राय राष्ट्रति ईश्वरे वा श्रुति पन्थान पथे वा याति, शठाय शतेनवा परिकीरतः आदि कारकीय प्रयोगों का अनुशासन नहीं किया है। किन्तु हेम ने उक्त प्रयोगों के साधुत्व के लिए विभक्ति विधायक सूत्रों का निरूपण किया है। शाब्दायन में तुल्यार्थ में तृतीया करने के लिये ११३१८८ तथा इसी अर्थ में षष्ठी के लिए ११३१८९ दे दी सूत्र उदाहरण

है। हेम ने तुल्यार्थैस्तृतीया पञ्चमौ २।२।११६ द्वारा दोनों ही विभक्तियों का विधान तुल्यार्थ में कर दिया है।

शाकटायन में ऋत के योग में द्वितीया और पंचमी का विधान करने वाले 'पञ्चमी चर्ते' १।३।१९१ सूत्र में पंचमी का उल्लेख कर चकार से द्वितीया विभक्ति का उल्लेख किया गया है पर हेम ने 'ऋते द्वितीया च' सूत्र में द्वितीया का उल्लेख कर चकार से पञ्चमी का ग्रहण कर लिया है।

उक्त अर्थ में अनु और उन के योग में द्वितीया विभक्ति विधायक दोनों व्याकरणों में एक ही सूत्र है। जहाँ शाकटायन में इसके उदाहरण में अनुसमन्त-मद्रं तार्किका, उपशाकटायनं वैयाकरणाः जेने दिगम्बर सम्प्रदाय द्वारा मान्य प्रयोग उपरिथत किये गये हैं, वहाँ हेम ने अनुसिद्धतेनं कृत्य. और उपोमास्वार्ति सग्रहीतारः प्रयोगों को रखा है।

उत्पानद्वारा ज्ञाप्य में चतुर्थी विभक्ति का विधान करने वाला दोनों व्याकरणों में एक ही सूत्र है तथा हेम ने उदाहरण में भी शाकटायन की निम्नकारिका को ज्यो का त्यों रख दिया है :—

वासाय कपिला विद्युदावपायातिलोहिनी ।

पीता वर्षीय विज्ञेया दुर्मिज्ञाय सिता भवेन् ॥

इस प्रकरण में शाकटायन के १।३।१२५, १।३।१०२, १।३।१०४, १।३।१२७ १।३।२०९, १।३।१३०, १।३।१३२, १।३।१३७, १।३।१४२, १।३।१७९ १।३।१८०, १।३।१८३, १।३।१८६, १।३।१४८, १।३।१४७, १।३।१५७, १।३।१९२, तथा १।३।१६७ सत्यक सूत्र, हेम व्याकरण में क्रमशः २।२।२३, २।२।३७, २।२।३९, २।२।४२, २।२।४५, २।२।४६, २।२।४९, २।२।२७, २।२।६८, २।२।९८, २।२।१०६, २।२।१०८, २।२।११०, २।२।६०, २।२।५९, २।२।७३, २।२।११३ और २।२।९१ संख्यक सूत्रों के रूप में ग्रहण किये गये हैं।

शाकटायन में समास प्रकरण आरम्भ करते ही बहुव्रीहि समास विधायक सूत्र का निर्देश किया है। पश्चात् कुछ तद्धित प्रत्यय आ गये हैं जिनका सयोग प्रायः बहुव्रीहि समास में होता है। जैसे नञ्, दुस्, सु इनसे परे प्रजा शब्दान्त बहुव्रीहि से अम् प्रत्यय, नञ्, दुस् तथा अल्प शब्द से परे मेधा शब्दान्त बहुव्रीहि से अम् प्रत्यय, जाति शब्दान्त बहुव्रीहि से छ प्रत्यय, एव धर्म शब्दान्त बहुव्रीहि से अन् प्रत्यय होता है। इसके बाद बहुव्रीहि समास में में पुंक्त्वाच्च, ह्रस्व आदि अनुशासनों का नियमन है। सुगन्धि, पूतिगन्धि, सुर-भिगन्धि, घृत्तगन्धि, पद्मगन्धि आदि सामासिक प्रयोगों के साधुत्व के लिये इत्

प्रत्यय का विधान किया गया है। हेम ने भी समास प्रकरण के आरम्भ में अपनी उत्पत्तिक्रम इसी प्रकार आरम्भ की है। पर शाकटायन व्याकरण में बहुव्रीहि समास का अनुशासन समाप्त होने के बाद ही अव्ययीभाव प्रकरण आरम्भ होता है तथा युद्धवाच्य में ग्रहण और प्रहरण अर्थ में केशाकेशि और दण्डादन्दि को अव्ययीभाव समास माना है, यतः शाकटायन के मतानुसार अव्ययीभाव समास के तीन भेद हैं। अन्य पदार्थ प्रधान, पूर्व पदार्थ प्रधान और उत्तर पदार्थ प्रधान। अतः 'केशाश्च केशाश्च परस्परस्य ग्रहणं यस्मिन् युद्धे' जैसे त्रिग्रहवाच्य साध्य प्रयोगों में अन्य पदार्थ प्रधान अव्ययीभाव समास होता है। हेम व्याकरण में बहुव्रीहि का प्रकरण बीच में रूक गया है और अव्ययीभाव का आरम्भ हो गया है। हेम ने समास प्रकरण के आरम्भ में गति संज्ञा विधायक सूत्रों का संकलन किया है और गतिसंज्ञकों में होने वाले तत्पुरुष समास का विधान आरम्भ करने के पहिले ही पीठिका सूत्रों का संग्रह कर दिया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हेम व्याकरण का समास प्रकरण शाकटायन की अपेक्षा विस्तृत और पूर्ण है। यद्यपि इस प्रकरण में भी हेम ने अपनी प्रतिभा का पूरा उपयोग किया है, तो भी शाकटायन के कई सूत्र हेम व्याकरण के इस प्रकरण में विद्यमान हैं।

शाकटायन व्याकरण में समास के पश्चात् तद्धित प्रकरण आरम्भ होता है। इस प्रकरण का पहला सूत्र है "प्रागजितादण्" २।४।४, हेम में यह सूत्र प्रागजितादण् ६।१।१३ में आया है। हेम ने शाकटायन का सब से अधिक अनुसरण तद्धित प्रकरण में किया है। यों तो हेम व्याकरण की शैली शाकटायन से भिन्न है। शाकटायन में जहाँ 'फण्' प्रत्यय करण कारक का अनुबन्ध कर फ के स्थान पर आयन, आदेश किया है वहाँ हेम ने आयन प्रत्यय का ही अनुशासन किया है। इसी प्रकार शाकटायन के फण्, ढण, छ, ज, घ, ण्, बुज् और टकञ् प्रत्ययों के स्थान पर हेम व्याकरण में क्रमशः एयण्, एरण्, ईय, ईठ, इय, इकण्, अकम् और एयकञ् प्रत्यय होते हैं। हेम ने प्रक्रिया लाघव के लिए टण्, टण्, आदि प्रत्ययों के स्थान पर पुनः आदेश न कर सीधे ही प्रत्ययों की व्यवस्था कर दी है। इस प्रकरण में शाकटायन की अपेक्षा हेम ने डायहट, टापनाम्, शाकट, शाकिन आदि अनेक नवीन प्रत्ययों का अनुशासन किया है।

शाकटायन का तिङन्त प्रकरण 'क्रियायो धातुः' से आरम्भ होता है तथा इसी धातु संज्ञक सूत्र को अधिकार सूत्र कहा गया है। हेम व्याकरण में भी इसी सूत्र को अधिकार सूत्र के रूप में ग्रहण कर लिया गया है। जहाँ शाकटायन में पाणिनि की लकार प्रक्रिया के अनुसार क्रिया रूपों का साधुत्व दिखलाया गया है,

वहाँ हेम में क्रियावस्थाओं को ग्रहण कर घातुरूपों की प्रक्रिया लिखी गयी है। अतः शैली की दृष्टि से दोनों व्याकरणों में मौलिक अन्तर है। शाकटायन की अपेक्षा हेम व्याकरण में अधिक घातुओं का भी प्रयोग हुआ है।

कृदन्त प्रकरण में हेम पर शाकटायन का प्रभाव लभित होता है, किन्तु यह सत्य है कि अपनी अद्भुत प्रतिभा के कारण हेम ने इस प्रकरण में भी अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। उदाहरण के लिए 'घ्यण्' प्रत्यय के प्रकरण को लिया जा सकता है। शाकटायन में ४।३।६०, ४।३।५९, ४।१।१७९ सूत्रों द्वारा घ्यण् प्रत्यय का अनुशासन किया गया है। हेम ने सामान्यतः घ्यण् प्रत्यय के लिये 'ऋवर्णं व्यञ्जनान्ताद् घ्यण्' ५।१।१७ सूत्र का प्रयत्न किया है। पश्चात् विशेष घातुओं से इस प्रत्यय का नियमन किया है। अनन्तर आसाध्यम्, याव्यम्, वाप्यम्, राप्यम्, अपत्राप्यन्, डेप्यम्, दाम्यम् प्रभृति कृदन्त प्रयोगों का साधुत्व "आमुयुवपिरपिलपित्रपिद्विपिदभिचम्यानम्" ५।१।२० द्वारा किया गया है। शाकटायन में उक्त प्रयोगों सम्बन्धी अनुशासन का अभाव है। हेम ने सचाप्य\* कुण्डपाप्य\*, प्रणाप्य, पाप्य, मानम्, सन्नाप्य द्विषि, निष्ठाप्यो निवासः इत्यादि घ्यणन्त प्रयोगों का निपातन माना है। शाकटायन में इनका जिक्र भी नहीं है। अतः स्पष्ट है कि हेम का कृदन्त प्रकरण शाकटायन की अपेक्षा विशिष्ट है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि हेम ने अपने शब्दानुशासन में जैनेन्द्र और शाकटायन से बहुत कुछ ग्रहण किया है। जैनेन्द्र की महावृत्ति और शाकटायन की अमोघवृत्ति तथा लघुवृत्ति स भी हेम ने अनेक सिद्धान्त लिये हैं। सूत्रों की वृत्ति में भी हेम ने उक्त वृत्तियों से पर्याप्त सहायता ली है। इतना होने पर भी हेम की मौलिकता लक्ष्य नहा होती है, क्योंकि हेम ने अपनी विशिष्ट प्रतिभा द्वारा उक्त व्याकरणों से कतिपय सूत्र और सिद्धान्तों को ग्रहण कर भी उन्हें पचाकर अपने रूप में उनस्थित किया है। सूत्रों में यत्किञ्चित् परिवर्तन से ही इन्होंने विलक्षण चमत्कार उत्पन्न कर दिया है।

हेम का प्रभाव उत्तरकालीन जैन वैयाकरणों पर पर्याप्त पडा है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय में तो इस व्याकरण के पठन पाठन की व्यवस्था भी रही है। अतः इस पर अनेक टीका टिप्पण लिखे गये हैं। विवरण निम्न प्रकार है।—

नाम	कर्ता	सबन्
लघुन्यास	हेमचन्द्र के शिष्य रामचन्द्र गणी	
लघुन्यास	धर्मशोध	
न्यासोद्धार	कनकप्रम	
हेम लघुवृत्ति	काकल कापस्थ	हेमचन्द्र के समकालीन

हेमवृहद्वृत्ति टुटिका	सौभाग्य सागर	१५९१
हेम टु टिका वृत्ति	उदय सौभाग्य	
हेम लघुवृत्ति टु टिका	मुनिशेखर	
हेम अबचूरि	धनचन्द्र	
प्राकृतदीपिका	द्वितीय हरिमद्र	
प्राकृत अबचूरि	हरिप्रम सूरि	
हेम चतुर्थशद वृत्ति	हृदय सौभाग्य	१५९१
हेम व्याकरण दीपिका	जिन सागर	
हेम व्याकरण अबचूरि	रत्नशेखर	
हेम दुर्गापदप्रबोध	ज्ञाननिमल शिष्यरत्नम	१६६१
हेम कारक समुच्चय	श्रीप्रम सूरि	१०८०
हेम वृत्ति	"	"

हेम व्याकरण से सम्बद्ध अन्य ग्रन्थ

नाम	कर्त्ता	संवत्
लिङ्गानुशासन वृत्ति	चयानन्द	
घातुपाठ ( स्वरनर्णानुक्रम )	पुण्यसुन्दर	
क्रियारत्नसमुच्चय	गुरारत्न	१४६६
हेम विभ्रम सूत्र	गुणचन्द्र	
हेम विभ्रम वृत्ति	जिनप्रम	
हेम लघुन्यास प्रशस्ति अबचूरि	उदयचन्द्र	
न्यायमंजूषा	हेमहस	१५१५
न्याय मजूषा न्यास	"	"
स्यादि शब्द समुच्चय	अमरचन्द्र	

हेम व्याकरण के ऊपर लिखे गये अन्य व्याकरण

नाम	कर्त्ता	संवत्
हेम कौमुदी ( चन्द्रप्रभा )	मेरविजय	१७५८
हेम प्रक्रिया	महेन्द्रसुतवीरसी	
हेम लघु प्रक्रिया	दिनय विजय	

इस प्रकार हेम व्याकरण के आधार पर अनेक ग्रन्थ रचे गये हैं। आज भी श्वेताम्बर सम्प्रदाय के कई आचार्य हेम के आधार पर व्याकरण ग्रन्थ लिख रहे हैं। अभी हाल में हमने आचार्य तुलसी गणी के संघ में 'मिक्खु व्याकरण' देखा था, जिसका ग्रन्थ हेम के आधार पर किया गया है। कालकौमुदी नामक व्याकरण भी हेम व्याकरण के टग का ही है।

## सप्तम अध्याय

### हैमप्राकृत शब्दानुशासन : एक अध्ययन

अष्टम अध्याय : प्रथमपाद

प्रथमपाद का पहला सूत्र 'अयं प्राकृतम्' ८।१।१ है। इस सूत्र में अयं शब्द को अनन्तर और अधिकारार्थवाची माना गया है। संस्कृत शब्दानुशासन के अनन्तर प्राकृत शब्दानुशासन का अधिकार आरम्भ होता है। महाराष्ट्री प्राकृत-भाषा की प्रकृति संस्कृत को स्वीकार किया है तथा "प्रकृति संस्कृतम् तत्र भवं तत आगतं वा प्राकृतम्" द्वारा यह व्यक्त किया है कि प्राकृत की प्रकृति संस्कृत है, इससंस्कृत से विकार रूप में निष्पन्न प्राकृत है।

प्राकृत भाषा का बोध करानेवाला 'प्राकृत' शब्द प्रकृति से बना है। प्रकृति का अर्थ स्वभाव भी है, अतः जो भाषा स्वभाविक है, वह प्राकृत शब्द द्वारा व्यवहृत की जाती है अर्थात् मनुष्य को जन्म से मिली हुई बोलचाल की स्वभाविक भाषा प्राकृत भाषा कही जाती है।

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने उपर्युक्त सूत्र में प्राकृत शब्द के मूल 'प्रकृति' शब्द का अर्थ संस्कृत किया है और बताया है कि संस्कृत—प्रकृति से आये हुए का नाम प्राकृत है। इस उल्लेख का यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि प्राकृत भाषा का उत्पत्ति-कारण संस्कृत भाषा है; किन्तु इसका अर्थ इतना ही है कि प्राकृत भाषा सीखने के लिए संस्कृत शब्दों को मूलभूत रखकर उनके साथ उच्चारणभेद के कारण प्राकृत शब्दों का जो साम्य-वैषम्य है, उसको दिखाना अर्थात् संस्कृत भाषा के द्वारा प्राकृत भाषा को सीखने का यत्न करना है। इसी आशय से हेमचन्द्र ने संस्कृत को प्राकृत की योनि कहा है। वस्तुतः प्राकृत और संस्कृत भाषा के बीच में किसी प्रकार का कार्य-कारण या जन्म-जनक भाव है ही नहीं; किन्तु जैने आजकल भी एक ही भाषा के शब्दों में भिन्न भिन्न उच्चारण होते हैं—यथा एक ग्रामीण व्यक्ति जिस भाषा का प्रयोग करता है, उसी भाषा का प्रयोग संस्काराप्त नागरिक भी करता है, पर दोनों के उच्चारण में अन्तर रहता है, इस अन्तर्लप अन्तर के कारण उन दोनों को भिन्न-भिन्न भाषा बोलनेवाला नहीं कहा जा सकता; इसी तरह समाज में प्राकृत लोग—जन साधारण प्राकृत का उच्चारण करते हैं और नागरिक लोग संस्कृत का; किन्तु इतने मात्र में ही दोनों प्रकार के व्यक्तियों को भाषाएँ भिन्न-भिन्न नहीं कही जा सकती।

यह सत्य है कि स्वामादिक उच्चारण के अनन्तर ही संस्कृत उच्चारण उत्पन्न होता है, जैसे आरम्भ में गाँव ही गाँव थे; पश्चात् कुछ गाँवों ने मुसंस्कृत होकर नगर का रूप धारण किया। यही बात भाषाओं के साथ भी लागू होती है। यतः आरम्भ में कोई एक ऐसी भाषा रही होगी, जिसके ऊपर व्याकरण का अनुशासन नहीं था और जो स्वामादिक रूप में बोली जाती थी। कालान्तर में यही संस्कारापन्न होकर संस्कृत कहलाने लगी होगी; जैसा कि इसके नाम से प्रकट है। इतिहास और भाषा-विज्ञान दोनों ही इस बात के साक्षी हैं कि किसी भी साहित्यिक भाषा का विकास जन-भाषा से ही होता है; पर जब यह भाषा लिखी जाने लगती है और इसमें साहित्य-रचना होने लगती है, तो यह धीरे-धीरे स्थिर हो जाती है और परिमार्जित रूप प्राप्त करने के कारण संस्कृत कही जाने लगती है। आज की भाषा और बोलियों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि आधुनिक हिन्दी संस्कृत है तो मोजपुरी, मैथिली और मगही प्राकृत। अतः हेमचन्द्र का संस्कृत को यानि कहने का तात्पर्य यही है कि शब्दानुशासन से पूर्णतया अनुशासित संस्कृत भाषा के द्वारा प्राकृत को सीखना। ईम व्याकरण के सात अध्याय संस्कृत भाषा का अनुशासन करते हैं, अतः इन्होंने इस अनुशासित संस्कृत भाषा के माध्यम में ही प्राकृत भाषा को सीखने का क्रम रखा और संस्कृत को प्रकृति कहा।

प्राकृत का शब्द-भाण्डार तीन प्रकार के शब्दों से युक्त है—( १ ) तत्सम ( २ ) तद्भव और देश्य। तत्सम वे संस्कृत शब्द हैं, जिनकी ध्वनियों में नियमित रूप से कुछ भी परिवर्तन नहीं होता; जैसे नीर, दाह, घूलि, माया, वीर, धीर, कंक, कष्ट, तल, ताल, तीर, तिमिर, कल, कवि, दावानल, संसार, कुल, केवल, देवी, तीर, परिहार, दारुण, हल एवं मन्दिर आदि।

जो शब्द संस्कृत के वर्णलोप, वर्णगम, वर्णविकार अथवा वर्णपरिवर्तन के द्वारा उत्पन्न हुए हैं, वे तद्भव कहलाते हैं; जैसे—अग्र=अग्रा, इष्ट=इष्ट, ईर्ष्या=ईर्षा, उद्गम=उद्गम, कृष्ण=कृष्ण, खजूर=खजूर, गज=गज, धर्म=धम्म, चक्र=चक्र, क्षीम=क्षीम, यज्ञ=जज्ञ, ध्यान=ज्ञान, नाथ=गाह, त्रिदश=तिदश, धार्मिक=धाम्मिक, पश्चात्=पच्छा, सर्य=संस, भार्या=भारिवा, मेघ=मेह, लेश=लेश, शेष=सेस, भवति=हवेद, पिवति=पिअइ आदि। प्राकृत में तद्भव शब्दों की संख्या अत्यधिक है। इस भाषा का व्याकरण प्रायः उक्त प्रकार के शब्दों का ही निष्पन्न करता है।

जिन प्राकृत शब्दों की व्युत्पत्ति अर्थात् प्रकृति प्रत्यय का विभाग नहीं हो सकता है और जिन शब्दों का अर्थ मात्ररूढ़ि पर अवलम्बित है, ऐसे शब्दों को देश्य या देशी कहते हैं। हेमचन्द्र ने इन शब्दों को अव्युत्पन्न क्रीटि में रखा है,

जैसे अगय ( दैत्य ), आकासिय ( पर्याप्त ), इराव ( हस्ती ), ईस ( कीचक ), उसअ ( उपधान ), एलविल ( घनाढ्य ), कंदोह ( कुमुद ), गयसाउल ( विरक्त ), डाल ( शाखा ), विन्डुडु ( समूह ), भुड ( शकर ), भड्डा ( बलात्कार ) एवं रक्ति ( आशा ) आदि ।

हेम ने उपर्युक्त सूत्र में दो ही प्रकार के शब्द बतलाये हैं—तत्सम और देश्य । यहाँ तत्सम से हेम का अभिप्राय है, संस्कृत के समान उच्चरित होने वाली शब्दावली । अतः इन्होंने तद्भव की गणना भी तत्सम में ही कर ली है । तत्सम शब्दों के सिद्ध और साध्यमान भेदों से हेम का तात्पर्य पूर्वोक्त तत्सम और तद्भव से है । इन्होंने विगुद्ध तत्सम शब्दों की गणना सिद्ध शब्दों में और तद्भव शब्दों की गणना साध्यमान शब्दों में की है । उक्त प्रकार के तत्सम शब्दों को ही हेम ने अनुशासनीय माना है । देश्य शब्द अनुशासन के बहिर्भूत हैं । यो तो आचार्य हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण में देशी धातुओं का संस्कृत धातुओं के स्थान में आदेश स्वीकार किया है तथा उन्होंने बताया है “एतै चान्येदेशीयेषु पठिता अपि अस्माभिर्घातवादेशीकृता विविधेषु प्रत्ययेषु प्रतिष्ठन्तामिति ।” अर्थात् जिन्हें अन्य वैयाकरणों ने देशी कहा है, उन्हें हेम ने धात्वादेश द्वारा सिद्ध किया है । अतएव हम इतना ही कह सकते हैं कि इस प्रथम सूत्र में हेम ने अनुशासित होने वाले शब्द-प्रकारों का स्वरूप से निर्देश कर दिया है ।

‘अथ प्राकृतम्’ सूत्र की वृत्ति में प्राकृत वर्णमाला का स्वरूप भी निर्धारित किया गया है यथा—“ऋ-ऌ लृ लृ ऐ-औ-ऊ-व-श-ष-विसर्जनीय-प्लुत-वर्जो चर्णसमाम्नायो लोकाद् अवगन्तव्यः । ङ औ स्ववर्गसंयुक्तौ भवत एव । ऐदौती च केपाञ्चिन” । अर्थात् ऋ ऌ लृ लृ ऐ औ ऊ व श ष विसर्ग और प्लुत को छोड़ अवशेष वर्ण प्राकृत वर्णमाला में होते हैं । किसी-किसी के मत में ऐ और औ का प्रयोग भी वर्णमाला में माना गया है । अतएव हेम के उक्त सूत्रानुसार प्राकृत वर्णमाला का स्वरूप निम्न प्रकार माना जायगा ।

स्वर—

अ, इ, उ ( हरव )

आ ई ऊ ए ओ ( दीर्घ )

व्यंजन—

क ख ग घ ङ ( कर्वा )

च छ ज झ ( चर्वा )

ट ठ ड ढ ण ( टर्वा )





त य द ध न ( तर्का )

प फ ब भ म ( पर्णा )

य र ल व ( व्यन्तःस्थ )

स ह ( उष्माक्षर ) तथा अनुस्वार ।

द्वितीय सूत्र द्वारा हेम ने प्राकृत के समस्त अनुशासनो को वैकल्पिक स्वरों द्वारा किया है। इस पद का तृतीय सूत्र बहुत महत्वपूर्ण है और इसमें आर्ष प्राकृत को अनुशासन-विधियों के वैकल्पिक होने का कथन किया गया है। तात्पर्य यह है कि हेम ने प्राकृत और आर्षप्राकृत के दो भेद प्राकृत के किये हैं। जो प्राकृत अधिक प्राचीन है, उसे आर्ष कहा गया है, और शक्यी उन्नति के लिये समस्त व्याकरण में आर्षम् २।१।३ का अधिकार बताया है। स्थान-स्थान पर उसके उदाहरण भी जैन आगमों से दिये गये हैं।

चतुर्थ सूत्र समास में स्वरों का परस्पर में वैकल्पिक रूप में दीर्घ और ह्रस्व होने का विधान करता है। संस्कृत का ह्रस्व स्वर प्राकृत में दीर्घ और संस्कृत का दीर्घ स्वर प्राकृत में ह्रस्व हो जाता है; जैसे अन्तर्वेदि का ह्रस्व स्वर प्राकृत शब्द अन्नावेई में दीर्घ ईकार के रूप में हो गया है। कहीं यह नियम भी नहीं लगता है; जैसे जुद्ध-अगो। कहीं उच्च निधि विन्ध्य से होती है—जैसे वारिमतिः = वारी-भई, वारिमई; पत्तएहं = पईहरं, पद-हरं आदि।

‘पदयोः सन्धिर्वा’ २।१।५ से २।१।१० सूत्र तक सन्धि-नियमों का विस्तार किया गया है। सन्धि दो पदों में विकल्पक से होती है; जैसे—वास + इसी = वात्सेली, विसम + आयवो = किन्मायवो, ददि + ईसरो = दहीसरो आदि। इवर्ण और उवर्ण के परे अवर्ण स्वर रहने पर सन्धि का निषेध किया गया है; जैसे वंदामि अञ्ज-वहरं। एकार और ओकार के परे स्वर रहने पर भी सन्धि नहीं होती है; जैसे अहो अच्यरिपं। उद्धृत और तिदन्त से परे स्वर रहने पर भी सन्धि का निषेध किया गया है; जैसे निसाअरो; रयाँ अरो एवं होइ इह आदि। प्राकृत में व्यञ्जन सन्धि और नितर्ग सन्धि का अभाव है; अतः हेम ने उच्च दोनों सन्धियों का अनुशासन नहीं किया है। हेम का स्वर-सन्धि का प्रकरण वररुचि के प्राकृतप्रकाश की अपेक्षा विस्तृत है।

‘अन्त्यव्यञ्जनस्य’ २।१।११ सूत्र से २।१।२४ सूत्र तक शब्दों के अन्त्य-व्यञ्जनसन्धियों विकारों का नियमन किया गया है। इस विधान में शब्दों के अन्त्य व्यञ्जन का लोप, अद् और उद् के अन्त्य व्यञ्जन का लोपभाव, निर और दुर के अन्त्यव्यञ्जन का वैकल्पिक लोप, निर, अन्तर और दुर के अन्त्यव्यञ्जन का स्वर के परे रहने पर लोपभाव; रिधुत् शब्द को छोड़ करिण्ड में वर्तमान

शेष शब्दों के अन्त्य व्यञ्जन को आत्व; स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान अन्त्य व्यञ्जन रेफ को रा-आदेश; लुघ् शब्द के अन्त्य व्यञ्जन को ह शरदादि शब्दों के अन्त्य व्यञ्जन को अत् ; दिक् और प्रावृष शब्दों के अन्त्य व्यञ्जन को स; आयुस् और अप्सरस् शब्दके अन्त्य व्यञ्जन को वैकल्पिक स; ककुभ शब्द के अन्त्य व्यञ्जन को ह, अन्तिम प्रकार को अनुस्वार एव अन्त्य मकार को वैकल्पिक अनुस्वार होता है।

ह-ञ-ण-भो व्यञ्जने ८।१।२५ सूत्र से ८।१।३० तक के सूत्रों में अनुस्वारसम्बन्धी आदेशों की विवेचना की गयी है। व्यञ्जन के परे रहने से ङ ञ ण न के स्थान पर अनुस्वार होता है, जैसे पङ्क्ति, =पती, पराङ्मुख = परमुहो, उत्कृष्ठा = उत्कृंठा, सन्ध्या = संशा आदि।

व्हादि गण में प्रथमादि स्वरो के अन्त में आगम रूप अनुस्वार होता है। संस्कृत शब्दानुशासन में इस व्हादि गण को आकृतिगण कहा गया है; जैसे—वक्, तंस, असुं, मंसू, पुंउं, गुंउं आदि। क्वा और स्वादि के स्थान पर जो ण्यू आदि आदेश होते हैं, उनके अन्त में अनुस्वार होता है; जैसे—काज्ण, माज्ण, व्छेण, व्छेण। विद्यति आदि शब्दों के अनुस्वार का लुक् हाता है, जैसे वीसा तीसा आदि। मासादि शब्दों के अनुस्वार का निकल से लोप होता है; जैसे मासं, मंसं, मासलं, मसल आदि। अनुस्वार का कर्गादि वर्ण के परे रहने पर सम्बन्ध विशेष के कारण उर्ध्वी वर्ण का अन्तिम वर्ण भी हो जाता है; जैसे—पङ्को, पंकी आदि।

प्रावृट्-शरत्तरणयः पुंसि। ८।१।३१-८।१।३६ सूत्र तक शब्दों की लिङ्ग-सम्बन्धी व्यवस्था का वर्णन है। प्रावृट्, शरत् और तरणि शब्दों का पुल्लिङ्ग में व्यवहार करने का विधान है, जैसे पाउसो, सरव्यो, एस तरणि आदि। यों तो साधारणतया संस्कृत शब्दों का लिङ्ग ही प्राकृत में शेष रह जाता है।

दामन्, शिस् और नमस् शब्दों को छोड़ शेष सक्रान्त और नकारान्त शब्दों को पुल्लिङ्ग में प्रयुक्त होने का अनुशासन किया है; जैसे जतो, पओ, तमो, तेओ, जम्मो, नम्मो एवं कम्मो आदि। अञि के पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग पुल्लिङ्ग में होता है; किन्तु यहाँ इतनी विशेषता है कि अञि शब्द का अङ्गस्यादि गण में पाठ होने से स्त्रीलिङ्ग में भी व्यवहार होता है; जैसे एण अञ्ठी, वक्चू, चक्चूँ, नयगा, नयगाटं, लोअणा लोअगाटं, आदि। गुगादि शब्दों की गणना नपुंसक लिङ्ग में और अङ्गस्यादिगण-पठित दमान्त शब्दों की वैकल्पिकरूप से स्त्रीलिङ्ग में की गयी है। बाहोरात् ८।१।३६ सूत्र स्त्रीलिङ्ग में बाहु शब्द से अकार का अन्तादेश करता है।

अतो हो विसर्गस्य ८।१।३७ सूत्र द्वारा संस्कृत लज्जोत्तम अत के परे विसर्ग के स्थान पर ओ आदेश किया गया है, जैसे—सर्वतः = सन्वओ, पुतः =

पुत्रो, अग्रतः = अग्रगण्यो, मार्गतः = मार्गगण्यो आदि । २२ वें सूत्र में बताया गया है कि मात्वं शब्द के पूर्व निर् उतरग्न आवे तो उसके स्थान पर ओ होता है तथा स्या शब्द के पूर्व प्रति उतरग्न आवे तो उसके स्थान पर एरे आदेश होता है; जैसे ओमत्वं निम्नत्वं ( निर्मात्वं ); पतिष्टा, पट्टा ( प्रतिष्ठा ) पतिष्टुभं पट्टिभं ( प्रतिष्ठितम् ) । आगे के दोनों सूत्रों में भी अन्य-सम्बन्धी विशेष विकार का निर्देश किया गया है ।

सुत-प-र-व-श-प-त्तां श-व-ता दीर्घः २१।४३ सूत्र द्वारा प्राकृत स्थान-व्य सुप्त हुए प र ल व श प स को उतथा को दीर्घ होने का नियमन किया है; जैसे पाठदि ( पश्यति ), काठो ( कथयः ), बीरनापि ( विमान्ति ), बीरानो ( निभामः ), संदासं ( संसर्गः ), आतो ( अद्यः ), दीचर ( निश्चलति ) दीचाओ ( विश्वासः ), दूचाणो ( दुरगणः ), पूचो ( पुष्य ) मचूओ ( मनुष्यः ) आदि ।

अतः सद्दपादौ वा २१।४४ सूत्र कृद्धि आदि शब्दों के अकार को विकल्प से दीर्घ होने का विधान करता है; जैसे—चानिदी, चनिदी ( कृद्धिः ), पाभटं, पभटं ( प्रकटं ), पाठिदी, पठिदी ( प्रतिद्धिः ), पाठिविआ, पठिव्या ( प्रतिवृत् ) पाडुचं, पडुचं ( प्रडुचं ), आहिजाईं आहिजाईं ( अभिजाति ), आदि । ४५ वें सूत्र में दक्षिण शब्द के आदि अकार को हकार के परे रहने पर दीर्घ होने का विधान किया है, जैसे दाहिणो ।

इः स्वनादौ २१।४६ सूत्र से लेकर २१।१७५ सूत्र तक स्वर विकार का नियमन किया है । स्वन आदि शब्दों के आदि अकार को इत्व और पडाङ्कार एवं लाल्प शब्द के आदि अकार को विकल्प से इत्व होता है; जैसे लिबिणो, लिमिणो तथा रिक्कं, पक्कं, इङ्गालो, अँगातो, पिडाळं, पडाळं आदि । मध्यम और क्वम शब्द के द्वितीय अकार का इत्व तथा क्वमर्ग शब्द में द्वितीय अकार का इत्व विकल्प से होता है । मपद् प्रत्ययान्त शब्दों में आदि अकार के स्थान पर अइ आदेश होता है; जैसे निमदव्यो, विममओ, हर शब्द के आदि अकार को ईकार होने का विधान है तथा अग्नि और निष् शब्द के आदि अकार को उव होता है ।

चण्ड और खण्डित शब्दों में आदि अकार को णकार सहित विकल्प से उव होता है, जैसे चुडं, चण्डं; खुडिओ, खण्डिओ; गक्ष शब्द के ककार को उव, प्रथम शब्द के पकार, यकार और रकार को डुगन्त् तथा अम से उव एवं ङ और अमिष्ठ आदि शब्दों के ङ के स्थान पर ष तथा ङ के अकार के स्थान पर उव होता है; जैसे गडओ, गडआ; डुडुनं, डुडुनं, पडुनं, पडुनं; अहिष्णु, सव्यष्णु, क्यष्णु, आगम्यु आदि ।

शब्दादि शब्दों में आदि अक्षर के स्थान पर एकार, पञ्च शब्द के आदि अक्षर के स्थान पर ओकार, अर्ध घातु के अक्षर के स्थान पर ओकार एवं स्वप् घातु में आदि अक्षर के स्थान पर ओकार आदेश होने का नियमन किया गया है ।

ननु परे पुनः शब्द के आदि अक्षर के स्थान पर आ और आइ आदेश होते हैं, जैसे न उगा, न उगाइ । अव्यय तथा उत्तरानादि शब्दों में आदिम आकार को विकल्प से अकार आदेश होता है, जैसे जह, जहा, ( यया ); तह, तहा, ( तथा ), अहव, अहवा ( अववा ), उक्त्वयं उक्त्वायं ( उत्त्वातं ), चनरं, चानरं ( चानरं ), कलओ, कालओ, ( कालकः ), ठक्विं, ठक्विं ( स्थापितं ), पयं, पायं ( प्राकृतं ) आदि ।

जिन संस्कृत शब्दों में घञ् प्रत्यय के कारण वृद्धि होती है, उनके आदि आकार के स्थान पर वैकल्पिक रूप से अकार आदेश होता है, जैसे पवद्दी, पवाद्दी, पद्दी, पहादी, प्यदी, पनादी आदि । महाराष्ट्र शब्द के आदि अक्षर के स्थान पर आकार होता है, जैसे मरहट्टं, मरहट्टो । मास आदि शब्दों में अनुस्वार के स्थान पर अत् आदेश होता है, जैसे मसं, पंसणो, कंसं, कंसिओ आदि । श्या-माक शब्द में मकारोत्तरवर्ती आकार के स्थान पर अत् आदेश होता है, जैसे सानओ । सदादि शब्दों में आकार के स्थान पर विकल्प से इकार आदेश होता है, जैसे सइ, सया, निशि-अरो, निसा-अरो, कुपिओ, कुपाओ ।

आचार्ये चोच्च ८।१।७३ सूत्र द्वारा आचार्य शब्द के आकार को इकार और अकार आदेश होने का विधान किया है, जैसे आश्रिओ, आश्रिओ । स्थान और खल्लाट शब्दों में आदि अक्षर के स्थान पर ईकार आदेश होता है, जैसे टीणं, यीणं, यिणं, खल्लीडो आदि ।

सारना, स्तानक और आसार शब्दों में आदि आकार के स्थान पर उकार-जकार आदेश होता है; जैसे मुहा, मुआ, उत्तारो आदि । आर्या शब्द के अश्चु-बाची होने पर रकार के आकार को जकार आदेश होता है, जैसे अश्चु तथा अश्चु भिन्न अर्थ में अब्बा रूप बनता है ।

हैन ने द्राह्म शब्द में आकार को एत्वं, द्वार शब्द में आकार को वैकल्पिक एत्वं, पारावत् शब्द में रेफोत्तरवर्ती आकार को एत्वं एवं आर्द्र शब्द के आकार को विकल्प से उत् और ओत् का विधान किया है; जैसे गेष्णं, देरं, पारेवओ, पारावओ आदि ।

मात्रटि वा ८।१।८१ सूत्र में मात्रट प्रत्यय के आकार को विकल्प से एकार आदेश करने का नियमन किया गया है, जैसे एत्तिअमेत्तं एत्तिअमेत्तं बहुलाधिकार

होने से षष्ठित् मात्र शब्द में भी यह अनुशासन लागू होता है; जैसे भोजन-भेत्तं । आर्द्र शब्द में आदि के आकार को विकल्प से उत् और ओत् होता है, जैसे उल्लं, ओल्लं आदि । पक्तिवाची आली शब्द में आकार के स्थान पर ओकार आदेश होता है—जैसे ओली ।

हेम का ह्रस्वः संयोगे ८।१।८ सूत्र बहुत महत्वपूर्ण है । यह संयुक्त वर्णों से पूर्ववर्ति दीर्घ स्वरों को ह्रस्व होने का अनुशासन करता है, जैसे अं ( आग्रम् ), तं ( ताग्रम् ), विरहणी ( विरहानि. ), अरसं ( आस्यम् ), मुणितो ( मुनीन्द्रः ), तिर्यं ( तीर्थम् ), गुल्लावा ( गुरुलापाः ), चुण् ( चूर्ण ) णरितो ( नरेन्द्रः ), मिलिच्छो ( म्लेच्छ. ), अहृष्टं ( अधरोष्टं ), नीलुप्लं ( नीगेल्यं ) आदि ।

इन पद्या ८।१।८ सूत्र संयोग में आदि इकार के स्थान पर विकल्प से एकार आदेश करने का नियमन करता है, जैसे पण्ड पिण्डं; धम्मेलं, धम्मिल्लं; सिन्दूरं सेन्दुरं; वेह, विश्; पेट्टं; सिट्टं; वेल्लं, रिल्ल आदि । किञ्चुक् शब्द में आदि इकार के स्थान पर एकार तथा मिरा शब्द में इकार के स्थान पर एकार आदेश होता है; जैसे केमुअं, किमुअं, मेरा आदि । पथि, पृथिवी, प्रतिश्रुत्, मूयिक, हरिद्रा और विनीतक शब्दों में इकार के स्थान पर ओकार आदेश होता है; जैसे पओ, पुहई, पुदवी, पठंसुआ, मूसओ, हलदी, बहेडओ आदि । शिपिल और इहुदी शब्दों में आदि इकार के स्थान पर विकल्प से आकार आदेश होता है, जैसे सिट्टिअं, पसटिलं, अहुअं, इहुअं । तित्तिरि शब्द में रकारोत्तरवर्ती इकार के स्थान पर अकार होता है; जैसे तित्तिरो ।

इती तो वाक्यादौ ८।१।९ सूत्र द्वारा वाक्य के आदि में आने वाले इति शब्द के तकारोत्तरवर्ती इकार के स्थान पर अकारादेश किया है; जैसे इअ अंपिअञ्जारे ( इति यत् प्रियाकसाने ) । यहाँ यह विशेषता है कि यह नियम वाक्य के आदि में इति के आने पर ही लागू होता है; मध्य या अन्त में इति के आने पर नहीं लगता है; जैसे पिओति ( प्रिय इति ), पुरिसोत्ति ( पुष्प इति ) आदि ।

जिहा, सिंह, त्रियत् और त्रिशति आदि शब्दों में ति शब्द के साथ इकार के स्थान पर ईकारादेश होता है; जैसे जीहा, सीहो, तीठा, बीठा आदि । बहुलाधिकार होने से एकाध स्थल पर यह नियम लागू भी नहीं होता; जैसे सिंहदत्तो, सिंहरोओ आदि । निर उरसर्ग के रेफ का लोप होने पर इकार के स्थान पर ईकारादेश होता है, नीसरद, नीसाओ आदि ।

दि शब्द और नि उरसर्ग के इकार के स्थान पर उकार होता है; जैसे दुमत्तो, दु आर्द, दुविहो, दुरेहो आदि । प्रचासी और इहु शब्द में इकार के स्थान पर

उत्सव आदेश होता है; जैसे पावासुओ ( प्रावासिकः ), उच्छू ( इच्छुः ) । युधिष्ठिर शब्द में आदि इकार को उकारादेश होता है; जैसे जहुट्टिलो, जाहिट्टिलो ।

द्विधा शब्द के साथ कृग धातु का प्रयोग होने पर इकार के स्थान पर ओकार तथा ८।१।९७ सूत्र में चकार ग्रहण होने से उक्त्वादेश भी होता है; जैसे दोहा क्किञ्जद, दुहा क्किञ्जद आदि । निर्णर शब्द में नकार सहित इकार के स्थान पर विकल्प से ओकारादेश होता है; जैसे ओञ्जरो, निञ्जरो । हरीतकी शब्द में आदि ईकार के स्थान पर अकार और कश्मीर शब्द में ईकार के स्थान पर आकार आदेश होता है; जैसे हरडई, कम्हारा आदि । पानीय आदि शब्दों में ईकार के स्थान पर ८।१।१०१ सूत्र द्वारा हेम ने इकारादेश का संविधान किया है; जैसे पाणिअं, अलिअं, जिअद, बिअउ, करिसो, सारिसो, दुइअं, तदअं आदि ।

कीर्ण शब्द में ईकार के स्थान पर उकार; हीन ओर विहीन शब्दों में ईकार के स्थान पर विकल्प से ऊकार; तीर्थ शब्द में हे परे रहने पर ईकार के स्थान पर उकार; पीयूष, आपीड, विमीतक, कीट्या और ईट्या शब्दों में ईकार के स्थान पर एकार, नीड और पीठ शब्दों में ईकार के स्थान पर एकार; नीड और पीठ शब्दों में ईकार के स्थान पर एकार; मुकुलादि शब्दों में आदि उकार को अकार; उगरी शब्द के उकार के स्थान पर अकार; स्वार्थिक गुरु के उकार को अकार; भ्रुकुटि शब्द में उकार के स्थान पर इकार; पुष्य शब्द में रेफोत्तरवर्ती उकार के स्थान पर इकार; लुत शब्द में आदि उकार के स्थान पर ईकार; सुमद्रा और मुसउ शब्द में उकार के स्थान पर ऊकार एवं उत्साह और उत्सन्न शब्दों का छोड़ अवशेष त्त् और च्त् वर्णवाले शब्दों में उकार के स्थान पर उकार आदेश होता है ।

दुर ठसर्ग के रेफ का लोप होने पर उकार के स्थान पर विकल्प से ऊकारादेश होता है; जैसे दूसहो, दुसहो ( दुस्सह ) ; दूहओ, दुहओ ( दुर्मगः ) । यहाँ इतनी विशेषता और समझनी चाहिए कि रेफ के लोपभाव में उकार का विधान नहीं होता है; जैसे दुस्सहो, विरहो आदि ।

ओरसंयोगे ८।१।११६ सूत्र द्वारा हेम ने संयोग परे रहने पर आदि उकार को ओकार का नियमन किया है, जैसे तोम्डं ( तुम्ड ) ; मोम्डं ( मुम्ड ), पोक्खरं ( पुक्कर ), कोट्टिमं ( कुट्टिमम् ); पोत्यअ ( पुस्तकं ), लोद्धओ ( लुद्धकः ), मोत्ता ( मुत्ता ), बोक्कतं ( बुक्कान्तं ), कोत्तो ( कुन्तलः ) आदि । कुतूहल शब्द में उकार के स्थान पर विकल्प से अकार तथा लकार को द्वित्व; उद्न्यूद शब्द में ऊकार के स्थान पर ईकार; हनूमन्, कञ्चूय और वातूल शब्द में

उकार के स्थान पर उकार; मधुक शब्द में विकल्प से अकार के स्थान पर उकार; नूपुर शब्द में उकार के स्थान पर ओकार एवं स्थूला और त्ण शब्दों में उकार के स्थान पर विकल्प से ओकार आदेश होता है ।

श्रुतोन् ८।१।१२६ सूत्र से ८।१।१४४ सूत्रों तक श्रुकार के स्थान पर होने वाले स्वरो का निरूपण किया है । हेम ने ८।१।१२६ सूत्र द्वारा श्रुकार के स्थान पर अकार आदेश होने का संविधान किया है, जैसे घयं ( घृतं ), तमं ( तृणम् ), षदं ( वृत्तं ), वसहो ( वृषभः ) मओ ( मृगः ), षट्रो ( वृष्टः ) आदि उदाहरणों में संस्कृत श्रु के स्थान पर अकारादेश किया गया है ।

आत्वृशा मृदुक-मृदुत्वे वा ८।१।१२७ सूत्र कृशा, मृदुत्व और मृदुक शब्दों में श्रुकार के स्थान पर विकल्प से आकार का नियमन करता है; जैसे काशा, किशा ( कृशा ), माउक्कं, मउअं ( मृदुकः ); माउक्कं, मउत्तं ( मृदुत्वं ) आदि ।

इकृत्पादौ ८।१।१२८ सूत्र कृपा, सृष्टि आदि शब्दों में श्रुकार के स्थान पर इकार का अनुशासन करता है । प्राकृत प्रकाश में श्रुष्यादि गण पठित शब्दों में अकार के स्थान पर इकार का आदेश किया है । हेम के कृपादि गण और प्राकृत-प्रकाश के श्रुष्यादि गण में कतिपय शब्दों की न्यूनाधिकता का ही अन्तर है । हेम ने कृपादि गण में श्रुष्यादि गण की अपेक्षा अधिक शब्द पठित किये हैं । उक्त सूत्र के उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

किवा = कृपा, दिट्टं = दृष्टं, तिष्टि = सृष्टि, मिअ = मृगः, सिङ्गारो = शृंगारः, घुसिं = घुस्यं, इहदो = श्रुद्धिः, किशाणु = कृश्याणुः, किवो = कृष्यः, किई = कृतिः, तिषं = तृप्तं, किच्चं = कृत्वं, दिट्टी = दृष्टिः, सिट्टी = सृष्टिः, सिगो = मृग आदि ।

हेम ने सामासिक और गौण संस्कृत शब्दों में श्रु के स्थान पर उकारादेश का अनुशासन किया है, जैसे पिउ-अरं = पितृ पृहहम्, पिउवई = पितृपतिः, पिउअनं = पितृअनम्, पिउसिआ = पितृष्या, माउमंडलं = मातृमण्डलम्, उऊ = श्रुतुः, आदि । वृषभ शब्द में व सहित श्रुकार के स्थान पर उकारादेश किया है तथा मृष शब्द में उकार, उकार और ओकारादेश का नियमन किया है, जैसे मुसा, मूसा, मोसा, मुसाबाओ, मूसाबाओ, मोसाबाओ ( मृषाबाद ) । वृष्ट, वृष्टि, पृषह, मृदङ्ग और नपृक शब्दों में श्रुकार के लिये इकार और उकार का नियमन किया गया है, जैसे वृष्टो, वृष्टी, वृष्टी, वृष्टी, सिंहं, पुहं, मिहृष्टो, मुरहृष्टो, नत्तिओ, नत्तुओ । वृहस्वति और वृन्त शब्द में श्रुकार के लिये क्रमशः इकार, उकार तथा इकार, एकार और ओकार आदेश करने का संविधान किया है ।

हैम ने रिः केवलस्य ८।१।१४० सूत्र में व्यञ्जन रहित अनेके श्रृकार के स्थान पर रि आदेश किया है जैसे—रिञ्छो=श्रृञ्छः, रिद्धी=श्रृद्धिः आदि। श्रृण, श्रृजु, श्रृणम, श्रृतु, श्रृपि शब्दों में श्रृकार के स्थान पर विकल्प से 'रि' आदेश होता है; जैसे—रिणं, अणं ( श्रृणन् ) रिञ्जू, उञ्जू ( श्रृजुः ) रिषहो, उसहो ( श्रृषमः ), रिसी, इसी ( श्रृपिः ) आदि।

आहते टिः ८।१।१४३ सूत्र में आहत शब्द में दकारोत्तरवर्ती श्रृकार के स्थान पर टि आदेश किया है; जैसे व्याटिओ। दत्त शब्द में श्रृकार के स्थान पर इद् आदेश होता है; जैसे दरिओ ( दत्तः ), दरिअ सीहेण=दत्तसिंहेन।

हैम ने लुत इलिः क्लृत्तक्लृन्ने ८।१।१४५ सूत्र द्वारा लृ के स्थान पर इलि आदेश करने का अनुशासन किया है; जैसे क्लिन्न-कुसुमोव्यारेसु, घाराक्लिन्न-वत्तं आदि उदाहरणों में क्लृत्त के स्थान पर क्लिन्न आदेश किया गया है।

वेदना, चपेटा, देवर और केसर शब्दों में विकल्प से इकार और एकार होते हैं, जैसे वेअणा, विअणा, चविड, चवेडा आदि। स्तेन शब्द में एकार के स्थान पर एकार और ऊकार विकल्प से होते हैं; जैसे थूण, येणो में स्तेन शब्द के अन्तर्गत एकार को ऊकार और एकार आदेश किये गये हैं।

हैम ने संस्कृत के ऐकार के स्थान पर प्राकृत में एकार होने का विधान ८।१।१४८ सूत्र के द्वारा किया है; जैसे एरावणो ( ऐरावणः ), केटवो ( कैटमः ), केलासो ( कैलासः ) सेला ( शैलाः ), तेलुक्कं ( त्रैलोक्यम् ), वेज्जो ( वैद्यः ) वेह्वं आदि शब्दों में ऐकार एकार के रूप में परिवर्तित हो गया है। हैम ने ८।१।१४९ और १५० सूत्र द्वारा सैन्धव, शनैश्चर और सैन्य शब्दों में ऐकार के स्थान पर इकार आदेश किया है। १५१ वें सूत्र द्वारा सैन्य और दैत्य इत्यादि शब्दों के ऐकार के स्थान पर अइ आदेश किया है। बैरादि शब्दों में ऐकार के स्थान पर विकल्प से अइ आदेश होता है; जैसे वइरं, वेरं; कइलासो केलासो; कइरवं, केरवं वइसवणो, वेसवणो; वइसम्मायणो; वे सम्मायणो, वइआलिओ; वेआलिओ; वइसिअं, वेसिअं, चइत्तो, चेत्तो आदि।

उच्चैः और नीचैः शब्दों में ऐकार के स्थान पर अअ आदेश होता है, जैसे उच्चैः के स्थान पर उच्चअं और नीचैः के स्थान पर नीचअं होता है। हैम ने १५५ वें सूत्र द्वारा घैर्यं शब्द में ऐकार के स्थान पर ईकार आदेश किया है।

'ओन् ओन्' ८।१।१५९ द्वारा संस्कृत शब्दों के औकार के स्थान पर प्राकृत में ओकार आदेश होता है; जैसे कोनुई=कौनुदी, जोक्कणं=यौवनं, कोत्सुहो=



कौस्तुभः, कौसंबी = कौशाम्बी, कौचो = कौञ्चः, कौचिभो = कौचिकः, कौह्मं = कौभाम्यं, कौह्मं = कौभाम्यं, गोदमो = गौतमः । सैन्दर्पोदि शब्दों में औकार के स्थान पर उद् होता है; जैसे सुंदेरं, सुंदरिअं = सौन्दर्यम् . सुंडो = सौण्डः; सुरोअगी = सौद्रोदनिः, दुवारिओ = दौवारिकः, सुंजअगो = सौंजायगः, सुगंअत्तगं = सौगम्य, पुलोमी = पौलोमी, सुवणिओ = सौवर्णिकः ।

कौत्सेयक और पौरादिगण पठित शब्दों में औकार के स्थान पर अउ आदेश होता है; जैसे कउत्सेअयं = कौत्सेयकः, पउरो = पौरः, कउरवो = कौरवः, कउरलम् = कौरानम्, सउई = सौधम्, गउडो = गौडः, मठली ( मौलिः ), मउमं = मौनं, सउरा = सौराः एवं कउला = कौला आदि ।

गौरव शब्द में गकार सहित औकार के स्थान पर व्याकार और अउरादेश तथा नौ शब्द में औकार के स्थान पर आवादेश होता है । प्रयोदश के समान संख्यावाची शब्दों में आदिस्वर का पर स्वर और व्यंजन के साथ एकारादेश होता है । स्पदिर, विच, मित्त, अउस्कर, कउल और कणिआ आदि शब्दों में आदि स्वर का पर स्वर और व्यंजन के साथ एत् आदेश होता है ।

पूतर, बदर, नखमालिका, नखरालिका, पूगफल, मयूख, लवन, चतुर्गुण, चतुर्थ, चतुर्दश, चतुर्वार, सुहमार, पुतूहल, उदूखल, उलूखल, अनाप, निपग्य एवं प्राकरण शब्दों में आदि स्वर का पर स्वर और व्यंजन के साथ एत्, ओत्, और उत् आदेश होता है ।

इस प्रकार हेम ने इस पाद में १७४ सूत्रों द्वारा स्वर-विकार का विस्तार-पूर्वक नियमन किया है । हेम का यह विधान प्राकृत के समस्त वैद्याकरणों की अपेक्षा नवीन और निरतृप्त है । वररुचि ने स्वर-विकार का निरूपण ५०-६० सूत्रों में ही कर दिया है । त्रिविक्रम ने विस्तार करने की चेष्टा की है, पर हेम की सीमा से बाहर नहीं निकल सके हैं ।

स्वरादसंपुच्छस्यानादेः ८१।१७६ सूत्र से ८१।२७१ सूत्र तक व्यंजन-विकार का विचार किया गया है । 'स्वरादसंपुच्छस्यानादेः' सूत्र की व्यञ्जन परिवर्तन का अधिकार सूत्र बड़ा है । ८१।१७७ सूत्र में बताया गया है कि एक ही शब्द के भीतर रहे हुए असंपुच्छ क ग च ज त द प ब य और व का लोप होता है और इनके लोप हो जाने के उपरान्त केवल स्वर शेष रह जाता है । हेम ने 'अवर्णोयभ्रुतिः' ८१।१८० सूत्र द्वारा यह भी बतलाया है कि वचा हुआ स्वर अ और आ से परे हो तो प्रायः उसके स्थान में य का प्रयोग होता है । इस सूत्र द्वारा निरूपित भाषा की प्रवृत्ति 'य' भ्रुति कहलाती है । जैसे—  
क—तित्परो ( तीर्थकरः ), लोओ ( लोकः ), मुउलो ( मुकुलः ) णठलो ( नहुलः )  
ग—नओ ( नगः ), नयरं ( नगरम् ), मयंकी ( मृगाङ्कः )

- क—कन गहो ( कचग्रहः ), कई ( शची )  
 ज—जओ ( गजः ), जनावई ( प्रजापतिः ), रययं ( रजतम् )  
 त—घई ( घात्री ), जई ( यतिः ), रसायलं ( रसातलम् ), राई ( रात्रिः )  
 द—र्या ( गदा ), मयणो ( मदनः ), नई ( नदी ), मयो ( मदः ),  
 वनमं ( वदनं )  
 प—रिल ( रिपुः ), सुठरिसो ( सुपुत्रः )  
 द—विउहो ( विवुधः )  
 य—निओओ ( विनोः ), नयगं ( नयनम् ), वाउगा ( वायुना )  
 ब—बड्ढागलो ( बड्ढवानलः ), लायमं ( लायम् ), जीओ ( जीवः )

हेम ने १८७ वें सूत्र में यमुना, चामुगडा, कानुक और अतिमुक्तक शब्दों के मकार का लोप कहा है तथा लुप्त मकार के स्थान पर अनुनासिक होता है। जैसे जउंगा, चाँउगडा, काँउओ अणिउँतयं आदि शब्दों में मकार का लोप हुआ है और लुप्तमकार का अवशिष्ट स्वरों के ऊपर अनुनासिक हो गया है। १७९ वें सूत्र में पकार के लोप का निषेध किया गया है। कुब्ज, कपरं और कील शब्द के ककार को खकार आदेश होता है। मरकत, मदकल और कन्दुक के ककार के स्थान पर गकार; किरान शब्द में ककार के स्थान पर चकार, शीकर शब्द में ककार के स्थान पर मकार तथा हकार; चन्द्रिका शब्द में ककार के स्थान पर मकार एवं निक्प, स्तष्टिक और चिकुर शब्द में ककार के स्थान पर हकार आदेश होता है।

ख ष य घ ङ म ये व्यञ्जन अनुक्रम से क्+ह, ग्+ह, त्+ह, द्+ह, प्+ह, ब्+ह से बने हुए हैं। प्राकृत में विजातीय संयुक्त व्यञ्जनों का प्रयोग निषिद्ध है; अतः शब्द के आदि में नहीं आये हुए और असंयुक्त येने उर्युक्त सभी अक्षरों के आदि अक्षर का प्राकृत में प्रयोग नहीं होता है। अतएव हेम ने उक्त सभी व्यञ्जनों के स्थान पर हकार आदेश का विधान किया है, जैसे महो ( मखः ), मुई ( मुखं ), नेहला ( नेखला ), लिइइ ( लिखति ), पनुहेण ( प्रनुखेन ), सही ( सखी ), आलेहिया ( आलिखिता ), मेहो ( मेयः ), षट्मं ( जर्मं ), माहो ( मायः ), लाहअं ( लायवं ), नाहो ( नायः ), गाहा ( गाथा ), मिहुगं ( मियुगं ), सवहो ( शययः ), कहेइ ( कयय ), कहइस्सं ( कययिष्मानि ), चाहु ( छातुः ), राहा ( राथा ), बाहो ( बाथः ) बहिरो ( बधिरः ), बाहइ ( बाधते ), ईंदहणु ( इन्द्रयनुः ), माहवौनदा ( माषवौञ्जा ), सहा ( समा ), सहायो ( स्मायः ), णई ( नमः ), षणहरो ( षनमरः ), शोइइ ( शोमते ), आहरयं ( आनरणं ), दुल्लहो ( दुर्लभः ) आदि।

हेम ने घृषक् शब्द में यक्षो विकल्प से घकारादेश, मृंखला शब्द में लक्षो ककारादेश, पुन्नाग और भगिनी शब्द में गकार के स्थान पर नकारादेश, छाग शब्द में गकार के स्थान पर लकारादेश, दुर्भाग और मुषग शब्द में गकार के स्थान पर दकारादेश, खचित और निशाच शब्द में च और ल् आदेश, बटिल शब्द में ककार के स्थान पर विकल्प से हकारादेश, स्त से परे असंपुञ्ज टकार के स्थान पर टकारादेश, सदा, शकट और हेम शब्दों में टकार के स्थान पर टकारादेश, स्तच्छि शब्द में टकार के स्थान पर लकारादेश एवं षन्त चपेय शब्द में तथा षष्टि धातु में टकार के स्थान पर लकारादेश का विधान किया है।

हेम व्याकरण के ठो डः ८।१।११९ २०२, २०३, २३१, २३६ और २३७ सूत्रों के अनुसार स्वर से परे आये हुए असंपुञ्ज ट ठ ड ण व फ और ब के स्थान से अनुक्रम में ड, ट, ल, म, न, और व का आदेश होता है; जैसे घट = षट, पीठ = पीट, गुड = गुल, गनन = गमन, वृष = वृक्, रेव = रेन, अलाडु = अलाडु। हेम ने वेरु शब्द में गकार के स्थान पर विकल्प से लकारादेश, तुन्ड शब्द में तकार के स्थान पर च और छ का आदेश; रगर, बरर और त्वर शब्द में तकार के स्थान पर टकारादेश; प्रत्यादि में तकार के स्थान पर हकारादेश; वेतस शब्द में तकार के स्थान पर टकारादेश, गमित और अतिमुञ्जक शब्दों में तकार के स्थान पर णकारादेश; सदित शब्द में दिशदित तकार के स्थान पर ण आदेश, सत्तति के तकार के स्थान पर 'त' आदेश, अतसी और सातवाहन शब्दों में तकार के स्थान पर लकारादेश, पलित के तकार के स्थान पर विकल्प से लकारादेश; पीठ शब्द में तकार के स्थान पर लकारादेश; नित्ति, वसति, भरत, कातर और मातुलि शब्दों में तकार के स्थान पर हकारादेश; मेथ, शिथिर, शिथिल और प्रयन शब्दों से यकार के स्थान पर दकारादेश; निशीष और पृथिवी शब्दों में यकार के स्थान पर दकारादेश; दशन, दष्ट, दग्ध, दोला, दण्ड, दर, दम्भ, दर्भ, कदन और दोहद शब्दों में दकार के स्थान पर हकारादेश; देय और दह धातुओं में दकार के स्थान पर हकारादेश; संख्यावाची शब्दों तथा गद्गद् शब्द में दकार के स्थान पर रेकारादेश; अट्टमवाची कदली शब्द में दकार के स्थान पर रेकारादेश एवं प्रपूर्वक दीनि धातु तथा दोहद शब्द में दकार के स्थान पर णादेश का संविधान किया है।

कदम्ब शब्द में दकार के स्थान पर विकल्प से लकारादेश; दीनि धातु में दकार के स्थान पर विकल्प से घकारादेश, कर्दपित शब्द में दकार के स्थान पर ककारादेश, कज्जुह शब्द में दकार के स्थान पर हकारादेश, निषध शब्द में

घकार के स्थान पर ढकारादेश, ए औपध शब्द में घकार के स्थान पर विकल्प से ढकारादेश होता है। हेम ने ८।१।२२८-२२९ में स्वर स परे शब्द के मध्य, अन्त औः आदि म आनेवाले नकार के स्थान पर णकारादेश का संविधान किया है, जैसे वृत्त, भयणो, व्यण, नयण, माणर प्रयोगों में मध्यवर्ती और अन्तिम नकार का णकार हुआ है। णयर, णरा, णइ, रोद आदि में आदि नकार के स्थान पर णकारादेश हुआ है। निम्ब और नापिन शब्द में नकार के स्थान पर ल और ण् आदेश हाते हैं।

यदि, पस्व, परिष, परिखा, पनस, पारिमद्र शब्दों में पकार के स्थान पर फकारादेश होता है तथा प्रभूत शब्द में पकार के स्थान पर वकारादेश होता है। नाप और पीड शब्द में पकार के स्थान पर विकल्प से मकारादेश, पापर्दि शब्द में पकार के स्थान पर रेफादेश, विसिनी शब्द में वकार के स्थान पर मकारादेश, क्वम्भ शब्द में वकार के स्थान पर मकार और यकारादेश, क्कैठम शब्द में मकार के स्थान पर वकारादेश, विप्रम शब्द में मकार के स्थान पर ढकारादेश, मग्मथ शब्द में मकार के स्थान पर वकारादेश, अभिमन्थु शब्द में मकार के स्थान पर वकारादेश एव भ्रमर शब्द में मकार के स्थान पर विकल्प से सकारादेश होता है। हेम का यह संविधान वररुचि के समान ही है।

हेम ने आदर्शों ज ८।१।२४५ सूत्र द्वारा शब्द के आदि में आये हुए यकार के स्थान पर लकारादेश करने का नियमन किया है, जैसे लो = यद्य, लो = यम, जाइ = याति आदि। युष्मद् शब्द में यकार के स्थान पर तकारादेश किया है, जैसे—तुम्हारिसो, तुम्हकेरो आदि। यष्टि शब्द में यकार के स्थान पर लकारादेश, उत्तरीय शब्द में तथा अनीय और तीय इन वृत्त्य प्रत्ययों में यकार के स्थान पर ल्जादेश, अकान्त-कान्ति-मित्त अर्थ वाची छाया शब्द में यकार के स्थान पर विकल्प से इकारादेश, किरि और मेर शब्द में रकार के स्थान पर ढकारादेश, पर्याण शब्द में रफ के स्थान पर डा-आदेश एव करवीर शब्द में प्रथम रकार के स्थान पर णकारादेश हाने का अनुशासन हेम ने किया है। हेम ने इस प्रकरण में वररुचि की अपेक्षा अधिक शब्दों का अनुशासन किया है।

'हरिद्रादौ ल' ८।१।२५४ सूत्र द्वारा हरिद्रादि गणपन्ति असयुक्त शब्दों में रेफ के स्थान पर लकारादेश होता है, जैसे हलिही, दलिदाद, दलिहो, दालिह, हलिहो, जहुट्टिलो, सिटिलो, मुइलो, चलणा, वजुणे, कजुणा आदि शब्दों में रेफ के स्थान पर लकारादेश किया गया है। हरिद्रादि गणपन्ति शब्द हेम के प्रायः वही हैं जिनकी लक्ष्मीधर ने 'षड् माघाचन्द्रिका' में गणना की है।

अनुशासक दृष्टि से हेम इन शब्दों के संविधान में बरुचि से आगे नहीं बढ़ सके हैं ।

स्थूल शब्द में लकार के स्थान पर रेफादेश; लाहल, लाङ्गल और लाङ्गूल शब्दों में आदिके लकार के स्थान पर णकारादेश विकल्प से होता है । ललाट-शब्द में आदि लकार के स्थान पर णकार, शर शब्द में वकार के स्थान पर मकार; स्वप्न और नीध्य शब्दों में वकार के स्थान पर विकल्प से यकार; सामान्यतः श और ष के स्थान में सकार; स्नुपा शब्द में पकार के स्थान पर ष, दशन् और पाषाण शब्दों में श और ष के स्थान पर हकार; दिवस शब्द में सकार के स्थान पर हकार; अनुस्वार से परे हकार के स्थान पर विकल्प से ध, घ, शमी; शाव, सुधा और सप्तपर्ण शब्दों में आद्य वर्ण के स्थान पर छकार एवं शिरा शब्द में आदिम वर्ण को विकल्प से छकारादेश होता है ।

भाजन, दनुज और राजकुल शब्दों में सस्वर जकार का विकल्प से लुक् होता है; जैसे भाण, भायण ( भाजन ), दणु-बहो, दणुअ-बहो ( दनुजबधः ) और रा-उल, राय-उल ( राजकुल ) में सस्वर जकार का लोप किया है । यहाँ हेम के वैकल्पिक प्रयोग बरुचि की अपेक्षा विलुप्त नवीन हैं । ऐसा लगता है कि हेम के समय में भाषा का प्रवाह बहुत आगे बढ़ गया था ।

व्याकरण, प्रकार और आगत शब्दों में ककार, गकार का सस्वर लोप होता है; यथा वारण, वावरणं, पारो, पायारो, आओ, आगओ आदि । हेम का यह अनुशासन भी बरुचि से नवीन है । प्राकृत प्रकाश में लुक् प्रकरणका जिक्र नहीं है ।

किसलय, कालायस और हृदय शब्द में सस्वर यकार का विकल्प से लुक् होता है; जैसे किसलं, किसलय; कालासं, कालायसं; महृण्य समा सहिआ, जाला ते सहि अपहिं घोषन्ति, निसम्णुण्णियअ-ह्दिअस ह्दिअयं ।

हेम ने दुर्गादेवी, उदुम्बर, पादपतन और पादपीठ शब्दों में विकल्प से मध्यवर्ती दकार का सस्वर लोप करके दुर्गा-बी, दुर्गा-एवी, उम्बरो, उउम्बरो, पा-उउणं, पाय-उउणं, पा-बीटं, पाय-बीटं आदि शब्दों का अनुशासन किया है । यद्यपि बरुचि ने भी उदुम्बरादि शब्दों में मध्यवर्ती दकार के लोप का अनुशासन किया है, तो भी हेम ने प्रक्रिया में बरुचि की अपेक्षा अधिक शब्दों का अनुशासन किया है ।

यावत्, तावत्, जीवित्, वर्तमान, अवत्, प्रावारक और देवकुल शब्दों में अन्तर्वर्तमान वकार का सस्वरलोप होता है । जैसे जा, जाव; ता, ताव; जीअं, जीविअं; उत्तमाणे, अवत्तमाणे; अओ, अवओ; पारओ, प्रावारओ दे उलं देव-

उत्रं; एमेव, एवमेव आदि । हैम व्याकरण का यह अनुशासन प्राकृत प्रकाश के समान है । हाँ, हैम ने कुछ अधिक शब्दों का अनुशासन अवश्य किया है ।

संक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है कि हैम ने इस प्रथम पाद में स्वर और व्यंजन विकारका विस्तार सहित प्रतिपादन किया है । विभिन्न शब्दों की विभिन्न परिस्थितियों में होने वाले स्वर और व्यंजनों के विकारी रूप का वर्णन किया है । व्यंजनों में असंयुक्त व्यंजनों का विचार ही इस पाद में अनुशासित किया गया है । प्राकृत प्रकाश के संकीर्ण प्रकरण में, जिन अनुशासनों को बतलाया गया है, वे सभी अनुशासन हैम ने इसी पाद में बतलाये हैं । वर्ण लोप, वर्णागम, वर्णविकार और वर्णदेश आदि के द्वारा स्वर और व्यंजनों के विभिन्न विकारों को इस पाद में लक्षित किया गया है । हैम ने इसमें भाषा की विभिन्न स्थितियों का साङ्गोपाङ्ग अनुशासन प्रदर्शित किया है । अपने पूर्ववर्ती सभी प्राकृत व्याकरणों से यह इस क्षेत्र में आगे है ।

### द्वितीय पाद

इस पाद में प्रधानतः संयुक्त व्यंजनों के विकार का निर्देश किया है । हैम ने १-७६ सूत्र तक संयुक्त व्यंजनों के आदेश का नियमन और ७७-८८ सूत्र तक संयुक्त व्यंजनों में से आदि, मध्य और अन्त के किसी एक व्यंजन के लोप का विधान किया गया है । ८९-९९ सूत्र तक विशेष परिस्थितियों में वर्णों के द्वित्व का निर्देश किया है । १००-११५ सूत्र तक स्वर यत्यय—स्वरभक्ति के सिद्धान्तों का प्रस्थापन किया है; यह प्रकरण भाषा-विज्ञान के कतिपय सिद्धान्तों को अपने में आत्मसात् करने की पूर्ण क्षमता रखता है । ११६-१२४ सूत्र तक वर्ण-व्यत्यय के नियम बतलाये गये हैं । इस प्रकरण में हैम ने उच्चारण सूत्र के उन सिद्धान्तों की ओर संकेत किया है, जिनके कारण बारह कोश की दूरी की भाषा में अन्तर आता है । प्रत्येक व्यक्ति अपनी शारीरिक सम्पत्ति की विभिन्नता के कारण—उच्चारणोपयोगी अवयवों की विभिन्नता के कारण, उच्चारण में अपनी निजी विशेषता रखता है; जिसे अनेक व्यक्ति वर्ण व्यत्यय का प्रयोग कर देते हैं । हैम ने उक्त सूत्रों में वर्ण व्यत्यय के सिद्धान्तों का बड़े सुन्दर ढंग से ग्रंथन किया है । १२५-१४४ सूत्र तक पूरे शब्द के प्राकृत आदेशों का नियमन किया है । १३०-१३७ सूत्र तक प्राकृत में विप्रक्तियों की व्यवस्था पर प्रकाश डाला गया है । इसे हम हैम का प्राकृत भाषा सम्बन्धी कारक प्रकरण कह सकते हैं । १३९ वें सूत्र से १४४ वें तक वचन सम्बन्धी आदेशों की व्यवस्था की गई है । १४५-१७३ सूत्र तक भिन्न-भिन्न अर्थों में प्राकृत प्रत्ययों के आदेश बतलाये गये हैं । १७४-२१८ सूत्र तक प्राकृत अर्थों का अर्थ सहित निर्देश किया गया है ।

हेम ने बतलाया है कि श्च, मुच्, दध, रुग्ण और मृदुत्व के संयुक्त व्यंजनों को विकल्प से ककारादेश होता है, जैसे श्च से क्क और मुच् से मुक्क आदि, ध्वनि की व्यवस्था करते हुए हेम ने "धः खः क्वचित्तु छ शौ ङ्गादि स्त्र द्वारा बतलाया है कि क्ष के स्थान पर खर्ण होता है, पर क्वचित् छ और झ भी आदिष्ट होते हैं; जैसे खभो (क्षयः), लखर्ण (लक्षणः), खीर्ण (धीर्णः), छीर्ण, झीर्ण आदि शब्दों में क्ष के स्थान पर ख, छ और झ का आदेश किया है। संज्ञा में फ्क और रक्क के स्थान पर ख आदेश की व्यवस्था बतलायी गयी है और उदाहरणों में पोक्खरं (पुष्करं), पोक्खरिणी (पुष्करिणी), निक्खं (निष्कं), खंधावारो (सन्धावारः), अवक्खन्दो (अवरकन्दः) आदि शब्द उपस्थित किये गये हैं। शुष्क और स्कन्द शब्दों में फ्क और रक्क के स्थान पर खादेश होता है। श्वेटकादि शब्दों में संयुक्त ङर्ण को खा देश किया है, जैसे खेदुओ (श्वेटकाः), खोडओ (क्षोडकः), खोडओ (स्रोटकः), खेडिओ (स्फोटिकः) आदि।

स्थायु शब्द में स्था के स्थान पर खादेश; स्तम्म शब्द में स्त के स्थान पर विबल्प से खादेश; रक्क शब्द में संयुक्त 'क्क' के स्थान पर खादेश, शुक्क शब्द में संयुक्त ल्क के स्थान पर खादेश; वृत्ति और चत्वर शब्द में संयुक्त के स्थान पर चादेश; चैत्य शब्द को छोड़ शेष 'त्य' वाले शब्दों में त्य के स्थान पर चादेश; प्रत्यूप शब्द में त्य के स्थान पर च और ष के स्थान पर हादेश; त्व, ध्व, ड और ध्व के स्थान पर क्रमशः च, छ, ज और झ आदेश एवं वृक्षिक शब्द में सस्वर श्चि के स्थान पर ङ्चु आदेश होता है।

हेम ने 'छोक्ष्यादौ' ङ्गादि १७ के द्वारा एक नियम बताया है कि अक्ष्यादि शब्दों में संयुक्त शब्द के स्थान पर 'च्छ' आदेश होता है; जैसे अच्छि (अक्षि), उच्छु (इच्छुः), लच्छी (लक्ष्मीः), कच्छो (कक्षः), छीर् (धीर्), छरिच्छो (सदक्षः), बच्छो (वृक्षः), मच्छिआ (मक्षिका), छेचं (चेत्रं), छुहा (छुषा), दच्छो (दक्षः), कुच्छी (कुक्षिः), आदि उदाहरणों में छ के स्थान पर च्छ आदेश का विधान किया है, बरसचि की अपेक्षा हेम का यह एक विशेष नियम है, इसके द्वारा इन्होंने मापा की एक नयी प्रवृत्ति की ओर संकेत किया है। इनके समय में उच्चारण सौकर्य बढ़ रहा था और मापा एक नयी मोड़ ले रही थी।

'क्षमाया कौ' ङ्गादि १८ स्त्र द्वारा हेम ने पृष्ठी दाचो क्षमा शब्द में क्ष के स्थान पर छ आदेश का विधान किया है। इच्छे इनकी एक विशेषता यह दृष्टिगोचर होती है कि संस्कृत में एक ही क्षमा शब्द पृष्ठी और क्षमा (मात्री) के अर्थ में व्यवहृत होता था, पर इन्होंने इस अनुशासन द्वारा पृष्ठी अर्थ में

द्यमा और क्षमा ( माफी ) अर्थ में लमा शब्द का निर्देश किया है । इससे हेम की सूक्ष्म सूक्ष्म का पता लगता है ।

श्रुत शब्द में विकल्प से क्ष के स्थान पर च्छ का आदेश होता है, जैसे रिच्छ, रिष्णं, रिच्छो, रिक्खो इत्यादि शब्दों में क्ष के स्थान पर च्छ आदेश हुआ है ।

संस्कृत का एक ही क्षण शब्द द्वय अर्थवाची है । क्षण शब्द का एक अर्थ समय होता है और दूसरा अर्थ उत्सव होता है । संस्कृत में क्षण ही शब्द के दो अर्थ होने से पर्याप्त भ्रान्तियाँ हुई हैं; किन्तु प्राकृत भाषा में उक्त भ्रान्तियों को दूर करने का यत्न किया गया है । हेम ने उक्त तथ्य को लेकर ही उत्सव वाची क्षण शब्द में क्ष के स्थान पर छ आदेश किया है । वर क्षण शब्द समयवाची रहता है, उक्त समय क्ष के स्थान पर ख आदेश होता है । अतः उत्सव अर्थ में छणो ( क्षण. ) और समय अर्थ में खणो ( क्षणः ) रूप बनते हैं । हेम का यह अनुशासन उन्हें संस्कृत और प्राकृत दोनों ही भाषाओं के वैयाकरणों में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करता है ।

अनिश्चित अर्थ में ह्रस्व स्वर से परे ध्य, थ्र, ल्थ और प्थ के स्थान पर च्छ आदेश होता है; जैसे पथ्य के स्थान पर पच्छं, पथ्या के स्थान पर पच्छा, मिथ्या के स्थान पर मिच्छा, पश्चिमं के स्थान पर पच्छिमं, आश्चर्य के स्थान पर अच्छेरं, पश्चात् के स्थान पर पच्छा, उल्लाह के स्थान पर उच्छाहो, मत्सर के स्थान पर मच्छरो, मन्थरो; संवत्सर के स्थान पर संवच्छरो, संदच्छरो; लिप्सति के स्थान पर लिच्छद्, जुगुप्सति के स्थान पर जुगुच्छद्, अप्सरा के स्थान पर अच्छरा रूप बनते हैं । सामर्थ्य, उत्सुक और उत्सव शब्दों में संयुक्त वर्ण के स्थान पर विकल्प से छ आदेश होता है; जैसे सामच्छं, सामर्थ्यं ( सामर्थ्यं ); उच्छुओ, ऊसुओ ( उत्सुकः ) तथा उच्छो, ऊसवो ( उत्सवः ) आदि । स्पृहा शब्द में संयुक्तवर्ण के स्थान पर छ आदेश होता है; जैसे छिहा ( स्पृहा ) आदि ।

द्य, द्य और र्या के स्थान पर ज आदेश होता है; जैसे मज्जं ( मद्यं ), अदज्जं ( अवद्यं ), वेज्जो ( वैद्यः ), जुई ( द्युतिः ), जोओ ( द्योतः ), जज्जो ( ज्यः ), सेज्जा ( शय्या ), मज्जा ( मार्या ), कज्ज ( कार्यं ), वज्जं ( वज्र ), पज्जाओ ( पर्यायः ) पज्जत्तं ( पर्यातन् ), मज्जाया ( मर्यादा ) आदि । अभिमन्नु शब्द में संयुक्त के स्थान पर विकल्प से ज और ज्ज आदेश होते हैं; जैसे अहिमज्जू, अहिमजू ( अभिमन्नुः ) । ध्वज्ज शब्द में संयुक्त के स्थान पर विकल्प से ज्ज आदेश होता है; जैसे क्षओ, धओ ( ध्वज्ज. ) आदि । इन्ध धातु में संयुक्त के स्थान पर 'ज्ञा आदेश एवं वृत्त, प्रवृत्त, मृत्तिका, पतन और कर्दपिन शब्दों में संयुक्त के स्थान पर टकारादेश होता है ।



धूर्तादि को छोड़ शेष तं वाले शब्दों में तं के स्थान पर ट आदेश होता है, जैसे केन्द्रो वृष्टी, जट्टो, पयट्ट, वट्टुल, रायवट्टय, नट्टरै, सट्टिअ आदि ।

हेम ने उपर्युक्त जितने भी नियम बतलाये हैं, वे शायद ही निरपवाद होंगे । वस्तुतः भिन्न भिन्न परिस्थितियों में उच्चारण का मुखसौकर्य ही नियम बन गया है । हेम ने भविष्य में भाषा का क्या रूप होना चाहिए, इस पर प्रकाश नहीं डाला है, बल्कि उन्हें जा शब्द जिस रूप में प्राप्त हुए हैं, उन्हीं का शास्त्रीय विवेचन कर दिया है । इन्होंने भविष्यत्कालीन भाषा को पानिनि की तरह नियमों में जकड़ने का अनुशासन नहीं किया है । हेम क समस्त नियम वर्तमानकालीन भाषा के अनुशासन के लिए हैं, अतः प्रायः सभी नियमों में बैकल्पिक विधान वर्तमान है ।

हेम ने वृन्त शब्द में सयुक्त के स्थान पर ञ्, अस्थि और विस्स्थुल शब्दों में सयुक्त के स्थान पर ठ, उप्प्रादिर्बन्धित थ के स्थान पर ट, गर्त शब्द में सयुक्त क स्थान पर ड, समर्द, वितर्दि, विच्छर्द, छर्दि, कपर्द और मर्दित शब्दों में 'र्द' क स्थान पर ट, गर्दम शब्द में र्द के स्थान पर ड, कन्दलिका और मिन्दपाल शब्दों में सयुक्त क स्थान पर षड, स्तब्ध शब्द में दोनों सयुक्तों के स्थान पर क्रमशः ठ, ट, दग्ध, विदग्ध, वृद्धि और वृद्ध शब्दों में सयुक्त के स्थान पर ट, धद्दा, श्रुद्धि, मूर्धा और अर्ध शब्दों में सयुक्त के स्थान पर विकल्प से ट, म्म और श शब्दों में सयुक्त क स्थान पर ण, पञ्चाशत, पञ्चदश और दत्त शब्दों में सयुक्त के स्थान पर ण, मन्थु शब्द में सयुक्त के स्थान पर विकल्प से न्त, पर्यस्त शब्दों में स्त के स्थान पर य और ट, उत्साह शब्द में सयुक्त के स्थान पर विकल्प से थ तथा ह के स्थान पर रेफ, समस्त और स्तम्भ शब्दों को छोड़ शेष स्त वाले शब्दों में सयुक्त के स्थान पर य, स्तव शब्द में स्त के स्थान पर विकल्प से य, भरम और आत्मन् शब्दों में सयुक्त के स्थान पर प, प्य और स्प के स्थान पर प, भीष्म शब्द में भ्म के स्थान पर प, श्लेष्म ह के स्थान पर म, शब्द में भ्म के स्थान पर प, ताम्र और अम्र शब्द में सयुक्त क स्थान पर व, विह्वल शब्द में ह्व क स्थान पर विकल्प से म, ब्रह्मचर्य, त्र्यं, सौन्दर्य और शौण्डर्य शब्दों में र्यं के स्थान पर र, धैर्य शब्द में र्यं क स्थान पर निवृत्त्य से र, पर्यन्त शब्द में र्यं क स्थान पर र तथा पकारोत्तरवर्ती अकार क स्थान पर एकार, आश्चर्य शब्द में र्यं के स्थान पर र तथा आश्चर्य शब्द म अकार स परे र्यं के स्थान पर रिब्, अर, रिब्ज और रीअ आदेश हात है ।

पर्यस्त, पर्याण और सौकुमार्य शब्दों म व क स्थान पर ल्, वृहस्पत और वनस्पत शब्दों में सयुक्त क स्थान पर स, नाष्य शब्द में सयुक्त क स्थान पर ह, कापीना में सयुक्त क स्थान पर ह, दुःख, दाउग और तीर्थ शब्दों में

संयुक्त के स्थान पर ह; कुष्माण्ड शब्द में ष्मा के स्थान पर ह तथा षड के स्थान पर ल; पश्म, श्म, ष्म, र्म और ह्य शब्दों में संयुक्त के स्थान पर मकार सहित ह; सूश्म, ज्म, ष्म, र्म, ह्य, ह्य और श्य शब्दों में संयुक्त के स्थान पर णकाराक्रान्त ह एवं ह के स्थान पर लह आदेश होता है ।

संयुक्त शब्दों में रहने वाले क ग ट ड त द प श ष और स प्रथम वर्ण हो तो इनका लोप होता है, जैसे मुक्त ( मुक्तं ), सित्यं ( सित्यं ) दुद्ध, मुद्ध, छप्पओ, कप्पळं, खम्मो, सप्पओ, उप्पाओ, मम्मू, सुत्तो, गुत्तो, गोट्टी, छट्टो, नित्ठुरो आदि ।

यदि न् न् और य् संयुक्त वर्णों में से द्वितीय वर्ण हो तो उनका लोप हो जाता है, जैसे रस्सो ( रस्मि ), जुम्मं ( युम्मं ) इत्यादि ।

ल, व और र का, चाहे ये संयुक्त वर्णों के पहले हो या दूसरे—सर्वत्र लोप हो जाता है, जैसे उक्का = उल्का, वळ्ळं = वल्कलम्, सद्दो = शब्द, अद्दो = अब्दः, लोद्दओ = लुब्धकः, अक्को = अर्कं, वम्मो = वर्गः, विक्कवो = विकल्पः, पक्क, विक्कं = पक्कम्, घत्थो = घ्वस्त चक्कं = चक्कम्, गद्दो = ग्रहः, रत्ती = रात्रिः इत्यादि ।

द्र वाले संस्कृत शब्दों के द्र के र का विकल्प से लोप होता है; जैसे चन्दो = चन्द्रः, दवो = द्रव, दहो = दुह, दुमो द्रुम, मद = मद्रम्, बद्दो = बद्रः, समुद्दो = समुद्रः ।

धात्री शब्द के र का; तीक्ष्ण शब्द के ण का; ज शब्द के ज का; मध्याह्न शब्द के हका और दशाह्न शब्द में ह का विकल्प से लोप एवं श्मभ्रु और श्मशान शब्द के आदि वर्ण का लोप होता है ।

हरिश्चन्द्र शब्द में क्ष का और रात्रि शब्द में संयुक्त का लोप होता है, जैसे हरिचन्दो = हरिश्चन्द्रः, राद्द, रत्तो = रात्रिः ।

संयुक्त व्यञ्जनों में पहले आने हुए क्, ग्, ट्, ड्, त्, द्, प्, श्, स्, जिह्मानुलीय और उन्मनानीय का लोप होने पर जो अक्षर रह जाता है, वह यदि शब्द के आदि में न हो तो उसकी द्विरक्ति हो जाती है, जैसे मुत्तं ( मुक्तं ), दुद्धं ( दुग्गं ), उक्का ( उल्का ), नम्मं ( नम्मं ), अक्को ( अर्कः )

हेन ने ८२१३० में बतलाया है कि द्वितीय और चतुर्थ में द्वित्व का अन्तर आने पर द्वितीय के पूर्व प्रथम और चतुर्थ के पूर्व तृतीय हो जाता है; जैसे दक्कण, मुत्त, कट्ट, तित्थ, गुप्प आदि शब्दों में द्वित्व के समय वर्ण के द्वितीय वर्ण के पूर्व प्रथम वर्ण हो ग्ना है और वर्णों, निच्चरो, निच्चरो आदि में चतुर्थ वर्ण के पूर्व तृतीय वर्ण हो ग्ना है ।

हेम का यह द्वित्व प्रकरण ८.२।१९ सूत्र तक चलता है। इन्होंने इस प्रकरण में सामानिक शब्दों में विकल्प से द्वित्व किया है तथा रेफ और हकार के द्वित्व का निषेध किया है।

१०० सूत्र से ११५ सूत्र तक स्वरभक्ति के सिद्धान्तों का प्ररूपण किया गया है। इस प्रकरण में अकार आगम कर स्नेह से सणेहो, नेहो; अग्नि से अग्नी और अग्नी, क्षमा से छमा, श्लाघा से सलाहा; रत्न से रयण; प्लव से पलक्वो तथा हँ, श्री, ही, कृत्स्न, क्रिया आदि शब्दों में संयुक्त के अन्त्य व्यञ्जन के पूर्व इकार आगम करने का नियमन किया है। जैसे हँ में इकार आगम होने से अरिहह, अरिहा, गरिहा, बरिहो; श्री में इकार आगम होने से सिरी; ही में इकार का आगम से हिरी, हिरिओ, कृत्स्न में इकार का आगम होने से कसिणो; क्रिया में इकार का आगम होने से किरिआ आदि शब्द बनते हैं।

शँ, र्यं, तत्त और वज्र शब्दों में संयुक्त के अन्त्य व्यञ्जन के पूर्व विकल्प से इकार का आगम होता है; जैसे शँ में इकार का आगम होने से आयरिसो, आयंतो, सुदरिसणो, मुदरुणो, दरिसण, दंसणं; र्यं में इकार का आगम होने से वरिसं, वासं, बरिसा, वासा, बरिस सयं, वास-सयं, आदि एवं संयुक्त अन्त्य व्यञ्जन लकार के पूर्व इद् आदेश होने से; किल्लिनं, किल्लिन्न किल्लिहं, सिलिट्टं, पिलुट्टं, पिलिसो आदि शब्दों का साधुत्व दिखलाया है।

स्यात्, मव्य, चैत्य, और चौर्य आदि शब्दों में संयुक्त यकार के पूर्व इकार का आगम होता है; जैसे सिया, सिआ वाओ, मविओ, चेदअं, चोरिअं, येरिअं, भारिआ, गहीरिअं, आयरिओ, सोरिअं, वीरिअं, बरिअं, सरिओ, किरिअं, बहर्चरिअं आदि। स्वप्न शब्द में नकार के पूर्व इकार का आगम होता है, जैसे सिदिणो; सिग्ध शब्द में संयुक्त नकार के पूर्व अकार और इकार आदेश होते हैं; जैसे सणिद्धं, सिणिद्धं; दर्णवाची कृष्ण शब्द में संयुक्त अन्त्य व्यञ्जन के पूर्व अकार और इकार आदेश होते हैं; जैसे कसणो, कसिणो; अर्हत् शब्द में संयुक्त अन्त्य व्यञ्जन के पूर्व उत्, अत् और इत् ये तीनों ही आदेश होते हैं; जैसे अरुहो, अरहो, अरिहो, अरुहंतो, अरिहंतो, अरहंतो आदि; पञ्च, छञ्च, मूर्ण और द्वार शब्द में अन्त्य व्यञ्जन के पूर्व विकल्प से उत् होता है; जैसे पउम्मं, पोम्मं, छउम्मं, छोम्मं, मुभणो, हुनारं; उकारान्त और टी प्रत्ययान्त सन्धी, तुल्या आदि शब्दों में संयुक्त अन्त्य व्यञ्जन के पूर्व उकार होता है; जैसे तगुवी, गरुवी, बहुवी, पुहुवी, मउवी एवं ञा शब्द में अन्त्य व्यञ्जन के पूर्व इकारागम होता है, जैसे जिआ। हेम का यह प्रकरण धरुक्ति की अपेक्षा विष्कुल नवीन है। उत्तरकालीन प्राकृत वैयाकरणों ने हेम के इस प्रकरण के आधार पर स्वर भक्ति और स्तरागम के सिद्धान्तों का उच्च प्ररूपण किया है।

८।२।११६ से ८।२।१२४ सूत्र तक वर्ण व्यत्यय निरूपित है। रेफ और णकार में स्थान-परिवर्तन होता है, जैसे कणोरु ओर वाणारसी में रकार और णकार का व्यत्यय होने से करेरु और वाराणसी शब्द बनते हैं।

हेम ने इस प्रकरण में आगे बतलाया है कि आलान शब्द में ल और न का व्यत्यय, अचलपुर में च और ल का व्यत्यय, महाराष्ट्र शब्द में ह और र का व्यत्यय, हृद शब्द में ह और द का व्यत्यय, हरिताल में र और ल का व्यत्यय; ल्बुक में घ के स्थान पर ह हो जाने के उपरान्त ल और ह का व्यत्यय; ललाट शब्द में लकार और हकार का व्यत्यय एवं ह्य शब्द में हकार और यकार का व्यत्यय होता है। जैसे आणालो ( आलानः ), अलचपुरं ( अचलपुरं ), मरहट्टं ( महाराष्ट्र ) द्रहो ( हृदः ), हलिआरो, हरिआलो ( हरिताल ), हलुअं, लहुअं ( ल्बुकं ), णडाअं, णलाअं ( ललाटं ), गुह्अं, गुह्अं ( गुह्यं ) आदि।

८।२।१२५ से ८।२।१४४ सूत्र तक संस्कृत के पूरे-पूरे शब्दों के स्थान पर प्राकृत के पूरे शब्दों के आदेश का नियमन किया है। जैसे स्तोत्र के स्थान पर थोकं, थोवं और थेवं दुहित्वा के स्थान पर धूआ, भगिनी के स्थान पर बहिणी; वृद्ध के स्थान पर रुक्ता, छिन्न के स्थान पर छूट्ट; बनिता के स्थान पर विल्या; अधस के स्थान पर हेट्टुं, त्रस्तम् के स्थान पर हित्थं, तह्वं; द्रहः के स्थान पर हरो; द्रहकः के स्थान पर हरओ; ईषन् के स्थान पर वूर; उत के स्थान पर ओ; स्त्री के स्थान पर इत्थी, थी; मात्रार के स्थान पर मज्जर, वज्जर; वैहूर्य के स्थान पर वेसलिय, अस्य के स्थान पर एण्हि, एत्ताहे; इदानीं के स्थान पर इआणि; पूर्व के स्थान पर पुरिमं; बृहस्पति शब्द में बृह के स्थान पर भय ( भयस्सई ), मलिनं के स्थान पर महलं, गृहं के स्थान पर घर; छुत्त के स्थान पर छिक्को; तिर्यक् के स्थान पर तिरिआ, तिरिच्छि; पदाति के स्थान पर पाइक्को, प्रावृष के स्थान पर पाउसो; पितृव्वा के स्थान पर पिउच्छा, पिउत्तिआ, बहिस के स्थान पर बाहिं, बाहिरं, मातृष्वसा के स्थान पर माउच्छा, माउत्तिआ; वैहूर्यम् के स्थान पर वेहलिअं, वेउल्लं; शुक्ति के स्थान पर तिष्ठी, तुत्ती, श्मशान के स्थान पर सीआणं, मुसाणं एवं मसाण होने का अनुशासन किया है।

हेम न १४५ सूत्र से १७३ सूत्र तक प्राकृत के कृत् और तद्धित प्रत्ययों का निर्देश किया है। जो तो इस प्रकरण में मुख्यतः तद्धित प्रत्ययों की ही हैं; तथापि बत्ता के स्थान पर आदेश होनेवाले ऋत् प्रत्ययों का भी निरूपण किया है। बत्ता प्रत्यय के स्थान पर तुम्, अत्, त्वा और तुआण आदेश होते हैं, कृ + तुं = काउ, कृ + त्वा = काजा, काउण; कृ + तु आण = काउआणं, तर + तुं = तरिउं, तुरेउं; तर + अ = तरिअ, तुरेअ; ग्रह + तुम् = घेतु, ग्रह + त्वा = घेतूण, घेतूणं; ग्रह + तुआण = घेतुआण, घेतुआणं आदि।

शील, धर्म और साध्व्य में विहित प्रत्ययों के स्थान पर इर प्रत्यय का आदेश होता है। धातु में इस प्रत्यय के जुड़ने से कर्तृसूचक कृदन्त रूप बनते हैं। सङ्गन में शीलादि अर्थ प्रकट करने वाले तुन्, इन् और निन् आदि प्रत्यय माने गये हैं। प्राकृत भाषा में हेम ने उक्त शीलादि अर्थवाची प्रत्ययों के स्थान पर इर प्रत्यय आदेश करने का विधान किया है, जैसे हस+इर=हासिरो (हसन शील); रोव+इर=रोविर (रोदनशील), लज्जा+इर=लज्जिरो (लज्जा-शील) आदि।

इदं अर्थक तद्धित प्रत्यय के स्थान पर केर प्रत्यय जोड़ने का हेम ने अनुशासन किया है। यथा—

अरमद् + केर = अरमहकेर ( अरमाकामिदम् अरमदीयन् ) ।

युष्मद् + केर = युष्महकेर ( युष्माकामिदम् युष्मदीयन् ) ।

पर + केर = परकेर ( परस्य इदम् परकीयन् ) ।

राज + केर = रामकेर ( राज इदं राजकीयन् ) ।

भव अर्थ में इत्थ और उत्थ प्रत्यय लगते हैं। यथा—

इत्थ—

गाम + इत्थ = गामित्थ ( गामे भवन् ), स्त्री० गामित्थी

पुर + इत्थ = पुरित्थ ( पुरे भवन् ) स्त्री० पुरित्थी

अधो + इत्थ = हेतुत्थ ( अधो भवन् ) स्त्री० हेतुत्थी

उपरि + इत्थ = उपरित्थ ( उपरि भवन् )

उत्थ—

आत्म + उत्थ = आप्थुत्थ ( आत्मनि भवन् )

तरु + उत्थ = तरुत्थ ( तरौ भवन् )

नगर + उत्थ = नगरत्थ ( नगरे भवन् )

इव अर्थ प्रकट करने के लिए हेम ने इव प्रत्यय जोड़ने का अनुशासन किया है जैसे—महुरव पाठनिपुत्ते पासाया ( मधुराक्त् पाठनिपुत्ते पासादा )

पन अर्थ प्रकट करने के लिए इमा, त्त और त्तग प्रत्यय लगाने का विधान हेम व्याकरण में किया गया है। यथा—

पीण + इमा = पीणिमा ( पीनत्वम् )

पीण + त्तग = पीणत्तग, पीण + त्त = पीणत्तं, पुष्पिमा ( पुष्प + इमा ) = पुष्पत्वम् ; पुष्प + त्तग = पुष्पत्तग, पुष्प + त्त = पुष्पत्तं ।

वार अर्थ में हुत्त प्रत्यय तथा आर्य प्राकृत में उक्त अर्थ में हुत्त प्रत्यय लगता है। यथा—

एक + हुत्त = एगहुत्त ( एकवृत्त = एकवारम् ) ।

द्वि + हुत्त = दुहुत्तं ( द्विवारम् ); त्रि + हुत्त = त्रिहुत्तं ( त्रिवारम् ); शत + हुत्त = शतहुत्तं ( शतवारम् ); सहस्र + हुत्त = सहस्रहुत्त ( सहस्रवारम् )

बाला अर्थ प्रकट करने के लिए संस्कृत में मन और वन् प्रत्यय होते हैं; किन्तु हेम ने इनके स्थान पर बाल, बालु, इत्त, इर, इल्ल, उल्ल, मण, मंत और वंत प्रत्यय जोड़ने का अनुशासन किया है। यथा—

**आल—**

रस + आल = रसालो ( रसवान् ); जटा + आल = जटालो ( जटावान् ); ज्योत्स्ना + आल = ज्योत्सालो ( ज्योत्स्नावान् ), शब्द + आल = शब्दालो ( शब्दवान् )।

**आलु—**

ईर्ष्या + आलु = ईर्ष्यालु ( ईर्ष्यावान् ), दया + आलु = दयालु ( दयावान् ); नेह + आलु = नेहालु ( स्नेहवान् ); लज्जा + आलु = लज्जालु ( लज्जावान् )  
श्री० लज्जालुआ।

**इत्त—**

काव्य + इत्त = काव्यइत्तो ( काव्यवान् ), मान + इत्त = मानइत्तो ( मानवान् )

**इर—**

गर्व + इर = गर्वइरो ( गर्ववान् ), रेखा + इर = रेखाइरो ( रेखावान् )

**इल्ल—**

शोभा + इल्ल = शोभाइल्लो ( शोभावान् ); छाया + इल्ल = छायाइल्लो ( छायावान् )।

**उल्ल—**

विचार + उल्ल = विचारइल्लो ( विचारवान् ), विकार + उल्ल = विकारइल्लो ( विकारवान् )।

**मण—**

घन + मण = घनमणो ( घनवान् ), शोभा + मण = शोभामणो ( शोभावान् )

**मंत—**

हन + मंत = हनमंतो ( हनमान् ), श्री + मंत = त्रिमंतो ( श्रीमान् )

**वंत—**

घन + वंत = घनवंतो ( घनवान् ), भक्ति + वंत = भक्तिवंतो ( भक्तिमान् )

संस्कृत के तस्र प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में त्तो और दो प्रत्यय विकल्प से होते हैं यथा—सर्व + तस् = सर्वत्तो, सन्वदो, सन्वओ ( सर्वतः ), एक + तस =

एकत्तो, एकदो, एकओ ( एकत ); अन्य+तस्=अनतो, अनदो, अनओ ( अन्यत ); किम्+तस्=कत्तो, कुदो, कुओ ( कुत ) ।

संस्कृत के स्थानवाची 'न' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में हि, ह और त्य प्रत्यय जुड़ते हैं, यथा यत्+न=जहि, जह, जय (यन); तद्+न=तहि, तह, तय (तन), किम्+न=कहि, कह, कय (कन), अन्य+न=अनहि, अनह, अनय, ( अन्यन ) ।

हम ने संस्कृत के अड़ोठ शब्द को छोड़ शेष बीसवाची शब्दों में जुड़ने वाले तैत्र प्रत्यय के स्थान पर एल् प्रत्यय का सविधान किया है । जैसे ऋटु+तैत्र=कहुएल् ।

स्वार्थवाची सज्ञा शब्दों में अ, इल्ल और उल्ल प्रत्यय विकल्प से लगते हैं—यथा—चन्द्र+आ=चदओ, चदो (चन्द्रक), हृदय+अ=ह्रियअ, ह्रियअं ( हृदयकम् ) । पल्लव+इल्ल=पल्लविल्लो, पल्लवो ( पल्लव ), पुरा+इल्ल=पुरिल्लो । पितृ+उल्ल=पितुल्लो, पिआ ( पिता ), हस्त+उल्ल=हत्युल्लो, हत्यो ( हस्त ) ।

हम ने कतिपय ऐसे तद्धित प्रत्ययों का भी उल्लेख किया है, जिन्हें एक प्रकार से अनियमित कहा जा सकता है । यथा—

एक+सि=एकसि, एक+सिअ=एकसिअ, एक+इआ=एकइआ ( एकदा ); भ्रू+मया=भ्रुमया ( भ्रू ); शनै+इअ=सतिअ ( शनै ); उपरि+ल्ल=अवरिल्लो, ज+एत्तिअ=नेत्तिअ, ज+एत्तिल्ल=जेत्तिल्ल, ज+एहह=जेहह ( यावत् ) त+एत्तिअ=तेत्तिअ, त+एत्तिल्ल=तेत्तिल्ल, त+एहह=तेहह ( तावत् ); एत+एत्तिअ=एत्तिअ, एत+एत्तिल्ल=एत्तिल्ल, एत+एहह=एहह ( एतान्तु, इयत् ); क+एत्तिअ=कैत्तिअ, क+एत्तु+कैत्तिल्ल=क+एहह=केहह ( कियत् ), पर+क्क=परक्क ( परकीयन् ); राय+क्क=राइक्क ( राजकीयन् ); अम्ह+एचय=अम्हेचय ( अस्मदीयन् ), तुल्ल+एचय=तुम्हेचय ( युष्मदीयन् ), सर्वाग+इअ=सर्वगिओ ( सर्वाङ्गी ), पह+इअ=पहिओ ( पान्या ), अप्प+णय=अप्पणय ( आरणीयन् )

कुछ वैकल्पिक भी तद्धित प्रत्यय होते हैं, यथा नव+ल्ल=नवल्लो, नवो ( नवक ) एक+ल्ल=एकल्लो, एकओ ( एकक ), मनाक्+अय=माय, मनाक्+इय=मणिय, मणा ( मनाक ), मिअ+आल्लिअ=मोआल्लिअ, मोअ ( मिअम् ), दीर्ण+र=दीहर, दीह ( दीर्णम् ), विद्युत्+ल्ल=विज्जअ, विज्जु ( विद्युत् ), पत्र+ल्ल=पत्तल्ल, पत्त ( पत्रम् ), पीत+ल्ल=पीअल्ल, पीअ ( पीतम् ), अण्ण+ल्ल=अण्णल्लो, अणो ( अण्ण ) ।

हेम ने ८।१।१७४ में कुछ प्राकृत शब्दों की निपातन से सिद्धि की है, जैसे गोणो, गावी, गाव, गाधीओ ( गौ. ), बदलो ( बनीवर्द ); पञ्चावप्ता, पापना ( पञ्चपञ्चाशत् ), तेवणा ( त्रिपञ्चाशत् ); तेआलीसा ( त्रिचत्वारिंशत् ), विउसगो ( व्युत्सर्ग ), बोत्तिरण ( व्युत्सर्जनम् ), कत्थर ( कचित् ); मुब्बहट ( उद्बहति ); कन्हलो ( अरत्मार ) कुट्टु ( उत्पन्नम् ) छिटे, धिद्धि ( धिक् धिक् ), धिरत्यु ( धिगस्तु ) पडिसिद्धी, पाडिसिद्धी ( प्रतिस्पर्ग ); चच्चिक्क ( स्यापक्क ; निहेला ( निलय ), मसोणो ( मसवान् ), सक्किणो ( साक्षी ), जम्मां ; महंतो ( महान् ); आसीसा ( आशी ) : बहुयर् ( बृहत्तरम् ), मिमोरो ( हिमोर ), खुड्डो ( छुल्लक ) धायणो ( गायन ), वडा ( वड ), कुड्ड ( कुतूहलम् ), महिओ ( निष्णु ), करती ( रमनानम् ) अगमा ( असुरा ), तिक्किच्छि ( पौष रजः ); अल्ल ( दिनम् ); पञ्जलो ( समर्थ ) इत्यादि ।

८।२।१७५ सूत्र से ८।२।२१८ सूत्र तक 'अन्ययम्' का अधिकार है, 'हेम ने इस प्रकरणिका में प्रायः समस्त प्रधान प्रधान अव्ययों का निर्देश कर दिया है। तद्धित प्रत्ययों के अनन्तर अव्ययों की चर्चा कर लेना आवश्यक है। अतः अव्ययों का प्रतिपादन क्रमानुसार ही किया है। हेम द्वारा निर्दिष्ट अव्यय निम्न प्रकार हैं—

अन्यय	संस्कृत रूप	अर्थ
त	तत्	वाक्यारम्भ
आन	ओम्	स्वीकार
पावि		विग्रीतता
पुणरुत्तं	पुनरुत्त	व्रतकरण
हन्दि	हन्त	सेद, विरुल्य, पश्चात्ताप, निश्चय सत्य ग्रहण ।
हन्द	हन्त	एडाण
मिव	मा + इव	जैसा, इव
मिव	अपि + इव	सरीखा, जैसा, इव
विव	इव	जैसा
व्व	इव	”
व	वा	विकल्प; जैसा
विअ	इव	जैसा
तेण	देन	लक्ष्य
तेण	तेन	”



अव्यय	संस्कृत रूप	अर्थ
णद्		अवधारण
चैअ	चैव	"
चिअ	चैव	"
बले	बले	निर्धारण, चौथी क्राटना
बल	बल	निश्चय
धिर	किल	क्रियार्थ
हिर	द्विल	"
इर		निश्चय
णश्च		केवल
पनरे		अनन्तर
अलाहि	अत्रं हि	निवारण, निषेध
अन ( नञ )	अन	निषेध
पाद	नैव	निषेध
माद	माऽति	निषेध
ह्यदी	हाधिक	निर्वेद, लेद
वेव्ये		भय-वारण, विषाद
वेन्, वेन्ने		आमन्त्रण
मामि		सखीणा सम्बोधन
इत्ता		"
हले	हाऽऽले	"
दे		सन्तुष्टीकरण
हुं		दान वृच्छा निवारण
हु तथा खु		निश्चय, निर्वर्ण, संभावना, अस्मिन्
ऊ		गर्हा, आक्षेप, विस्मय
भू	भूत्	कुला अर्थ ( तिरस्कार )
रे		संभाषणे
अरे		रतिक्लृप्त
हरे	हारे	क्षेप, संभाषण, रतिक्लृप्त
ओ		सूचना, पश्चात्ताप
अव्वा		सूचना, दुःख, संभाषण, अनुरोध, विस्मय, आनन्द, आहार, भय, खेद, विषाद, पश्चात्ताप ।
अइ	अपि	संभावना

अव्यय	संस्कृत रूप	अर्थ
वणे	वने	निश्चय, विकल्प, अनुकम्पा
मणे	मने	विमर्श
अम्मो		आश्चर्य
अप्पगो	आत्मन	स्वयं अर्थ में, अपने
पाडिक्क, पाडिएवक	प्रत्येकम्	एक एक
उअ	उत	पश्य, जो
इहरा	इतरथा	इतरथा, अन्यथा
एक्कसरिअं	एकसृतम्	सम्प्रति
मोरउक्का	मुधा	व्यर्थ
दर	दर	अर्घाल, हीनता
किणो	किन्नु	प्रश्न, ध्रुव
इ, जे, र		पादपूर्वार्थ में
पि और वि		अपि अर्थ में

हेम का यह अन्यय प्रकरण वररुचि की अपेक्षा बहुत विस्तृत और महत्त्वपूर्ण है। प्राकृत प्रकाश में कुछ ही अव्ययों का जिक्र है, किन्तु हेम ने अव्ययों की पूरी तालिका दी है।

#### तृतीय पाद—

इस पाद में प्रधान रूप से शब्द रूप, क्रिया रूप और कृत प्रत्ययों का वर्णन किया है। ८३१ से ८३५ तक सज्ञा और निश्चय शब्दों की साधनिका बतलायी गयी है। प्राकृत में अर्णान्त, इर्णान्त, उर्णान्त श्रुर्णान्त और व्यञ्जनान्त इन पाँच प्रकार के शब्दरूपों का निरूपण किया गया है। इस भाषा में तीन लिङ्ग और दो वचन होते हैं, द्विवचन का अभाव है। ५८-१०४ सूत्र तक सर्वनाम रूप १२५-१३० सूत्र तक अववाचक रूप विशेष नियम, १३१-१३७ सूत्र तक विभक्त्यर्थ दिधायक अनुशासन एवं १-८-१८२ सूत्र तक धातुविकार, धातुरूप साधनिका और कृत प्रत्ययों का नियमन किया गया है। प्राकृत भाषा में व्यञ्जनान्त शब्दों का अभाव होने से इन शब्दों के रूप भी प्रायः स्वरान्त शब्दों के समान ही चलते हैं।

हेम ने ८३१ में बताया है कि वीप्सार्थक पद से परे सि आदि क स्थान में विकल्प से 'म्' आदेश होता है, जैसे एकैकम् के स्थान पर एकमेकं, एकमेकैण; अङ्गे अङ्गो के स्थान पर अगमङ्गमि आदि।

अकारान्त सज्ञा शब्दों से परे 'सि' के स्थान में हो आदेश होता है, एतद् और तद् शब्द से परे 'सि' के स्थान पर विकल्प से हो आदेश होता है।

अकारान्त संज्ञा शब्दों से परे जस् और शस् का लोप होता है तथा अकारान्त शब्दों के परे अम् के अकार का लोप होता है ।

अकारान्त संज्ञा शब्दों से परे टा प्रत्यय तथा षष्ठी विभक्ति बहुवचनविधायक आम् प्रत्यय के स्थान पर ण आदेश होता है । उक्त शब्दों से भिस् के स्थान पर हि, हिँ और हिँ ये तीन आदेश होते हैं । म्यस् प्रत्यय के स्थान पर चो, दो, दुहि, हिन्तो और मुन्तो ये आदेश होते हैं । षष्ठी विभक्ति एकवचन में इस् के स्थान पर स्स आदेश होता है । सप्तमी विभक्ति एक वचन में डि के स्थान पर ए और मि ये दो आदेश होते हैं ।

८।१।२ सूत्र द्वारा जस्, शस्, ङस्, चो, दो और दु में अकार को दीर्घ करने का अनुशासन किया है और १३ वें सूत्र द्वारा म्यस् के परे रहने पर विकल्प से अकार को दीर्घ किया है । टा के स्थान पर आदिष्ट ण तथा शस् के पूर्ववर्ती अकार को एकार आदेश होता है । भिस्, म्यस् और मुप् परे हुए इकार और उकार को दीर्घ होता है । चतुर और उकारान्त शब्दों में भिस्, म्यस् और मुप् परे हुए विकल्प से दीर्घ होता है । इकारान्त और उकारान्त शब्दों में शस् प्रत्यय के लोप होने पर दीर्घ होता है ।

इकारान्त और उकारान्त शब्दों में नपुंसक सं भिन्न अर्थात् स्त्रीलिंग और पुल्लिङ्ग में सि प्रत्यय के परे रहने पर दीर्घ होता है । इकारान्त और उकारान्त शब्दों से परे जस् के स्थान पर पुल्लिङ्ग में विकल्प से अउ, अओ तथा डित होते हैं । उकारान्त शब्दों से परे पुल्लिङ्ग में जस् के स्थान पर डित और अव् आदेश होते हैं । इकारान्त और उकारान्त शब्दों से परे पुल्लिङ्ग में जस् और शस् के स्थान पर ण आदेश होता है ।

इकारान्त और उकारान्त शब्दों से परे पुल्लिङ्ग और नपुंसक लिङ्ग में ङस् और ङस् के स्थान पर विकल्प से ण आदेश होता है । पुल्लिङ्ग और नपुंसक लिङ्ग में इकारान्त और उकारान्त शब्दों से परे 'टा' के स्थान पर णा आदेश होता है । नपुंसकलिङ्ग में संज्ञावाची स्त्रान्त शब्दों से परे 'सि' के स्थान में म् आदेश होता है । नपुंसकलिङ्ग में वर्तमान संज्ञावाची शब्दों से परे जस् और शस् के स्थान पर सानुनासिक और सानुस्वार इकार तथा णि आदेश होते हैं और पूर्व स्वर को दीर्घ होता है ।

स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान संज्ञावाची शब्दों से परे जस् और शस् के स्थान में विकल्प से उत और ओत् आदेश होते हैं और पूर्व को दीर्घ होता है । स्त्रीलिंग इकारान्त शब्दों से परे सि, जस् और शस् के स्थान में विकल्प से अकार आदेश होता है । स्त्रीलिङ्ग में संज्ञावाची शब्दों से परे टा, ङस् और डि इन प्रत्ययों में से प्रत्येक के स्थान पर अत्, आत्, इत् और एत् ये चार

आदेश होते हैं और पूर्व वर्ण को दीर्घ होना है। स्त्रीलिङ्ग में संज्ञा शब्दों से परे टा, इस्, ङसि के स्थान पर आत् आदेश नहीं होता है। हेम ने ३१ सूत्र से ३६ सूत्र तक स्त्रीलिङ्ग विधायक ली और डा प्रत्ययों के साथ साथ ह्रस्व विधायक नियम का भी उल्लेख किया है। ३७ वें और ३८ वें सूत्र में सम्बोधन के रूपों का अनुशासन किया है।

श्रुतोद्वा ८।३।३९ सूत्र द्वारा अकारान्त शब्दों का अनुविधान किया है। इन शब्दों के सम्बोधन एक वचन में विकल्प से अकार और ऊद् का आदेश होता है और अकारान्त शब्दों में अकार के स्थान पर एकार आदेश होता है। ईकारान्त और उकारान्त शब्दों में तथा त्रिवन्त उकारान्त शब्दों में सम्बोधन एकवचन में ह्रस्व होता है। श्रुकारान्त शब्दों में सि, अन् और औ प्रत्यय को छोड़ शेष विभक्तियों से परे श्रुदन्त विकल्प से उदन्त हो जाते हैं। मातृ शब्द में श्रु के स्थान पर सि आदि विभक्तियों से आ और अर आदेश होते हैं। श्रुदन्त संज्ञावाची शब्द सि आदि के परे रहने पर अदन्त हो जाते हैं। श्रुदन्त शब्दों में सि के परे रहने पर विकल्प से आकार आदेश होता है।

अञ्जनान्त शब्दों की साधनिका बतलाते हुए हेम ने राजन् के नकार का लोप कर अन्त्य का विकल्प से आत्वविधान किया है। राजन् शब्द से परे जस्, शस्, ङसि और ङस के स्थान पर विकल्प से णो आदेश होता है। राजन् शब्द से परे टा के स्थान पर ण तथा रो और णं परे होने से जकार के स्थान पर वैकल्पिक इकार होता है। राजन् शब्द सम्बन्धी अकार के स्थान पर अम् और आम् सहित इणम् आदेश होता है। मिस, म्यस्, आम् और सुप् प्रत्ययों में राजन् शब्द के अकार को इकार आदेश होता है। टा, ङसि और ङस विभक्तियों में णा, णो आदेश हो जाने पर राजन् शब्द के आज के स्थान पर विकल्प से अण् होता है।

आत्मन् शब्द से परे टा विभक्ति के स्थान पर णिआ, णडआ विकल्प से आदेश होते हैं। सर्वादि शब्दों में डित् हो कर ए आदेश होता है। ङि के स्थान पर स्त्रि, स्मि और ल्य आदेश होते हैं।

इदम् और एतत् शब्दों को छोड़ शेष सर्वादि शब्दों के अदन्त से परे ङि के स्थान पर विकल्प से ह्रि आदेश होता है। सर्वादि शब्दों में आम् के स्थान पर सि आदेश होता है। किन् और तद् शब्द से परे आन् के स्थान पर डास आदेश होता है। कियत् और तद् शब्द से परे ङस् के स्थान पर स्त्र तथा से और काल क्यन में कियत् और तद् शब्द से परे ङे के स्थान में आङ्, आसा और इआ आदेश होते हैं। इन्ही शब्दों से परे ङसि के स्थान में विकल्प से ङडा आदेश होता है।

तद् शब्द से परे ङसि के स्थान में विकल्प से ङो, किम् शब्द से परे ङसि के स्थान में ङिणो और ङोस तथा इदम्, एतन्, किम्, यत् और तत् शब्दों से परे टा के स्थान पर विकल्प से इणा आदेश होता है। तद् शब्द के स्थान पर सि आदि विभक्तियों के परे रहने पर ण आदेश होता है। किम् शब्द के स्थान पर सि आदि विभक्ति, ऋ और तस प्रत्यय के परे रहने पर क आदेश होता है। इदम् शब्द से सि विभक्ति के परे रहने पर पुँल्लिङ्ग में अय और लीलिङ्गमें इमिआ आदेश हाते हैं। ङिस और स्स परे रहने पर इदम् के स्थान पर विकल्प से अद् आदेश होता है। इदम् के स्थान में अम्, शस् टा और भिस् प्रत्यय के परे रहने से विकल्प से ण आदेश होता है। नपुंसकलिङ्ग में सि और अम् विभक्तियों से परे इद, इणमो और इण का नित्य आदेश किया है। नपुंसकलिङ्ग में सि और अम् के सहित किम् शब्द के स्थान पर किं आदेश होता है।

इदम्, तत् और एतद् शब्द के स्थान में ङस् और आम् विभक्ति के सहित से तथा सिमका विकल्प से आदेश होता है। एतद् शब्द से परे ङसि के स्थान पर चो और चोहे विकल्प से आदिष्ट होते हैं। सप्तमी एकवचन में एतद् शब्द के स्थान पर विकल्प से अत् और ईय आदेश होते हैं। हेम ने ८५-८६ से ८९ सूत्र तक एतद्, तद्, अदस शब्दों की विभिन्न विभक्तियों में होने वाले आदेशों का कथन किया है।

८३।१६० से ८३।१७७ सूत्र तक सुप्शब्द और अस्मद् शब्द के विभिन्न रूपों का निर्देश किया है। इन दोनों शब्दों के अनेक वैकल्पिक रूप लिखे गये हैं। इन्हें देखने से ऐसा लगता है कि हेम के समय में प्राकृत भाषा के रूपों में पर्याप्त विकल्प आ गया था। देश विशेष के प्रभावों के कारण ही उक्त शब्दों की रूपावली में अनेकरूपता आ गयी है।

त्रैस्ती तृतीयादौ ८३।११८ सूत्र द्वारा हेम ने तृतीयादि अर्थों में त्रि के स्थान पर ती और ११९-१२० वें सूत्र द्वारा द्वितीयादि अर्थों में द्वि के स्थान पर दो, दुवे, दोग्णि, दो, वे आदेश होने का विधान किया है। ष्ठ, शस सहित त्रि के स्थान पर त्रिणि तथा चतुर के स्थान पर चत्तारो, चउरो और चत्तारि आदेश होने का नियमन किया है। संख्यावाची शब्दों से परे आम् के स्थान पर ण्, णँ ये आदेश होते हैं। इस प्रकार व्यञ्जनान्त शब्दों के साधुत्व के सम्बन्ध में कतिपय विशेषताओं का कथन करने के उपरान्त शेष कार्य स्वरान्त शब्दों के समान ही समझ लेने का संकेत दिया है। हेम ने विभक्तियों के लोप या आदेश के सम्बन्ध में १२५-१२९ सूत्र तक एक प्रकार से विशेष कथन किया है।

हेम ने वाक्य रचना को सुव्यवस्थित बनाने के लिए विभक्तियों का निरूपण ८।३।१३० से ८।३।१३७ तक किया है। चतुर्थी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी; नादर्थ्य में विहित चतुर्थी के स्थान पर विकल्प से षष्ठी; वच शब्द से परे तादर्थ्य में चतुर्थी के स्थान पर षष्ठी विभक्ति; द्वितीयादि विभक्तियों के स्थान पर षष्ठी; द्वितीया और तृतीया के स्थान पर सप्तमी; पञ्चमी के स्थान पर तृतीया, सप्तमी एवं क्वचिद् सप्तमी के स्थान पर द्वितीया विभक्ति होती है। हेम का यह प्रकरण प्राकृतप्रकाश से बहुत अंशों में समता रखने पर भी विशिष्ट है। त्यादीनामाद्य० ८।३।१३९ सूत्र से त्यादि प्रकरण का आरम्भ होता है। इस प्रकरण में घातु रूपों का पूर्णतया निर्देश किया है। अन्य पुरुष एकवचन में ति के स्थान पर टच् और आत्मनेपद में ते के स्थान पर एच् ; मध्यम पुरुष एकवचन में ति और ते तथा उत्तम पुरुष एकवचन में नि आदेश होते हैं। अन्य पुरुष बहुवचन में णम्नेपद और आत्मनेपद में न्ति, न्ते और इरे; मध्यम पुरुष बहुवचन में इत्या और हच् एवं उत्तम पुरुष में मो, नु और न आदेश होते हैं। इस प्रकार हेम ने इस प्रकरण में विभिन्न घातुओं के संयोग से त्यादि विभक्तियों के स्थान पर निम्न निम्न प्रत्यय होने का अनुशासन किया है। काल की अपेक्षा से हेम ने इस प्रकरण में ढर्माना, पञ्चमी, सप्तमी, मविध्यन्ती और क्रियातिपत्ति इन क्रिया-व्यंथाओं में घातुओं के रूपों का निवेदन किया है।

इस प्रकरण में छ, क्वा, तुम्, तव्य और शतृ इन संस्कृत कृत् प्रत्ययों के स्थान पर प्राकृत कृत् प्रत्ययों का निर्देश किया है। घातुसम्बन्धी अन्य कतिपय आदेश भी इस प्रकरण में विद्यमान हैं। संक्षेप में इस पाद में शब्द रूप और घातुरूपों की प्रक्रिया, उनके विभिन्न आदेश, कारकव्यवस्था, घातुविकार स्वरूप कृत् प्रत्ययान्त शब्द एवं सर्वनामवाची शब्दों के विभिन्न आदेश निबद्ध किये गये हैं।

सामान्यतया इस पाद का विषय और उसकी प्रक्रिया प्राकृत प्रकाश के समान ही है। हाँ, कारक अवश्य विशिष्ट है। प्राकृतप्रकाश में चतुर्थी के स्थान पर केवल षष्ठी का निर्देश भर ही किया है, अन्य विभक्तियों की चर्चा नहीं; किन्तु हेम ने कारक व्यवस्था पर अच्छा प्रकाश डाला है।

### चतुर्थ पाद

यह पाद महत्वपूर्ण है। उसमें शौरसेनी, मागधी, पेशाची, चूलिका पेशाची, और अरब्रंश प्राकृतों का अनुशासन लिखा गया है। हेमने लगभग ३॥ पाद में केवल महागण्ठी प्राकृत का अनुशासन निरूपित किया है। इन देखते हैं कि हेम ने अपने समय की सभी प्रमुख भाषा और बोलियों का सर्वाङ्गपूर्ण अनुशासन

धातु

आदेश

रु + प्रा० रव	रुंज, रुंठ
श्रु प्रा० सुण	हण
धू प्रा० धुण	धुव
भू	हो, हव, गिन्वड ( पृथग्भवने, स्पष्टभवने च ) हुप्प ( प्रभवने )
कृ प्रा० कर	कुण, गिभार (कारणेभित्करणे), गिटडुह (निष्टम्भे), संदाण (अवष्टम्भे), वावंक ( भ्रमकरणे ), गिन्वोल ( क्रोधपूर्वे ओष्ठमालिन्ये ), पयल्ल ( शैथिल्य- करणे, लम्बने च ), णीलुछ ( निष्पाते, आच्छोद्ये च ), कम्म ( क्षुरकरणे ), गुल्ल ( चाटुकरणे )
स्मर प्रा० सर	शर, भूर, भर, भल, लड विग्हर, सुमर, परर, पग्इह, १
वि + स्मृ	पग्हुस, विग्हर, वीसर
व्या० + ङ० प्रा० वाहर	कोष्, कुष्, पोष्
प्र + स्र, प्रा० नीसर	णीहर, नील, धाड, वरहाड
प्र + स्र प्रा० पसर	पयल्ल, उवेल्ल, महमह, ( गन्धप्रसरणे )
जाण प्रा० जागर	जग
व्या + पृ प्रा० वावर	आअडु
सं + वृ प्रा० संवर	साहर, साहट्ट
आ + इ प्रा० आदर	सन्नाम
प्र + ङ प्रा० पहर	सार
अव + तृ प्रा० ओअर	ओह, ओरस
शक	चय, तर, तीर, पार
पक्क	थक्क
श्लाय	सलह
खच	वेअड
पच	सोल्ल, पउल्ल
मुच	छडु, अवडेड, मेल्ल, उस्सिक्क, रेअव, गिल्लंठ, धंसाड; गिन्वल ( दुःखमोचने )
वञ्च	वेहव, वेणव, क्षूरव, उमच्छ
रच	उग्गह, अनह, विटविट्ट
समा + रच	उवहत्थ, सारव, समार, वेलाय
सिच	सिंच, सिप

धातु	आदेश
प्रच्छ	पुच्छ
गर्ज	बुक्क, टिक्क ( वृषगर्जने )
राज	अग्य, उज्ज, सह, रीर, रेह
मस्ज	आउड्ड, गिउड्ड, बुड्ड, खुप्प
पुञ्ज	आरोल, वमाल
लस्त्र	बीह
तिज	ओसुक्क
मृज प्रा० मज्ज	उग्घुस, लुउ, पुंउ, पुंस, फुस, पुस, लुह, हुल, रोमाण
मज्ज	वेमय, मुसुमूर, मूर, सूर, सह, विर, पविरंज, करंज, नीरंज
अनु + मज्ज, प्रा० अणुक्क	पडिअगा
अर्ज	विद्रव
युज्ज	जुंज, जुज्ज, जुप्प
भुज	भुंज, जिम, जेम, कम्म, अण्ह, समाण, चमद, चड्ड
उप + भुंज	कम्मव
घट	गट
सम + घट	संगल
स्फुट	मुर ( हातस्फुटिते )
मण्ड	चिच, विचअ, चिचिल्ल, रीड, टिविडिक्क
तुड	तोड, तुट्ट, खुट्ट, खुड, उवखुड, उल्लुक्क, गिउक्क खुम्, उल्लूर
घूर्ण	घुल, घोल, घुम्म, पहल्ल
वि + घूर् प्रा० विवट्ट	टंस
क्वय प्रा० कट्ट	अट्ट
अन्य	गट्ट
मन्य	घुसल, विरोल
हाद	अवमच्छ
नि + सद	गुमज्ज
ठिद प्रा० ठिद	दुहाव, पिच्छल्ल, पिक्कोड, गिबर, गिल्लूर, लूर
आ + ठिद् प्रा० आठिद्	ओ अंद, उहाल
मृद	मल, मट, परिहट्ट, खड्ड, चड्ड, मड्ड, पन्नाड
स्वन्द प्रा० पंद	चुलचुल
निर् + पद प्रा० निप्पज्ज	निन्वल



८—अन्य पुरुष एकवचन में ति के स्थान पर दि होता है, जैसे भवति = भोदि या होदि, अतित = अच्छदे अच्छदि; गच्छति = गच्छदे, गच्छदि ।

९—मदिष्यत्काल में रिष चिह्न का प्रयोग होता है; यथा मदिष्यति = नविरिषदि ।

१०—अत के परे ङसि के स्थान पर आदो और आदु आदेश होते हैं—जैसे दूरादो, दूरादु ।

११—इदानीयम्, तस्मात् और एवके स्थानमें दागि, ता और प्येव हो जाते हैं ।

१२—दासी को पुकार ने के लिए हञ्जे, शब्द का प्रयोग किया जाता है ।

१३—आश्चर्य और निर्वेद सूचित करने के लिए 'हीगामहे' शब्द का प्रयोग किया जाता है ।

१४—संस्कृत के ननु के स्थान पर णं का प्रयोग होता है ।

१५—प्रव्रजता सूचित करने के लिए अम्महे का प्रयोग होता है ।

१६—विदूषक आनन्द प्रकट करने के लिए ही हो शब्द का प्रयोग करता है ।

अन्य बातों में शौरसेनी महाराष्ट्री के समान होती है । स्वर और व्यञ्जन परिवर्तन के विद्वान्त महाराष्ट्री के समान ही हैं ।

८१४१=८७ सूत्र से ८१४१३०२ सूत्र तक हेम ने मागधी की विशेषताओं पर प्रकाश डाला है । मागधी भाषा में शौरसेनी की अपेक्षा निम्न विशेषताएँ हैं—

१—पुल्लिङ्ग में 'सि' प्रत्यय के परे अकार के स्थान पर एकार होता है; जैसे एष मेघः = एरो मेरो; एष पुरुषः = एरो पुल्लिङ्गे, करोमि भदन्त = करेमि मंते ।

२—मागधी में प और त के स्थान पर थ होता है; जैसे एषः = एरो, पुरुषः = पुल्लिङ्गे ।

३—मागधी में र ल में परिवर्तित हो जाता है; जैसे पुरुषः = पुल्लिङ्गे, सारसः = शालशे, नरः = नले, कर = कले ।

४—मागधी में ज, घ और य के स्थान में य होता है, जैसे जानासि = याणासि जानपदे = यश्वदे, अर्जुनः = अय्युने; अय = अय्य

५—संस्कृत के अहं के स्थान पर हके, हगे और अहके शब्दों का आदेश होता है । वयं के स्थान पर भी हगे आदेश होता है ।

६—न्य, ष्य, ष और ष्ज के स्थान पर ष्णु होता है; जैसे अमिमन्युकुमारः = अहिमण्णुकुमारे, कन्यकावराणं = कण्णकावलणं, पुण्यं = पुण्णं, प्रशा = पञ्जा ।

७—तिष्ठ के स्थान पर चिष्ठ का प्रयोग होता है ।

८—रथ और रथं के स्थान पर रत्त आदेश होता है; जैसे उररथिनः = उव-रितदे; सार्थवाहः = शस्तवाहे ।

९—ट्ट तथा ष्ट के स्थान पर र्ट्ट आदेश होता है; जैसे भट्टारिका = मर्याट्टिका, मुष्टु = सुर्ट्ट ।

- १०—व्रज के जकार के स्थान पर ज्ञ आदेश होता है; जैसे व्रजति = व्रज्जति ।
- ११—उ के स्थान पर झ होता है, उच्छलति = उश्चलति, गच्छ = गश्च, आग्नन्तल = आग्नन्तल्ले ।
- १२—प्रेक्ष और आचक्ष के क्षकार के स्थान पर रक्ष आदेश होता है; जैसे प्रेक्षति = पेस्कृति, आचक्षते = आचस्कृति ।
- १३—अर्वा से परे हस् के स्थान पर विकल्प से आह आदेश होता है—ईह-  
दास्य = एलिशाह, शोणितस्य = शोणिताह ।
- १४—क्त्वा के स्थान पर दागि का आदेश होता है; जैसे कृत्वा = कारिदागि,  
कृत्वा आगतः = कारिदागि आगडे ।
- ॥४॥३०२ सूत्र से ३२४ सूत्र तक पैशाची भाषा की निम्नाङ्कित विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है ।
- १—उ के स्थान पर ञ होता है; जैसे प्रशा = पञ्जा, सशा = सञ्जा, सर्वशः = सवञ्जो ।
- २—वर्ग के तृतीय, चतुर्थ वीं संयुक्त न हो और पदों के आदि में न हो तो उनके स्थान पर वर्गों के प्रथम और द्वितीय अक्षर होते हैं; जैसे मेघः = मेखो, रात्रा = राचा, सरमसम् = सररच, शलमः = सल्लो, मदन = मतन ।
- ३—न्व और ष्य के स्थान पर ञ् आदेश होता है; जैसे कन्यका = कञ्जका  
अभिमन्युः = अभिमञ्जू, पुष्यकर्म = पुञ्जकम्मो, पुष्याह = पुञ्जाह ।
- ४—णकार के स्थान पर पैशाची में नकार होता है, जैसे तरणी = तलुनी,  
गुण-गण युक्तः = गुनगनयुत्तो ।
- ५—लकार के स्थान पर पैशाची में लकार होता है, जैसे कुल = कुलं,  
जलं = जलं ।
- ६—य और ष के स्थान पर सकार होता है; जैसे शोमति = सोमति, शोमनं =  
सोमनं, विषमः = विषमो ।
- ७—हृदय शब्द में यकार के स्थान पर पकार; यादृच शब्द में ह के स्थान  
पर ति तथा टु के स्थान पर तु आदेश होता है ।
- ८—क्त्वा के स्थान पर त्त्न तथा ह्त्वा के स्थान पर द्दून और थून आदेश होते  
हैं; जैसे, गत्वा = गन्त्वन, पठित्वा = पठित्वन, नष्ट्वा = नष्ट्वन, नत्थून  
आदि ।
- ९—ध के स्थान पर सट और स्नान के स्थान पर सन आदेश होते हैं, यथा—  
क = कसट, स्नान = सनान ।

चूलिका पैशाची की विशेषताएँ हेम ने निम्न प्रकार बतलाई हैं ।

१—द्वों के तृतीय और चतुर्थ अक्षर क्रमशः प्रथम और द्वितीय वर्णों में परिवर्तित हो जाते हैं । जैसे—नगरं=नकरं, मार्गण=मक्कनो; गिरितटं= किरितट, मेघः=मेखो, व्याघ्रः=व्क्स्तो, घर्म =वग्मो, राज्ञा=राचा, बर्जान्= चच्चरं, जीमूत =चीमूतो ।

२—रकार के स्थान पर चूलिका पैशाची में लकार आदेश होता है; जैसे— गोरी=गोली, चरण=चलन, हरं=हलं ।

हेमने अपभ्रंश भाषा का अनुशासन ३२९ सूत्र से ४४८ सूत्र तक किया है । इसमें अपभ्रंश भाषा के सम्बन्ध में पूरी जानकारी दी गयी है । इसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं ।

१—अपभ्रंश में एक स्वर के स्थान पर प्रायः दूसरा स्वर हो जाता है, जैसे कञ्चित् =कञ्चु और काच्च, वेणी =वेग और वीणा, बाहु =बाह, बाहा आदि ।

२—अपभ्रंश में संज्ञा शब्दों के अन्तिम स्वर विभक्ति लयाने के पूर्व कमी हस्त या कमी दीर्घ हो जाते हैं; जैसे—दोल्ल=दोला, सामल=सामला, स्वां= रेखा=मुनणरेह ।

३—अपभ्रंश में किसी शब्द का अन्तिम अ कर्ता और कर्म की एकवचन विभक्तियों के पूर्व उ में परिवर्तित हो जाता है; जैसे—दहमुहु, मयंकृ, चउमुहु, मयंकृ, आदि ।

४—अपभ्रंश में पुंलिङ्ग संख्याओं का अन्तिम अ कर्ता कारक एकवचन में प्रायः ओ में परिवर्तित हो जाता है ।

५—अपभ्रंश में संज्ञाओं का अन्तिम अ करणकारक एकवचन में इ या ए; अधिकरण कारक एकवचन में इ या ए में परिवर्तित होता है । इन्हीं संज्ञाओं के करण कारक बहुवचन में निकल से अ के स्थान पर ए होता है । अकारान्त शब्दों में असादान एकवचन में हे या हु विभक्ति; असादान बहुवचन में हुँ निमित्ति; सम्बन्ध कारक एकवचन में तु, होस्त निमित्तियाँ और सम्बन्ध बहुवचन में हे विभक्तियाँ जोड़ी जाती हैं ।

६—अपभ्रंश में इकारान्त और उकारान्त शब्दों के परे षष्ठी विभक्ति के बहुवचन 'भाम्' प्रत्यय के स्थान पर हुं और हे; षष्ठमी एकवचन में हे; बहुवचन में हुँ, षष्ठमी एकवचन में हि और तृतीया विभक्ति एकवचन में ऐ और ष विभक्ति चिह्नो का आदेश होता है ।

७—अपभ्रंश भाषा में कर्ता और कर्म कारक की एकवचन और बहुवचन विभक्तियों का तथा सम्बन्ध कारक की विभक्तियों का प्रायः लोप होता है ।

८—अपभ्रंश में सम्बोधन कारक के बहुवचन में हो अचय का प्रयोग होता है । अधिकरण कारक बहुवचन में हिं विभक्ति का प्रयोग होता है ।

९—स्त्रीलिङ्गी शब्दों में कर्ता और कर्म बहुवचन में उ और ओ, वरण कारक एकवचन में ए; अनादान और सम्बन्ध कारक के एकवचन में हे, हु और सप्तमी विभक्ति एकवचन में हिं विभक्ति का प्रयोग होता है ।

१०—नपुंसकलिङ्ग में कर्ता और कर्म कारकों में ई विभक्ति लगती है ।

इसके आगे हेम ने सर्वनाम और युष्पद्-अस्पद् शब्दों की विभक्तियों का निर्देश किया है । हेम ने ८।४।३८२ से ३९५ सूत्र तक अपभ्रंश घातुरूपों और घात्वादेशों का निरूपण किया है ।

१—ति आदि में जो आद्य त्रय हैं, उनमें बहुवचन में विकल्प से हिं आदेश, ति आदि में जो मध्य त्रय हैं, उनमें से एकवचन के स्थान में हिं आदेश, बहुवचन में हु आदेश तथा अन्त्य त्रय में एकवचन में मँ और बहुवचन में हँ आदेश होता है ।

२—अपभ्रंश में अनुज्ञा में संस्कृत के हिं और स्व के स्थान पर इ, उ और ह ये तीन आदेश होते हैं । भविष्यकाल में स्य के स्थान पर विकल्प से सो होता है । किये के स्थान पर अपभ्रंश में कीसु होता है ।

३—भू के स्थान पर हुच्च, ब्रू के स्थान पर बुन, ब्रज के स्थान पर बुञ और तक्ष के स्थान पर छोल्ल आदेश होता है ।

इसके आगे दर्पविकार का प्रकरण है, अपभ्रंश में अनादि और असंयुक्त क ख त थ प फ के स्थान में ममश ग घ द ध व और म हो जाते हैं । अनादि और असंयुक्त मकार का विकल्प से अनुनासिक वकार होता है । संयुक्ताक्षरों में अधोदत्तों रेफ का विकल्प से ल्प होता है । आपद्, सपद् और विपद् का द प्रायः इ में परिणत हो जाता है । कयं, यथा और तथा के स्थान में केम ( कव ), किम ( किँ ), किद, किघ, जेम ( जेँ ), बिह, जिघ, तेम ( तेँ ), तिह, तिघ आदि रूप होते हैं । यादश, तादश, कँदश और ईदश के स्थान पर जदसो, तदसो, कदसो और अदसो हो जाते हैं । यत्र का ऐत्य और जत्तु; तत्र का तेत्य और तत्तु हो जाते हैं । कुत्र और अत्र के स्थान पर केत्य और एत्य, यावत् के स्थान पर जाय ( जाँ ) जाँ और जामहिं तथा तावत् के स्थान

पर ताम ( ताँ ), ताँ और तामहि आदेश होते हैं। इस प्रकार हेम ने अपभ्रंश के तद्धित प्रत्ययों का निवेचन किया है।

इसके आगे पश्चात् शीघ्र, क्षीबुक्, मूढ, अद्भुत, रज्य, अवरकन्द, यदि, मामैयी: आदि शब्दों के स्थान पर विभिन्न अपभ्रंश शब्दों का निर्देश किया है। ऋत्विप्य संस्कृत के तद्धित प्रत्ययों के स्थान पर अपभ्रंश प्रत्ययों का रूपन भी वर्तमान है।

हेम ने इस प्रकरण में उदाहरणों के लिए अपभ्रंश के प्राचीन दोहों को रखा है, इसके प्राचीन साहित्य की प्रकृति और विशेषताओं का सहज में पता लग जाता है। साथ ही यह भी ज्ञात होता है कि विभिन्न साहित्यिक, राज-नैतिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों के कारण भाषा में किस प्रकार मोड़ उद्वल होते हैं।



## अष्टम अध्याय

### हेमचन्द्र और अन्य प्राकृत वैयाकरण

प्राकृत भाषा का व्याकरण प्राकृत में उपलब्ध नहीं है। इस भाषा का अनुशासन करनेवाले सभी व्याकरण संस्कृत भाषा में ही विद्यमान हैं। यद्यपि व्याकरण के कतिपय सिद्धान्त प्राकृत साहित्य में कुटुंबर रूप में उपलब्ध हैं, तो भी पाली के समान स्वतन्त्र व्याकरण ग्रन्थ प्राकृत में अभी तक नहीं मिले हैं। प्रो० श्री हीरालाल रसिकलाल कापड़िया का *Grammatical Topics in Pali* शीर्षक निबन्ध<sup>१</sup> पठनीय है। इस निबन्ध में जैन आगम ग्रन्थों के उद्धरण संकलित कर उच्चारण विधि, वर्णविकार, वर्णगम, स्वरभक्ति, सम्प्रसारण, शब्दरूप आदि सिद्धान्तों का निरूपण किया है। कोई भी व्यक्ति इन सिद्धान्तों को देखकर सहज में अनुमान लगा सकता है कि प्राकृत भाषा में भी शब्दानुशासन सम्बन्धी ग्रन्थ लिखे गये होंगे। यशस्तिलक चम्पू और पट्टप्राम्भन के टीकाकार ध्रुतसागर सूरि ने यशस्तिलक की टीका में “प्राकृतव्याकरणाद्यमेवशास्त्ररचना-चञ्चुना” लिखा है इससे अनुमान होता है कि इनका कोई शब्दानुशासन-सम्बन्धी ग्रन्थ प्राकृत भाषा में भी रहा होगा।

संस्कृत भाषा में लिखे गये प्राकृत भाषा के अनेक शब्दानुशासन उपलब्ध हैं। उपलब्ध व्याकरणों में भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में संक्षिप्त रूप से दिये हुए प्राकृत व्याकरण का नाम सर्वप्रथम लिया जा सकता है। भरत ने नाट्यशास्त्र के १७ वें अध्याय में विभिन्न भाषाओं का निरूपण करते हुए ६-२३ वें पद्य तक प्राकृत व्याकरण के सिद्धान्त बतलाये हैं और ३२ वें अध्याय में प्राकृत भाषा के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। पर भरत के ये अनुशासन-सम्बन्धी सिद्धान्त इतने संक्षिप्त और अस्पष्ट हैं कि इनका उल्लेख मात्र इतिहास के लिए ही उपयोगी है।

कुछ विद्वान् पालिनि का प्राकृत उद्गम नाम का प्राकृत व्याकरण बतलाते हैं। डा० विश्व ने भी अपने प्राकृत व्याकरण में इस ओर संकेत किया है; पर यह

---

१. 'पारय' साहित्य के व्याकरण-वैशिष्ट्य सार्वजनिक सं० ४३ (अक्तूबर १९४१) तथा वर्णाभिनन्दन ग्रन्थ के अन्तर्गत 'पारय' साहित्य का सिद्धान्तोक्त' शीर्षक निबन्ध।

ग्रन्थ न तो आज तक उपलब्ध ही हुआ है और न इसके होने का कोई सबल प्रमाण ही मिला है। उपलब्ध समस्त शब्दानुशासनों में वररुचि का प्राकृत प्रकाश ही सबसे पुराना और उपयोगी व्याकरण है। प्राकृतमञ्जरी की भूमिका में वररुचि का गोट नाम कात्यायन कहा गया है। डा० पिथल का अनुमान है कि प्रसिद्ध वार्तिककार कात्यायन और वररुचि दोनों एक व्यक्ति हैं। यदि ये दोनों एक न भी हों, तो भी इतना तो मानना ही पड़ेगा कि वररुचि पुराने वैयाकरण हैं।

प्राकृत व्याकरणों का यदि ऐतिहासिक ढंग से विचार किया जाय, तो म्यारहवीं बारहवीं शताब्दी का समय बड़े महत्त्व का मालूम होता है। इन शताब्दियों में बड़े-बड़े आचार्यों ने अनेक प्रकार के विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ लिखे हैं। इसी समय में रचा गया आचार्य हेमचन्द्र का व्याकरण अपने ढंग का अनोखा है तथा यह संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं का पूर्णतया ज्ञान कराने में सक्षम है। हेम के सूत्रों के अनुकरण पर कई प्राकृत व्याकरण लिखे गये हैं। प्राकृत शब्दानुशासन के तीन-चार ग्रन्थ ऐसे मिलते हैं, जिनके सूत्र अविकल हेमचन्द्र के ही हैं; पर सूत्रों की व्याख्या भिन्न भिन्न ढंग और भिन्न-भिन्न क्रम से की गयी है, इसीलिए सूत्रों के एक रहने पर भी ये ग्रन्थ एक दूसरे से विलगुल भिन्न से हो गये हैं। सबसे पहली टीका त्रिविक्रम देव की यतायी जाती है, इन्होंने १०३६ सूत्रों पर पाण्डित्यपूर्ण वृत्ति लिखी है। इनकी वृत्ति को षट्भाषा चन्द्रिका के लेखक लक्ष्मीधर ने गूढ कहा है—

वृत्ति त्रैविक्रमो गूढां व्याचिख्यासन्ति ये युवाः।

षट्भाषाचन्द्रिका तैस्तद् व्याख्यारूपा विलोक्यताम् ॥

अर्थात्—जो विद्वान् त्रिविक्रम की गूढवृत्ति को समझना और समझाना चाहते हों, वे उसकी व्याख्यारूप षट्भाषा चन्द्रिका को देखें।

त्रिविक्रम की व्याख्या सूत्र-क्रमानुसारी है, अतः इसे पाणिनीय अष्टाध्यायी की टीका काशिकावृत्ति के ढंग की कहा जा सकता है। इसके पश्चात् उक्त सूत्रों पर ही प्रकरणरत्न टीकाएँ लक्ष्मीधर, सिंहराज और अप्पयदीक्षित की उपलब्ध हैं। लक्ष्मीधर ने षट्भाषा चन्द्रिका की रचना त्रिविक्रम के अनन्तर और अप्पय दीक्षित के पूर्व लिखी है। अप्पय दीक्षित ने अपने प्राकृत मणिदीप में अन्य लोगों के साथ इनका भी नाम लिया है।

लक्ष्मीधर की टीका विषयानुसारिणी है। इसकी तुलना हम भट्टोजिदीक्षित की सिद्धान्त बौमुदी से कर सकते हैं। प्राकृत भाषा का ज्ञान करने के लिए इस ग्रन्थ की उपयोगिता विद्वज्जगत् में प्रसिद्ध है।

उक्त सूत्रों के चौथे व्याख्याता सिंहराज हैं। इनके ग्रन्थ का नाम प्राकृत रूपावतार है, इन्होंने समस्त सूत्रों १० ८५ पर व्याख्या नहीं लिखी है, बल्कि इनमें से चुनकर ५७५ सूत्रों पर ही अपनी उक्त टीका लिखी है। इस ग्रन्थ को एक प्रकार से षड्भाषा चन्द्रिका का संक्षिप्त रूप कहा जा सकता है। इसकी तुलना बरदराज की मध्य कौमुदी या लघु कौमुदी से की जा सकती है। कुछ लोग षड्भाषा चन्द्रिका को ही प्राकृत रूपावतार का विस्तृत रूप मानते हैं।

ऊपर जिन चार टीका ग्रन्थों का उल्लेख किया है, उनमें सूत्र वे ही हैं, जो त्रिविक्रम के प्राकृत व्याकरण में उपलब्ध हैं। कुछ विद्वान् इन सूत्रों के रचयिता वाल्मीकि को मानते हैं तथा प्रमाण में 'शम्भुरहस्य' के निम्न श्लोकों को उद्धृत करते हैं।

तथैव प्राकृतादीनां षड्भाषाणा महामुनि ।  
आदिनाव्यकृदाचार्यो व्यकर्ता लोकविश्रुतः ॥  
यत्रैर रामचरितं संस्कृतं तेन निर्मितम् ।  
तथैव प्राकृतेनापि निमित्तं हि सतां मुदे ॥

प्राकृत मण्डीप के सम्पादक ने सूत्रों का मूल रचयिता वाल्मीकि को ही माना है। लक्ष्मीधर के निम्न श्लोक से भी वाल्मीकि इन सूत्रों के रचयिता सिद्ध होते हैं।

वाग्देवी जननी येषां वाल्मीकिर्मूलसूत्रकृत ।  
भाषाप्रयोगा ज्ञेयास्ते षड्भाषाचन्द्रिकाऽध्वना ॥

पर उक्त मान्यता का खण्डन भट्टनाथ स्वामी ने इण्डियन एंटीक्वेरी के ४० वें भाग ( १९११ ई० ) में "Trivikrama and his followers" नामक निबन्ध में किया है। के० पी० त्रिवेदी, हुल्य और डा० ए० एन० उपाध्ये उक्त सूत्रों का मूल रचयिता त्रिविक्रम को ही मानते हैं। निम्न श्लोक में स्वयं त्रिविक्रम ने अपने को सूत्रों का रचयिता प्रकट किया है।

प्राकृतपदार्थसार्थप्राप्त्यै निब्रसूत्रमार्गमनुजिगमिपताम् ।  
वृत्तिर्यथाथेसिद्धयै त्रिविक्रमेणागमक्रमात्क्रियते ॥

डा० ए० एन० उपाध्ये ने पूर्णरूप से विचार विनिमय के उपरान्त यह निष्कर्ष निकाला है कि मूलसूत्रों के रचयिता वाल्मीकि नहीं, अपितु त्रिविक्रम देव ही है। हमें भी यही उचित प्रतीत होता है कि प्राकृत शब्दानुशासन के सूत्र और वृत्ति के रचयिता त्रिविक्रम देव ही हैं। उक्त आचार्यों की समय-सारिणी निम्न प्रकार है—



त्रिविक्रम ( १२३६-१३०० ई० ), सिद्धराज ( १३००-१४०० ई० )  
लक्ष्मीधर ( १५४१-१५६५ ) ई० और अप्य दीक्षित ( १५५४-१६२६ ई० ) ।

हेमचन्द्र के साथ तुलना करने के लिए इनके पूर्ववर्ती वररुचि के प्राकृत प्रकाश, और चण्ड के प्राकृत लक्षण आदि ग्रन्थों को और उत्तरकालीन ग्रन्थों में त्रिविक्रमदेव के प्राकृत शब्दानुशासन और मार्कण्डेय के प्राकृत-सर्वस्व प्रमृति ग्रन्थों को लिया जायगा तथा समता और विप्रमता के आधार पर हेम की प्रमुख विशेषताओं को निबद्ध करने की चेष्टा की जायगी ।

### हेम और वररुचि—

वररुचि ने प्राकृत ( महाराष्ट्री ), पेशाची, मागधी और शौरसेनी इन चार प्राकृत भाषाओं का नियमन किया है । इन्होंने पेशाची और मागधी को शौरसेनी की विवृति कहा है; अतः उक्त दोनों ही भाषाओं के लिए शौरसेनी को ही प्रकृति माना है तथा शौरसेनी के लिए प्राकृत के समान संस्कृत को ही प्रकृति कहा है । प्राकृत से इनका अभिप्राय महाराष्ट्री प्राकृत से है । यह महाराष्ट्री प्राकृत संस्कृत के नियमों के आधार पर सिद्ध होती है अर्थात् संस्कृत के शब्दों में विभक्तियों, प्रत्यय आदि के स्थान पर नयी विभक्तियाँ, नये प्रत्यय तथा वर्गगम, वर्णविवर्त्य आदि के होने पर महाराष्ट्री प्राकृत सिद्ध होती है । यह भाषा नियमानुगामिनी और अत्यन्त ध्वनियत है ।

प्राकृत प्रकाश में द्वादश परिच्छेद हैं; इनमें आदि के नौ परिच्छेदों में महाराष्ट्री प्राकृत का अनुशासन, दशवें में पेशाची का, स्यारहवें में मागधी का और बारहवें में शौरसेनी का अनुशासन किया गया है । हेमचन्द्र ने सिद्धहेम शब्दानुशासन के आठवें अध्याय में प्राकृत भाषाओं का अनुशासन किया है । इन्होंने महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, पेशाची, चूलिका पेशाची और अपभ्रंश के साथ आर्य प्राकृत का भी अनुशासन किया है । आर्य प्राकृत से हेम का अभिप्राय जैनागमों की अर्धमागधी भाषा से है; अतः इन्होंने जहाँ-तहाँ आर्य प्राकृत का भी नियमन किया है ।

अपभ्रंश और चूलिका पेशाची का अनुशासन तो हेम का वररुचि की अपेक्षा नया है । वररुचि ने अपभ्रंश की चर्चा बिल्कुल छोड़ दी है । इसका कारण यह नहीं कि वररुचि के समय में अपभ्रंश भाषा थी नहीं; यतः पतञ्जलि ने गावी, गौणी आदि उदाहरण देकर अपभ्रंश का अपने समय में अस्तित्व स्वीकार किया है । हेम ने अपभ्रंश भाषा का व्याकरण १२० सूत्रों में पर्याप्त विस्तार के साथ लिखा है । उदाहरणों के लिए, जैन दोहों को उद्धृत किया गया है, वे साहित्य और भाषा विज्ञान की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं । अपभ्रंश का व्याकरण लिख कर हेम ने उसे अमर बना दिया है । हेम ही सबसे

पहले ऐसे वैयाकरण हैं, जिन्होंने अपभ्रंश भाषा के सम्बन्ध में इतना विस्तृत अनुशासन उपस्थित किया है। लक्ष्यों में पूरे पूरे दोहे दिये जाने से लुप्तप्राय बड़े भारी साहित्य के नमूने सुरक्षित रह गये हैं। अपभ्रंश भाषा के अनुशासक की दृष्टि से हेम का महत्त्व वररुचि की अपेक्षा अत्यधिक है। अपभ्रंश व्याकरण के रचयिता होने से हेम का महत्त्व आधुनिक आर्य भाषाओं के लिए भी है। भाषा की समस्त नवीन प्रवृत्तियों का नियमन, प्ररूपण और विवेचन इनके अपभ्रंश व्याकरण में दिद्यमान है। यतः अपभ्रंश से ही हिन्दी के परसर्ग, घातुचिह्न, अव्यय, तद्धित और कृत् प्रत्ययों का निर्गमन हुआ है। उपमाभा और विमायाओं की अनेक प्रवृत्तियाँ अपभ्रंश से निस्सृत हैं। अतः वहाँ वररुचि ने पुस्तकीय प्राकृत भाषा का अनुशासन लिखा, वहाँ हेम ने पुस्तकीय प्राकृत के साय-साय अरने समय में विभिन्न प्रदेशों में प्रचलित उप-भाषा और विमायाओं का संविधान भी उपस्थित किया है। इसीलिए वररुचि की अपेक्षा हेम अधिक उपयोगी और प्राह्य हैं। विषय विस्तार और विषय-साम्मीर्य जितना हेम में उपलब्ध है, उतना वररुचि में नहीं।

शैली की अपेक्षा से दोनों ही वैयाकरण समान हैं। वररुचि ने प्रथम परिच्छेद में अच् विकार—स्वरविकार, द्वितीय परिच्छेद में असंयुक्त व्यञ्जन विकार, तृतीय में संयुक्त व्यञ्जन विकार, चतुर्थ में मिश्रित वर्ण विकार, पञ्चम में शब्दरूप, षष्ठ में सर्वनाम विधि, सप्तम में तिङन्त विचार, अष्टम में घात्वादेश, नवम में निपात, दशवें में पैशाची, ग्यारहवें में मागधी और बारहवें में शौरसेनी भाषा का अनुशासन किया है। हेम ने अष्टम अध्याय के प्रथम पाद में साधारणतः १७५ सूत्रों में स्वर-परिवर्तन; १७७-२७१ सूत्र तक असंयुक्त व्यञ्जन-परिवर्तन; द्वितीय पाद के आरम्भिक १०० सूत्रों में संयुक्त व्यञ्जन परिवर्तन, व्यञ्जनादेश, ध्वंजनलोप, द्वित्व प्रकरण; ११०-११५ तक स्वरमच्छि के सिद्धान्त; ११६-१२४ सूत्र तक वर्णव्यत्यय के सिद्धान्त एवं इस पाद के अक्षरोप सूत्रों में समस्त शब्द के रूपान्तर पर आदेश, अव्यय आदि का निरूपण किया है। तृतीय पाद में शब्दरूप, घातुरूप, तद्धित प्रत्यय और कृत् प्रत्ययों का कथन है। चतुर्थ पाद में घात्वादेश, शौरसेनी, मागधी, पैशाची, चूलिका पैशाची और अपभ्रंश भाषाओं का अनुशासन किया है। अतएव विषयक्रम और वर्णनशैली दोनों ही हेम की वररुचि के समान हैं। इस सत्य से कोई इनकार नहीं कर सकता है कि जिस प्रकार संस्कृत शब्दानुशासन में हेम, पाणिनि, शाकटायन और जैनेन्द्र के श्रुणी हैं, उसी प्रकार प्राकृत शब्दानुशासन के लिए उन पर वररुचि का श्रुण है। वररुचि से हेम ने शैली तो ग्रहण की ही है, साय ही कुछ सिद्धान्त व्यो के र्यों और कुछ परिवर्तन के साय स्वीकार किये हैं।

वररुचि का स्वरविकार सम्बन्धी पहला सूत्र है 'आ समृद्ध्यादिषु वा' १।२। इसमें बताया है कि समृद्धि आदि शब्दों में विकल्प से दीर्घ होता है; अतः सामिद्धि, समिद्धी ये दो रूप बनते हैं। हेम ने स्वरविकार के क्यम का आरम्भ सामान्य व्यवस्था से किया है। इन्होंने पहले सामान्य शब्दों में स्वरों के विकार का निरूपण कर पश्चात् विशेष-विशेष शब्दों में स्वरविकार के विद्वान्त बतलाये हैं। वहाँ वररुचि ने आरम्भ ही विशेष विशेष शब्दों में स्वरविकार से किया है, वहाँ हेम ने "दीर्घह्रस्वौ नियो वृत्तौ" ८।१।४ द्वारा सामान्यतया शब्दों में ह्रस्व के स्थान पर दीर्घ और दीर्घ के स्थान पर ह्रस्व कर देने की व्यवस्था बतलायी है। वैज्ञानिकता की दृष्टि से आरम्भ में ही हेम वररुचि से बहुत आगे हैं। यतः सामान्य शब्दों में दीर्घ ह्रस्व की शासन व्यवस्था अज्ञात हो जाने पर ही समृद्धि आदि विशेष शब्दों में स्वरविकार का नियमन करना उचित और तर्कसंगत है। आरम्भ में ही विशेष शब्दों की अनुशासन व्यवस्था बतलाने का अर्थ है, सामान्य व्यवस्था की उपेक्षा। यतः सामान्य शब्दों के अनुशासन के अभाव में विशेष शब्दों का अनुशासन करना वैज्ञानिकता में त्रुटि का परिचायक है।

हेम ने समृद्धि आदि शब्दों में दीर्घ होने की शासन-व्यवस्था ८।१।४ सूत्र में बतलायी है। समृद्धिगण को वररुचि ने आहृतिगण कहा है, पर हेम ने इसको समृद्धिगण ही कहा है। हेम ने वररुचि की अपेक्षा अनेक नट उदाहरण दिये हैं।

प्राकृत प्रकाश में ईषत् आदि शब्दों में आदि अकार के स्थान पर इकारादेश करके सिविणो, वेडिसो आदि रूप सिद्ध किये हैं, हेम ने यही कार्य ८।१।४६ द्वारा कुछ विशेष ढंग से सम्पादित किया है।

वररुचि ने स्त्रीलिङ्गी व्यञ्जनों में आत्व का विधान 'त्रियामात्' ७।४ द्वारा और विद्युत् शब्द में आत्व का निषेध 'न विद्युति' ६।४ द्वारा किया है। हेम ने इन दोनों कार्यों को 'त्रियामादविद्युतः' ८।१।१५ इत एक ही सूत्र में समेट लिया है। हेम की अनुशासनसम्बन्धी वैज्ञानिकता यहाँ वररुचि से आगे है। प्रायः सर्वत्र ही हेम ने लाघव प्रवृत्ति का अनुसरण किया है। लोप-प्रकरण में वररुचि ने 'लोपोऽरण्ये' १।४ सूत्र द्वारा अरण्य शब्द के आदि अकार का नित्य लोप करके 'रण्यां' रूप बनाया है, पर हेम ने इसके स्थान पर 'बाला-न्वरण्ये लुक्' ८।१।६६ सूत्र में अलातु और अरन्त्य-दोनों ही शब्दों में आदि अकार का विकल्प से लोप कर लाउं, अगउं, रणं अरणं आदि रूपों का नियमन किया है। हेम का यह सूत्र वररुचि की अपेक्षा अधिक व्यापक और महत्त्वपूर्ण है। इस सिद्धान्त से एक नवीन निष्कर्ष यह भी निकलता है

कि हेम के समय में रम्यं और अरम्यं के दोनों प्रयोग होते थे, अतः हेम ने अपने समय की प्रचलित भाषा को आधार मान कर अकार लोप का वैकल्पिक अनुशासन किया है।

हेम ने छत्तवम्यो, छत्तवम्यो, झुगी, पावानुभो, चहुट्टिलो, जहिट्टिलो आदि अनेक ऐसे शब्दों का अनुशासन प्रदर्शित किया है, जिनका वररचि के प्राकृत-प्रकाश में विलकुल अभाव है। प्राकृत भाषा का सर्वाङ्गीण अनुशासन हेम ने लिखा है, अतः इन्होंने इसे सभी दृष्टिकोणों में पूर्ण बनाने की चेष्टा की है।

प्राकृत प्रकाश की अपेक्षा हेम व्पाकरण में निम्न विशेष कार्य दृष्टिगोचर होते हैं—

१—हेम ने स्त्रीलिंग के प्रत्ययों का निर्देश करते हुए बताया है कि संज्ञावाची शब्दों में विकल्प से दो प्रत्यय होता है, अतः ८१३१, ८१३२, ८१३३ सूत्रों द्वारा ही का वैकल्पिक रूप से विधान किया है, जैसे नीगी, नीगा; कालो, काला; हतमागी, हतमागा; सुपाशी, सुपाशा, इमीय, इमाय; साहगी, साहगा; झुचरी, कुचरा आदि। वररचि ने इसका निर्देशन नहीं किया है।

२—‘घातवोऽर्थन्तरेऽपि’ ८१४२५९ सूत्र हेम का विलकुल नया है, वररचि ने घातुओं के अर्थन्तरो का संकेत भी नहीं किया है। इस सूत्र में हेम ने घातुओं के बदले हुए अर्थों का निर्देश किया है। कलि घातु प्राणन अर्थ में पठित है, पर यह खादन अर्थ में भी आता है; जैसे कल्द—खादति प्राणनं करोति वा। कलि, गाना के अर्थ में पठित है, पर पहिचानने के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है, जैसे कल्द—जानाति संख्यानं करोति वा। रिगिः घातु गति अर्थ में पठित है, पर प्रवेश अर्थ में भी इसका प्रयोग होता है; जैसे रिगद प्रविशति, गच्छति वा। कांस के स्थान पर कन्त आदेश होता है, इसका अर्थ इच्छा करना और मारना दोनों हैं। यद्यपि इसका मुख्य अर्थ इच्छा करना ही है, तो भी इसका प्रयोग मारने के अर्थ में होता है। पक्क घातु के स्थान पर पक्क आदेश होता है; इसका अर्थ नीचे गमन करना है, पर इसका प्रयोग विलम्ब करने के अर्थ में भी होता है। इस प्रकार हेम ने ऐसे अनेक घातुओं का निरूपण किया है, जो अपने पठित अर्थ के अतिरिक्त अर्थन्तर में प्रयुक्त होते हैं।

३—हेम ने ‘लुन सरस्यप्रसा दीर्घः’ ८१४३ द्वारा प्राकृत लुका वर लुन भकार, रकार, बकार, शकार, पकार और सकार के पूर्व स्वर को दीर्घ होने का नियमन किया है; जैसे पश्यति = पावइ, कश्यसः = कासवो, आवश्यक् आवश्यस्यं, विश्राम्यति = वीसमद, विश्रामः = वीसामो, भिन्नन् = नीर्दं, संसर्षः = संसर्षो, अभः = आसो, विश्वसिति = वीससइ, विश्वासः = वीसासो, दुश्शासनः =

दूसासणो, शिष्यः = सीसो, मनुष्यः = मणुसो, कर्षकः = कासओ, वर्षा = वासा, वर्षः = वासो, कस्यचित् = कासइ । प्राकृत-प्रकाश में इस अनुशासन का अभाव है ।

४—हेम ने क ग च ज त द प य और घ का लोप कर अवशिष्ट स्वर के स्थान पर 'अवर्णो यधुतिः' ८।१।१८० द्वारा यधुति का विधान किया है । यह यधुति महाराष्ट्री प्राकृत की प्रमुख विशेषता है । वररुचि के प्राकृत-प्रकाश में यधुति का अभाव है; इसी कारण कुछ लोग हेम की महाराष्ट्री को जैन महाराष्ट्री कहते हैं; पर हमारी समझ से यह बात नहीं है । यधुति सेतुबन्ध और गउडवहो जैसे महाराष्ट्री के काव्यों में विद्यमान है । हेम द्वारा प्रदत्त उदाहरणों में से कुछ को उद्धृत किया जाता है ।

तीर्थकरः = तिथ्यरो, शकटं = सपडं, नगरं = नयरं, मृगाङ्कः = मयङ्को, कचप्रहः = कयगहो, काचमणिः = कापमणी, रजतं = रययं, प्रजापतिः = पयावई, रसातलं = रसायलं, पातालं = पायालं, मदनः = मयणो, गता = गया, नयनं = नयणं, लावण्यं = लायण्यं ।

५—वररुचि ने यमुना शब्द के ककार का २।३ द्वारा लोप कर जउणा रूप सिद्ध किया है, पर हेम ने 'यमुना-चामुण्डा-कामुकातिमुत्तके मोऽनुनासिकश्च' ८।१।१७८ सूत्र द्वारा यमुना, चामुण्डा, कामुक और अतिमुत्तक शब्दों के यकार के स्थान पर अनुनासिक करने का विधान किया है; अतः यमुना = जउँणा, चामुण्डा = चाउँण्डा, कामुकः = काउँओ, अतिमुत्तकः = अणिउँतयँ । इस सिद्धान्त के आधार पर हम इतना ही कह सकते हैं कि वररुचि की अपेक्षा हेम का उक्त अनुशासन मौलिक और वैज्ञानिक है तथा यह प्रवृत्ति भाषा की परिवर्तनशीलता का सूचक है ।

६—वररुचि ने प्राकृत-प्रकाश में गद्गद् और संख्यावाची के दकार के स्थान पर रकारादेश करने के लिए 'गद्गदेरा' २।१३ और 'संख्यायाश्च' २।१४ ये दो सूत्र ग्रन्थित किये हैं; हेम ने उक्त दोनों कायों के लिए 'संख्यागद्गदेरः' इस एक ही सूत्र का निर्माण कर अपना लाघव दिखलाया है ।

७—वररुचि ने २।१५ द्वारा दोला, दण्ड और दशन आदि शब्दों के आद्यवर्ण के स्थान पर ङकारादेश किया है; हेम ने इसी सूत्र को विकसित कर दशन, दष्ट, दग्ध, दोला, दण्ट, दाह, दग्म, दभं, कदन, दोहद और दर शब्दों के दकार के स्थान पर ङकारादेश किया है । हेम का यह स्पष्टीकरण शब्दानुशासक की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है ।

८—२।११ द्वारा वररुचि ने क्षमा, वृथ और क्षण शब्द के क्षकार के स्थान में विकल्प से छकार आदेश किया है; किन्तु हेम ने 'क्षमायां कौ' ८।२।१८

सूत्र से पृथ्वीवाचक क्षमा शब्द के क्षकार के स्थान पर छकार तथा 'क्षो उत्स्रमे' ८।२।२० द्वारा उत्स्रवाची क्षा के क्षकार के स्थान पर छकार आदेश किया है। उच्च अर्थों से इतर अर्थ होने पर उपयुक्त दोनों ही शब्दों के स्थान पर ख आदेश किया है। अर्थ विशेष की दृष्टि से भाषा का इस प्रकार अनुशासन करना हेम की मौलिकता का परिचायक है।

९—जहाँ प्राकृत-प्रकाश में तीन-चार तद्धित प्रत्ययों का ही उल्लेख है, वहाँ हेम में सैकड़ों प्रत्ययों का नियमन आया है। विषय-विस्तार और सर्वाङ्गीता की दृष्टि से हेम वररुचि से बहुत आगे हैं। हमें ऐसा लगता है कि बिम्ब प्रकार चक्रवृद्धि सूद की दर से ऋण लेने पर एक का दश गुना अदा करना पड़ना है, उभी प्रकार हेम ने वररुचि से कतिपय सिद्धान्त ग्रहण किये; पर उनको दशगुने ही नहीं, शतगुने विकसित, सशोधित और परिमार्जित कर वपस्थित किया है।

अब यहाँ उन सूत्रों की ताजिका दी जा रही है, जो हेम व्याकरण और प्राकृत प्रकाश में समान रूप से या थोड़े से परिवर्तन के साथ उपलब्ध हैं।

प्राकृत प्रकाश	हेम शब्दानुशासन
आ समृद्धयादियु वा १।२	अतः समृद्धयादौ वा ८।१।४४
ईदीप्यक १।३	इः स्वनादौ ८।१।४६
लोपेऽरग्ये १।४	बालान्तरग्ये लुक् ८।१।६६
ए शय्यादियु १।५	एच्छय्यादौ ८।१।५७
मो च द्विषा कृञ् १।१६	ओच्च द्विषाकृञ् ८।१।३७
ईत् सिंहजिह्वयोश्च १।१७	ईर्जिह्वासिंहजिह्वद्विशतौ त्या ८।१।६२
इदीतः पानीयादियु १।१८	पानीयादिभित् ८।१।२०१
एञ्जीहानीङ्को १।१९	एत्पोयूप्... ८।१।२०५ तथा ८।१।२०६
अन्मुकटादियु १।२२	उतो मुकुलादिभित् ८।१।२०७
इत्पुरुषे रोः १।२३	पुरुषे रोः ८।१।२११
उतूत मञुके १।२४	मञुके वा ८।१।२२२
अद् दुकृन्ने वा ल्यप् द्वित्वन् १।२५	दुकृन्ने वा ल्यप् द्विः ८।१।२१९
एन्नुपुरे १।२६	इदेतौ नूपुरे वा ८।१।२२३
ऋतोऽत् १।२७	ऋतोत् ८।१।२२६
उहत्वादियु १।२९	उहत्वादौ ८।१।२३१
लृत्. कन्तृतरिः १।३३	लृत्: इल्लिकन्तृन् कन्तृन्ने ८।१।१४५
ऐत् इद्वेदनादेवरयोः १।३४	ऐत् इद्वा वेदना... ८।१।१४६
ऐत् ऐत् १।३५	ऐत् ऐत् ८।१।१४८

दैवे वा ११३७	एष दैवे वा १११५३
उत्सौन्दर्यादिषु ११४४	उत्सौन्दर्यादी वा १११६०
पौरादिष्वउ ११४२	अउ पौरादी च वा ११०६२
आ च गौरवे ११४३	आच गौरवे वा १११६३
कगचञ्जतदपयवां प्रायो लोपः २१२	कगचञ्जतदपयवां प्रायो लुक् वा १११७७
स्फटिकनिकर्षचिकुरेषु कस्य हः २१४	निकर्ष स्फटिक-चिकुरे हः वा १११८६
शीकरे मः २१५	शीकरे म-हौ वा वा १११८४
चन्द्रिकायां मः २१६	चन्द्रिकायां मः वा १११८५
गर्मिते णः २११०	गर्मितातिमुक्तके णः वा ११२०८
प्रदीप्तकदम्बदोहदेषु दोलः २११२	प्रदीपि-दोहदेलः; कदम्बे वा ११२२१-२२२
गद्गदेरः २११३	संख्यागद्गदेरः वा ११२१९
पो वः २११५	पो वः वा ११२३१
छायायां ह २११८	छायायां होकान्तो वा वा ११२४९
ककन्धे वो मः २११९	ककन्धे मयौ वा ११२३९
दो डः २१२०	दो डः वा ११२९५
सटाशकटकैटमेषु टः २१२१	सटाशकटकैटमे टः वा ११२९६
स्फटिके लः २१२२	स्फटिके लः वा ११२९७
इस्य च २१२३	दो लः वा ११२०२
दो टः २१२४	दो टः वा १११९९
अङ्गोले ल्लः २१२५	अङ्गोले ल्लः वा ११२००
पो मः २१२६	पो म-हौ वा ११२३६
खपयधर्मां हः २१२७	खपयधर्मां वा १११८७
कैटमे वः २१२९	कैटमे मो वः वा ११२४०
हरिद्रादीनां रोलः २१३०	हरिद्रादी लः वा ११२५४
आदेर्यो जः २१३१	आदेर्यो जः वा ११२४५
यष्ट्यां लः २१३२	यष्ट्यां लः वा ११२४७
बिखिन्यां मः २१३८	बिखिन्यां मः वा १११३८
मन्मये वः २१३९	मन्मये वः वा ११२४२
नो णः सर्वत्र २१४२	नो णः वा ११२८८
शपोः सः २१४३	शपोः सः वा ११२६०
दशादिषु हः २१४४	दशाशापो हः वा ११२६२
दिवसे सत्य २१४६	दिवसे सः वा ११२६३
स्तुपायां ष्हः २४७	स्तुपायां ष्हो न वा वा ११२६१

किरति चः २।३३  
 स्तम्भे ख ३।१४  
 स्थाणावहरे ३।१५  
 युक्तस्य ३।९  
 नधूर्तादिषु ३।२४  
 गर्ते डः ३।२५  
 चिन्हे न्वः ३।३४  
 षस्य फः ३।३५  
 कार्पाण्ये ३।३९  
 वृश्चिके उः ३।४१  
 न्मो मः ३।४३  
 तालवृन्ते षः ३।४५  
 मध्याह्ने हस्य ३।७  
 द्वे रो वा ३।४  
 श्वश्रुश्मशानयोरदेः ३।६  
 आम्रताम्रयोर्नः ३।५३  
 समात्ते वा ३।५७  
 सेवादियु ३।५८  
 कृष्णे वा ३।६१  
 ज्यायामीत् ३।६६  
 अन्त्यहलः ४।६  
 रोरा ४।८  
 शरदो दः ४।१०  
 दिङ्प्रावृषोः सः ४।११  
 मो विन्दुः ४।१२  
 अचिमश्च ४।१३  
 वक्रादियु ४।१५  
 मातादियु वा ४।१६  
 नचान्तप्रावृट्शरदः पुंसि ४।१८  
 न शित्ते नमत्तौ ४।१९  
 आलाने लनोः ४।२९  
 बृहस्पती बहोर्मभौ ४।३०  
 जश्शसोर्लोकः ५।२

किरति चः ८।१।१८३  
 स्तम्भे स्तो वा ८।२।८  
 स्थाणावहरे ८।२।७  
 संयुक्तस्य ८।२।१  
 तस्याधूर्तादी ८।२।३०  
 गर्ते डः ८।२।३५  
 चिन्हे न्वो वा ८।२।५०  
 षस्ययोः फः ८।२।५३  
 कार्पाण्ये ८।२।७१  
 वृश्चिकेश्चेऽनुर्वा ८।२।१६  
 न्मो म् ८।२।६१  
 वृन्ते षः ८।२।३१  
 मध्याह्ने हः ८।२।८४  
 द्वे रो न वा ८।२।८०  
 आदे. श्वश्रुश्मशाने ८।२।८६  
 ताम्रांशे न्व ८।२।५६  
 समात्ते ८।२।९७  
 सेवादौ वा ८।२।९९  
 कृष्णे वर्णे वा ८।२।११०  
 ज्यायामीत् ८।२।११५  
 अन्त्यव्यञ्जनस्य ८।२।१११  
 रोरा ८।१।१६  
 शरदादेत् ८।१।१८  
 दिङ्प्रावृषोः सः ८।१।१९  
 मोऽनुस्वारः ८।१।२३  
 वा स्वरे मश्च ८।१।२४  
 वक्रादाऽन्तः ८।१।२६  
 मातादेर्वा ८।१।२९  
 प्रावृट्शरत्तरण्यः पुंसि ८।२।३१  
 स्नमदामशिरोनमः ८।२।३२  
 आलाने लनोः ८।२।११७  
 बृहस्पती बहोर्मभौ ८।२।१३७  
 जश्शसोर्लुकं ८।३।४



अन ओतसोः ५।१

अतो मः ५।३

यमोर्णः ५।४

भित्तो हि ५।५

स्तो ङः ५।८

ङरेम्मी ५।९

मातुरात् ५।३२

आ च सौ ५।३५

राशध ५।३६

टाणा ५।४१

सर्वादिर्जस एत्वम् ६।१

ङे. सिंसम्मितायाः ६।२

आम एति ६।४

कि यत्तद्व्यो ङस आसः ६।५

इद्व्यः स्या से ६।६

किमः कः ६।१३

इदम इमः ६।२४

स्वस्तिमोरद्वा ६।१५

ङे देन ङः ६।१६

नत्यः ६।१७

द्वेदो ६।५४

श्रौरित ६।५५

चतुरभक्तारो चत्तारि ६।५८

शेषेऽदन्तवत् ६।६०

चतुर्ध्याः षष्ठी ६।६४

न्तुहमो बहुषु ७।१९

वर्तमान... ७।२०

मध्ये च ७।२१

ङे ७।३२

ए च ७।३३

भुवो हो उवो ८।१

ङे हुः ८।२

दूहो दूमः ८।८

अतः सेढो ८।३।२

अमोस्य ८।३।५

टा-आमोर्णः ८।३।६

भित्तो हि हिं हिं ८।३।७

ङस स्मः ८।३।१०

ङेम्मि ङे ८।३।११

आभरा मातुः ८।३।४६

आ सौ न वा ८।३।४८

राशः ८।३।५०

ये पा ८।३।५१

अतः सर्वादिर्जसः ८।३।५८

ङेः सिम मि त्याः ८।३।५९

आमो ङेति ८।३।६७

कियत्तद्भयो ङसः ८।३।६३

इद्व्यः स्यासे ८।३।६४

किमः किं ८।३।८०

इदम इमः ८।३।७२

स्ति स्मोरत् ८।३।७४

ङेमेन हः ८।३।७५

नत्यः ८।३।७६

द्वेदो वा ८।३।११९

त्रेस्ती तृतीयादौ ८।३।११८

चतुरभक्तारो चतरो चत्तारि ८।३।१६२

शेषेऽदन्तवत् ८।३।१२४

चतुर्ध्याः षष्ठी ८।३।१३१

बहुषु न्तु इमो ८।३।१७६

वर्तमाना... ८।३।१७७

मध्ये च स्वरान्ताद्वा ८।३।१७८

ङे ८।३।१५६

एच... ८।३।१५७

भुवेहो हुव-हवाः ८।४।६०

ङे हूः ८।४।६४

दूहो दूमः ८।४।२३

कृत्र का.....८।१७	आ कृत्रो ८।४।२१४
क्वस्तूनं १३।११	क्वस्तूनः ८।४।३१२
हृदयस्य हितअकं ७।१४	हृदये यस्य पः ८।४।३१०
शस्य ञः १०।९	शोञ्जः पैशाब्ध्याम् ८।४।३०३
क्षरय स्कः ११।८	क्षस्यस्कः ८।४।९६
बो यः ११।४	बययां यः ८।४।२९२
चिदस्य चिष्ठः ११।१४	तिष्ठश्चिष्ठः ८।४।२९२
क्व इभः १२।९	क्व इय दृशौ ८।४।२७१
कृगनोदुंअः १२।१०	कृगनोऽहुभः ८।४।२७२
भो भुवस्तिष्ठि १२।१२	भुचो भः ८।४।२६९

### चण्ड और हेमचन्द्र

हाँ हानले चण्डको पर्याप्त प्राचीन मानते हैं। निगल ने भी इन्हें वररुचि और हेम से प्राचीन स्वीकार किया है। चण्ड ने प्राकृत लक्षण नाम का एक छोटासा आर्ष प्राकृत का व्याकरण लिखा है। इन्होंने प्राकृत शब्दों को तीन भागों में बाँटा है—(१) संस्कृतयोनि—संस्कृत शब्दों के आधार पर निष्पन्न शब्द; जैसे यत्तः = जन्नो, नित्यं = निच्चं आदि; (२) संस्कृतसम—संस्कृत भाषा के शब्द व्यो के ल्यो रूप में गृहीत; जैसे शूरः = सरो, सोमः = सोमो, जालं = जालं आदि तथा (३) देशी शब्द; जैसे हर्षितं = लहातिभं, सष्टं = पुष्टं आदि।

प्राकृत लक्षण में तीन प्रकरण हैं = विभक्तिविधान, स्वविधान और व्यञ्जन-विधान। इसमें कुल १९५ सूत्र आये हैं। इस ग्रन्थ में अत्यन्त संक्षेपपूर्वक प्राकृत भाषा का व्याकरण लिखा गया है। इस अकेले ग्रन्थ के अध्ययन से प्राकृत भाषा का ज्ञान पूर्ण नहीं हो सकता है। हाँ, आर्ष प्राकृत की प्रमुख विशेषताएँ अवश्य इस व्याकरण द्वारा जानी जा सकती हैं। हेमचन्द्र ने भी 'आर्षम्' ८।१।३ सूत्र द्वारा आर्ष प्राकृत के अनुशासनो को बहुलं कहा है तथा चर्हां—तर्हां आर्ष प्राकृत के उदाहरण भी दिये हैं। हेमचन्द्र ने आद्य नकार के स्थान पर विकल्प से नकार माना है, यह आर्ष प्राकृत का ही प्रभाव है।

प्राकृत लक्षण और हेम व्याकरण का तुलनात्मक अध्ययन करने से ऐसा शक्य होता है कि प्राकृत लक्षण के कतिपय नियमों को हेम ने अपने प्राकृत शब्दानुशासन में स्थान दिया है। प्राकृत लक्षण के १।७, १।८, १।९, २।३, २।४ सूत्र हेम व्याकरण में ८।३।२४, ८।३।७, ८।३।९, ८।१।८, ८।१।१६ सूत्र के रूप में उपलब्ध हैं। हेम आर्ष प्राकृत के उदाहरण वे ही हैं, जो प्राकृत लक्षण में आये हैं। स्वर और व्यञ्जन-परिवर्तन के सिद्धान्त प्राकृत लक्षण में

बालन्त संज्ञित हैं, हेम ने इनका अधिक विस्तार किया है। सञ्चित और कृत प्रत्यय, धात्वादेश आदि का प्राकृत लक्षण में विलुप्त करना है, पर हेम व्याकरण में इतना सूत्र विस्तार नियमान है। संज्ञेय में इतना ही कहा जा सकता है कि प्राकृत लक्षण केवल आर्य भाषा का अनुयायन करता है और उल्टा यह अनुयायन भी अपूर्ण है, पर हेम व्याकरण सभी प्रकार के प्राकृतों का पूर्ण और सर्वांगीण अनुयायन करता है। हाँ, यह सत्य है कि हेम प्राकृत लक्षण से प्रभावित हैं। चण्ड ने एक ही सूत्र में अत्रग्रंथ का लक्षण बतलाते हुए लिखा है कि अकल्पित रूप का लोप नहीं होता है। अत्रग्रंथ भाषा की अन्य विशेषताओं का विकर इन्होंने नहीं किया।

### हेम और त्रिविक्रम—

द्विच प्रकार हेम ने सर्वाङ्गपूर्ण प्राकृत शब्दाट्टयात्मन लिखा है, उन्नी प्रकार त्रिचिन्म देव ने भी। स्वोन्म वृत्त और सूत्र दोनों के ही उत्तरदाता हैं। हेम ने अष्टम अध्याय के चार पादों में ही उनका प्राकृत शब्दाट्टयात्मन के निम्न लिखे हैं, त्रिचिन्म ने तीन अध्याय और प्रत्येक अध्याय के चार चार पाद; इस प्रकार कुल १० पादों में अपना शब्दाट्टयात्मन लिखा है। हेम के सूत्रों की संख्या ११११ और त्रिचिन्म के सूत्रों की संख्या १०५६ है। दोनों शब्दाट्टयात्मनों का दर्भ शिष्य प्राप्त करना है। त्रिचिन्म ने हेम के सूत्रों में ही कुछ फेर-बार कर के अपना शब्दाट्टयात्मन लिखा है। त्रिचिन्म और हेम की तुलना करते हुए डॉ. पी. एल. वैद्य ने त्रिविक्रमदेव के प्राकृत शब्दाट्टयात्मन की मूद्रिका में लिखा है—“The Subject matter Covered by both is almost the same. Trivikrama has newly added the following Sūtras : L.1-16, L.L33; 1.1.45, 1.2.109 ( पुञ्जाल्यायाः ); 1.3.14; 1.3.77; 1.3.100; 1.3.105 ( गौणयाः ); 1.4.63; 1.4.65; 1.4.107; 1.4.120; 1.4.121 ( गृहीत्यायाः ); 2.1.30 ( अत्रग्रन्थाः ), 2.2.9, 3.1.123; 3.4.65-67 and 3.4.72 ( इच्छाः ); in all 32 of these, 17 Sūtras relate to new technical terms used by Trivikrama; four sūtras relate to the groups of Desi words for which Hemachandra has only one sūtra in his grammar and an entire work, the देशोत्पन्नावाक्य and the remaining sūtras add a few new words not treated by Hemachandra. Thus the subject matter of

1119 sūtras of Hemachandra has been compressed by Trivikrama in about 1000 sūtras \*

त्रिविक्रम ने क्रम-विपर्यय और सूत्रच्छेद द्वारा पूरी तरह से हेमचन्द्र का अनुकरण किया है। कुछ संज्ञाएँ ह, दि स और ग आदि त्रिविक्रम ने नये रूप में लिखी हैं, किन्तु इन संज्ञाओं से विषय-निरूपण में सरलता की अपेक्षा जटिलता ही आ गई है। त्रिविक्रम ने अपने व्याकरण में हेम की अपेक्षा देशी शब्दों का संकलन अधिक किया है। हेम विशुद्ध वैयाकरण हैं, अतः इन्होंने वैज्ञानिकता में त्रुटि आ जाने के भय से देशी शब्दों का उल्लेख भर ही किया है। देशज शब्दों का पूरी तरह संकलन देशी नाममाला कोश में है।

त्रिविक्रम ने देशी शब्दों का वर्गीकरण कर हेम की अपेक्षा एक नयी दिशा को सूचित किया है। यद्यपि अपभ्रंश के उदाहरण हेमचन्द्र के ही हैं, तो भी उनकी संस्कृत छाया देकर अपभ्रंश पद्यों को समझने में पूरा सौकर्य प्रदर्शित किया गया है।

त्रिविक्रम ने अनेकार्थ शब्द भी दिये हैं। इन शब्दों के अवलोकन से तत्कालीन भाषा की प्रवृत्तियों का परिचय तो होता ही है, पर इनसे अनेक सांस्कृतिक बातें भी सहज में जानी जा सकती हैं। यह प्रकरण हेम की अपेक्षा विशिष्ट है, यहाँ इनका यह कार्य शब्दशासक का न होकर अर्थ शासक का हो गया है। कुछ शब्द निम्न प्रकार हैं—

ऊसरी = उष्णजल, स्थली	ओहन = नीवी और अ-सुगठन
केडु = फैलना, फेन, श्याल और दुर्बल	वमार = गुना और संघरत
तोल, तोडु = पिशाच और शलभ	उम्ल = बन्वरी
डिंखा = आतंक और त्रास	काटिल्ली = व्याकरण और भ्राष्ट्र
लुवी = लाल और स्तवक	काण्ड = सिंह और कौआ
अमार = नदी के बीच का टीला, कटुआ	शाट = लतागहन और वृक्ष
करोड = कौआ, नारियल और दैल	गोपी = सम्पत्ति और बाला

हेम ने अपने व्याकरण में धात्वादेश या वर्णदेश में संस्कृत धातुओं के वर्णों का या अकारादि वर्णों का क्रम रखा है; जैसे—क्य, गन्, जुगुञ्ज आदि, पर त्रिविक्रम ने विभिन्न अध्यायों के दो पादों में धात्वादेश दिया है; किन्तु उनके चयन का कोई भी वैज्ञानिक क्रम नहीं है।

त्रिविक्रम ने हेमचन्द्र के सूत्रों की संख्या को घटाने का पूरा प्रयास किया है।

\* See Introduction of Trivikrama's prakrit grammar P. xxvii.

इन्होंने १११९ सूत्रों के विषय की १००० सूत्रों में ही लिखने की कल्प देना की है। यह सही है कि हेम की अपेक्षा त्रिविक्रम में लापव प्रवृत्ति अधिक है। हेम के प्रायः सभी सूत्र त्रिविक्रम ने स्वच्छेद या ध्रुमंग द्वारा ग्रहण कर लिये हैं। कुछ गणनाट त्रिविक्रम के हेम की अपेक्षा नये हैं तथा कतिपय गणों की नामान्तरों भी हेम से मिले हैं।

### लक्ष्मीधर, सिंहराज और हेमचन्द्र

लक्ष्मीधर और सिंहराज त्रिविक्रमदेव के सूत्रों के व्याख्याता ही हैं। लक्ष्मीधर ने बताया है—

वृत्ति त्रैविक्रमी गृहां व्याचिख्यास्तान्ति ये वृवा ।

पट्भाषाचन्द्रिका नैस्तद्व्याख्या रूपा विलोक्यताम् ॥

लक्ष्मीधर ने सिद्धान्तकौमुदी का अम रत्न कर उदाहरण नेतृदन्ध, गठद्वहो, गहान्तराती, कर्पूर मंजरी आदि ग्रन्थों से दिये गये हैं और छहों प्रकार की प्राकृत भाषाओं का अनुशासन प्रकरणानुसार लिखा गया है। पट्भाषा चन्द्रिका के देखने में यही कहा जा सकता है कि हेम कुछल वैपाक्य हैं तो लक्ष्मीधर साहित्यकार। अतः दोनों की दो शैलियाँ होने में रचनाक्रम और प्रतिपादन में मौलिक अन्तर है। कतिपय उदाहरण दो दोनों के एक ही हैं; पर कुछ उदाहरण लक्ष्मीधर के हेम से दिल्कृत मिले हैं। इतने पर भी लक्ष्मीधर पर हेम का प्रभाव स्पष्ट देखा जाता है।

सिंहराज भी कुछल वैपाक्य हैं। लघुसिद्धान्त कौमुदी के टंग का इनका 'प्राकृत रूपाकार' नाम का ग्रन्थ है। इसमें संक्षेप से सन्धि, शब्दरूप, वाचस्प, समास, लङ्घित आदि का विचार किया है। हेम यदि पाणिनि हैं तो सिंहराज वरदाचार्य। शब्दानुशासन के सिद्धान्तों की दृष्टि में हेम व्याकरण निम्न और पूर्ण है। हाँ, व्यवहार की दृष्टि से आद्यबोध कराने के लिए प्राकृत रूपाकार अत्यन्त उपयोगी है।

### मार्कण्डेय और हेमचन्द्र

मार्कण्डेय का प्राकृतसर्वस्व एक महत्पूर्ण कृति है। इसका रचनाकाल १७वीं शती माना गया है। मार्कण्डेय ने प्राकृत भाषा के माषा, किनाषा, अरब्रंश और पैशाची ये चार भेद किये हैं। माषा के महाप्राप्ती, शौरसेनी, प्राच्या, अजन्ती और मागधी; किनाषा के शाकरी, चाणशाली, शाकरी, आभीरिणी और शाकरी, अरब्रंश के नागर, प्राचड और लज्जदार एवं पैशाची के कैकयी, शौरसेनी और पाञ्चाली ये भेद बदलाये हैं और इन सभी प्रकार की भाषा और उपभाषाओं का अनुशासन उल्लिखित किया गया है। उदाहरणों में

चूहत्या, सतशती, सेतुबन्ध, गौडवहो, शाकुन्तल, रत्नावली, मालतीमाधव, मृच्छकटिक, वेणीसंहार, कर्पूरमञ्जरी एवं विलासवती सट्टक आदि साहित्यिक ग्रन्थों तथा भरत, कोहल, मट्टि, भोजदेव और सिंगल आदि लेखकों की रचनाओं से दिये गये हैं ।

हेमचन्द्र ने वहाँ पश्चिमीय प्राकृत भाषा की प्रवृत्तियों का अनुशासन उपस्थित किया है, वहाँ मार्कण्डेय ने पूर्वीय प्राकृत की प्रवृत्तियों का नियमन प्रदर्शित किया है । यह सत्य है कि हेम का प्रभाव मार्कण्डेय पर परोक्ष है । अधिकांश सूत्रों पर हेम की छाया दिखलाई पड़ती है परन्तु उदाहरण साहित्यिक कृतियों से स्पष्टीत होने के कारण हेम की अपेक्षा नये हैं ।

हेम ने यष्टि से लट्टी शब्द बनाया है, पर मार्कण्डेय ने यष्टि से ळट्टी शब्द का साधुत्व दिखलाया है । मार्कण्डेय में पूर्वी प्रवृत्तियाँ हेम की अपेक्षा अधिक वर्तमान हैं ।

हेमचन्द्र का प्रभाव उत्तरकालीन सभी प्राकृत वैयाकरणों पर गहरा पड़ा है । शतावधानी मुनिश्री रत्नचन्द्र का 'जैनसिद्धान्त कौमुदी' नामक अर्द्धमागधी व्याकरण, पं० बेचरदास दोशी के प्राकृत व्याकरण और प्राकृतमागधीदेशिका; पटना विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष प्रो० श्री बगन्नापराम शर्मा का अपभ्रंश दर्पण, डा० सरयू प्रसाद अग्रवाल का प्राकृत विमर्श एवं प्रो० श्री देवेन्द्रकुमार का अपभ्रंश प्रकाश आदि रचनाएँ हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण के आधार पर ही लिखी गयी हैं ।



## नवम अध्याय

### हैम व्याकरण और आधुनिक भाषाविज्ञान

भाषाविज्ञान के द्वारा ही भाषाओं का वैज्ञानिक विवेचन किया जाता है। प्रथमतः इसके अन्तर्गत ध्वनि, शब्द, वाक्य और अर्थ इन चारों का विचार और मौलिक ने भाषा का आत्म, भाषाओं का वर्णन, भाषा की व्युत्पत्ति, शब्द तन्तु, भाषाविज्ञान का इतिहास, प्राकृतिक भाषा, लिपि प्रवृत्ति विधियों का विचार किया जाता है।

भाषा का मुख्य कार्य विचार विनिमय या विचारों, भावों, और इच्छाओं का प्रकट करना है। यह कार्य वाक्यों द्वारा ही किया जाता है, जो भाषा ही भाषा का सबसे सामाजिक और महत्वपूर्ण अंग माना गया है। इन्हीं वाक्यों के आधार पर हम भाषा का रचनात्मक अध्ययन करते हैं।

वाक्य का निर्माण शब्दों से होता है, अतः शब्दों के रूप पर विचार करना (morphology) उत्तम कहलाता है। इसके प्रथम दो स्तंभ हैं—प्रवृत्ति और प्रत्यय। प्रवृत्ति या धातु शब्द का वह प्रथम रूप है, जो स्वयं-स्वयं रहकर अपने साथ बोलते प्रयत्नों के अपने-अपने अर्थ या लक्षणात्मक अर्थ देने का, पीछे या मध्य में पड़ती अक्षयकता होती है, तन्मूलक बन जाता है। प्रत्यय शब्दों का वह रूप है, जो धातु कन्धानार्थ धातु के अन्त, पठ या मध्य में प्रयुक्त होता है।

जितने प्रकार वाक्य शब्दों के समूह से बनते हैं, उन्हीं प्रकार शब्द ध्वनियों के समूह से। वास्तव में यह है कि भाषा की मूल्य पहली इकाई ध्वनि है, जिसके आधार पर भाषा का वाक्य प्रारम्भ होता हुआ है। ध्वनियों पर विचार करने के लिए ध्वनिपत्र, ध्वनि ठपक होने की क्रिया, ध्वनि-संरचना, ध्वनियों की आवाज प्रवृत्ति बालों पर विचार किया जाता है। यही विचार ध्वनिविज्ञान (Phonetics) कहलाता है।

अर्थ भाषा का आन्तरिक अन्तर्बन्ध है, जबकि वाक्य, शब्द और ध्वनि-रचना, अर्थ या कथा का सहायक है कि वाक्य, शब्द और ध्वनि भाषा का शरीर है तो अर्थ उसकी आत्मा।

हैम व्याकरण में हमें ध्वनि-विज्ञान की स्पष्ट दिशाएँ उपलब्ध होती हैं। आचार्य हैम ने ध्वनि-विज्ञान का विवेकन यही स्तर पर किया है। इस विवेचन के आधार पर उन्हें आधुनिक भाषाविज्ञान के पद पर अविरोध

क्रिया जा सकता है। यो तो हैम में शब्दविज्ञान, प्रकृति प्रत्यय विज्ञान, वाक्यविज्ञान आदि सभी माषा वैज्ञानिक तत्त्व उपलब्ध हैं; किन्तु हम यहाँ हैम-व्याकरण की ध्वनि परिवर्तन सम्बन्धी दिशाओं का निर्देश करेंगे और उनके माषाविज्ञान सम्बन्धी सिद्धान्तों का विश्लेषण भी।

ध्वनिपरिवर्तन मुख्यतया दो प्रकार के होते हैं—स्वयम्भू ( Unconditional phonetic changes ) और परोद्भूत ( Conditional phonetic Changes ), माषा के प्रवाह में स्वयम्भू परिवर्तन किसी विशेष अवस्था या परिस्थिति की अपेक्षा किये बिना कहीं भी घटित हो जाते हैं। अकारण अनुनासिकता नाम का ध्वनि परिवर्तन इसी में आता है। यद्यपि अकारण संसार में कोई कार्य नहीं होता, पर अज्ञान कारण होने से इसे अकारण कहा जाता है। हैम ने यमुना, चामुण्डा आदि शब्दों में अकारण अनुनासिकता का निरूपण किया है। वररुचि ने मान मकारलोप की चर्चा की है; किन्तु हैम ने माषा के प्रवाह में अनुनासिकता के आ जाने से कतिपय शब्दों में स्वयम्भू परिवर्तन की ओर संकेत किया है।

परोद्भूत ध्वनि परिवर्तन पर हैम ने पर्याप्त लिखा है। इस परिवर्तन में सर्वप्रथम लोप ( Elision ) आता है। कभी-कभी बोलने में शीघ्रता या स्वराभाव के प्रभाव से कुछ ध्वनियों का लोप हो जाता है। लोप दो प्रकार का संभव है—स्वरलोप और व्यंजन लोप। पुनः इन दोनों के तीन-तीन भेद हैं—आदिलोप, मध्यलोप और अन्तलोप।

#### आदि स्वर-लोप ( Aphesis )—

हैम ने 'वालावररुच्ये लुक्' ८।१।६६ द्वारा अनातु और अररुच्य शब्द के आदि स्वर अकार का लोपकर आदि स्वरलोप सिद्धान्त का निरूपण किया है। जैसे अनातु = लाउं, अनातु = लाऊ, अररुच्य = ररुच्य आदि।

#### मध्यस्वर लोप—( Syncope )

मध्यस्वर लोप का सिद्धान्त हैम ने 'लुक्' ८।१।१० में बहुत स्पष्टरूप से निरूपित किया है और बताया है कि स्वर के परे स्वर का लोप होता है। 'दीर्घह्रस्वौमिथो वृत्तौ' ८।१।४ में भी मध्यस्वर लोप का सिद्धान्त निहित है। यथा—

राजकुलं = राअउलं = राउलं  
 तवार्दं = तुह अर्दं = तुहर्दं  
 ममार्दं = मह अर्दं = महर्दं  
 पादपवनं = पाअवहपं = पावहपं  
 कुम्भकारः = कुंभ आरो = कुंमारो

पवनोद्धतम् = पवणोद्धतं = पवणुद्धतं  
 सौकुमार्यं = सौअमल्लं = सौअल्लं  
 अन्धकारः = अंध आरो = अंधारो  
 स्कन्दावारः = खंद आरो = खंदारो  
 पादपीठं = पाअवीडं = पावीडं



अन्तरस्वर लोप के उदाहरण प्राकृत में नहीं मिलते; अतः हेम ने अन्तरस्वर-लोप पर विचार नहीं किया है।

### आदि व्यञ्जनलोप—

हेम ने सीधे आदि व्यञ्जन के लोप की चर्चा नहीं की है, पर संतुक्त वर्णों के परिवर्तन के प्रकरण में आदि व्यञ्जन के लोप की बात ब्याही गयी है। इन्होंने ८११६, ८१२७, ८१२८ और ८१२९ में आदि व्यञ्जन के लोप का ध्यान किया है। यथा—

खोदकः = खोटयो

म्म्म = लम्म

स्फोटकः = खोटयो

स्तम्म = टम्म

रथाणु = याणु

म्म्मदते = यम्मिद्ध, टम्मिद्ध

### मध्यव्यञ्जन लोप—

मध्य व्यञ्जन लोप का प्रकरण तो हेम व्याकरण में विस्तारपूर्वक आया है। प्राकृत भाषा की भी यह एक प्रमुख विशेषता है कि उसके मध्य व्यञ्जन का लोप अधिक होता है। आचार्य हेम ने ८१११७७ द्वारा मध्यन्तों क, ग, च, ज, त, द, प, य और व का लोप दिग्गन किया है। यथा—

शकटं = सधर्दं

गुचकं = सुधर्दं

मुकुलः = मुठलो

रजक = रधयो

नकुलः = णठलो

रजतं = रधर्दं /

मुकुलिता = मुठलिदा

कृतं = क्थिअं

नगरं = णधर्दं

रसातलं = रसाधर्दं

मृगाङ्क = मधर्दो

वदनं = वधर्दं

सागरः = साधरो

विठुलं = विठर्दं

भागीरथी = भार्दही

नयनं = नधर्दं

भगवता = भधपदा

त्रियोगः = त्रिअयो

कचग्रहः = कधगहो

दिदस = दिधहो

रोचते = रोधदि

तीर्थधर = तीधधर

उचितं = उधर्दं

प्रजापतिः = पधाधर्दं

यह सिद्धान्त ८१११६५-१७१ सूत्र तक भी मिलता है। यों तो प्राकृत भाषा का स्वभाव ही मध्यन्तों व्यञ्जनों के विकार का है, अतः मध्यम व्यञ्जन का लोप प्रायः सभी प्राकृत व्याकरणों में मिलता है। पर हेम ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन विस्तार के साथ किया है।

### अन्त्य व्यञ्जन लोप

अन्त्य व्यञ्जन के लोप सम्बन्धी सिद्धान्त का क्यन हेम ने ८/१/११, ८/१/१५, ८/१/१९ और ८/१/२० सूत्र में स्पष्टरूप से किया है। प्राकृत भाषा की यह प्रकृति है कि उसमें अन्त्य हल् व्यञ्जन का लोप हो जाता है। यत्र: इस भाषा में हलन्त्य शब्दों का अन्त्य है। इसमें सभी शब्द स्वान्त होते हैं। यथा—

यावत् = जाव

सरित् = सरिता

तावत् = ताव

प्रतिपत् = पडिपआ

यत्स = एतो

संपत् = संपआ

नमस् = नह

वान् = वाआ

सरस् = सरो

सरत् = सरओ

कर्मन् = कर्मो

मिपक् = मिसओ

जन्मन् = जन्मो

प्रावृट् = पाउसो

लोप का उल्हा आगम है। इसमें नयी ध्वनि आ जाती है। लोप की भांति इसके भी कई भेद हैं—

### आदि स्वरागम

शब्द के आरम्भ में कोई स्वर आ जाता है। प्रायः यह स्वर ह्रस्व होता है। हेम ने आदेश द्वारा आदि स्वरागम के सिद्धान्त का निरूपण किया है। इन्होंने ८/२/३०, ८/१/४६, ८/१/४७ सूत्रों द्वारा आदि स्वरागम के सिद्धान्त पर पूर्ण प्रकाश डाला है। यथा—

ओ = इयी

एवं = रिक्कं

एप्प = तिदिगो

### मध्य स्वरागम

मध्य स्वरागम का सिद्धान्त ८/१/४८, ८/१/४९ और ८/१/५० में उल्लेख होता है। हेम ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन स्वरमक्ति के सिद्धान्त द्वारा विशेषरूप से किया है। यह स्वर मक्ति (Anaptyxis) का सिद्धान्त ८/२/१०० से ८/२/११५ तक मिलता है। अज्ञान, आलस्य या बोलने के सुमीते के लिए कभी कभी बीच में ही स्वर आ जाते हैं, इसी को स्वरमक्ति या स्वरविश्लेष का सिद्धान्त कहा जाता है।

निम्ब, कृष्ण, अर्हत, पद्म, छद्म, उकारान्त ही प्रथमान्त शब्द, रत्न, प्ना एवं स्तन शब्दों में संयुक्त के पूर्ववर्ती वाँ को इकार या उकार होते हैं। यथा—

स्वन = सिदिणो	लघ्वी = लहुवी
स्निग्ध = सणिद्धं, सिणिद्धं	गुर्वी = गरुवी
वृष्णः = वसणो, कसिणो	बह्वी = बहुवी
अर्हत् = अरुहो, अरहो, अरिहो	पृथ्वी = पुहुवी
पद्मं = पडमं, पोम्मं	मध्वी = मउवी
मूर्ख = मुरुखो, मुखो	श्व. वृतम् = सुवे कयं
द्वारं = दुवारं, देरं	स्वजनाः = सुवे जना
तन्वी = तणुवी	ज्या = जीभा

### आदि व्यञ्जनागम—

प्राकृत में आदि व्यञ्जनागम के भी पर्याप्त उदाहरण उपलब्ध हैं। प्रयत्न लाघव या मुख सुख को ध्यान में रखते हुए मनुष्य की उच्चारण प्रवृत्ति कार्य करती है, अतः नये व्यञ्जनों को आदि में लाने से प्रयत्न लाघव या मुख सुख में विशेष सुविधा नहीं मिलती। इतना होने पर भी प्राकृत में आदि व्यञ्जन आगम की प्रवृत्ति संस्कृत या हिन्दी की अपेक्षा अधिक है। आचार्य हेम ने ८।१।१४० और ८।१।१४१ सूत्रों द्वारा असंयुक्त श्रु के स्थान पर रि आदेश होने का नियमन किया है।

श्रुद्धिः = रिद्धी	श्रुपमः = रिसहो
श्रुञ्ज = रिञ्जो	श्रुतः = रिऊ
श्रुणं = रिणं	श्रुपिः = रिसि
श्रुजुः = रिज्जू	

### मध्य व्यञ्जनागम—

मध्य व्यञ्जन आगम के उदाहरण प्रायः सभी भाषाओं में पर्याप्त संख्या में पाये जाते हैं; क्योंकि शब्द के मध्य भाग को बोलने में ही अधिक कठिनाई आया करती है; जिसे आगम और लोप द्वारा ही बड़ी सरलता से समाप्त किया जा सकता है। हेम ने ८।२।१६७, ८।२।१६८-१७४ सूत्रों में मध्य व्यञ्जनागम का सिद्धान्त निरूपित किया है। यथा—

भ्रु = भुमया, ममया	परं = पत्तलं
मिथ्र = मीथालिअं	पीत = पीबलं
दीर्घः = दीहर	जन्म = जम्मणं
	श्रुदुकत्वेन = मउअत्तयाद् —

**अन्त्य व्यञ्जनागम —**

अन्त्य व्यञ्जनागम के सिद्धान्त भी हेम ने ८।२।१६३-१६६ सूत्रों तक ङ्ल्ल, उल्ल और स्वार्यिक ल्च प्रत्ययों का अनुशासन करके प्रतिपादित किये हैं। यथा—

पुरः = पुरिल्लं	एकः = एकल्लो
उपरि = उवरिल्लं	मधु = मुहुल्लं
नवः = नवल्लो	अन्धः = अन्धलो

**विपर्यय ( Metathésis )**

हेम ने विपर्यय या स्थिति परिवृत्ति के सिद्धान्त और उदाहरण भी अपने व्याकरण में लिखे हैं। विपर्यय को कुछ लोग 'परस्पर विनिमय' भी कहते हैं। किसी शब्द के स्वर, व्यञ्जन अथवा अक्षर जब एक स्थान से दूसरे स्थान पर चले जाते हैं और उस दूसरे स्थान के प्रथम स्थान पर आ जाते हैं, तो इनके परस्पर परिवर्तन को विपर्यय कहा जाता है। हेम ने ८।२।११६-१२४ तक वर्ण विपर्यय का कथन किया है। इन्होंने आलान शब्द के ल-न में; अचलपुर शब्द के च-ल में; महाराष्ट्र शब्द के ह-र में, हृद शब्द के ह-द में; हरिताल शब्द के र-ल में; लघुक शब्द के ल-ह में; ललाट शब्द के ल-ड में एवं गुह्य शब्द के ह-य में विपर्यय होने का नियमन किया है। जैसे—

आलानः = आणालो	हरिताल = हल्लिआरो
अचलपुरं = अल्लचपुरं	लघुकः = हल्लुअं
महाराष्ट्र = महरट्टं	ललाटः = णडालं
हृद = द्रह	गुह्यन् = गुय्हं, गुज्हं

**समीकरण ( Assimilation )**

हैम व्याकरण में समीकरण के सिद्धान्त प्रथम और द्वितीय पाद के प्रायः सभी सूत्रों में विद्यमान हैं। इस सिद्धान्त में एक ध्वनि दूसरी ध्वनि को प्रभावित कर अपना रूप दे देती हैं; जैसे संस्कृत चक्र से प्राकृत में चककं हो जाता है। समीकरण प्रधानतः दो प्रकार का होता है—(१) पुरोगामी (२) पश्चामी।

समीकरण को सावर्ण्य, सारूप्य और अनुरूप भी कहा जाता है। हेम ने ८।२।६१, ८।२।६२, ८।२।७७, ८।२।७८, ८।२।७९-८१, ८।२।८९, ८।२।९८ एवं ८।२।९९ वें सूत्र में उक्त सिद्धान्त का स्फोटन किया है।

**पुरोगामी ( Progressive Assimilation )**

जहाँ पहली ध्वनि दूसरी ध्वनि को प्रभावित करती है, वहाँ पुरोगामी समीकरण होता है। यथा—

लम् = लम्	उद्विषः = उद्विषो
तिग्म = तिग्मं, तिग्मं	सर्वम् = सर्वं
मुक्तम् = मुक्तं	काव्यम् = कव्यं
खड्ग = खड्गो	मात्स्यम् = मत्स्यं
मद्गुः = मद्गु	शुल्बम् = सुव्वं
ल्ग = ल्गो	रुद्रो = रुद्रो
उल्का = उल्का	भद्रं = भद्रं
वन्द्यम् = वन्द्यं	समुद्रः = समुद्रो
शब्दः = शब्दो	घात्री = घात्री
अर्कः = अर्को	तीक्ष्णं = तीक्ष्णं
वर्गः = वर्गो	कष्टं = कष्टं
घस्तः = घस्तो	तीर्थं = तीर्थं
चक्रम् = चक्रं	कर्मिकाकारः = कर्मिकारो
रानि = रानि	

### पञ्चगामी समीकरण

जब दूसरी ध्वनि पहली ध्वनि को प्रभावित करती है, तब पञ्चगामी समीकरण कहलाता है। यथा—

कर्म = कर्मो	भुक्तः = भुक्तो
घर्मः = घर्मो	दुग्धः = दुग्धो
सर्पः = सर्पो	दुर्गा = दुर्गा
मक्तः = मक्तो	वर्गः = वर्गो

### पारस्परिक व्यञ्जन समीकरण ( Mutual Assimilation )

जब दो पारस्परिक व्यञ्जन एक दूसरे को प्रभावित करते हैं और इस पारस्परिक प्रभाव के कारण दोनों ही परिवर्तित हो जाते हैं और एक तीसरा ही व्यञ्जन आ जाता है। इस प्रकृति को पारस्परिक व्यञ्जन समीकरण कहते हैं। हम व्याकरण में इस सिद्धान्त का निरूपण बहुत नित्यपूर्वक हुआ है। यथा—

सत्यः = सत्यो	कर्त्तरिका = कर्त्तरी
कृत्यः = कृत्त्वो	मन्ययः = मन्यहो

### विपरीकरण ( Dissimilation )

समीकरण का उल्टा विपरीकरण है। इसमें दो समान ध्वनियों में से एक के प्रभाव से या यों ही सुल-सुल के लिए एक ध्वनि अपना स्वर छोड़कर

दूसरी बन जाती है। इसके भी दो भेद हैं—पुरोगामी विषमीकरण और पश्च-  
गामी विषमीकरण।

### पुरोगामी विषमीकरण ( Progressive Dissimilation )

जब प्रथम व्यञ्जन व्यो का त्यो रहता है और दूसरा परिवर्तित हो जाता है तो उसे पुरोगामी विषमीकरण कहते हैं। हेम ने ८।१।१७७, ८।१।२०७, ८।१।१८२ आदि सूत्रों में इस सिद्धान्त का विवेचन किया है। यथा—

मरकत = मरगयं	आकारः = आगारो
मकर = मगरो	अनुकः = अनुगो
काक = कागो	असुकः = असुगो
श्रावकः = श्रावगो	तीर्थकरः = तित्यगारो

### पश्चगामी विषमीकरण ( Regressive Dissimilation )

पश्चगामी विषमीकरण में प्रथम व्यञ्जन या स्वर में विकार होता है। हेम व्याकरण के ८।१।९६, ८।१।५७, ८।१।९७, ८।१।१०७, ८।१।१२३, ८।१।१२४ आदि सूत्रों में उक्त सिद्धान्त प्ररूपित है।

युधिष्ठिरः = बहुष्ठिलो, जहिष्ठिलो	नेदुरं = नेदुरं
कन्दुकः = गेन्दुओ	मुकुलं = मुउलं
स्फटिकः = फलिहो	मुकुरः = मउरं
मन्मथः = वन्महो	मुकुटं = मउटं

### सन्धि—

सन्धि का विवेचन हेम ने विस्तारपूर्वक संस्कृत और प्राकृत दोनों ही अनुशासनों में किया है। ये नियम स्वर और व्यञ्जन दोनों के सम्बन्ध में बने हैं। भाषा के स्वामादिक विकास में सन्धियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्राकृत में क ग च ज त द प य व आदि कुछ व्यञ्जन उच्चारण में स्वर के समीप होने के कारण स्वर में परिवर्तित हो जाते हैं और अपने से पहिले व्यञ्जन के स्वर में मिल जाते हैं। सन्धि के कारण ध्वनियों में नाना प्रकार का परिवर्तन होता है।

### अनुनासिकता ( Nazalization )

ध्वनि परिवर्तन में अनुनासिकता का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। मुख सुविधा के लिए कुछ लोग निरनुनासिक ध्वनियों को सानुनासिक बना देते हैं। इस अनुनासिकता का कारण कुछ द्रविड भाषाओं का प्रभाव मानते हैं। पर हमारा खयाल है कि मुख सुविधा के कारण ही भाषा में अनुनासिकता आ जाती

है। अत्रग्रन्थ भाषा की निम्नलिखीं मुख मुविधा के कारण ही अनुनासिक हैं। इस भाषा में उकार बहुलता के कारण अनुनासिकता अर्थात्क है। ८।१।१७= स्त्र में हेम ने यमुना, चामुडा, कामुक और अतिमुक्तक शब्दों में मकार का लोरकर अनुनासिकता का विधान किया है। यथा—

यमुना = बँडगा

कामुक = काउँओ

चामुडा = चाँडगा

अतिमुक्तक = अमिउँतयं

### मात्रा भेद :—

मात्रा भेद भी ध्वनि परिवर्तन की एक प्रमुख दिशा है इनमें स्वर कमी ह्रस्व से दीर्घ और कमी दीर्घ ने ह्रस्व हो जाते हैं। स्वरापाठ का इन पर उक्त प्रभाव अवश्य पड़ता है। हेम ने 'दीर्घ-ह्रस्वौ निषो-वृत्तौ' ८।१।४ स्त्र द्वारा उक्त सिद्धान्त का सम्भक् विवेचन किया है। यथा—

अन्तर्वेदि = अन्तावेदै

नदीलोत = नईलीत्तं, नरलोत्तं

शतनिशतिः = सत्ताबीठा

बधुनुत्तं = बहुनुहं, बहुनुहं

वारिमतिः = वारीमई, वारिमई

पीतानीतुं = पीआ-पीअं, पीआ निअं

मुजयन्त्रम् = भुआ यन्तं, भुअ यन्तं

सरोरहं = सरोरहं, सररहं

पतिष्टहम् = पईहरं, पइ हरं

ग्रामपीतुत = ग्रामपीतुओ, ग्रामिीतुओ

### घोषीकरण ( Vocalization )

ध्वनि परिवर्तन में घोषीकरण सिद्धान्त का भी महत्व है। इस सिद्धान्तानुसार अघोष ध्वनियाँ घोष हो जाती हैं; क्योंकि ऐसा करने से उच्चारण में सुविधा होती है; हेम ने इस सिद्धान्त की ८।१।१७ में निर्दिष्ट किया है। यथा—

एक = एगो

एकादश = इगारह

अनुक = असुगो

धूक = धुग्धू

असुक = आसुगो

प्रकाश = परगास

आकारः = आगारो

मकरः = मगरी

आकर्षः = आगरिषो

### अघोषीकरण ( Devocalization )

ध्वनि परिवर्तन के सिद्धान्तों में अघोषीकरण का सिद्धान्त भी आता है। हेम ने इस सिद्धान्त पर विशेष विचार नहीं किया है; इसका प्रधान कारण यह है कि प्राकृत भाषा में उक्त प्रकार की ध्वनियों का प्रायः अभाव है।

### महाप्राण ( Aspiration )

उच्चारण प्रसंग में कभी कभी अल्पप्राण ध्वनियाँ महाप्राण हो जाती हैं। हेम ने ८११३२, ८११५३, ८११४६, ८११४७, ८११४, ८११५ तथा ८११७४ सूत्र में उक्त सिद्धान्त का वर्णन किया है। यथा—

पुरुषः = पुरुषो	स्नन्दनम् = पदपं
परिधः = फलिहो	प्रतिस्पर्धिन् = पाडिफ्दी
परिखा = फलिहा	हस्तः = हत्यो
पनसः = पनसो	स्तुतिः = सुई
पारिमद्रः = फालिहो	स्तोकं = योअं
पुष्पन् = पुष्पं	स्तवः = यवो
शप्यन् = सप्यं	पुष्करं = पौक्तरं
निध्वेयः = निपफेसो	पुष्करिणी = पौक्तरिणी
निष्पावः = निष्पावो	स्कन्दः = खन्दो

### अल्पप्राणीकरण ( Despiration )

हेम ने इस सिद्धान्त का निरूपण ८११९० सूत्र में किया है। यथा—

स्यः = त	मगिनी = मदिन
----------	--------------

### उष्मीकरण—

उष्मीकरण की चर्चा हेम ने ८१११८४, ८१११८६ और ८१११८७ में की है। ल घ य ध और भ वषों का प्रायः ह हो जाता है। शीकर, निक्षप स्फटिक और चिकुर शब्दों में क के स्थान पर भी ह हो जाता है। यथा—

शीकरः = शीहरो	मेघः = मेहो
निक्षपः = निहसो	नायः = नाहो
स्फटिक = फलिहो	धावस्य = धावसहो
चिकुरः = चिहुरो	मिधुनं = मिहुपं
मुखं = मुहं	साधुः = साहू
मेखटा = मेहला	

इस प्रकार हेम ने ध्वनि परिवर्तन ( Phonetic Changes ) के सभी सिद्धान्तों को अपने प्राकृत शब्दानुशासन में स्थान दिया है। सम्प्रसारण, गुण, वृद्धि आदि सिद्धान्त तो संस्कृत शब्दानुशासन में बहुलता से आ गये हैं। स्वर परिवर्तन के दोनों प्रकारों गुणीय परिवर्तन ( Qualitative Change ) और परिमाणीय परिवर्तन ( Quantitative Change ) पर प्रकाश डाला



२०२ आचार्य हेमचन्द्र और उनका शब्दानुशासन : एक अध्ययन

है। प्रथम में स्वर पूर्णतः बदल कर दूसरा हो जाता है और दूसरे में ह्रस्व का दीर्घ या दीर्घ का ह्रस्व हो जाता है।

संक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है कि शब्दानुशासक की दृष्टि से हेम या महत्त्व पाणिनि और वररुचि की अपेक्षा अधिक है। इनके व्याकरण में प्राचीन और आधुनिक दोनों ही प्रकार की ध्वनियों की सम्यक् विवेचना की गयी है। अतः हेम का प्राकृत शब्दानुशासन व्याकरण होने के साथ-साथ भाषा विज्ञान भी है। इसकी महत्ता भाषा विज्ञान की दृष्टि से भी उतनी ही है, जितनी व्याकरण की दृष्टि से।

---

## परिशिष्ट १

संस्कृतसिद्धहेमशब्दानुशासनसूत्रपाठ

प्रथमोऽध्यायः

प्रथमः पादः

अहं १।१।१  
 विद्धिः स्वादादात् १।१।२  
 लोकान् १।१।३  
 औदन्ताः स्वराः १।१।४  
 एकद्विषिमात्रा ह्रस्वदीर्घश्रुताः १।१।५  
 अनवर्णा नामी १।१।६  
 लुदन्ताः समानाः १।१।७  
 ए ऐ ओ औ सन्ध्यङ्गान् १।१।८  
 अं अः अनुस्वारविवर्गा १।१।९  
 कादिर्ब्रह्मणम् १।१।१०  
 अन्वयान्तस्यो घुट् १।१।११  
 पञ्चको वर्गः १ १।१।२  
 आद्य-द्वितीय-च ष सा अवोषाः १।१।१३  
 अन्यो घोषवान् १।१।१४  
 य र ल वा अन्तरस्याः १।१।१५  
 अं अः <del>क</del>परापदाः शिट् १।१।१६  
 वृत्त्यस्थानात्यप्रयत्नः स्वरः १।१।१७  
 स्थीजसनीशस्थाम्यामिसङ्केन्याम्यसङ्कसि-  
 म्याम्यसङ्कसोसात्स्थोस्तुगा त्रयी त्रयी  
 प्रथमादिः १।१।१८  
 स्थादिर्विभक्तिः १।१।१९  
 तदन्तं पदम् १।१।२०  
 नाम सिद्ध्यङ्गान् १।१।२१  
 नं क्ते १।१।२२  
 न स्तं मत्वर्थे १।१।२३  
 मनुर्नमोऽङ्गिरो वति १।१।२४

वृत्त्यन्तोऽद्यपे १।१।२५  
 सविशेषानाख्यातं वाक्यकम् १।१।२६  
 अघातुविभक्तिवाक्यमर्यादत्राम १।१।२७  
 शिबुं ट् १।१।२८  
 पुंनियोः स्यमीजस् १।१।२९  
 स्वरादयोऽन्यथम् १।१।३०  
 चादयोऽसत्त्वे १।१।३१  
 अघणुत्स्वाधाद्यतः १।१।३२  
 विभक्तियमन्ततसाद्याभाः १।१।३३  
 दत्तस्याम् १।१।३४  
 क्त्वातुमन् १।१।३५  
 गतिः १।१।३६  
 अप्रयोगीत् १।१।३७  
 अनन्तः पञ्चमाः प्रत्यय १।१।३८  
 इत्यत्र संख्यावत् १।१।३९  
 बहुगणं भेदे १।१।४०  
 क्तमालेऽध्यर्द्धः १।१।४१  
 अर्द्धं पूर्वपदः पूरणं १।१।४२

द्वितीयः पादः

समानाना तेन दीर्घः १।२।१  
 श्रुतृतिः ह्रस्वो, वा, १।२।२  
 लृत् रृत् श्रुलृम्या वा १।२।३  
 श्रुतो वा तो च १।२।४  
 श्रुस्तयोः १।२।५  
 अवनस्येवादिनैदोदरल् १।२।६  
 श्रुते प्रदशानंत्सनकञ्चलत्तरवत्तर-  
 स्यात् १।२।७

श्रुते तृतीयात्मने १।२।८  
 श्रुत्याद्यस्यस्य १।२।९  
 नाम्नि वा १।२।१०  
 लृष्यात्मा १।२।११  
 ऐदीम्नष्पञ्चरेः १।२।१२  
 ऊटा १।२।१३  
 प्रस्यैर्षिप्नोढोद्भू हे स्वरेण १।२।१४  
 स्वैस्वैर्यञ्चोद्दिष्यान् १।२।१५  
 व्यनियोगे लुगेव १।२।१६  
 वीञ्चोती समासे १।२।१७  
 ओनादि १।२।१८  
 उरुगंस्थानिरेषेदोति १।२।१९  
 वा नाम्नि १।२।२०  
 इवमौदिरस्वे स्वरे यवरत्नम् १।२।२१  
 हस्वोऽनदे वा १।२।२२  
 एदौतोऽप्याच् १।२।२३  
 व्योदौतोऽवाच् १।२।२४  
 व्यक्त्वे १।२।२५  
 श्रुती रस्तद्धिते १।२।२६  
 एदोतः पदान्तेऽप्य १।२।२७  
 गोर्नान्यदोऽच् १।२।२८  
 स्वरे वाऽनच् १।२।२९  
 ङ्त्रे १।२।३०  
 वात्स्यमन्धिः १।२।३१  
 प्लुतोऽनिती १।२।३२  
 इ इ वा १।२।३३  
 ई इ देद् द्विवचनम् १।२।३४  
 व्यदो मुनी १।२।३५  
 चादिः स्वतोऽनाह् १।२।३६  
 व्योदन्तः १।२।३७  
 सौ नवेती १।२।३८  
 छ् चोन् १।२।३९  
 अन्गार्त् स्वरे वोऽनम् १।२।४०

अ इ उ वर्ग्यान्तेऽनुनादिकोऽनीना-  
 दादेः १।२।४१

### तृतीयः पादः

तृतीयस्य पञ्चमे १।३।१  
 प्रत्यये च १।३।२  
 लतो ह्रस्वतुर्यः १।३।३  
 प्रथमाद्भुति शरुठः १।३।४  
 रः क ख प क योः १।३।५  
 य प से य प सं वा १।३।६  
 चत्वे स्रद्धिते १।३।७  
 नोऽप्रधानोऽनुस्वारात्तनादिकी च पूर्व-  
 स्वाहुत्परं १।३।८  
 पुनो ऽचिच्छ्रवोऽप्य्यागि रः १।३।९  
 ननः पेषु वा १।३।१०  
 द्विः कानः झानिः सः १।३।११  
 म्भटि सनः १।३।१२  
 लुक् १।३।१३  
 ली मुनो व्यङ्गने स्त्री १।३।१४  
 ननयवचनरे हे १।३।१५  
 रमाट् १।३।१६  
 ह्रणोः क्यञ्चती शिटि नदा १।३।१७  
 ह्नः सः लोऽयः १।३।१८  
 नः शि व्य् १।३।१९  
 व्यतोऽति रोचः १।३।२०  
 घोषन्ति १।३।२१  
 अवर्गमोमगोऽनोर्लुगमन्धिः १।३।२२  
 व्योः १।३।२३  
 स्वरे वा १।३।२४  
 अस्वरावर्गान्त्वमुनि वा १।३।२५  
 रोपः १।३।२६  
 हस्तान्गणतो हे १।३।२७  
 अनाह् मादो रीर्वाडा छः १।३।२८  
 प्लुवादा १।३।२९

स्वरेभ्यः १।३।३०  
 हार्दह्रस्वरस्यानु नवा १।३।३१  
 अदीर्घाद्विरामैकव्यञ्जने १।३।३२  
 अञ्चर्गास्यान्तस्यातः १।३।३३  
 ततोऽस्याः १।३।३४  
 शिटः प्रथमद्वितीयस्य १।३।३५  
 ततः शिटः १।३।३६  
 न रात्स्वरे १।३।३७  
 पुत्रस्यादिन् पुत्रादिन्याक्रोशे १।३।३८  
 म्ना धुडवर्गोऽन्त्योऽपदान्ते १।३।३९  
 शिङ्गोऽनुस्वारः १।३।४०  
 रो रे लुगदीर्घश्चादिदुतः १।३।४१  
 दस्तडडे १।३।४२  
 सहिवहेरोच्चाऽवर्णस्य १।३।४३  
 उदः स्यास्तम्मः सः १।३।४४  
 तदः सेः स्वरे पादार्या १।३।४५  
 एतदश्च व्यञ्जने ऽनग्नज्जमासे १।३।४६  
 व्यञ्जनात्पञ्चमान्तस्थायाः सरूपे वा १।३।४७  
 धुयो धुटि स्वे वा १।३।४८  
 तृतीयस्तृतीयचतुर्थे १।३।४९  
 अघोपे प्रथमोऽशिटः १।३।५०  
 विरामे वा १।३।५१  
 न सन्धिः १।३।५२  
 रः पदान्ते विसर्गस्तयोः १।३।५३  
 प्यागि १।३।५४  
 शिट्यत्रोषात् १।३।५५  
 व्यत्यये लुम्बा १।३।५६  
 अरोः सुपि रः १।३।५७  
 बाहर्षत्यादयः १।३।५८  
 शिट्याद्यस्य द्वितीयो वा १।३।५९  
 तवर्गस्य अञ्चर्गश्चर्गाभ्यां योगे चटर्गा  
 १।३।६०  
 सस्य शशौ १।३।६१

न श्यात् १।३।६२  
 पदान्ताट्टवर्गादिनाम्नगरीनवतेः १।३।६३  
 पि तवर्गस्य १।३।६४  
 लि लौ १।३।६५

### चतुर्थः पादः

अत आः स्यादौ जस्य्याम्पे १।४।१  
 भिस ऐस १।४।२  
 इदमदसोऽङ्कदेव १।४।३  
 एद्वहुस्मोसि १।४।४  
 टाङ्सोरिनस्यौ १।४।५  
 डेडस्योर्यातौ १।४।६  
 सर्वादिः समैस्मातौ १।४।७  
 डे. सिम्न् १।४।८  
 जस २ः १।४।९  
 नेमार्द्धप्रथमचरमनयायाल्पकृतिपयस्य वा  
 १।४।१०  
 द्वन्द्वे वा १।४।११  
 न सर्वादिः १।४।१२  
 तृतीयान्तात्पूर्वोवरं योगे १।४।१३  
 तीयं द्विकार्ये वा १।४।१४  
 अवर्णस्यामः साम् १।४।१५  
 नवम्यः पूर्वम्य इस्मात्सिम्न्वा १।४।१६  
 आपोद्धिता यैयासयासुयान् १।४।१७  
 सन्वादिर्दसपूर्वाः १।४।१८  
 दौस्येत् १।४।१९  
 औता १।४।२०  
 इदुतोऽस्त्रेरीदूत् १।४।२१  
 जस्येदोत् १।४।२२  
 डित्यदिति १।४।२३  
 टः पुंसि ना १।४।२४  
 डिडौ. १।४।२५  
 केवल्लखिपतेरी १।४।२६  
 न ना हिदेत् १।४।२७

स्त्रियां छितां वा दैदासदासदाम् १।४।२८  
 स्त्रीदूतः १।४।२९  
 वेयुबोऽस्त्रियाः १।४।३०  
 आमो नाम् वा १।४।३१  
 ह्रस्वापश्च १।४।३२  
 संख्यानां णाम् १।४।३३  
 त्रेस्त्रयः १।४।३४  
 एदोद्भवा क्वसिद्धसो रः १।४।३५  
 क्विति खीतीय उर् १।४।३६  
 श्रुतो डुर् १।४।३७  
 तृस्वस्तनप्तृनेष्टृत्वष्टृत्वहोतृपोतृप्रधात्रो  
 घुट्यार् १।४।३८  
 अर्हो च १।४।३९  
 मातृमातः पुत्रेऽर्हं विनाऽऽमन्थे १।४।४०  
 ह्रस्वस्य गुणः १।४।४१  
 एदावः १।४।४२  
 नित्यदिद्विस्वराम्बार्थस्य ह्रस्वः १।४।४३  
 अदेतः स्यमोर्लुक् १।४।४४  
 दीर्घाब्ध्याब्धयञ्जनात्सेः १।४।४५  
 समानादमोऽतः १।४।४६  
 दीर्घो नाम्यतिष्ठत्तस्युः १।४।४७  
 नुर्वा १।४।४८  
 घसोऽता सश्च नः पुंसि १।४।४९  
 संख्यासायवेरह्रस्याहन् ङी वा १।४।५०  
 निय आम् १।४।५१  
 वाचन आः स्यादौ १।४।५२  
 अष्ट और्जस्यसोः १।४।५३  
 ङतिष्ण. संख्याया लुप् १।४।५४  
 नपुंसकस्य शिः १।४।५५  
 औरी १।४।५६  
 अतः स्यमोऽम् १।४।५७  
 पञ्चतोऽन्यादेरनेकतरस्य ङः १।४।५८  
 अनतो लुप् १।४।५९

जरसो वा १।४।६०  
 नामिनो लुक्वा १।४।६१  
 वान्यतः पुमांशदौ स्वरे १।४।६२  
 दध्यस्त्रियसर्व्यहृणोऽन्तरयान् १।४।६३  
 अनाम्स्वरे नोऽन्तः १।४।६४  
 स्वराच्छौ १।४।६५  
 धुटा प्राक् १।४।६६  
 लो वा १।४।६७  
 घुटि १।४।६८  
 अचः १।४।६९  
 श्रुदुदितः १।४।७०  
 युजौऽसमासे १।४।७१  
 मनडुङ्गः सौ १।४।७२  
 पुंसोः पुमन्त् १।४।७३  
 ओत औः १।४।७४  
 आ अमृशसोऽता १।४।७५  
 पथिनमथिनमुक्तः सौ १।४।७६  
 एः १।४।७७  
 यो न्य १।४।७८  
 इन ङी स्वरे लुक् १।४।७९  
 बोशनसो नश्चामन्थे सौ १।४।८०  
 उतोऽनडुच्चतुरो व १।४।८१  
 वाः शेषे १।४।८२  
 सख्युरितोऽद्यावैत् १।४।८३  
 श्रुदुशनस्फुटदंशोऽनेहसश्च सेर्डीः १।४।८४  
 नि दीर्घः १।४।८५  
 न्महतोः १।४।८६  
 इन् इन् पूषार्यम्णाः शिस्त्योः १।४।८७  
 अयः १।४।८८  
 नि वा १।४।८९  
 अम्बादेरत्वसः सौ १।४।९०  
 मृशस्तुनस्तुन् पुंसि १।४।९१  
 टा दौ स्वरे वा १।४।९२  
 स्त्रियाम् १।४।९३

## द्वितीयोऽध्यायः

## प्रथमः पादः

त्रिचतुरस्तिषुचतसृस्यादौ २।१।१  
 ऋतो र स्वरेऽनि २।१।२  
 जगया चरस्वा २।१।३  
 अरोद्धे २।१।४  
 आ रायो व्यञ्जने २।१।५  
 युष्मदस्मदो २।१।६  
 टाडयोसि य २।१।७  
 शेषे लुङ् २।१।८  
 मोर्वा २।१।९  
 मन्त्स्य युवावौ द्वयो २।१।१०  
 त्वमौ प्रत्ययोत्तरपदे चैकस्मिन् २।१।११  
 त्मह सिना प्राक्चाक् २।१।१२  
 शूय वय ङसा २।१।१३  
 तुम्य मह्य ङ्या २।१।१४  
 तवमम ङसा २।१।१५  
 अमौ म २।१।१६  
 शसो न २।१।१७  
 अभ्यम् म्यत् २।१।१८  
 इत्सेश्वाद् २।१।१९  
 आन आकम् २।१।२०  
 पदाद्युगिन्महयैकत्राक्ये वत्ससौ बहुत्वे  
 २।१।२१  
 द्वित्वे वाम्नी २।१।२२  
 चे ङसा तेमे २।१।२३  
 अमा त्वामा २।१।२४  
 अवदिवानन्य पूर्वम् २।१।२५  
 ङस्त्रिरोष्य वनन्ध्ये २।१।२६  
 नाऽन्यत् २।१।२७  
 पादाद्यो २।१।२८  
 चाहवैजयोगे २।१।२९  
 दृश्यैर्धिन्तायाम् २।१।३०

नित्यमन्त्रादेशे २।१।३१  
 सपूर्वत् प्रथमान्ताद्वा २।१।३२  
 त्यदामेनरेतदो द्वितीयाद्यैस्त्वृत्त्यन्ते  
 २।१।३३  
 इदम् २।१।३४  
 अद्वयञ्जने २।१।३५  
 अनक् २।१।३६  
 टौस्यन् २।१।३७  
 अयमियम् पुत्रियो सौ २।१।३८  
 दोम रयादौ २।१।३९  
 किम् करतसादौ च २।१।४०  
 आ द्वेर २।१।४१  
 त सौ स २।१।४२  
 अदसा दः सेस्तु डौ २।१।४३  
 अमुको वाऽकि २।१।४४  
 मोऽवर्गस्य २।१।४५  
 वादौ २।१।४६  
 मादुवर्गोऽनु २।१।४७  
 प्रागिनात् २।१।४८  
 बहुष्वेरी. २।१।४९  
 घातोरिक्गोर्नास्येयुव् स्वरे प्रत्यये २।१।५०  
 इण २।१।५१  
 सयोगान् २।१।५२  
 भ्रून्नोः २।१।५३  
 त्रिया २।१।५४  
 वाग्द्यति २।१।५५  
 योऽनेकस्वरस्य २।१।५६  
 स्यादौ व २।१।५७  
 इक्वृत्तेरुघियस्नौ २।१।५८  
 इन्दुनर्वर्षाकारैर्मुक् २।१।५९  
 ण्यमसत्परे स्वादिविधौ च २।१।६०  
 चादेशोऽपि २।१।६१

प टोः करिष २।१।६२  
 म्वादेर्नामिनो दीर्घो बौर्ष्यञ्जने २।१।६३  
 पदान्ते २।१।६४  
 नयि तद्धित २।१।६५  
 कुरुच्छुरः २।१।६६  
 मो नो म्बोध २।१।६७  
 संतुष्वंसञ्स्वनहुहो दः २।१।६८  
 ऋत्विज्ज्दिशद्दृशद्दृशद्दृशद्दृशुष्णिहो  
 गः २।१।६९  
 नशो वा २।१।७०  
 युजञ्जुञ्जो नो हः २।१।७१  
 सो रुः २।१।७२  
 सञ्जुष २।१।७३  
 अह् २।१।७४  
 रो लुप्यरि २।१।७५  
 धुट्स्त्वृतीयः २।१।७६  
 गड्दधादेश्चतुर्थान्तस्यैकस्वरस्यादेश्चतुर्थ-  
 रश्चोश्च प्रत्यये २।१।७७  
 धागस्तयोश्च २।१।७८  
 अधश्चतुर्थान्तयोर्घः २।१।७९  
 नाम्यन्तात्परोष्ठाद्यतन्याग्निषो घो हः  
 २।१।८०  
 हान्तस्थाञ्श्रीङ्म्या वा २।१।८१  
 हो धुट् पदान्ते २।१।८२  
 म्वादेर्दीर्घः २।१।८३  
 मुहद्द्रुहष्पुहृष्णिहो वा २।१।८४  
 नहाहोर्द्धतो २।१।८५  
 चजः कगम् २।१।८६  
 यञ्जुञ्जमृञ्जरावभ्राञ्जभ्रञ्जम्भञ्चपरिवाञ्जः  
 शः फः २।१।८७  
 संयोगस्यादौ स्कोर्लुक् २।१।८८  
 पदस्य २।१।८९  
 रात्सः २।१।९०

नाम्नो नोऽनहः २।१।९१  
 नामन्त्ये २।१।९२  
 क्लीबे वा २।१।९३  
 मावर्गान्तोपान्तापञ्चमगन्त् नतोर्भो  
 कः २।१।९४  
 नाम्नि २।१।९५  
 चर्मग्वयष्टीवचक्रीवत्कधीवृट्मघत् २।१।९६  
 उदन्वानन्धौ च २।१।९७  
 राज्ञ्वान् सुगणि २।१।९८  
 नोर्भ्यादिभ्यः २।१।९९  
 मासनिशासनस्य शकादौ लुग्वा २।१।१००  
 दन्तपादनासिकाहृदयासृग्गुपोदकदोष-  
 कृच्छकृतौदत्पत्रसृहृदसन्सूपन्तुदन्-  
 दोषन्पकन्ठकन् वा २।१।१०१  
 यस्वरे पादः पदपिक्सुधुटि २।१।१०२  
 उदच उदीच् २।१।१०३  
 अच् प्राग् दीर्घञ् २।१।१०४  
 कञ्मुष्मतौ च २।१।१०५  
 शन्सुक्न्मघोनो ह्रीस्याद्यधुट्स्वरे कः  
 उः २।१।१०६  
 लुगातोऽनावः २।१।१०७  
 अनोऽस्य २।१।१०८  
 ईहो वा २।१।१०९  
 पादिहन्धृतराशोऽणि २।१।११०  
 न वमन्तसंयोगात् २।१।१११  
 हनो हो घ्नः २।१।११२  
 लुगस्यादेत्यपदे २।१।११३  
 दित्यन्त्यस्वरादेः २।१।११४  
 अक्वांद्दन्तोऽन्तोवाऽतुरी ङयोः २।१।११५  
 श्ययवः २।१।११६  
 दिव औः सौ २।१।११७  
 उः पदान्तेऽनूत् २।१।११८

## द्वितीयः पादः

क्रियाहेतु कारकम् २।२।१  
 स्वन्त्र कर्त्ता २।२।२  
 कर्त्तुर्ध्याप्य कर्म २।२।३  
 वाऽकर्मगामणिकर्त्ता षौ २।२।४  
 गतिशोषाहारार्थशब्दकर्मनित्याऽकर्मणा  
 मनीलाद्यदिह्वाशब्दायकन्दाम्  
 २।२।५  
 भक्षेहिंसायाम् २।२।६  
 वदे प्रवेयं २।२।७  
 हृद्रोर्न वा २।२।८  
 दृश्यभिवदोरात्मने २।२।९  
 नाथ २।२।१०  
 स्तुत्यर्थददेश २।२।११  
 कृग प्रतिबन्धे २।२।१२  
 रुबाऽर्थस्याऽऽरिसन्तापेभवि कर्त्तरि  
 २।२।१३  
 जासनाटकायपियो हिंसायाम् २।२।१४  
 निप्रेम्यो घ्न २।२।१५  
 विनिनेयद्यत्पण पणिव्यवहोः २।२।१६  
 उपसर्गाद्देव २।२।१७  
 न २।२।१८  
 करण च २।२।१९  
 अथे शीङ्स्यास आघार. २।२।२०  
 उतान्वध्याह्वस २।२।२१  
 वाऽभिनिविद्य २।२।२२  
 कालाध्वभावदेश वाऽकर्म चाकर्मगाम्  
 २।२।२३  
 साधकतम करणम् २।२।२४  
 कर्माभिप्रेयः संप्रदानम् २।२।२५  
 सृष्टेर्व्याप्य वा २।२।२६  
 क्रुद्द्रुहेर्ध्याप्त्यर्थे प्रति क्रोन २।२।२७  
 नोपसर्गात् क्रुद्द्रुहा २।२।२८

१४ हे०

अवायेऽवधिरपादानम् २।२।२९  
 क्रियाश्रयस्याधारोऽधिकरणम् २।२।३०  
 नाम्न प्रयमैकद्विवहौ २।२।३१  
 आमन्त्र्ये २।२।३२  
 गौणारत्तमयानिक्रधाहाधिगन्तरान्तरेणाति  
 येनतेनैद्वितीया २।२।३३  
 द्वित्वेऽधोऽध्युपरिभि २।२।३४  
 सर्वोमयाभिनरिणा तसा २।२।३५  
 लक्ष्णाधीप्नेत्यम्मूतेष्वभिना २।२।३६  
 भागिनि च प्रतिपर्यनुमि २।२।३७  
 हेतुसहायेऽनुना २।२।३८  
 उक्त्वृष्टेऽनूपेन २।२।३९  
 कर्मणि २।२।४०  
 क्रियाविशेषगात् २।२।४१  
 कालाध्वनोर्व्याती २।२।४२  
 सिद्धौ तृतीया २।२।४३  
 हेतुकर्तृकरणेत्यम्मूललक्षणे २।२।४४  
 सहाये २।२।४५  
 यद्भेदैस्तद्वदाख्या २।२।४६  
 कृताद्यै २।२।४७  
 काले मानवाधारे २।२।४८  
 प्रसितोल्लुकाऽववद्दे. २।२।४९  
 व्याप्ये द्विद्रोणादिभ्यो वीणशायाम् २।२।५०  
 समो जोऽस्मृतौ वा २।२।५१  
 दामः संप्रदानेऽधर्म्य आत्मने च २।२।५२  
 चतुर्थी २।२।५३  
 तादर्थ्ये २।२।५४  
 रुचिकल्पुर्थ्यधारिभि प्रेविकारोत्तमोषु  
 २।२।५५  
 प्रत्याह श्रुवार्थिनि २।२।५६  
 प्रत्यनोर्गुणाख्यातरी २।२।५७  
 यद्वीक्ष्ये रागीधी २।२।५८  
 उदात्तेन चाप्ये २।२।५९



श्लोपद्वयस्याशया प्रयोगे २।२।६०  
 तुमोऽर्थे भाववचनात् २।२।६१  
 गन्पत्याप्ये २।२।६२  
 गतेर्न वाऽनाप्ये २।२।६३  
 मन्पस्यानावादिभ्योऽतिङ्गत्सने २।२।६४  
 हित्तुल्लाम्यान् २ २।६५  
 तद्भद्रायुष्यहेमार्थेनाद्यपि २।२।६६  
 परिक्रमणे २।२।६७  
 शक्तार्थवपङ्गमःस्वस्तिस्वाहास्वधामिः  
 २।२।६८  
 पंचम्ययादाने २।२।६९  
 आढावधौ २।२।७०  
 पर्ययाभ्या वर्षे २ २।७१  
 यतः प्रतिनिधिप्रतिदाने प्रतिना २। ७२  
 आख्यातयुपयोगे २।२।७३  
 गन्पयः कर्माधारे २।२।७४  
 प्रमृष्यन्वार्यदिकशब्दसहितारादितरैः  
 २।२।७५  
 श्रुगादेतोः २।२।७६  
 युगादन्निया न वा २।२।७७  
 आरादर्थैः २।२।७८  
 स्तोत्राल्पहृच्छ्रुतिपयादसत्त्वे कृत्ये  
 २।२।७९  
 अज्ञाने ङः षष्ठी २।२।८०  
 श्ले २।२।८१  
 शिष्ट्यास्तादस्तादसत्तवाता २।२।८२  
 कर्मणि कृतः २।२।८३  
 द्विपो वाऽतृच. २।२।८४  
 वैकन द्वयोः २।२।८५  
 कर्त्तारि २।२।८६  
 द्विहेतोरस्यनकस्य वा २।२।८७  
 कृत्यस्य वा २ २।८८  
 नोमयोर्हेतोः २।२।८९

तृनुदन्ताभ्यनकस्वानातृश्यातृदिगङ्क्-  
 सत्यस्य २।२।९०  
 स्योरसदाधारे २।२।९१  
 वा कर्त्तारि २।२।९२  
 अकमेकस्य २।२।९३  
 एष्यदमेनः २।२।९४  
 सम्यधिकारणे २।२।९५  
 न वा तुज्यैः काले २।२।९६  
 कुशलापुक्तेनास्वयाम् २।२।९७  
 स्वामीभराधिनतिदायादसाधिप्रतिभूप्रसूते.  
 २।२।९८  
 व्याप्ये स्तेन २।२।९९  
 तद्युक्ते हेतौ २।२।१००  
 अत्रत्यादावसाधुना २।२।१०१  
 साधुना २।२।१०२  
 निपुरेण चार्चायाम् २।२।१०३  
 स्वेशेऽधिना २।२।१०४  
 उदेनाऽधिदिनि २।२।१०५  
 यद्भावो भावन्याम् २।२।१०६  
 गते गन्पेऽङ्कोऽन्तेनैकार्थ्ये वा २।२।१०७  
 षष्ठी वाऽनादरे २।२।१०८  
 रत्नमी चाविमाने निर्द्धारणे २।२।१०९  
 नियामध्येऽध्वकाले षष्ठी च २।२।११०  
 अधिक्तेन भूपसस्ते २।२।१११  
 तृतीयाङ्गीयसः २।२।११२  
 प्रथमानां षष्ठी च २।२।११३  
 श्रुते द्वितीया च २।२।११४  
 विना ते तृतीया च २।२।११५  
 तुल्यार्थस्तृतीयापञ्चमी २।२।११६  
 द्वितीयापञ्चमावेतेनानञ्चेः २।२।११७  
 ऐक्यैस्तृतीयायाः २।२।११८  
 सङ्घेदिः सर्वैः २।२।११९  
 अवत्तारादर्थाङ्कित्वात् २।२।१२०

जात्नाख्याया नवैकोऽसंख्यो बहुन्त्  
२।२।१२१

अविशेष्ये द्वौ चात्मदः २।२।१२२

पद्गुनी प्रोष्ठदस्य मे २।२।१२३

गुरावेक्ष २।२।१२४

### तृतीयः पादः

नमस्पुरसो गते. क ख प जि रः सः २।३।१

तिरसो वा २।३।२

दुस २।३।३

शिरोऽवस पदे समासैक्ये २।३।४

अत कृकमिर्वसकृमभुश्याकर्पापात्रेऽ

न-पयस्य २।३।५

प्रत्यये २।३।६

रो काम्ये २।३।७

नामिनस्त्रयो ष २।३।८

निदुर्बहिरान्धिप्राटुक्षत्रुराम् २।३।९

सुचा वा २।३।१०

वेसुसोऽपेक्षायाम् २।३।११

नैकार्थेऽक्रिये -।३।१२

समानेऽतनस्तस्य २।३।१३

भ्रातृपुत्रकृष्णादयः २।३।१४

नान्यन्तस्याकृत्तान् पदान्तः कृतस्य स

चिडनान्तरेऽपि २।३।१५

समासेऽग्ने स्तुतः २।३।१६

ज्योतिरायुर्म्यां च स्तोमस्य २।३।१७

माश्रुतिः स्तु २।३।१८

अनुपि वा २।३।१९

निनया स्नाते चैद्यले २।३।२०

प्रते स्नातस्य स्ने २।३।२१

स्नानस्य नाम्नि २।३।२२

वे क्तः २।३।२३

अमिनि शनः २।३।२४

गन्धुषे स्थिरस्य २।३।२५

एत्यक् २।३।२६

भादितो वा २।३।२७

विदुशामिपरे. स्थलस्य २।३।२८

कपेगोत्रे २।३।२९

गोऽम्बाऽऽम्बसव्यापद्विनिभूम्यग्निशेकुश-

इकुक्कुमञ्जिपुञ्जिर्हि परमादिवेस्यस्य

२।३।३०

निदुर्स्तो ऽमेधसन्धिताम्नाम् २।३।३१

प्रथोऽग्रमे २।३।३२

मीरुशानादय २।३।३३

हृत्वान्नाम्नास्ति २।३।३४

निसस्तपेऽनात्तेवायाम् २।३।३५

षस्वस २।३।३६

िस्तो रेवाऽस्त्वदस्तिवदसह षणि २।३।३७

सञ्जेर्वा २।३।३८

उपसर्गान् मुग्मुवसोस्तुस्तुमोऽष्टयन्त्रित्वे

२।३।३९

स्थात्तेनिरुधक्षिचसञ्जा द्वित्वेऽपि २।३।४०

अउग्रदित्त्वन्धनिस्तव्ये स्तम्म २।३।४१

अवाच्याधयोर्ब्रविदूरे २।३।४२

व्यवात् स्वनोऽजने २।३।४३

सदोऽप्रते परोक्षया त्वादे २।३।४४

स्वञ्जश्च २।३।४५

परिनिवे सेव २।३।४६

स्यकित्तस्य २।३।४७

असोऽसिन्सहस्वयाम् २।३।४८

स्तुस्वञ्जश्चाटि न वा २।३।४९

निरम्यनोश्च स्वन्दरयाप्रागिति २।३।५०

वे स्कन्दोऽक्षयो २।३।५१

परे २।३।५२

निने स्फुरस्तुगे. २।३।५३

वे २।३।५४

स्कम्म २।३।५५

निर्हुः सुवेः समसूतेः २।३।५६  
 भवः स्वः २।३।५७  
 प्रादुरुपसर्गाद्यस्वरेऽस्तेः २।३।५८  
 न स्सः २।३।५९  
 विचो यडि २।३।६०  
 गतौ सेधः २।३।६१  
 मुगः स्यसनि २।३।६२  
 र्पृदणान्नो ण एकपदेऽनन्वस्यात् चट-  
 तवर्गशेषान्तरे २।३।६३  
 पूर्वपदस्यान्नाभ्यगः २।३।६४  
 नस्य २।३।६५  
 निष्प्राऽग्नेऽन्तःखदिरकार्षांशरेक्षुप्ल-  
 धरीयूधाम्यो वनस्य २।३।६६  
 द्वित्रिस्वरौषधिवृत्तेभ्यो न वाऽनिरिकादि-  
 म्यः २।३।६७  
 गिरिनद्यादीनाम् २।३।६८  
 पानस्य भावकरणे २।३।६९  
 देशे २।३।७०  
 ग्रामाग्रान्नियः २।३।७१  
 बाह्याद्वाहनस्य २।३।७२  
 अतोऽङ्ग्य २।३।७३  
 चतुस्त्रेर्हायनस्य क्यसि २।३।७४  
 बोत्तरपदान्तनस्यादेरयुवपक्वाह् २।३।७५  
 कर्गकस्वरवति २।३।७६  
 अदुरुपसर्गान्तरो णदिनुमीनाने. २।३।७७  
 नयः शः २।३।७८  
 नेर्मादापतपदनदगदवनीवहीशमूचि-  
 ग्यातिवातिद्रानिष्पातिस्यतिहन्तिदेग्धौ  
 २।३।७९  
 अकृताद्यपान्ते पाठे वा २।३।८०  
 द्वित्तेऽप्यन्तेऽप्यनिते. परेस्तु वा २।३।८१  
 हनः २।३।८२  
 वमि वा २।३।८३

निविनिश्चानन्दः कृति वा २।३।८४  
 स्वरात् २।३।८५  
 नाम्यादेरेव ने २।३।८६  
 व्यञ्जनादेर्नाम्युपान्वादा २।३।८७  
 णेर्वा २।३।८८  
 निर्विभ्यः २।३।८९  
 न ख्यापूग्भूमाकमगप्यायवेभौ रेश्व  
 २।३।९०  
 देशेऽतरोऽप्यनहनः २।३।९१  
 पात्यदे २।३।९२  
 पदेऽन्तरेऽनाह्वयतद्विते २।३।९३  
 हनो पि २।३।९४  
 नृतेर्यडि २।३।९५  
 जुम्नादीनाम् २।३।९६  
 पाठे धात्वादेशो नः २।३।९७  
 प. सोऽष्टयैष्ठिवप्लक् २।३।९८  
 श्रर लृलं वृपोऽवृषीयादिषु २।३।९९  
 उपसर्गस्यायौ २।३।१००  
 श्रो यडि २।३।१०१  
 न वा स्वरे २।३।१०२  
 परेषोऽङ्गयोगे २।३।१०३  
 श्रुफिवादीनां इश्च लः २।३।१०४  
 क्पादीनां पो कः २।३।१०५  
**चतुर्थः पादः**  
 त्रियां नृतोऽस्वसादेशोः २।४।१  
 अघात्हदितः २।४।२  
 अञ्जः २।४।३  
 णस्वराऽधोपादनो रश्च २।४।४  
 वा बहुव्रीहिः २।४।५  
 वा पादः २।४।६  
 उच्यः २।४।७  
 अशिघोः २।४।८  
 संत्पादेर्हायनादयसि २।४।९

दाम्न् २।४।१०  
 अनो वा २।४।११  
 नाम्नि २।४।१२  
 नोराण्यवत् २।४।१३  
 मन २।४।१४  
 ताभ्या वाप् शित् २।४।१५  
 अजादे २।४।१६  
 श्रुचि पाद पाल्दे २।४।१७  
 आन् २।४।१८  
 गौरादिभ्यो मुरयान्डी. २।४।१९  
 अणेनेये कण्णञ्स्नञ्जिताम् २।४।२०  
 वयस्यनन्त्ये २।४।२१  
 द्विगो समाहारात् २।४।२२  
 परिमाणान्तद्वित्युक्तयविस्ताचितकम्बल्यात्  
 २।४।२३  
 काण्णान् प्रमाणादक्षेत्रे २।४।२४  
 पुरुषाद्वा २।४।२५  
 रेवतरोहिणाद्गे २।४।२६  
 नीलात्प्रश्नौपच्यो २।४।२७  
 काच्च नाम्नि वा २।४।२८  
 केनलामकमागधेयपावापरसमानार्थकृत  
 सुनङ्गलभेषजात् २।४।२९  
 भाङ्गोणान्तरथल्कुण्डकानकुशाकामुक  
 कृत्कषरान् पक्वावनस्युलाऽकृत्रि  
 मानत्रकृष्णानसीरिरसुधाणिकेयपाशे  
 २।४।३०  
 न वा शोभादे २।४।३१  
 श्लोऽक्त्यर्थात् २।४।३२  
 पद्वते २।४।३३  
 शक्ते शक्ते २।४।३४  
 स्वराटुतो गुणादल्लरो २।४।३५  
 श्यतैतद्वरितभरितरोहिताद्रर्पात्तो नश्च  
 २।४।३६

वन पल्लिसितात् २।४।३७  
 असहनञ् विद्यमानपूर्वपदात् स्वाङ्गाद  
 क्रोडादिभ्य २।४।३८  
 नासिकादरौष्ठजङ्गादन्तकर्णमृङ्गाङ्गात्र  
 कण्ठात् २।४।३९  
 नखमुखादनाम्नि २।४।४०  
 पुञ्जात् २।४।४१  
 क्वरमणिविषयरादे २।४।४२  
 पञ्चाच्चोपमानादे २।४।४३  
 क्रीतात् करणादे २।४।४४  
 छादऽल्पे २।४।४५  
 स्वाङ्गादेरकृतमितजातप्रतिज्ञाद् बहुवीहिः  
 २।४।४६  
 अनाञ्जादजात्यादेर्न वा २।४।४७  
 पत्युर्न २।४।४८  
 सादे २।४।४९  
 सपल्यादौ २।४।५०  
 उदायाम् २।४।५१  
 पाणिगृहीतीति २।४।५२  
 पतिवत्यन्तवन्वौ भाषागर्भिम्यो २।४।५३  
 आतेरयान्तनित्वन्वीशूद्रात् २।४।५४  
 पाककर्षणमालान्तात् २।४।५५  
 असत्काण्डप्रान्तद्यतैकाञ्च पुष्पात् २।४।५६  
 अषम्मन्त्रात्रिनैकशणपिम्डात्सलात् २।४।५७  
 अनजो मूलात् २।४।५८  
 धवाद्यगादपालकान्तात् २।४।५९  
 पूतश्रुतुष्टुप्राकयनिकुसिनिकुसीदादै च  
 २।४।६०  
 मनोरौ च वा २।४।६१  
 वरुणेन्द्ररुद्रमन्त्रवर्षमृडादान् चान्त  
 २।४।६२  
 मातुलाचार्योनाध्यायाद्वा २।४।६३  
 सर्वादेवताया वा २।४।६४

यद्वदनारप्यहिमाहोपलिप्युहमहस्वे  
 २।४।६५  
 अर्षन्निवाद्वा २।४।६६  
 यमो ढायन् च वा २।४।६७  
 लोहितादिशकृन्वात् २।४।६८  
 पावराद्वा २।४।६९  
 कौरव्यमाश्रुकामुरेः २।४।७०  
 इज इतः २।४।७१  
 नुजतिः २।४।७२  
 उनोऽप्राग्निश्चातुरज्जादिभ्य ऊट्  
 २।४।७३  
 बाह्वन्तकद्रुमगडलोनाम्नि २।४।७४  
 उपमानसहितसंहितसहस्रवामलदनात्  
 चुरो २।४।७५  
 नारीसन्धी पङ्गुष्वधू २।४।७६  
 यूनसिः २।४।७७  
 अनापे वृद्धेऽग्निभोवहस्दागुणानन्वस्या-  
 न्त्यस्य घ्नः २।४।७८  
 कुलास्पानान् २।४।७९  
 कौक्पादीनान् २।४।८०  
 भोजस्तयोः क्षत्रियातुवनोः २।४।८१  
 देवयद्विद्यौचिष्टिस्तात्यनुमिद्वाग्ठेऽग्निर्देवा  
 २।४।८२  
 प्या पुत्रदन्योः केवलयोरीच् तरुस्ये  
 २।४।८३  
 धन्धौ बहुमीहौ २।४।८४  
 भातमाट्मातृषे वा २।४।८५  
 अस्य कथा लुक् २।४।८६  
 मत्स्यस्य य. २।४।८७

व्यञ्जनाचदितस्य २।४।८८  
 स्यागस्त्ययोरीये च २।४।८९  
 तिष्यपुष्ययोर्माणि २।४।९०  
 आरत्यस्य क्यञ्च्योः २।४।९१  
 तद्वितयस्वरेऽनावि २।४।९२  
 विस्वकीयादेरीयस्य २।४।९३  
 न राहन्यमनुष्ययोर्के २।४।९४  
 क्पादेर्गोपस्यात्किम्तद्वितलुक्पगोनीक्ष्योः  
 २।४।९५  
 गोश्वान्ते ह्रस्वोऽन्वितमासेयो बहुमीहौ  
 २।४।९६  
 कथेवे २।४।९७  
 वेदूतोऽन्यस्यस्वृदीच्हीसुक् पदे २।४।९८  
 क्पायो बहुल नाम्नि २।४।९९  
 त्वे २।४।१००  
 भ्रुवोऽच्च कुंसकृत्थोः २।४।१०१  
 मासेषीकेश्चस्यान्तेऽपि मातित्त्वचिते  
 २।४।१०२  
 गोभ्या मेदे २।४।१०३  
 क्पादीदूतः के २।४।१०४  
 न क्वचि २।४।१०५  
 न वाऽऽप. २।४।१०६  
 इद्यापुसोऽनिक्पापरि २।४।१०७  
 स्वज्ञाऽजमन्त्राऽपाटुत्यवकात् २।४।१०८  
 होयस्त्पुत्रवृन्दारक्षस्य २।४।१०९  
 वी वर्त्तिका २।४।११०  
 अस्यायत्किञ्चिन्कादीनान् २।४।१११  
 नरिका मामिका २।४।११२  
 तारकावर्काऽऽकाव्योतिस्तान्तवन्वि-  
 देवये २।४।११३

## तृतीयोऽध्यायः

### प्रथमः पादः

घातोः पूजार्थस्वतिगतायाधिदयतिक्रमा-  
र्याऽतिवर्जं प्रादिरुसर्गः प्राक् च  
३१११

ऊर्याद्यनुकरणञ्चिडाचभ्र गतिः ३११२

कारिका स्थियादौ ३११३

मूषादरक्षेपेऽलंसदसन् ३११४

अप्रहाऽनुनदेशेऽन्तरदः ३११५

करोमनस्तृत्तौ ३११६

पुरोऽस्तनव्ययम् ३११७

गत्यर्थवदोऽच्छः ३११८

तिरोऽन्तर्दौ ३११९

वृगो न वा ३१११०

मध्येनदेनिवचनेमनस्पुरस्वनत्याधाने

३११११

उनाजेऽन्वाजे ३१११२

स्वान्धेऽधिः ३१११३

साक्षादादिरच्यर्थे ३१११४

नित्यं हस्तेनाणासुत्रादि ३१११५

प्राच्यं वन्दे ३१११६

बीविकोननिप्रदौगन्धे ३१११७

नामनाम्नैकार्थ्यवमालो बहुलम् ३१११८

मुञ्जार्थे सङ्ख्ये, सङ्ख्ये सङ्ख्यया बहु

कीदृ ३१११९

आलम्नादूराधिकार्ष्यद्दीदिपुणं द्विती-

याद्यन्तार्थे ३११२०

अच्ययन् ३११२१

एकार्थं चानेकं च ३११२२

उद्भूतमदः ३११२३

सहस्तेन ३११२४

दिशो रूढ्याऽन्तराले ३११२५

तत्रादाय मियस्तेन प्रहृत्येति सरूपेण

युद्धेऽव्ययीभावः ३११२६

नदीमिनान्नि ३११२७

सङ्ख्या समाहारे ३११२८

वर्षेण पूर्वार्थे ३११२९

पारेमध्येऽप्रेऽन्तः षष्ठ्या वा ३११३०

यावदियत्त्वे ३११३१

पर्यन्तव्यहिरच् पञ्चम्या ३११३२

लक्षणेनाभिप्रत्याभिमुष्ये ३११३३

दैर्घ्येऽनु ३११३४

समीपे ३११३५

तिष्ठद्भिरसादयः ३११३६

नित्य प्रतिनाऽहने ३११३७

सङ्ख्याऽक्षयलाकं परिणा द्यूतेऽन्यया-

वृत्तौ ३११३८

विमक्तिसनीनसमृद्धिः स्रष्टव्यामावात्यया-

ऽसंप्रतिपश्चात्कर्मन्यातिपुग-

पञ्चदशसम्भत्साकस्यान्तेऽन्ययम्

३११३९

योग्यताविधायानतिवृत्तिसादृश्ये ३११४०

यथाऽथा ३११४१

गतिक्कन्यन्तपुरुषः ३११४२

दुर्निन्दाङ्गुले ३११४३

सुः पूजयान् ३११४४

अतिरतिक्रमे च ३११४५

आडऽहने ३११४६

प्रात्यङ्गतिनिरादयो गतक्रान्तकुश्लान-

क्रान्ताद्यर्थाः प्रथमाद्यन्तैः ३११४७

अन्यं प्रवृद्धादिभिः ३११४८

दस्युक्तं कृता ३।१।४९  
 तृतीयोक्तं वा ३।१।५०  
 नञ् ३।१।५१  
 पूर्वविराघरोत्तरमभिन्नेनाशिना ३।१।५२  
 सायाहादयः ३।१।५३  
 समेऽशेऽर्द्धे न वा ३।१।५४  
 जरत्वादिभिः ३।१।५५  
 द्वित्रिचतुष्पुष्पाप्रदयः ३।१।५६  
 कालो द्विगौ च मेयैः ३।१।५७  
 स्वयंसामी क्तेन ३।१।५८  
 द्वितीया खट्वाक्षेपे ३।१।५९  
 कालः ३।१।६०  
 व्याप्ती ३।१।६१  
 धितादिभिः ३।१।६२  
 प्रातापन्नौ पयान्च ३।१।६३  
 ईषद्गुणवचनैः ३।१।६४  
 तृतीया तत्कृतैः ३।१।६५  
 चतुष्कार्दम् ३।१।६६  
 उन्तार्थपूर्वाद्यैः ३।१।६७  
 कारकं कृता ३।१।६८  
 न विद्यत्यादिनैकोऽन्वयान्तः ३।१।६९  
 चतुर्थो प्रकृत्या ३।१।७०  
 हितादिभिः ३।१।७१  
 तदर्थार्थेन ३।१।७२  
 पञ्चमी भयाद्यैः ३।१।७३  
 क्तेनासत्त्वे ३।१।७४  
 परः शतादिः ३।१।७५  
 पञ्चमयज्ञान्छेपे ३।१।७६  
 कृति ३।१।७७  
 याञ्छादिभिः ३।१।७८  
 पत्तिरथौ गणकेन ३।१।७९  
 सर्वपश्चादादयः ३।१।८०  
 अकेन ऋडाजीवे ३।१।८१

न कर्त्तारि ३।१।८२  
 कर्मभा तृचा च ३।१।८३  
 तृतीयायाम् ३।१।८४  
 तृतीयपूरणव्ययाऽतृदशत्रानशा ३।१।८५  
 शानेऽञ्चार्थाधारक्तेन ३।१।८६  
 अस्वस्वगुणैः ३।१।८७  
 सप्तमी शौण्डायैः ३।१।८८  
 सिंहायः पूजायाम् ३।१।८९  
 काकाटैः क्षेपे ३।१।९०  
 पात्रे समितेत्यादयः ३।१।९१  
 क्तेन ३।१।९२  
 तत्राहोरात्रायाम् ३।१।९३  
 नाम्नि ३।१।९४  
 कृतेनाऽऽयके ३।१।९५  
 विरेपणं विरोप्येऽकार्यं कर्मधारयश्च  
 ३।१।९६  
 पूर्वकाटैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलम्  
 ३।१।९७  
 दिग्घट्टं संज्ञातद्वितोत्तरपदे ३।१।९८  
 संख्या समाहारे च द्विगुश्चानान्ययम्  
 ३।१।९९  
 निन्च कुत्सनैरपापाद्यैः ३।१।१००  
 उपमानं सामान्यैः ३।१।१०१  
 उपमेयं व्याप्राद्यैः साम्यानुक्तौ ३।१।१०२  
 पूर्वपरप्रथमचरमजन्वसमानमध्यम-  
 मध्यमवीरम् ३।१।१०३  
 भेष्यादि कृताद्यैश्च्ययैः ३।१।१०४  
 क्तं नञादिभिन्नैः ३।१।१०५  
 सेट्नाऽनिटा ३।१।१०६  
 सन्महत्परमोत्तममोऽर्द्धं पूजायाम्  
 ३।१।१०७  
 वृन्दारकनागकुञ्जटैः ३।१।१०८  
 कृतरकतमौ धातिप्रश्ने ३।१।१०९

कि क्षेपे ३।१।११०  
 पोदायुनित्स्नोक्कृतिपयश्रुधेनुवशावेह-  
 द्वाकयिणीप्रसक्तश्रोत्रियाध्यायकधूत-  
 प्रशासनादेर्जातिः ३।१।१११  
 चतुःपात्रमिण्णा ३।१।११२  
 सुवाचल्लिपलितज्वरनिनैः ३।१।११३  
 कृत्यनुल्पाख्यमजात्या ३।१।११४  
 कुमार भनगादिना ३।१।११५  
 मरुव्यसक्त्यादयः ३।१।११६  
 चाथे द्वन्द्वः सहोक्तौ ३।१।११७  
 समानामर्थेनैकः शेषः ३।१।११८  
 स्यादावशरदेयः ३।१।११९  
 लदादि ३।१।१२०  
 भ्रातृपुत्रा स्वस्तुदुदितृभिः ३।१।१२१  
 पिता माता वा ३।१।१२२  
 श्वशुर श्वभूम्या वा ३।१।१२३  
 वृद्धो यूना तन्मात्रमेदे ३।१।१२४  
 स्त्री पुंवच्च ३।१।१२५  
 पुत्रयः स्त्रिया ३।१।१२६  
 आन्याशिशुद्विसप्तसङ्घे स्त्री प्रायः  
 ३।१।१२७  
 क्रीदमन्त्रेनैकं च वा ३।१।१२८  
 पुष्पार्थे द्वे पुनर्वसु ३।१।१२९  
 निरोधिनामत्रव्यापान वा द्वन्द्वः स्वैः  
 ३।१।१३०  
 अश्ववटनदूर्वापराशरोत्तरा ३।१।१३१  
 पशुव्यङ्गनानाम् ३।१।१३२  
 तद्वृत्तान्यन्यनृगवस्त्रिणा बहुष्वे ३।१।१३३  
 स्नेनाङ्गुद्वन्द्वानाम् ३।१।१३४  
 फलस्य बानौ ३।१।१३५  
 अप्राणित्वादेः ३।१।१३६  
 प्राणितुर्वाङ्गागाम् ३।१।१३७  
 चरणस्य स्थेगोऽथतन्यामनुवादे ३।१।१३८

अक्त्रोवेऽध्वयुक्तोः ३।१।१३९  
 निकटपाठस्य ३।१।१४०  
 निन्धवैरस्य ३।१।१४१  
 नदीदेशपुरा विलिङ्गानाम् ३।१।१४२  
 पान्यशूद्रस्य ३।१।१४३  
 गवाश्वादि ३।१।१४४  
 न दधिनयआदि ३।१।१४५  
 सख्याने ३।१।१४६  
 वान्तिके ३।१।१४७  
 प्रथमोक्तं प्राक् ३।१।१४८  
 राजदन्तादिषु ३।१।१४९  
 निरोपगतवर्वादिस्त्वं बहुव्रीहौ ३।१।१५०  
 चा ३।१।१५१  
 जातिकालमुत्वादेर्न वा ३।१।१५२  
 आहितान्यादिषु ३।१।१५३  
 प्रहरणात् ३।१।१५४  
 न सतमोन्द्रादिभ्यश्च ३।१।१५५  
 गडवादिभ्यः ३।१।१५६  
 प्रिय ३।१।१५७  
 कडारादयः कर्मधारये ३।१।१५८  
 धर्मादिषु द्वन्द्वे ३।१।१५९  
 लम्बकात्तदुत्तराद्यदलस्त्रार्यनेकम्  
 ३।१।१६०  
 मामन्तर्भ्रातृपुत्रपूर्वम् ३।१।१६१  
 मत्तु स्तुन्वस्त्रम् ३।१।१६२  
 सख्या समाले ३।१।१६३

द्वितीयः पादः

परस्तराऽन्वोऽन्वैतरेतरसाम् स्वादेवी  
 पुति ३।२।१  
 अमव्ययीमास्त्वानोऽन्वय्याः ३।२।२  
 वा तृतीयानां ३।२।३  
 सतन्मा वा ३।२।४  
 श्रुद्यनदीर्घस्य ३।२।५



२१८ आचार्य हेमचन्द्र और उनका शब्दानुशासन : एक अभ्ययन

अनतो लुच् ३।२।६  
अभ्ययस्य ३।२।७  
ऐकार्ये ३।२।८  
न नाम्नेः स्वरात् क्विप्सुत्तरदेऽन ३।२।९  
असत्त्वे इते ३।२।१०  
ब्राह्मणान्त्यी ३।२।११  
ओजोऽङ्गसहोऽम्भस्तमस्तपत् ३।२।१२  
पुञ्जनुषोऽनुगन्धे ३।२।१३  
आत्मनः पूर्ये ३।२।१४  
मनसभाशायिनि ३।२।१५  
नाम्नि ३।२।१६  
परात्मन्या डे ३।२।१७  
अद्वयज्ञानात्मन्या बहुलम् ३।२।१८  
प्राक्कारस्य न्यञ्जने ३।२।१९  
त्वयुष्ये कृति ३।२।२०  
मध्यान्ताद् गुपी ३।२।२१  
अनूर्द्धमस्तकास्त्राङ्गादघाने ३।२।२२  
बन्धे षजि न वा ३।२।२३  
कालात्तनवत्तमकाले ३।२।२४  
शयवाशिनात्ष्वकालात् ३।२।२५  
वर्षस्यपराप्तरशरीरोमनसो जे ३।२।२६  
द्युप्रावृट् वर्षाशरत्कालात् ३।२।२७  
अनो ययोनिमतिचरे ३।२।२८  
नेन्सदस्ये ३।२।२९  
पठया ज्ञेये ३।२।३०  
पुत्रे वा ३।२।३१  
पश्यद्वाग्दशो हरयुच्छिदण्डे ३।२।३२  
अदसोऽकमायनपो ३।२।३३  
देवानाप्रियः ३।२।३४  
शेनपुत्रलङ्घनेषु नाम्नि घुनः ३।२।३५  
वाचस्पतिवास्तोष्पतिदिवस्पतिदिवोदात्मन्  
३।२।३६  
श्रुता विद्यायोनिमन्वन्धे ३।२।३७

स्त्वययोर्वा ३।२।३८  
आ इन्द्रे ३।२।३९  
पुत्रे ३।२।४०  
वेदसहभुताऽवाप्तुदेवतानाम् ३।२।४१  
ईं घोमवक्त्रेऽग्नेः ३।२।४२  
इर्वादिमत्प्रविष्णौ ३।२।४३  
दिवो द्यावा ३।२।४४  
दिवस्दिवः पृथिव्या वा ३।२।४५  
उषाषोषतः ३।२।४६  
मातरमितरं वा ३।२।४७  
वर्चरकादिष्वत्तरादयः ३।२।४८  
परतः स्त्री पुनन्त् स्फेकार्येऽनूह् ३।२।४९  
क्वङ्मानिन्नित्कित्ते ३।२।५०  
जातिश्च त्तिद्वितपत्तरे ३।२।५१  
एदेऽम्नायो ३।२।५२  
नाम्प्रियादौ ३।२।५३  
तद्विताकक्रोचान्त्पूरुग्राख्या ३।२।५४  
तद्वित् स्वरवृद्धिहेतुरत्तरत्तिकारे ३।२।५५  
स्वाङ्गान्ठीर्जातिश्चाऽमानिनि ३।२।५६  
पुम्बत्कर्मधारये ३।२।५७  
रिति ३।२।५८  
रन्ते गुण ३।२।५९  
चौ हचित् ३।२।६०  
सर्वादयोऽस्यादौ ३।२।६१  
मृगशीरादिषु वा ३।२।६२  
श्रुदुदिचरतमरुत्कल्पमुक्तेलङ्गोवमत्-  
हते वा हत्वथ ३।२।६३  
हयः ३।२।६४  
मोगवद्वौरिमतीर्नाम्नि ३।२।६५  
न वैकस्वराणाम् ३।२।६६  
ऊः ३।२।६७  
महतः करपासविशिष्टे वा ३।२।६८  
स्त्रियाम् ३।२।६९

जातीयैकार्थेऽच्चेः ३।२।७०  
 न पुन्वन्निषेधे ३।२।७१  
 इच्यस्वरे दीर्घ आच ३।२।७२  
 हविष्यष्टनः कपाले ३।२।७३  
 गवि युक्ते ३।२।७४  
 नाम्नि ३।२।७५  
 कोटरनिभ्रकसिप्रकपुरगसारिकस्य वरो  
 ३।२।७६  
 अज्जादीना गिरौ ३।२।७७  
 अनजिरादिवहुस्तरादीना मतौ  
 ३।२।७८  
 ऋषौ विश्वस्य मित्रे ३।२।७९  
 नरे ३।२।८०  
 वनुरायो ३।२।८१  
 वनव्यपित्रादे ३।२।८२  
 चित्तेः कचि ३।२।८३  
 स्वामिचिह्नस्याऽविशऽपञ्चमिभ्रच्छिन्न  
 ङिउद्रभ्रुवस्त्वस्तिक्स्य कर्णे ३।२।८४  
 गतिकारकस्य नहिवृतिवृषिव्यधिवचि-  
 सहितनौ कौ ३।२।८५  
 घञ्जुपसर्गस्य बहुलम् ३।२।८६  
 नामिन कारो ३।२।८७  
 दस्ति ३।२।८८  
 अपीत्वादेर्बह ३।२।८९  
 शुनः ३।२।९०  
 एकादशशोऽशशोऽत्योद्वापद्दा ३।२।९१  
 द्वित्र्यजना द्वात्रयोऽष्टाः प्राक्चतादनशी  
 ति बहुत्रीहौ ३।२।९२  
 चत्वारिंशदादौ वा ३।२।९३  
 हृदयस्य इत्तासलेषाम्ने ३।२।९४  
 पदः पादस्याज्यातिगोपहते ३।२।९५  
 हिमहलिकापिपे ५६ ३।२।९६

ऋचः श्यसि ३।२।९७  
 शब्दनिष्कयोधमिभे वा ३।२।९८  
 नस नासिकायास्तः क्षुद्रे ३।२।९९  
 रेऽवर्णे ३।२।१००  
 शिरस शीर्षे ३।२।१०१  
 केशो वा ३।२।१०२  
 शीर्षे स्वरे तद्धिते ३।२।१०३  
 उदकस्योदः पेषंधिवासवाहने ३।२।१०४  
 वैकव्यज्जने पूर्ये ३।२।१०५  
 मन्यौदनसक्तुविन्दुवज्रभारहारवीवधगाहे  
 वा ३।२।१०६  
 नाम्नुत्तरपदस्य च ३।२।१०७  
 ते लुक्त्वा ३।२।१०८  
 द्वयन्तरनगोपसर्गादप ईप् ३।२।१०९  
 अनोर्देशो उप ३।२।११०  
 खियन ययाऽरुधोर्मोऽन्तो ह्रस्वश्च  
 ३।२।१११  
 सयागदास्तोः कारे ३।२।११२  
 लोकपृथगम्यन्दिनाऽनभ्यासमित्यम्  
 ३।२।११३  
 भ्राष्ट्राग्नेरिन्धे ३।२।११४  
 अगिन्नाद्रिलगिलगिलयो ३।२।११५  
 मद्रोष्णात्करणे ३।२।११६  
 न वा खिन्वदन्ते रात्रे ३।२।११७  
 धेनोर्मव्यायाम् ३।२।११८  
 अप्यडीतृतीयादन्याहोऽर्थे ३।२।११९  
 आशोराशास्थितास्थोस्तुकीविरागे  
 ३।२।१२०  
 ईय कारके ३।२।१२१  
 सर्वादिभिष्वदेदाहृद्रेः कव्यञ्चौ ३।२।१२२  
 सहस्रम् सभ्रिसमि ३।२।१२३  
 निरसस्तिर्यति ३।२।१२४  
 नञ्त् ३।२।१२५

त्यादौ क्षेपे ३।२।१२६  
 नगोऽप्राग्नि वा ३।२।१२७  
 नखादव ३।२।१२८  
 अन् स्वरे ३।२।१२९  
 को कृत्तुदुदये ३।२।१३०  
 रथवदे ३।२।१३१  
 तुणे जातौ ३।२।१३२  
 कत्रि ३।२।१३३  
 काऽक्षरयोः ३।२।१३४  
 पुरुषे वा ३।२।१३५  
 अल्पे ३।२।१३६  
 काकवौ बोष्णे ३।२।१३७  
 कृत्येऽवस्यमो लुक् ३।२।१३८  
 समस्ततद्धिते वा ३।२।१३९  
 तुमश्च मन कामे ३।२।१४०  
 मांसस्थानद्वयि पचि न वा ३।२।१४१  
 दिक्शब्दात्तोरस्य तार. ३।२।१४२  
 सहस्र सोऽन्यार्थे ३।२।१४३  
 नाम्नि ३।२।१४४  
 अदृश्याधिके ३।२।१४५  
 अकालेऽन्ययीभावे ३।२।१४६  
 ग्रन्थाऽन्ते ३।२।१४७  
 नाशिष्यगोक्तसहले ३।२।१४८  
 समानस्य घर्मादिषु ३।२।१४९  
 स्रज्ज्वलचारी ३।२।१५०  
 दृग्दृशज्ञे ३।२।१५१  
 अन्यस्यदादेराः ३।२।१५२  
 इदङ्किमीत्की ३।२।१५३  
 अननः क्तो यप् ३।२।१५४  
 पृषोदरादयः ३।२।१५५  
 वावाप्योरतनिमीधाम्बहोर्बो ३।२।१५६

### तृतीयः पादः

वृद्धिरारौदौत् ३।३।१

गुणोऽरेदौत् ३।३।२  
 क्रियार्यो धातुः ३।३।३  
 न प्रादिरप्रत्यय. ३।३।४  
 अथौ दाधौ दा ३।३।५  
 वर्तमाना तिव् तस् अन्ति, सिव् यस्,  
 य, मिव् क्त मस् ; ते आते अन्ते,  
 से आथे ध्वे, ए बहे महे ३।३।६  
 सप्तमी यात् याता युष्, यात् यातं यात्,  
 या याव यामः ईत् ईयाता ईरन्,  
 ईयात् ईयाणा ईध्वं, ईय ईन्दि ईमहि  
 ३।३।७  
 पञ्चमी तुव् ता अन्तु, हि तं त, आनिव्  
 भावव् आमव् ; तां आता अन्तां,  
 स्व आयां ध्वं, ऐव आवहेव् आम  
 हेव् ३।३।८  
 छस्तनो दिव् ता अन्, सिव् तं त,  
 अम्व् व म, त आता अन्त, धात्  
 आया ध्वं, इ बहि महि ३।३।९  
 एताः चित्तः ३।३।१०  
 अचतनी दि ता अन् सि तं त, अम् व  
 म् ; त आतां अन्त, यस् आया  
 ध्वं, इ बहि महि ३।३।११  
 परोक्ष णव् अतुन् उम्, यव् अयुत् अ,  
 णव् व म् ; ए आते ईरे, से आथे  
 ध्वे, ए बहे महे ३।३।१२  
 आशी क्वात् क्वास्तां क्वातुस्, क्वात्  
 क्वास्तं क्वास्त, क्वातं क्वास्व  
 क्वारम, सीष्ट सीयास्ता सीरन्,  
 सीष्टास् सीयाथा सीध्व, सीय सीन्दि  
 सीमहि ३।३।१३  
 श्वस्तनी ता तारौ तारस् तासि तारथस्  
 तारथ, तारिम तारस्व तारमस् ; ता  
 तारी तारस्, ताते त्रासाथे ताध्वे,  
 ताहे तार्वहे तारमहे ३।३।१४

मविभ्रन्तो भ्यति स्वतस् स्वन्ति, स्याति  
 स्वयस स्वय, स्यामि स्यान्त स्यामस्,  
 स्यते स्तेते स्वन्ते, स्यते स्वेये  
 स्वध्वे, स्ये स्यावहे स्यामहे ३।३।१५  
 क्रियातिपत्तिः स्यन् स्याता स्वन्, स्वत  
 स्वत स्वत, स्य स्याव स्याम, स्यत  
 स्तेता स्वन्त, स्यात् स्वैया स्वध्व,  
 स्ये स्यावहि स्यामहि ३।३।१६  
 श्रीः श्रीभ्यऽन्वयुभ्मदरमदि ३।३।१७  
 एकद्विवहुषु ३।३।१८  
 नवशानि शतुक्वमू च परस्मैपदम् ३।३।१९  
 परागि कानानशौ चामनेपदम् ३।३।२०  
 तत्ताप्यानाप्याक्कर्मभावे कृत्यकृत्पर्याश्च  
 ३।३।२१  
 इडित कर्त्तारि ३।३।२२  
 क्रियव्यतिहारेऽन्तिहिंसाशब्दार्थेऽसौ  
 ह्रस्वश्चानन्योऽन्यार्थे ३।३।२३  
 निश्चिः ३।३।२४  
 उपसर्गादस्पोहो वा ३।३।२५  
 उत्स्वराद्युत्तरयश्तत्पात्रे ३।३।२६  
 परिव्यवाक्रियः ३।३।२७  
 परावेवे ३।३।२८  
 सन् क्षणो ३।३।२९  
 अगस्किरः ३।३।३०  
 उदञ्चर साप्यात् ३।३।३१  
 समस्तृतीयया ३।३।३२  
 क्रीडोऽकूचने ३।३।३३  
 अन्वाङ् परे ३।३।३४  
 शर उपलेम्नने ३।३।३५  
 आधिधि नाय ३।३।३६  
 मुनबोऽजागे ३।३।३७  
 ह्रगोऽनताञ्छीन्मे ३।३।३८  
 पूजाचार्यकमलुत्सेरयानविगयनज्यये  
 निय ३।३।३९

कर्तृस्यामूर्त्तप्यात् ३।३।४०  
 शदे चिति ३।३।४१  
 क्रियनेरद्यतन्याधिधि च ३।३।४२  
 क्यटपो न वा ३।३।४३  
 द्युदन्वोऽद्यतन्याम् ३।३।४४  
 वृद्म्यः स्वसनो ३।३।४५  
 कृन् अस्तन्याम् ३।३।४६  
 क्रनोऽनुपसर्गात् ३।३।४७  
 वृत्तिसर्गात्पाथने ३।३।४८  
 परापत् ३।३।४९  
 वे स्वार्थे ३।३।५०  
 प्रोपादारम्भे ३।३।५१  
 आडो ज्योतिक्कृमे ३।३।५२  
 दागोऽस्वास्वप्रसारविकारे ३।३।५३  
 नुप्रच्छ ३।३।५४  
 गने क्षान्तौ ३।३।५५  
 ह्र स्पर्द्धे ३।३।५६  
 सन्निवे ३।३।५७  
 उगान् ३।३।५८  
 यम स्वीकारे ३।३।५९  
 देवार्चनैत्रोसङ्गमभ्यिकर्तृमन्त्रकरो स्य  
 ३।३।६०  
 वा लिप्सायान् ३।३।६१  
 उदोऽदूर्द्ध्वे हे ३।३।६२  
 सविप्रावात् ३।३।६३  
 शोष्मास्येये ३।३।६४  
 प्रतिज्ञायाम् ३।३।६५  
 समो गिर ३।३।६६  
 अवात् ३।३।६७  
 निह्वे च ३।३।६८  
 सप्रतेरस्मृतौ ३।३।६९  
 अननो सन् ३।३।७०  
 श्रुवोऽनाहप्रते, ३।३।७१

स्मृत्याः ३।३।७२  
 शक्री जिज्ञासायाम् ३।३।७३  
 प्राग्बत् ३।३।७४  
 आमः कृगः ३।३।७५  
 गन्धनावक्षेपस्तेवासाहसप्रतियत्नप्रकथनो-  
 पयोगे ३।३।७६  
 अथेः प्रसहने ३।३।७७  
 दीप्तिज्ञानयत्नविमत्सुपसम्भाषोपमन्त्रणे  
 वदः ३।३।७८  
 व्यक्तवाचा सहोच्छी ३।३।७९  
 विवादे वा ३।३।८०  
 अनोः कर्मण्यसति ३।३।८१  
 ज्ञः ३।३।८२  
 उपास्यः ३।३।८३  
 समो गमृच्छिउप्रच्छिउभ्रुक्वित्त्वरव्यर्त्तिहृशः  
 ३।३।८४  
 वेः कृगः शब्दे चानाशे ३।३।८५  
 आडो यमहनः खेडङ्गे च ३।३।८६  
 वुदस्तप ३।३।८७  
 अणिकर्मगिर्म्नुकाण्णिकोऽस्मृतौ ३।३।८८  
 प्रत्यभे गृधिवञ्चे. ३।३।८९  
 लीङ्खिनोऽर्वाभिभवे चाचाकर्त्तव्यपि  
 ३।३।९०  
 रिमडः प्रयोक्तुः स्वार्थे ३।३।९१  
 विभेतेर्भापू च ३।३।९२  
 मिथ्या कृगोऽभ्यासे ३।३।९३  
 परिमुहायमायसनादेवदक्कदमादरुच-  
 नृतः फलवति ३।३।९४  
 ईगितः ३।३।९५  
 शोऽनुस्सर्गात् ३।३।९६  
 वदोऽपात् ३।३।९७  
 समुदाहो यमेरग्रन्थे ३।३।९८  
 पदान्तरग्रन्थे वा ३।३।९९

शेयात्परस्मै ३।३।१००  
 परानोः कृगः ३।३।१०१  
 प्रत्यम्यते. शिवः ३।३।१०२  
 प्राद्धहः ३।३।१०३  
 परेर्मुंषश्च ३।३।१०४  
 व्याङ्परं रमः ३।३।१०५  
 बोपात् ३।३।१०६  
 अणिति प्राणिकर्तृकानाप्याण्णिगः ३।३।१०७  
 चाल्पाहारार्थेऽङ्गुषुषुप्रदुसुनशजनः  
 ३।३।१०८

### चतुर्थः पादः

गुपौधूपविच्छिरणिननेरायः ३।४।१  
 कर्मेणिङ् ३।४।२  
 श्रुतेर्होयः ३।४।३  
 अशक्ति वा ३।४।४  
 गुप्तिजोगर्हाशान्तौ सन् ३।४।५  
 क्तिः संशयप्रतीकारे ३।४।६  
 शान्दान्मान्वधानिशानार्जवविचारवैरूप्ये  
 दीर्घश्चेतः ३।४।७  
 धातोः कण्वादेर्यक् ३।४।८  
 व्यञ्जनादेरेकस्वराद् भृशामीश्वये यङ् वा  
 ३।४।९  
 अत्यर्त्तिसूनिनूनिस्त्वयशूणोः ३।४।१०  
 गत्यर्थात्कुटिले ३।४।११  
 ग्लुपसदचरञ्जपजमदशदहो गर्णे ३।४।१२  
 न गृषागुमरुचः ३।४।१३  
 बहुलं लुप् ३।४।१४  
 अचि ३।४।१५  
 नोतः ३।४।१६  
 जुरादिभ्यो णिच् ३।४।१७  
 युवादेर्न वा ३।४।१८  
 भूङ्ः प्राती णिङ् ३।४।१९  
 प्रयोक्तव्यापारे णिग् ३।४।२०

तुमर्शदिच्छया सन्नतलनः ३।४।२१  
 द्वितीयाया काम्यः ३।४।२२  
 अनायना क्यन् च ३।४।२३  
 आवागच्छेपन्नानादान्तरे ३।४।२४  
 कुन्ः किं गल्मकवीवहोडात्तु डिन्  
 ३।४।२५  
 क्यन् ३।४।२६  
 सो वा लुक्च ३।४।२७  
 ओबोऽन्दरसः ३।४।२८  
 च्यर्थे भृशादेः स्तोः ३।४।२९  
 डाच् छोडितादिभ्यः षिन् ३।४।३०  
 कथञ्चकृच्छ्रसत्रगइनाम पापे क्रममे  
 ३।४।३१  
 रोमन्याद्व्याख्यादुबर्षणे ३।४।३२  
 फेनोभवाभयूनादुब्रमने ३।४।३३  
 मुत्तादेःनुमवे ३।४।३४  
 शब्दादेः कृतौ वा ३।४।३५  
 तपस क्यन् ३।४।३६  
 ननेवरेवक्रिषहोऽनोमेवाभरे ३।४।३७  
 अङ्गाभिरसने षिङ् ३।४।३८  
 पुच्छादुदरिब्यसने ३।४।३९  
 माग्डात्समाचितौ ३।४।४०  
 चाँवगलरिधानावने ३।४।४१  
 षिज्वहुलं नान्नः कृगादिषु ३।४।४२  
 ब्रनाद् मुञ्जितत्रिवूरसोः ३।४।४३  
 स्तनायवेदस्ताः ३।४।४४  
 श्वेनाश्वाश्वतर्गाळोडिताह्वरकस्याश्वत-  
 रेन्कलुक् ३।४।४५  
 धानोरन्केस्तरादान्नसोऽश्याः हन्वन्मि  
 चातुतदन्नम् ३।४।४६  
 दयायास्कासः ३।४।४७  
 पुननाम्नादेरन्तृक्षुणोः ३।४।४८  
 आशुषसनिर्धेनं वा ३।४।४९

भीहीन्शोस्तिजत् ३।४।५०  
 वेत्तेः कित् ३।४।५१  
 पञ्चन्या कृन् ३।४।५२  
 तिजद्यतन्वान् ३।४।५३  
 स्पृशन्मृशकृषतृनहो वा ३।४।५४  
 हसियोनाम्बुगान्वादेऽसोऽनिश्च सक्  
 ३।४।५५  
 शिल्षः ३।४।५६  
 नासत्वारलेपे ३।४।५७  
 मिश्रित्लुक्कम कर्त्तारि इ ३।४।५८  
 द्वेस्वेवा ३।४।५९  
 शास्त्यऽसूत्रित्त्यातेरह् ३।४।६०  
 सत्पत्तैवा ३।४।६१  
 ह्यालिप्तिचः ३।४।६२  
 वात्मने ३।४।६३  
 लृदिदद्युतादिषुभ्यादेः परस्मै ३।४।६४  
 श्चदिक्त्विस्तम्भुचून्नुचून्नुचून्नुचून्-  
 चून्ने वा ३।४।६५  
 भिच् ते पदम्लतुश्च ३।४।६६  
 दीपजनकुविपरितापिभ्यायो वा ३।४।६७  
 भावकर्मणोः ३।४।६८  
 स्वरग्रहद्वरइन्म्यः स्पष्टिजाशीः श्वस्तन्या  
 भिड वा ३।४।६९  
 कर्त्तारि ३।४।७०  
 कर्त्तर्यनङ्गथः शब् ३।४।७१  
 दिवादेः श्यः ३।४।७२  
 प्रासम्भ्रावभ्रमकम्क्यमत्रवितुटेऽथियवि-  
 संसेवा ३।४।७३  
 कुष्णिञ्जेऽप्ये वा परस्मै च ३।४।७४  
 स्वादेः श्तुः ३।४।७५  
 वाऽश्व ३।४।७६  
 तक्षः स्वार्थे वा ३।४।७७  
 सन्मृष्टम्भुक्कन्मृष्टम्भुक्कोः रना च  
 ३।४।७८

मन्वादेः ३।४।७९

व्यञ्जनाच्छनाहेरानः ३।४।८०

तुदादेः श ३।४।८१

रुधा स्वराच्छनो न लुक्च ३।४।८२

कृत्तनादेवः ३।४।८३

सुज्ज धादे भिक्वात्मने तथा ३।४।८४

तपेस्तपः कर्मकात् ३।४।८५

एकधातौ कर्मक्रिययैकाऽकर्मक्रिये

३।४।८६

पचिदुहेः ३।४।८७

न कर्मगा जिच् ३।४।८८

रुघः ३।४।८९

स्वदुहो वा ३।४।९०

तपः कर्मनुनामे च ३।४।९१

गिरनुष्प्यात्मनेपदाकर्मकात् ३।४।९२

भूपायंसन्किरादिभ्यश्चत्रिक्यौ ३।४।९३

करणक्रियया क्वचित् ३।४।९४

## चतुर्थोऽध्यायः

### प्रथमः पादः

द्विर्घातु परोक्षाद्देप्राक्तुस्वरे स्वरविभे  
 ४१११२  
 आद्योऽश एकस्वर ४१११२  
 सन्यदश्च ४१११३  
 स्वरादेर्द्वितीय ४१११४  
 न बदन सयोगादि ४१११५  
 ष्यपि र ४१११६  
 नाम्नो द्वितीयाद्येषु ४१११७  
 अन्यस्य ४१११८  
 कृत्वादेस्तृतीय ४१११९  
 पुनरेकेषाम् ४११२०  
 वि सन्वेष्ट्यं ४११२१  
 हव सिति ४११२२  
 चराचरस्वनाचलस्तापतवदावदधनापन  
 पादुसट् वा ४११२३  
 चिभिल्लदचक्रम् ४११२४  
 दास्त्रवाङ्ममीदक्त् ४११२५  
 श्यापो धीरीप् न च द्वि वि सनि  
 ४११२६  
 श्रुघ ईत्तं ४११२७  
 दम्भो धिष्ठीप् ४११२८  
 अज्याप्यस्य मुचेमोग्वा ४११२९  
 मिमीनादामिल्लरस्य ४११२०  
 रमल्लमश्रुपतपदामि ४११२१  
 राधेवधि ४११२२  
 अवित्यरोक्षात्तेट्यवोरे ४११२३  
 अनादेशादेरेक वचनमध्येऽत ४११२४  
 तृत्ररल्लमजाम् ४११२५  
 बभ्रनवमत्ररूपस्यमस्वनराजभ्रावभ्रा  
 सप्लावो वा ४११२६

वा श्रन्यग्रया लुक् च ४११२७  
 दम्भ ४११२८  
 घे वा ४११२९  
 न शसददिवादिगुणिन ४११३०  
 हौ द ४११३१  
 देर्दिगि परोक्षाय म् ४११३२  
 हे पिव वीप्य ४११३३  
 अटे हिहनो हो घ पूर्वात् ४११३४  
 त्रिगि सन्नरोक्षपो ४११३५  
 चे क्तिर्त्वा ४११३६  
 पूर्वास्यास्वे स्वरे य्नोरियुव् ४११३७  
 श्रुतोऽत् ४११३८  
 हस्व ४११३९  
 गहोर्त्वा ४११४०  
 द्युतेरि ४११४१  
 द्वितीयतुर्व्यंत्तो पूर्वा ४११४२  
 तिर्वा षिव ४११४३  
 वज्जनस्याऽनादेर्लुक् ४११४४  
 अपोपे शि ४११४५  
 कश्चन् ४११४६  
 न कर्त्तव्यं ४११४७  
 आगुगाववादे ४११४८  
 न हाको लुपि ४११४९  
 वज्जससष्वसभ्रसकषपनपदस्कन्दोऽन्तो नौ  
 ४११५०  
 मुरतोऽनुनासिकस्य ४११५१  
 जनजमदहदशमचनस्य ४११५२  
 चरसलाम् ४११५३  
 ति चोसान्वातोऽनोदु ४११५४  
 श्रुमता री ४११५५



रिरी च लुपि ४।१।५६  
 निजां शिख्येत् ४।१।५७  
 पृभृमाहाडामिः ४।१।५८  
 सन्यस्य ४।१।५९  
 ओर्जान्तस्थापकौऽवर्णे ४।१।६०  
 भ्रुस्रुद्रुमुप्लुच्योर्वा ४।१।६१  
 स्वपो गाडुः ४।१।६२  
 असमानलोपे सन्वल्गघुनि हे ४।१।६३  
 लघोर्दीर्गोऽस्वरादेः ४।१।६४  
 स्मृदस्वरप्रयत्नदस्तृत्पशोरः ४।१।६५  
 वा वेष्टचेष्टः ४।१।६६  
 ई च गणः ४।१।६७  
 अस्यादेराः परोक्षायाम् ४।१।६८  
 मनातो नक्षान्त ऋदाद्यशौ संयोगस्य  
 ४।१।६९  
 मूस्वपोरदुतौ ४।१।७०  
 ष्याव्येव्यधिन्यचिव्ययेरिः ४।१।७१  
 यजादिदश्वचः सस्वरान्तस्था चृत्  
 ४।१।७२  
 न वयो य ४।१।७३  
 वेरऽयः ४।१।७४  
 अविति वा ४।१।७५  
 ष्यश्च यपि ४।१।७६  
 व्यः ४।१।७७  
 संपरेर्वा ४।१।७८  
 यजादिवचेः किति ४।१।७९  
 स्वपेर्यङ्हे च ४।१।८०  
 ष्याव्यघः किडति ४।१।८१  
 व्यचोऽनुसि ४।१।८२  
 वशेरयङ्गि ४।१।८३  
 मह्वश्चभ्रस्जप्रच्छः ४।१।८४  
 व्येस्यमोर्यङ्गि ४।१।८५  
 चायः ऋः ४।१।८६

द्वित्ये ह्र ४।१।८७  
 गौ ङसनि ४।१।८८  
 श्वेर्वा ४।१।८९  
 वा परोक्षा यङि ४।१।९०  
 प्याय. पीः ४।१।९१  
 क्योरनुपसर्गस्य ४।१।९२  
 आडोऽन्धूषसो. ४।१।९३  
 स्माय. स्पी वा ४।१।९४  
 प्रसम. सत्यः स्ती. ४।१।९५  
 प्रातरच मो वा ४।१।९६  
 श्यः शीर्द्रं वमूर्त्तिस्पर्शे नक्ष्यास्पर्शे ४।१।९७  
 प्रतेः ४।१।९८  
 वाऽभ्यऽवाम्याम् ४।१।९९  
 श्रः श्रुतं ह्रिः क्षीरे ४।१।१००  
 श्रपेः प्रयोक्त्रैक्ये ४।१।१०१  
 चृत्सृत् ४।१।१०२  
 दीर्घमत्रोऽन्त्यम् ४।१।१०३  
 स्वर इन्गमोः सनि धुटि ४।१।१०४  
 तनो वा ४।१।१०५  
 क्रमः कित्वा वा ४।१।१०६  
 अहन्पञ्चमस्य क्विक्किडति ४।१।१०७  
 मनुनासिके च च्छवः शूट ४।१।१०८  
 मव्यऽत्रिभ्रिविज्जरिस्वररूपान्त्येन ४।१।१०९  
 राल्लुक ४।१।११०  
 क्तेऽनिटश्चजोः कगौ धिति ४।१।१११  
 न्यङ्क्द्रमेघादयः ४।१।११२  
 न वञ्चेर्गती ४।१।११३  
 यजेयंशाङ्गे ४।१।११४  
 ध्यण्वावश्यके ४।१।११५  
 निप्राद्युणः शक्ये ४।१।११६  
 भुजो मक्ष्ये ४।१।११७  
 त्यज्यजप्रवचः ४।१।११८  
 वचोऽद्यन्दनान्नि ४।१।११९

मुञ्चन्मुञ्जं पाणिरोमे ४।१।१२०  
वीरुन्व्यग्रोद्यौ ४।१।१२१

**द्वितीय पादः**

भात्सग्न्यक्षरस्य ४।२।१  
न चिति ४।२।२  
व्यरथवणवि ४।२।३  
स्फुरस्फुलोर्षञि ४।२।४  
वापगुरो णमि ४।२।५  
दीङः सनि वा ४।२।६  
ववऽनिङति ४।२।७  
मिग्मीगोऽखलचलि ४।२।८  
लं डलिनोर्वा ४।२।९  
णौ ऋजीङः ४।२।१०  
सिष्यतेरज्ञाने ४।२।११  
चिस्फुरोर्न वा ४।२।१२  
वियः प्रजने ४।२।१३  
रहः पः ३।२।१४  
लियो नोऽन्तः स्नेहद्रवे ४।२।१५  
लो लः ४।२।१६  
पातेः ४।२।१७  
धूग् प्रीगोर्नः ४।२।१८  
वो विधूनने लः ४।२।१९  
पाद्याछासावेऽग्नाहो यः ४।२।२०  
अर्तिरीन्लीहीक्यूयिष्माप्याता पुः ४।२।२१  
स्फाय. स्फाव् ४।२।२२  
शदिरगतौ श्याद् ४।२।२३  
घदादेर्ह्रस्वो दीर्घस्तु वा निपन्मरे ४।२।२४  
कगेवनूजनैकृपृञ्स्तङ्गः ४।२।२५  
अमोऽकम्यमिचमः ४।२।२६  
पर्यपात् स्खदः ४।२।२७  
शमोऽदृशने ४।२।२८  
यमोऽपरिवेशो मिचि च ४।२।२९  
मातगतोषणनिद्याने शश्च ४।२।३०

चहणः श्याटे ४।२।३१  
च्वलह्वलक्षलन्त्रानावनूवमनमोऽनुपसर्गस्य  
वा ४।२।३२  
छदेरिस्मन्त्र क्वौ ४।२।३३  
एकूपसर्गस्य च वे ४।२।३४  
उपान्यस्यासमानलोपिशास्वृदितो हे  
४।२।३५  
भ्राजमासमापदीर्षीडजीवमीलकणरणवण-  
मणभ्रणह्वे हेटलुटलुपलगा न वा  
४।२।३६  
श्रुदवर्णस्य ४।२।३७  
जिप्रतेरिः ४।२।३८  
तिष्ठतेः ४।२।३९  
ऊदुदुपो णौ ४।२।४०  
चित्ते वा ४।२।४१  
गोहः स्वरे ४।२।४२  
मुचो वः परोञ्चाद्यतन्योः ४।२।४३  
गमहनजनखनघसः स्वरेऽनङि किङति  
लुक् ४।२।४४  
नो व्यङ्जनस्यानुदितः ४।२।४५  
अञ्चोऽनर्चामाम् ४।२।४६  
लङि कम्पोषपतागङ्गविट्त्वोः ४।२।४७  
मञ्जेर्जा वा ४।२।४८  
दंशसङ्गः शवि ४।२।४९  
अकट्थिनोश्च रञ्जेः ४।२।५०  
णौ मृगरमणे ४।२।५१  
घञि भावकरणे ४।२।५२  
स्यदो बवे ४।२।५३  
दशनाऽवोदैधोऽप्रभ्रणहिमभ्रणम् ४।२।५४  
यमिरामिनमिगमिहनिमनिवनतिवनादेशुटि  
किङति ४।२।५५  
यपि ४।२।५६  
वा मः ४।२।५७

रमा क्री ४।१।५८  
 च तिकि दीर्घश्च ४।१।५९  
 आ० खनिसनिच्चन ४।१।६०  
 सने ४।१।६१  
 ये न वा ४।१।६२  
 तन क्ये ४।१।६३  
 ती सनस्त्रिकि ४।१।६४  
 क्वाट्पञ्चनस्य ४।१।६५  
 अनाद्यापश्चि स्त्री ४।१।६६  
 हादो हद् चयेश्च ४।१।६७  
 श्रुत्वादेरेषा तो नोऽप्र ४।१।६८  
 रदादऽनूर्त्तमद चयेर्दस्य च ४।१।६९  
 स्वप्नाद्योदित ४।१।७०  
 म्पडान्तस्यातोऽप्रवाप्य ४।१।७१  
 पूदिव्यग्नेर्नायायवाऽप्रदात्तानि ४।१।७२  
 तेऽस्ति कर्मकर्त्तरे ४।१।७३  
 हे स्त्रीनाऽप्र्यापे ४।१।७४  
 वाऽऽप्येयदैव्ये ४।१।७५  
 श्रुहीमाश्रावोदनुदन्वितेर्वा ४।१।७६  
 दुर्गुरु च ४।१।७७  
 क्षैतुपिरचो मङ्गलम् ४।१।७८  
 निर्वर्णमऽवाते ४।१।७९  
 अनुपकर्णा क्षीनोऽहान्दृशपरिच्छात्पुल्लो-  
 र्पुल्लसपुल्ल ४।२।८०  
 मित्तं शक्यम् ४।१।८१  
 वित्तं घनप्रतीतम् ४।१।८२  
 दुष्टयो र्द्वेषि ४।१।८३  
 शासऽवहन शायेषिचहे ४।१।८४  
 अत. प्रपदाहृक् ४।१।८५  
 अत्रयोगदो ४।१।८६  
 वन्यऽपिरे वा ४।१।८७  
 हृगो वि च ४।१।८८  
 अत्र सिधुर् ४।१।८९

श्नात्सोऽहृक् ४।१।९०  
 वा द्विवाचोऽन पुन् ४।१।९१  
 जिञ्जिदोऽनुत् ४।१।९२  
 द्वयु च्चञ्जयत् ४।१।९३  
 अन्तो नो लुक् ४।१।९४  
 शौ वा ४।१।९५  
 श्नश्चान् ४।१।९६  
 एषामीर्षेऽनेऽद ४।१।९७  
 इर्दादि ४।१।९८  
 मियो न वा ४।१।९९  
 हाह ४।१।१००  
 आ च ही ४।१।१०१  
 यि लुक् ४।१।१०२  
 अत म्ये ४।१।१०३  
 वा शब्दोऽप्रदादी ४।१।१०४  
 प्नादेर्हन्त् ४।१।१०५  
 गनिपयमरठ ४।१।१०६  
 वेगे सर्वेषां ४।१।१०७  
 श्री विहृदुधितुनाभ्याम्पान्नादान्दृश्य  
 एत्तिघदसद श्रुचिनिदञ्जिवमदि  
 छमनयत्तन्मयर्त्तनीवदीदन्  
 ४।१।१०८  
 श्नो दीर्घं परस्मै ४।१।१०९  
 छिदृक्त्वञ्चान् ४।१।११०  
 यमन्तकय इये ४।१।१११  
 छिन्मिचोऽनपि वा ४।१।११२  
 नयऽन्त्या ४।१।११३  
 अनतोऽन्तोऽदात्मने ४।१।११४  
 शीतोऽत् ४।१।११५  
 वेत्तेर्न वा ४।१।११६  
 तिनः परस्मै ४।१।११७  
 द्रुगः पञ्चाना पञ्चास्य ४।१।११८  
 अर्णापि श्रुतोऽस्तौ ४।१।११९

आतो णव औ ४।२।१२०  
 आतामाते आयामाये आदि ४।२।१२१  
 य सप्तम्या ४।२।१२२  
 याम्बुसौरियमियुसौ ४।२।१२३

**तृतीयः पादः**

नामिनो गुणोऽकिङ्कति ४।३।१  
 उरनो ४।३।२  
 पुसौ ४।३।३  
 लघोरुपान्त्यस्य ४।३।४  
 मिदः श्ये ४।३।५  
 चागु किति ४।३।६  
 श्रुवाँदशोऽङ्कि ४।३।७  
 स्कृच्छतोऽकि परोक्षायाम् ४।३।८  
 सयोगाद्दत्तं ४।३।९  
 क्ययडाशौचं ४।३।१०  
 न वृद्धिभ्राविति किञ्चलोपे ४।३।११  
 भवते सिञ्जुपि ४।३।१२  
 सते पञ्चम्याम् ४।३।१३  
 द्वयु चोपान्त्यस्य शिति स्वरे ४।३।१४  
 द्विगोरधितिव्यौ ४।३।१५  
 इको वा ४।३।१६  
 कुटादेर्हिद्वदऽङ्गिन्त् ४।३।१७  
 विनेरिट् ४।३।१८  
 बोर्णो ४।३।१९  
 शिदऽकिन्त् ४।३।२०  
 इन्ध्यऽसंयोगात्सरोक्षाकिद्वत् ४।३।२१  
 स्वञ्जेर्न वा ४।३।२२  
 लनशोन्नुपान्त्ये तादि क्वा ४।३।२३  
 श्रुत्तृभृत्प्रकृशयञ्जुञ्जयत् सेट् ४।३।२४  
 वौ व्यञ्जनादे सन्वाऽव ४।३।२५  
 उतिशवर्हाद्वय क्तौ मात्रम्भे ४।३।२६  
 न ङीङ्शीङ्गुङ्घृपिञ्चिदिस्विदिमिद  
 ४।३।२७

मृय क्षान्तौ ४।३।२८  
 क्तावा ( वक्ता ) ४।३।२९  
 स्कन्दस्यन्द ४।३।३०  
 लुधक्लिशुपुगुधनृड्मृदवदवत् ४।३।३१  
 रुदविदमुपग्रहस्वपग्रच्छ सन् च ४।३।३२  
 नामिनोऽनिट् ४।३।३३  
 उरान्त्ये ४।३।३४  
 सिन्नाशिषावात्मने ४।३।३५  
 श्रुवर्गात् ४।३।३६  
 गमो वा ४।३।३७  
 इन सिच् ४।३।३८  
 यम सूचने ४।३।३९  
 वा स्त्रीकृतौ ४।३।४०  
 इश्च स्याद ४।३।४१  
 मृजोऽस्य वृद्धि ४।३।४२  
 श्रुत स्वरे वा ४।३।४३  
 सिचि परस्मै समान स्यादिति ४।३।४४  
 व्यञ्जनानामनिटि ४।३।४५  
 वोर्णुगं सेटि ४।३।४६  
 व्यञ्जनादेर्वोपान्त्यस्यात् ४।३।४७  
 वदवञ्जल्य ४।३।४८  
 न शिञ्जायुशस्यगद्वये दित् ४।३।४९  
 ङ्गिति ४।३।५०  
 नामिनोऽकलिः ४।३।५१  
 चागुर्निमवि ४।३।५२  
 आत ऐ कृञ्जौ ४।३।५३  
 न अनवध ४।३।५४  
 मोऽकमियमिरमिनमिगमिवनाचमः  
 ४।३।५५  
 विश्वनेत्रो ४।३।५६  
 उद्यमोपरमौ ४।३।५७  
 िद्वाऽन्त्यो ण्व् ४।३।५८  
 उत और्विति व्यञ्जनेऽद्वे ४।३।५९

बोधोः ४।३।६०  
 न दिव्योः ४।३।६१  
 वृहः श्नादीत् ४।३।६२  
 मृतः परादिः ४।३।६३  
 यद् तुस्तोर्बहुलम् ४।३।६४  
 सः सिञ्जतेर्दिस्योः ४।३।६५  
 पितृतिदामृष्यः सिचो लुप् परमै न चेत्  
 ४।३।६६  
 टथेमाशाच्छासो वा ४।३।६७  
 लन्म्यो वा तपासिन्म्योश्च ४।३।६८  
 सनस्तना वा ४।३।६९  
 धुट् हुस्वाल्गुगनितस्तयोः ४।३।७०  
 इट् इति ४।३।७१  
 सो धि वा ४।३।७२  
 व्यस्तेः सिहस्वेति ४।३।७३  
 दुहदिहलिहगुहो दन्त्यात्मने वा सकः  
 ४।३।७४  
 स्वरेऽतः ४।३।७५  
 दरिद्रोऽद्यतन्या वा ४।३।७६  
 आशित्यस्मन्गङ्गान्मनति ४।३।७७  
 व्यञ्जनाद् देः सश्च दः ४।३।७८  
 सेः सद्भाञ्च र्वा ४।३।७९  
 योऽशिति ४।३।८०  
 क्यो वा ४।३।८१  
 अतः ४।३।८२  
 रोरनिटि ४।३।८३  
 सेट्कयोः ४।३।८४  
 आम्नन्ताल्वाभ्येनावय् ४।३।८५  
 ल्योर्भाषि ४।३।८६  
 वाऽऽप्नोः ४।३।८७  
 मेतो वा मिन् ४।३।८८  
 चेः लीः ४।३।८९  
 ल्यब्रव्यौ यत्तौ ४।३।९०

मय्यः प्रयाथे ४।३।९१  
 सस्तः सि ४।३।९२  
 दीय् दीडः सिद्धि स्तरे ४।३।९३  
 इष्टेत्सुमि चातो लुक् ४।३।९४  
 संयोगादेर्वा सिच्येः ४।३।९५  
 गायास्यासादामाहाकः ४।३।९६  
 ईर्नञ्जनेऽयमि ४।३।९७  
 घ्राप्मोर्यटि ४।३।९८  
 हनो घनीर्बवे ४।३।९९  
 ङिति घात् ४।३।१००  
 ङिगवि घन् ४।३।१०१  
 नशेर्नेष्वाऽङि ४।३।१०२  
 श्वपत्यऽसुवचन्तःश्वास्यवोचपतम्  
 ४।३।१०३  
 शीट् एः शिति ४।३।१०४  
 बिडिति यि श्य ४।३।१०५  
 ठरुगाद्दूहो ह्रस्वः ४।३।१०६  
 आशिपीनः ४।३।१०७  
 दीर्घदिन्व्यद्व्यक्त्वेभ्यु च ४।३।१०८  
 ऋतो रीः ४।३।१०९  
 रिः शक्याशीर्षे ४।३।११०  
 ईश्च्चाववर्गस्याऽनन्यवस्य ४।३।१११  
 क्यमि ४।३।११२  
 लुत्तृग्दूषेऽयनायोदन्यधनायम्  
 ४।३।११३  
 वृषाश्वान्मैथुने स्त्रोऽन्तः ४।३।११४  
 अथ लौल्ये ४।३।११५  
**चतुर्थः पादः**  
 अरित्प्रुचोर्मुक्त्वाद्यिति ४।४।१  
 अन्मक्यवल्प्यजेर्वा ४।४।२  
 जने वा ४।४।३  
 चशो वाचि कशांगुल्याम् ४।४।४  
 न वा परोद्यायाम् ४।४।५

मृज्जो मर्ज् ४।४।६  
 प्राहागस्व आरम्भे च ४।४।७  
 निदिस्वन्ववात् ४।४।८  
 स्वरादुपसर्गाहस्तिक्लिब्यधः ४।४।९  
 दत् ४।४।१०  
 दोषोमास्य इः ४।४।११  
 छान्शोर्वा ४।४।१२  
 शो व्रते ४।४।१३  
 हाको हिः क्वि ४।४।१४  
 धागः ४।४।१५  
 यपि चादो षण् ४।४।१६  
 घन्नुसनघननीचञ्चलि ४।४।१७  
 परोक्षया न वा ४।४।१८  
 वेवन् ४।४।१९  
 श्रुः श्रुद्रः ४।४।२०  
 हनो वष आशिष्यञ्जौ ४।४।२१  
 अद्यतन्यां वा त्वात्मने ४।४।२२  
 इपिकोर्गा ४।४।२३  
 षावसाने गन्तुः ४।४।२४  
 सनीडश्च ४।४।२५  
 गाः परोक्षयान् ४।४।२६  
 गौ सनडे वा ४।४।२७  
 वाऽद्यतनीक्रियातिपत्स्योर्गाङ् ४।४।२८  
 अङ्घातोरादिद्यस्तन्यां चानाज् ४।४।२९  
 एत्परतेर्द्विः ४।४।३०  
 स्वपादेस्तासु ४।४।३१  
 स्ताद्यधितोऽत्रोणादेरिट् ४।४।३२  
 तेर्ग्रहादिभ्यः ४।४।३३  
 एङ्गोऽपरोक्षयां दीर्यः ४।४।३४  
 वृतो न वा ऽनाशोः सिच्यरसमै च ४।४।३५  
 इट्तिजाधिपोरात्मने ४।४।३६  
 संयोगादतः ४।४।३७  
 धूमौदितः ४।४।३८

निष्कृयः ४।४।३९  
 कयोः ४।४।४०  
 जत्रश्चः कवः ४।४।४१  
 ऊदितो वा ४।४।४२  
 लुधवस्नेयान् ४।४।४३  
 लुम्बञ्चेर्विमोक्षचै ४।४।४४  
 पुङ्क्तिञ्चिभ्यो न वा ४।४।४५  
 सङ्लुभेच्छरपरिपन्तादेः ४।४।४६  
 इवृषभ्रस्जदम्भश्रिदूष्णुंभररुपिचनित-  
 निपतिवृद्धिः सनः ४।४।४७  
 श्रुतिमपूङ्ङ्क्षौकृगृहृप्रच्छः ४।४।४८  
 इन्तः स्यत्य ४।४।४९  
 वृत्तचूतनृत्तच्छूदतृदोऽसिचः सादेर्वा  
 ४।४।५०

गनोऽनात्मने ४।४।५१  
 रनोः ४।४।५२  
 कनः ४।४।५३  
 तुः ४।४।५४  
 न वृद्धयः ४।४।५५  
 एकस्वगादनुस्वारेतः ४।४।५६  
 श्रुवर्णश्रयूष्णुंगः क्वितः ४।४।५७  
 उक्णात् ४।४।५८  
 प्रदगुहश्च सनः ४।४।५९  
 स्वार्थे ४।४।६०  
 डीयरव्यैदितः कयोः ४।४।६१  
 वेदोऽपतः ४।४।६२  
 सन्निवेरदः ४।४।६३  
 अत्तिदूरेऽमेः ४।४।६४  
 वृत्तेर्द्वत्तं क्रय्ये ४।४।६५  
 घृष्यसः प्रगल्भे ४।४।६६  
 क्यः वृच्छूगहने ४।४।६७  
 युपेरविद्यन्दे ४।४।६८  
 बलिश्यूते इदः ४।४।६९

लुब्धविरिन्धस्वान्तश्चान्तलग्नमित्यथाष्ट-  
वाटपरिवृटं मन्यस्वरमनस्त्वमःस-  
काऽस्पष्टाऽनायासमृद्यप्रभौ ४१४७०

आदितः ४१४७१

न वा भाचारम्भे ४१४७२

शक कर्मणि ४१४७३

गौ दान्तशान्तपूर्वादस्तस्यष्टञ्जनञ्जम्  
४१४७४

श्वसञ्जन्मरुपत्वरसंश्रुयास्वनाम ४१४७५

हृपे. केशलेमन्त्रिमयप्रतिपाते ४१४७६

अपचितः ४१४७७

सृजिदाशिसृस्वराऽन्वतसृज्जिह्वानितस्यवः  
४१४७८

श्रुत ४१४७९

श्रुष्ट्येऽद् इट् ४१४८०

रक्ऽसृष्टमृष्टुष्टुष्टोर्न्यञ्जनादे. परोक्षया  
४१४८१

घसेकस्वरातः क्तसो. ४१४८२

गमहनन्दिन्लृविद्यदशो वा ४१४८३

सिचोऽञ्जेः ४१४८४

धूगुस्तो परस्मै ४१४८५

यमिरमिनम्यातः सोऽन्तश्च ४१४८६

ईधीढः सेध्वेस्वध्मोः ४१४८७

रत्पञ्चकाण्डियः ४१४८८

दिस्थोरीट् ४१४८९

अदभाट् ४१४९०

संपरेः कृगः स्वट् ४१४९१

ठराद् भूयासमनायप्रतियत्ननिकारवा-  
क्याऽप्याहारे ४१४९२

किरो लवने ४१४९३

प्रतेश्च वधे ४१४९४

अराचचतुष्पात्पञ्चैतुनिहृष्टान्नाभयार्थे  
४१४९५

वौ विचिह्नो वा ४१४९६

प्राचुम्भवेर्गवि ४१४९७

उदितः स्वरात्रोऽन्तः ४१४९८

मुचादितृत्तद्वगुत्तुमोऽमः शे ४१४९९

जमः स्वरे ४१४१००

रध इटि तु परोक्षामेव ४१४१०१

रभोऽपरोक्षायवि ४१४१०२

लमः ४१४१०३

आडो वि ४१४१०४

उपास्तुतौ ४१४१०५

जिस्त्वमोर्वा ४१४१०६

उपसर्गात् खल्वनोश्च ४१४१०७

सुदुर्म्यः ४१४१०८

नशो घुटि ४१४१०९

मस्जेः स ४१४११०

अ. सृज्जिह्वोऽकिति ४१४१११

रृष्ट्यादिसृो वा ४१४११२

ह्रस्वस्य तः पितृत्वि ४१४११३

अतो म आने ४१४११४

आसीनः ४१४११५

श्रुता भिद्यतीर् ४१४११६

ओष्वाहुर ४१४११७

इ सासः शासोऽङ्गन्यञ्जने ४१४११८

क्तौ ४१४११९

आळः ४१४१२०

रुोः पञ्चन्यञ्जने लुक् ४१४१२१

कृतः कीर्त्तिः ४१४१२२

## पञ्चमोऽध्यायः

प्रथमः पादः

आतुमोऽत्यादि. कृत् ५।१।१  
 बहुलम् ५।१।२  
 कर्त्तरि ५।१।३  
 व्याप्ये घुरकेलिमकृष्णव्यम् ५।१।४  
 संगतेऽर्ज्यम् ५।१।५  
 रुच्याऽव्यप्यवास्तव्यम् ५।१।६  
 मन्व्योषब्दन्वस्यापात्याप्लाय न वा  
 ५।१।७  
 प्रवचनीयादय ५।१।८  
 श्लिषशीङ्स्थासवसजनरुद्भ्रमने क.  
 ५।१।९  
 आरम्भे ५।१।१०  
 गत्यर्थाऽकर्मकनिबन्धुन ५।१।११  
 अद्यर्थाच्याधारे ५।१।१२  
 क्त्वातुमम् मात्रे ५।१।१३  
 मीमादयोऽदादाने ५।१।१४  
 सप्रदानाच्चान्यत्रोणदय ५।१।१५  
 अस्त्वोऽपवादे वेत्सर्गं प्राक् क्त्वे ५।१।१६  
 श्रुवर्णञ्जनान्ताद् षण् ५।१।१७  
 पाणितमवाभ्या सुज ५।१।१८  
 उवर्णादावश्यके ५।१।१९  
 आसुयुवपिरपिलिनिपिपिदिमिचम्यानम  
 ५।१।२०  
 वाऽऽधारेऽमावास्या ५।१।२१  
 संचाय्यकुण्डपाय्यराजस्य क्रतौ ५।१।२२  
 प्राग्यो मिष्कामासमते ५।१।२३  
 घाय्यानाप्यसानायनिकाय्यमृत्मान-  
 हविर्निवासे ५।१।२४  
 परिचाय्योपचाय्यानाप्यसमूहचित्यमग्नौ  
 ५।१।२५

याज्या दानचि ५।१।२६  
 तव्यानीयौ ५।१।२७  
 य एच्चात् ५।१।२८  
 शक्ति कन्तियतिश सिसहियत्रिभजि  
 पत्रगात् ५।१।२९  
 यमिमदिगदोऽनुपसर्गात् ५।१।३०  
 चरेरास्त्नगुौ ५।१।३१  
 वयोऽस्यान्त्रस्यमुपेयर्तुमती गर्हं विक्रये  
 ५।१।३२  
 स्वामिवैश् ऽयं ५।१।३३  
 वक्ष करणे ५।१।३४  
 नाम्नो वद कदण्च ५।१।३५  
 हत्यामूय मात्रे ५।१।३६  
 अग्निचित्वा ५।१।३७  
 सेयमृपोथे ५।१।३८  
 कुप्यभिद्योष्यसिष्यनिष्यपुष्यपुष्याज्यस्यै  
 नाम्नि ५।१।३९  
 दृवृगस्तुपुपे तेषात् ५।१।४०  
 श्रुदुपान्त्पाददृविचृट्च ५।१।४१  
 कृत्पिचृजिशसिगुदिदुहिजपो वा ५।१।४२  
 निविपून्यो हलिमुञ्जक्लके ५।१।४३  
 पदारवैरिनाह्याप्रद्रे प्रह ५।१।४४  
 भृगोऽसत्तायाम् ५।१।४५  
 समो वा ५।१।४६  
 ते कृत्वा ५।१।४७  
 णकृत्वौ ५।१।४८  
 अच् ५।१।४९  
 लिहादिभ्य ५।१।५०  
 ब्रुव ५।१।५१  
 नन्धादिभ्योऽन ५।१।५२



महादिम्यो णिन् ५११५३  
 नान्युपान्वयमीकृश क ५११५४  
 गेहे मह ५११५५  
 उपसर्गादातो षोऽश्य ५११५६  
 व्याप्राप्ते प्राणिनसो ५११५७  
 प्राध्नापान्धेदृश श ५११५८  
 साहिसातिवेषुदेजिधरिपारिचेतेरनु  
 सर्गात् ५११५९  
 लिम्बिदि ५११६०  
 निगवादेर्नाम्नि ५११६१  
 वा षडलादि दुनीमूमाहासोर्ण ५११६२  
 अबहसासस्तोः ५११६३  
 तन्व्यधीगुधसात ५११६४  
 मृतस्त्ररञ्ज शिल्पिन्यऽकट् ५११६५  
 मर्यक ५११६६  
 टनन् ५११६७  
 ह कालमीह्यो ५११६८  
 मुसुल्लोऽक साधो ५११६९  
 आशिष्यऽकन् ५११७०  
 तिकृती नाम्नि ५११७१  
 कर्मणोऽण् ५११७२  
 शीलिकामिमस्याचरोक्षितमो ण ५११७३  
 गायोऽनुपसर्गाट्टक् ५११७४  
 सुराधीषो षि ५११७५  
 आतो षोऽह्वावाम ५११७६  
 सम ख्य. ५११७७  
 दधाह. ५११७८  
 प्राद् इध ५११७९  
 आशिषि ह्न ५११८०  
 बलेशादिम्योऽपात् ५११८१  
 कुमारशीर्षाणिन् ५११८२  
 अचित्ते टक् ५११८३  
 कायापतेभिह्नति ५११८४

प्रालादिम्य ५११८५  
 हस्तिबाहुकपाटाञ्जकौ ५११८६  
 नगरादगजे ५११८७  
 राबध ५११८८  
 पाणिरताह्यौ शिल्पिने ५११८९  
 कुश्यामोदरात् भृग लि ५११९०  
 अर्होऽच ५११९१  
 धनुर्दण्डस्तरलाह्लाङ्कुर्द्युर्द्युष्टिश्चि-  
 तोमरधयाद्ग्रह ५११९२  
 सूत्रादारयो ५११९३  
 आयुषादिम्यो धृगोऽदण्डादेः ५११९४  
 हृगो वयोऽनुद्यमे ५११९५  
 आह गीले ५११९६  
 दतिनायात् पद्यावि ५११९७  
 रज पलेमनाद् ग्रह ५११९८  
 देववातादायः ५११९९  
 सङ्घत्तम्बादत्समीही कृग ५११९००  
 किं यत्तद्बहोर ५११९०१  
 सङ्ख्याऽर्हर्दिवाविमानिद्याप्रमामाश्वित्र  
 कर्त्राद्यन्तानन्तकारवाहव्यनुर्नान्दी-  
 लिपिलिबिबलिभक्तिचेनब्रह्माक्षपाश  
 पदारजनिदोपादिनदिवशाट्ट  
 ५११९०२  
 हेतुतञ्जीलानुवृलेऽद्यन्दन्लोककलहगाभा-  
 वैरचाटुसूत्रमन्त्रपदान् ५११९०३  
 भूती कर्मणः ५११९०४  
 क्षेमप्रियमद्रभद्रात् षाऽण् ५११९०५  
 मेघर्त्तिमयामयास्त्र ५११९०६  
 प्रियवशाद्द ५११९०७  
 द्विपन्तपरन्तपौ ५११९०८  
 परिमाणार्थमितनखात्पच ५११९०९  
 वृलाभ्रकरीयात्क्य ५११९१०  
 सर्वाऽहथ ५११९११  
 श्वृजिततपदमेध नाम्नि ५११९१२

धारेर्धचं ५।१।११३  
 पुनन्दर मगन्दरी ५।१।११४  
 वाचंयमो वते ५।१।११५  
 मन्वाग्निन् ५।१।११६  
 कर्तुः खद् ५।१।११७  
 एजेः ५।१।११८  
 शुनीस्तनमुञ्जकूलास्यपुष्पात् ५।१।११९  
 नाढीघरीलरीमुष्टिनासिकावाताद् धमश्च  
 ५।१।१२०  
 पागिकरात् ५।१।१२१  
 कूलादुद्रुबोद्धः ५।१।१२२  
 वहाभ्रात्तिहः ५।१।१२३  
 बहुविध्वस्तिकात्तुदः ५।१।१२४  
 ललाटवातशब्दात्तपाऽजहाकः ५।१।१२५  
 अस्योप्राद् दशः ५।१।१२६  
 हरम्मदः ५।१।१२७  
 नग्नपल्लितप्रियान्धरथूलसुमगाढ्यनदन्ता-  
 न्च्यर्थेऽन्वेर्भुव लिप्पुक्तुञ्जौ ५।१।१२८  
 कृगः खनट् करणे ५।१।१२९  
 मावे चाशिताद् सुवः खः ५।१।१३०  
 नाम्नो गम. खड्बौ च विहायसस्तु विहः  
 ५।१।१३१  
 सुगदुर्गमाधारे ५।१।१३२  
 निर्गो देशे ५।१।१३३  
 शमो नाम्न्यः ५।१।१३४  
 पार्श्वदिम्यः शीडः ५।१।१३५  
 उर्ध्वदिम्यः कर्तुः ५।१।१३६  
 आधारात् ५।१।१३७  
 चरेष्टः ५।१।१३८  
 मिशासेनादायात् ५।१।१३९  
 पुरोऽप्रतोऽप्ये सत्तेः ५।१।१४०  
 पूर्वात् कर्तुः ५।१।१४१  
 स्यावास्नात्रः कः ५।१।१४२

शोकारनुददुन्दपरिमृजस्तम्बेरमर्कणैर्जपं  
 प्रियाल्सहस्तिसूचके ५।१।१४३  
 मूलविभुजादयः ५।१।१४४  
 दुहेर्दुधः ५।१।१४५  
 मजो विण् ५।१।१४६  
 मन् वन् कश्चिन् विच् क्वचित् ५।१।१४७  
 क्तिप् ५।१।१४८  
 सृशोऽनुदकात् ५।१।१४९  
 अदोऽनन्नात् ५।१।१५०  
 ऋव्याक्कव्यादावामपकादौ ५।१।१५१  
 त्यदाद्यन्यसमानादुपमानाद्दद्याप्ये दशष्ट-  
 कसकौ च ५।१।१५२  
 कर्तुर्गिन् ५।१।१५३  
 अजातेः शीले ५।१।१५४  
 साधौ ५।१।१५५  
 ब्रह्मगो वद ५।१।१५६  
 वतामीश्वरे ५।१।१५७  
 करणाद्यजो भूते ५।१।१५८  
 निन्द्ये व्याप्यादिन्विक्रियः ५।१।१५९  
 हनो गिन् ५।१।१६०  
 ब्रह्मभूगृत्रात् त्रिप् ५।१।१६१  
 कृगः सुपुम्पनापकर्ममन्त्रादात् ५।१।१६२  
 सोमात्सुगः ५।१।१६३  
 अग्नेश्वेः ५।१।१६४  
 कर्मष्यम्यर्थे ५।१।१६५  
 दशः क्तिप् ५।१।१६६  
 सहराजम्या कृगसुधे. ५।१।१६७  
 अनोर्बनेर्दः ५।१।१६८  
 सप्तम्याः ५।१।१६९  
 अजातेः पञ्चम्याः ५।१।१७०  
 क्वचित् ५।१।१७१  
 सुयजोर्ध्वनिप् ५।१।१७२  
 जूपोऽतुः ५।१।१७३  
 ऊकवत् ५।१।१७४

द्वितीयः पादः

क्षुब्धवस्त्रः परोक्षा वा ५१२११  
 तत्र वसुधानौ तद्वत् ५ २१२  
 वेयिवदनाधदनूचानम् ५१२१२  
 अद्यतनी ५१२१४  
 विशेषाऽविनशाज्यामिधे ५१२१५  
 रात्रौ वसोऽन्तःशामास्वनर्यथ ५१२१६  
 अनद्यतने ह्यस्तनी ५१२१७  
 ख्याते दृश्ये ५१२१८  
 अयदि स्मृत्यर्थे मद्विष्यन्ती ५१२१९  
 वा काङ्क्षायाम् ५१२१०  
 कृतास्मरणाऽतिनिह्वये परोक्षा ५१२१११  
 परोक्षे ५१२११२  
 ह्यश्वद्युगान्तः प्रच्छये ह्यस्तनी च  
 ५१२११३  
 अविश्रिते ५१२११४  
 वाऽद्यतनी पुरादौ ५१२११५  
 स्मे च वर्तमाना ५१२११६  
 ननौ शृणोक्षौ सद्दत् ५१२११७  
 नन्वोर्वा ५१२११८  
 गति ५१२११९  
 यत्रानशावेप्यति तु सस्यौ ५१२१२०  
 तौ माह्वाम्प्रोशेषु ५१२१२१  
 वा वेत्तेः कस्तुः ५१२१२२  
 पूह्यत्रः शानः ५१२१२३  
 वयः शक्तिशीले ५१२१२४  
 धातीदोऽङ्कृच्छ्रेऽवृष्ट् ५१२१२५  
 सुगद्विषाहः सविशत्रुस्त्ये ५१२१२६  
 वनशीलधर्मसाधुषु ५१२१२७  
 भ्राज्यऽलङ्कृग्निराष्ट्रभूसहिरुचिवृति-  
 वृधिचरिप्रजनानपत्र इप्सुः ५१२१२८  
 उद पचिपतिशदिमदेः ५१२१२९  
 भूजेः षुक् ५१२१३०

स्याग्लाम्नापचिनरिमृचितेः स्तुः ५१२१३१  
 त्रसिधधिधृपिधिमः क्तुः ५१२१३२  
 क्तुभिःशशस्तेरुः ५१२१३३  
 निन्दिच्छू ५१२१३४  
 शब्ददेराहः ५१२१३५  
 दाट्पेतिशदसदोरु ५१२१३६  
 शीट् भद्रानिद्रातन्द्रादपिपतिशदिसृष्टे-  
 रात्तुः ५१२१३७  
 शौ सासहिधावहिचाचलिगततिः ५१२१३८  
 ससिचक्रिदधिअदिनेमिः ५१२१३९  
 शुकमगमहनवृषभूस्य उक्त् ५१२१४०  
 लप्यतपदः ५१२१४१  
 भूपाक्षोधार्यत्रुस्यधिअल्लुचध्वानः  
 ५१२१४२  
 चलशब्दार्थादकर्मकान् ५१२१४३  
 इडितो व्यञ्जनाद्यन्तात् ५१२१४४  
 न मिङ्पसूददीपदीशः ५१२१४५  
 द्रमकर्मो यङ्ः ५१२१४६  
 यजिजपिदंशिवदादूकः ५१२१४७  
 जागुः ५१२१४८  
 शमष्टकात् पिनन् ५१२१४९  
 युजभुञ्जन्त्यबरञ्जद्विपदुपदुहदुहाम्या-  
 हनः ५१२१५०  
 आहः क्षीडमुपः ५१२१५१  
 प्राच यमयसः ५१२१५२  
 मयन् ५१२१५३  
 वेध द्रो. ५१२१५४  
 विपरिमात्सत्तेः ५१२१५५  
 समः पृचैरन्वरेः ५१२१५६  
 संवेः सुत्रः ५१२१५७  
 संपरिव्यनुप्राददः ५१२१५८  
 वेद्विचक्षत्यसम्मकपकसहनः ५१२१५९  
 व्यपामेलयः ५१२१६०

सम्प्राद्वसात् ५१२।६१  
 समल्पपामिन्यनेश्वरः ५१२।६२  
 समनुब्यवाद्गुघः ५१२।६३  
 वेदहः ५१२।६४  
 परेदेविमुहक्ष ५१२।६५  
 छिपरटः ५१२।६६  
 वादेश्च णक्त् ५१२।६७  
 निन्दहिंसकिलशवादाविनाशिव्याभाषा-  
 ह्यानेकस्वरात् ५१२।६८  
 उपसर्गद्विवृदेविक्रुयः ५१२।६९  
 वृद्धिभिलुष्टिजल्पिकुडाट्टाकः ५१२।७०  
 प्रात्सुजोरिन् ५१२।७१  
 लीणहञ्जिविभ्रिपरिभूवमान्यमाज्ययः  
 ५१२।७२  
 स्यस्यदो मरक् ५१२।७३  
 मञ्जिमासिमिदो घुरः ५१२।७४  
 वेत्तिच्छिदमिदः किन् ५१२।७५  
 मियोरुक्कलुकम् ५१२।७६  
 सुजीभशद्विप् ५१२।७७  
 गत्वरः ५१२।७८  
 रम्यजसहिंसदीवकमकमनमो रः ५१२।७९  
 तृषिष्टुभिस्वपो नजिह् ५१२।८०  
 स्येशमासपिसकषो वरः ५१२।८१  
 यायावरः ५१२।८२  
 दिद्युद्दृज्जगज्जुह्वाकृपाट्शीश्रीद्रुसूना-  
 यतत्कृत्प्रप्रतिवाट्प्राजादयः सिद्वप्  
 ५१२।८३  
 शंसस्वयंविप्राद् सुवो डुः ५१२।८४  
 पुव इत्रो दैवते ५१२।८५  
 ऋषिनाम्नोः करणे ५१२।८६  
 लुपूस्वनिचरसहात्तैः ५१२।८७  
 नौदाम्बश्चसुपुञ्जस्तुदसिखिचमिहपत-  
 पानहञ्जट् ५१२।८८

हलक्रोडास्ये पुवः ५१२।८९  
 दंशैत्रः ५१२।९०  
 घानी ५१२।९१  
 ज्ञानेन्ठार्चार्यञ्जीञ्जील्यादिभ्यः कः  
 ५१२।९२  
 उगादयः ५१२।९३  
**तृतीयः पादः**  
 वत्स्यन्ति गम्यादिः ५१३।१  
 वा हेतुसिद्धौ क् ५१३।२  
 कशोऽनितः ५१३।३  
 मदिष्यन्ती ५१३।४  
 अनद्यतने श्स्तनी ५१३।५  
 परिदेवने ५१३।६  
 पुरायावतोर्वत्तमाना ५१३।७  
 कदाकह्योनं वा ५१३।८  
 क्विवृत्ते लिप्शायाम् ५१३।९  
 लिप्शयिद्वौ ५१३।१०  
 पञ्चम्ययंहती ५१३।११  
 सतमी चोर्ध्वमौहूर्तिके ५१३।१२  
 क्रियायां क्रियायां तुमृणकृत्विष्यन्ती  
 ५१३।१३  
 कर्मणोऽण ५१३।१४  
 माववचनाः ५१३।१५  
 पदकञ्जिशास्पृशो घन् ५१३।१६  
 सतैः स्थिरव्याधिवचनस्ये ५१३।१७  
 मावाऽकत्रोः ५१३।१८  
 इङोऽपादाने तु विद्वा ५१३।१९  
 शो वायुवर्गनिवृत्ते ५१३।२०  
 निरभेः पूल्वः ५१३।२१  
 रोक्षपसर्गान् ५१३।२२  
 भूश्यदोऽञ् ५१३।२३  
 न्यादो न वा ५१३।२४  
 संनिष्पुनाद्यमः ५१३।२५

नेर्नदगदपटस्त्रनकण ५३१२६  
 वैले कण ५३१२७  
 सुवर्णहृन्तरणामुद्रः ५३१२८  
 वर्षादय क्लीबे ५३१२९  
 समुद्रोऽङ्गः पशौ ५३१३०  
 वृन्दः प्रचनाक्षे ५३१३१  
 पयोनीने ५३१३२  
 संमदप्रमदी हर्षे ५३१३३  
 हनोऽन्तर्धनान्तर्धनौ देशे ५३१३४  
 प्रपणप्रपाणौ पृथगौ ५३१३५  
 निधोदपसहोदधनाऽन्वभोपध्नं निमित्त-  
 प्रस्यत्तगारयाधानाङ्गासनम् ५३१३६  
 मूर्त्तिनिचिताऽग्ने घन ५३१३७  
 व्यपेद्रो कृत्ये ५३१३८  
 स्तम्भाद् घनश्च ५३१३९  
 परेषः ५३१४०  
 हः समाह्वयाह्वयी यूननाम्नो. ५३१४१  
 न्यःपुषवेरीक्षोत् ५३१४२  
 आहो युद्धे ५३१४३  
 आहावो निपानम् ५३१४४  
 भावेऽनुपसर्गात् ५३१४५  
 हनो वा वध् च ५३१४६  
 व्यधत्तमङ्गः ५३१४७  
 न वा कश्चपमहस्त्रनः ५३१४८  
 आहो रूपोः ५३१४९  
 वर्षदिग्नेऽवाद् ग्रहः ५३१५०  
 प्राद्रश्मिन्तुलासूत्रे ५३१५१  
 वृणो वत्रे ५३१५२  
 उदः भेः ५३१५३  
 सुपुद्रोर्षम् ५३१५४  
 ग्रहः ५३१५५  
 न्यवाण्यपे ५३१५६  
 प्रात्लिङ्गायाम् ५३१५७

समो नुषौ ५३१५८  
 सुदुद्रोः ५३१५९  
 निवधानुपसर्गाद्वा ५३१६०  
 बोद ५३१६१  
 अवात् ५३१६२  
 परेषूते ५३१६३  
 सुबोऽन्वगने वा ५३१६४  
 यत्ते ग्रहः ५३१६५  
 संस्तौ ५३१६६  
 प्रात् स्तुष्टोः ५३१६७  
 अपशे खः ५३१६८  
 वेरयन्दे प्रपने ५३१६९  
 छन्दो नाम्नि ५३१७०  
 क्षुभोः ५३१७१  
 न्युद्रो प्र ५३१७२  
 द्विरो घान्दे ५३१७३  
 नेर्वुः ५३१७४  
 हणोऽग्नेपे ५३१७५  
 परेः ऋने ५३१७६  
 व्युपाच्छीटः ५३१७७  
 हस्तप्राप्ये वेरस्तेपे ५३१७८  
 चित्तिदेहावासीनसनाधाने कश्चादेः  
 ५३१७९  
 सहषेऽनूद्घ्वे ५३१८०  
 माने ५३१८१  
 रयादिभ्यः कः ५३१८२  
 ट्कितोऽप्युः ५३१८३  
 इन्तिक्मिन्कृतृत्तम् ५३१८४  
 यजित्वापिरक्षिपतिप्रच्छो नः ५३१८५  
 किञ्चो नरु ५३१८६  
 उपसर्गादः कि ५३१८७  
 व्याप्यादाघारे ५३१८८  
 अन्तर्दिः ५३१८९

अभिवागतौ भावेऽनभिन् ५१३१०  
 क्रिया छिः ५१३११  
 आदिभ्यः ५१३१२  
 समिगानुगः ५१३१३  
 सातिशेतिभूतिभूतिशक्तिः ५१३१४  
 गाराचो भावे ५१३१५  
 स्यो वा ५१३१६  
 आस्यञ्जिन्नञः क्यप् ५१३१७  
 मृगो नाम्नि ५१३१८  
 समञ्चनिपत्रिपदश्रीङ्मुञ्चिदिचरिमनीगः  
 ५१३१९  
 कृग. श च वा ५१३१००  
 मृगयेऽन्तायाच्चात् ५१३१०१  
 परेः सुचरेयं ५१३१०२  
 वऽप्यत्यात् ५१३१०३  
 चायुरश्च ५१३१०४  
 शंसिप्रत्ययात् ५१३१०५  
 छेयोगुरोर्भ्यञ्जनात् ५१३१०६  
 पितोऽङ् ५१३१०७  
 निदादयः ५१३१०८  
 मीपिमृषिचिन्तिभूचिकथिकुञ्चिचन्चिस्पृहि-  
 तोलिदोलिभ्यः ५१३१०९  
 उभनगादातः ५१३११०  
 मिवेभ्यासअन्यषट्कन्देनः ५१३१११  
 इधोऽनिऽायाम् ५१३११२  
 पयथेवा ५१३११३  
 कुत्सन्ददादिभ्यः क्तिप् ५१३११४  
 म्यादिभ्यो वा ५१३११५  
 घृतिहारेऽनीहादिभ्यो अ. ५१३११६  
 नञोऽनिः शप् ५१३११७  
 ष्टाहाव्यः ५१३११८  
 प्ररनाख्याने वेम् ५१३११९

पर्यायाईणोत्तौ च णः ५१३१२०  
 नाम्नि पुंसि च ५१३१२१  
 भावे ५१३१२२  
 कञीदे छः ५१३१२३  
 अनट् ५१३१२४  
 दन्कर्मस्यत्किर्नङ्कुत्वं ततः ५१३१२५  
 रम्यादिभ्यः कर्त्तरि ५१३१२६  
 कारणन् ५१३१२७  
 मुञ्चिभ्यादिभ्यः कर्मपादाने ५१३१२८  
 कृगाधारे ५१३१२९  
 पुन्नान्मि षः ५१३१३०  
 गौचरसंचरवह्नद्रज्ज्वजन्त्राणानिगमवक्-  
 मगङ्गाक्यनिक्रमन् ५१३१३१  
 ज्यङ्नाद् षन् ५१३१३२  
 अवात्तृस्तृभ्याम् ५१३१३३  
 न्यायावायाभ्यासोद्यानसंहारावहाराधार-  
 दारजारम् ५१३१३४  
 उदङ्कोऽतोये ५१३१३५  
 आनासो जालम् ५१३१३६  
 खनो ङङ्गेकेकवङ्गञ्च ५१३१३७  
 इकिरित्त्स्नपार्थे ५१३१३८  
 दुःश्रीपत् कृच्छ्राकृच्छ्रायत्खल् ५१३१३९  
 व्यर्थे कर्त्तव्याद् मृङ्ग. ५१३१४०  
 शास् सुधित्तिभूभिन्भूतातोऽन् ५१३१४१

चतुर्थः पादः

सत्त्वानीप्ये सद्वा ५१४१  
 मूतवबाशंस्ये वा ५१४२  
 क्षिप्रार्शंशार्थयोर्मन्दिष्यन्तीसत्त्वो ५१४३  
 सम्भावेने सिद्धवत् ५१४४  
 नानद्यतनः प्रवन्वासत्त्वोः ५१४५  
 एष्यत्यवधौ देशस्याव्यम्भागे ५१४६  
 कालस्यानहोरात्रागाम् ५१४७  
 परे वा ५१४८

सतम्पये क्रियातिरत्तौ क्रियातिपचि ५।४।१९  
 भूते ५।४।२०  
 बोताप्याक् ५।४।२१  
 चेपेऽपि आत्वोर्वर्त्तमाना ५।४।२२  
 कथमि सतमी च वा ५।४।२३  
 किंवृते सतमीभविष्णन्त्यौ ५।४।२४  
 अश्रद्धामर्षेऽन्वरापि ५।४।२५  
 किंकिन्नास्त्यर्थयोर्मविष्णन्ती ५।४।२६  
 एतुयद्यदायदौ सतमी ५।४।२७  
 चेपे च यद्यत्रे ५।४।२८  
 चित्रे ५।४।२९  
 शेपे मविष्णन्त्ययदौ ५।४।३०  
 सतम्युताप्योर्वाडि ५।४।३१  
 सम्माननेऽलमर्थे तदर्थानुक्तौ ५।४।३२  
 अयदि अद्राधातौ न वा ५।४।३३  
 सतीच्छार्थान् ५।४।३४  
 वस्त्यति हेतुफले ५।४।३५  
 कामोच्छादकच्चिचि ५।४।३६  
 इच्छार्थे सतमीऽन्वचन्वी ५।४।३७  
 निधिनिमन्त्रणामन्त्रणाऽधीष्टस्त्रयनप्रायसि  
 ५।४।३८  
 प्रैषाऽनुज्ञावसरे कृत्यपञ्चम्यौ ५।४।३९  
 सतमी चोर्ध्वमौहृत्तिके ५।४।४०  
 स्मे पञ्चमी ५।४।४१  
 अथोगी ५।४।४२  
 कालनेलासमये तुम्नाऽवसरे ५।४।४३  
 सतमी यदि ५।४।४४  
 शक्ताहं कृत्याश्च ५।४।४५  
 गिन्याऽवश्यकाधमर्षे ५।४।४६  
 अहं तुच् ५।४।४७  
 आधिष्ठात्री. पञ्चम्यौ ५।४।४८  
 माह्वयतनी ५।४।४९  
 सस्मे हस्तनी च ५।४।५०

घातोः सन्नन्धे प्रत्ययाः ५।४।४१  
 भृशामीहमे हिस्वी यथाविधि तष्मौ च  
 तशुष्मदि ५।४।४२  
 प्रचये न वा सामान्यार्षस्य ५।४।४३  
 निषेधेऽञ्जलत्वोः क्त्वा ५।४।४४  
 परावरे ५।४।४५  
 निर्मात्यादिमेहस्तुल्यकृत्के ५।४।४६  
 प्राक्काले ५।४।४७  
 खगम् चामीक्ष्ये ५।४।४८  
 पूर्वाम्ने प्रथमे ५।४।४९  
 अन्ययैवंकथमित्यमः कृगोऽनर्थकात्  
 ५।४।५०  
 यथातयादीष्योच्चरे ५।४।५१  
 श्यापे व्याप्यात् ५।४।५२  
 स्वाद्वर्थाददीर्घान् ५।४।५३  
 विदुम्नः कात्स्न्ये णन् ५।४।५४  
 यावतो हिन्दवीवः ५।४।५५  
 चमोदरात्पूरेः ५।४।५६  
 वृष्टिमाने क्तुक्चास्य वा ५।४।५७  
 चेजार्थात् क्रोपेः ५।४।५८  
 गानपुरघासनः ५।४।५९  
 शुष्कचूर्णसंज्ञात्पिस्तस्यैव ५।४।६०  
 कृमिहोऽकृतबीनात् ५।४।६१  
 निमूलात्पः ५।४।६२  
 हनश्च समूलात् ५।४।६३  
 करोग्य. ५।४।६४  
 रस्नेहनार्थानुपनिषः ५।४।६५  
 हरतार्थाद्महर्त्तवृत्तः ५।४।६६  
 वन्धेर्नाम्नि ५।४।६७  
 आधारान् ५।४।६८  
 कर्तुञ्जीवपुरयान्नश्चरः ५।४।६९  
 लक्ष्मणात्पू शुषः ५।४।७०  
 व्याप्याच्चेवात् ५।४।७१

उपाङ्कितो लवने ५।४।७२  
 दंशेस्तृतीयया ५।४।७३  
 हिंसायदिकाप्यात् ५।४।७४  
 उपनीडरुचक्यस्तत्त्वतन्या ५।४।७५  
 प्रमागसनासक्त्योः ५।४।७६  
 पञ्चम्या स्वरायाम् ५।४।७७  
 द्वितीयया ५।४।७८  
 स्वाङ्गेनाऽऽभ्रवेण ५।४।७९  
 परिक्लेशेन ५।४।८०  
 विद्यपतनदरुन्दो वीष्णमीश्वरे ५।४।८१  
 कालेन तृष्यस्वः क्रियान्तरे ५।४।८२

नान्ना प्रहादिद्यः ५।४।८३  
 कृगोऽयदेनाऽनिशोक्तौ क्त्वाणमौ ५।४।८४  
 तिर्यचाऽपवर्गे ५।४।८५  
 स्वाङ्गतश्च्ययनानाविनाचार्येन भुवश्च  
 ५।४।८६  
 तूष्णीमा ५।४।८७  
 आनुन्त्येऽन्वचा ५।४।८८  
 दृच्छार्थे क्रमेणः सप्तमी ५।४।८९  
 शकृपृषदारमलमसहार्हाद्यास्तिसमर्था-  
 र्थे च तुम् ५।४।९०



## पष्ठोऽध्यायः

### प्रथमः पादः

तद्वितोऽणादिः ६।१।१  
 पौत्रादि वृद्धम् ६।१।२  
 वंश्यन्नायोभ्राधोर्जावति प्रपौत्रायऽन्त्री  
 युवा ६।१।३  
 सपिण्डे वयःस्थानाधिके जीवद्वा ६।१।४  
 युववृद्धं कुम्भाच्चै वा ६।१।५  
 संज्ञा दुर्वा ६।१।६  
 त्यादादिः ६।१।७  
 वृद्धिर्यस्य स्वरेष्वादिः ६।१।८  
 एदोद्देश्य ऐक्यादौ ६।१।९  
 प्राग्देशे ६।१।१०  
 वाऽऽघात् ६।१।११  
 गोत्रोत्तरपदाद्गोत्रादिवाऽजिह्वाकात्यरि-  
 त्कात्पात् ६।१।१२  
 प्राग्जिनादण् ६।१।१३  
 घनादेः पत्युः ६।१।१४  
 अनिदम्यणवादे च दित्यदित्यादित्यय-  
 मपर्युत्तरपदाञ्च्यः ६।१।१५  
 वहिषधीकण्च ६।१।१६  
 कल्प्यग्नेरेयन् ६।१।१७  
 पृथिव्या आज् ६।१।१८  
 उत्सादेरन् ६।१।१९  
 बष्क्यादसमाप्ते ६।१।२०  
 देवाद्यन् च ६।१।२१  
 अः स्याम्नः ६।१।२२  
 लोभ्नोऽपत्येषु ६।१।२३  
 द्विगोरनपत्ये यत्त्वादेर्लुंबद्धिः ६।१।२४  
 प्राग्बलः स्त्रीपुंसान् स्नेन् ६।१।२५  
 त्वे वा ६।१।२६

गोः स्वरे य ६।१।२७  
 ढसोऽपत्ये ६।१।२८  
 आघात् ६।१।२९  
 वृद्धायुनि ६।१।३०  
 अत इज ६।१।३१  
 बाहादिभ्यो गोत्रे ६।१।३२  
 वर्मणोऽचक्रात् ६।१।३३  
 अन्नादिभ्यो घेनोः ६।१।३४  
 ब्राह्मगात्रा ६।१।३५  
 मूयः सम्भूयोऽम्भोऽमितौबसः स्तुक्च  
 ६।१।३६  
 शालङ्क्यौदिपाटिवाङ्गुलि ६।१।३७  
 श्वासवस्तुघातृनिषाददिम्बचण्डालाद-  
 न्तस्य चाक् ६।१।३८  
 पुनर्मुपुन दुहितृननन्दुरनन्तरेऽन् ६।१।३९  
 परस्त्रियाः परसुश्वाऽष्वाचर्म ६।१।४०  
 विदादेर्बुद्धे ६।१।४१  
 गर्गादेर्यन् ६।१।४२  
 मधुवभ्रोर्ब्राह्मणकौशिके ६।१।४३  
 कपिवोषादाङ्गिरस्ते ६।१।४४  
 वनण्डात् ६।१।४५  
 त्रियां लुप् ६।१।४६  
 बुद्धादेर्जायन्त्यः ६।१।४७  
 त्रिवहुष्वायनन् ६।१।४८  
 अन्नादेः ६।१।४९  
 शपमरद्वाबादात्रेये ६।१।५०  
 मर्गात्त्वैगत्ते ६।१।५१  
 आत्रेयाद्भ्राह्मणे ६।१।५२  
 नद्यादिभ्य आयनन् ६।१।५३  
 यजिन्ः ६।१।५४

हरितादेरजः ६।१।५५  
 क्रोष्टृशालङ्कोलुक्च ६।१।५६  
 दर्भकृष्णाग्निधर्मरंशरद्वन्द्वुनकादाप्रायण-  
 ब्राह्मणवार्पणम्बवाशिष्ठमार्गववारस्ये  
 ६।१।५७  
 जीवन्तपर्वताद्वा ६।१।५८  
 द्रोणाद्वा ६।१।५९  
 शिवादेरण् ६।१।६०  
 श्रुतिवृष्ण्यन्धकुरुम्यः ६।१।६१  
 कन्यात्रिवेश्याः कनीनत्रिवशं च ६।१।६२  
 शुक्लाम्यां भारद्वाजे ६।१।६३  
 विकर्णङ्गलाद्वात्स्यात्रेये ६।१।६४  
 णश्च निश्रवसो विश्रुक्च वा ६।१।६५  
 सङ्ख्यासंभ्रान्मातृमातृच्च ६।१।६६  
 अदोर्नदीमानुषीनान्नः ६।१।६७  
 पीलासाल्वानश्रुकाद्वा ६।१।६८  
 दितेश्चैयन् वा ६।१।६९  
 ब्याप्सूहः ६।१।७०  
 द्विस्वरादनद्याः ६।१।७१  
 इतोऽनिञ् ६।१।७२  
 सुभ्रादिभ्यः ६।१।७३  
 श्यामलङ्गाद्वाशिष्ठे ६।१।७४  
 विकर्णकुशीतकात्काश्यपे ६।१।७५  
 भ्रुवो भ्रुव च ६।१।७६  
 कल्याणादेरिन् चान्तस्य ६।१।७७  
 कुलाया वा ६।१।७८  
 चटकाग्रैः त्रियां तु लुप् ६।१।७९  
 लुद्राम्य एरण् वा ६।१।८०  
 गोघाया दुष्टे णरश्च ६।१।८१  
 ऋष्यप्यात् ६।१।८२  
 चतुष्पाद्गण एयन् ६।१।८३  
 एष्ट्यादेः ६।१।८४  
 वाहवेपो वृषे ६।१।८५

रेवत्यादेरिक्च ६।१।८६  
 वृद्धत्रियाः क्षेपे णश्च ६।१।८७  
 भ्रातृभ्यः ६।१।८८  
 ईयः स्वसुश्च ६।१।८९  
 मातृभिन्नादेर्द्वैयणीयसौ ६।१।९०  
 श्वशुरायः ६।१।९१  
 जातौ राञ्चः ६।१।९२  
 क्षत्रादियः ६।१।९३  
 मनोयोगी षष्चान्तः ६।१।९४  
 माणवः कुत्सायाम् ६।१।९५  
 कुलादीनः ६।१।९६  
 यैकजात्रसमासे वा ६।१।९७  
 दुष्कुलादेयश्च ६।१।९८  
 महाकुलाद्वाऽनीनसौ ६।१।९९  
 कुर्वोर्भ्यः ६।१।१००  
 सम्राजः क्षत्रिये ६।१।१०१  
 सेनान्तकाचरन्ध्रमपादिञ्च ६।१।१०२  
 सुयान्नः सौवीरेष्वायनिञ् ६।१।१०३  
 पात्याहृतिमिमताग्यश्च ६।१।१०४  
 भागवित्तिताण्विन्दवाऽकृशापेयात्रिन्दा-  
 यामिकश्च ६।१।१०५  
 सौमायनियानुन्दायनिवाष्पयिषेरीयश्च  
 वा ६।१।१०६  
 तिकादेरायनिञ् ६।१।१०७  
 दगुक्त्रोशलकर्मारञ्जागवृषाद्यादिः  
 ६।१।१०८  
 द्विस्वरादणः ६।१।१०९  
 अवृद्धाहोर्न वा ६।१।११०  
 पुत्रान्तात् ६।१।१११  
 चर्मिर्निगारेट्कार्क्यकाकलङ्कावाक्त्रिना-  
 ष्च कश्चान्तोऽन्त्यस्वरात् ६।१।११२  
 अदोरायनिः प्रायः ६।१।११३  
 राष्ट्रत्रियात्तरुपाद्वाजापये द्विरन  
 ६।१।११४

गान्धारिसाल्वेयाम्याम् ६।१।११५  
 पुरुमगधकलिङ्गसुरमसद्विस्वरादण्  
 ६।१।११६  
 साल्वांशप्रत्यग्रयकलकूटाऽश्मकादिभ्  
 ६।१।११७  
 दुनादिबृर्वित्कोशलाजादाञ्जयः  
 ६।१।११८  
 पाण्डोड्यण् ६।१।११९  
 शकादिभ्यो द्रेर्लुप ६।१।१२०  
 कुन्त्यबन्तेः स्त्रियाम् ६।१।१२१  
 कुरोर्वा ६।१।१२२  
 द्रेरऽञ्जोऽप्राच्यभगदिः ६।१।१२३  
 बहुम्बऽस्त्रियाम् ६।१।१२४  
 यस्कादेर्गोत्रे ६।१।१२५  
 यञऽञोऽप्यावर्णान्तगोपवनादेः ६।१।१२६  
 कौण्डिन्यागस्त्ययोः कुण्डिनागस्ती च  
 ६।१।१२७  
 भृम्बङ्गिरस्कुत्सवशिष्ठगोतमाऽत्रेः ६।१।१२८  
 प्राग्भरते बहुस्वरादिञ् ६।१।१२९  
 वोपकादेः ६।१।१३०  
 तिककितवादौ द्वन्द्वे ६।१।१३१  
 द्वयादेस्तया ६।१।१३२  
 वाऽप्येन ६।१।१३३  
 द्येकेषु पञ्चयास्तत्पुरुषे यञादेर्वा  
 ६।१।१३४  
 न प्राग्जितीये स्वरे ६।१।१३५  
 गर्गमार्गविका ६।१।१३६  
 यूनि लुप् ६।१।१३७  
 वायनणायनिञोः ६।१।१३८  
 द्रीभो वा ६।१।१३९  
 ङिदापीदगिञोः ६।१।१४०  
 अब्राह्मणात् ६।१।१४१  
 पैलादेः ६।१।१४२  
 प्राच्येऽञोऽतीत्वल्यादेः ६।१।१४३

द्वितीयः पादः

रागाष्टो रक्ते ६।२।१  
 लाक्षारोचनादिवण ६।२।२  
 शकलकर्ममाद्वा ६।२।३  
 नीलगितादकम् ६।२।४  
 उदितगुरोर्माद्युक्तेऽन्दे ६।२।५  
 चन्द्रयुक्तात्काले लुप्त्वऽप्रयुक्ते ६।२।६  
 द्वान्दादीयः ६।२।७  
 श्रवणाऽश्वत्यात्राम्न्यः ६।२।८  
 पष्ठ्याः समूहे ६।२।९  
 मिश्रादेः ६।२।१०  
 लुद्रकमालवात्तेनानामिनि ६।२।११  
 गोत्रोद्यत्सोप्सूवृद्धाऽञोरभ्रममनुप्यराज-  
 राजन्वराजपुत्रादकञ् ६।२।१२  
 केदारण्यश्च ६।२।१३  
 कत्रचिहस्त्यऽचिच्चाच्चेकृष्ण् ६।२।१४  
 धेनोरनञ ६।२।१५  
 ब्राह्मणमाणववाडवाचः ६।२।१६  
 गणिकाया ण्यः ६।२।१७  
 केशाद्वा ६।२।१८  
 वाऽश्वादीयः ६।२।१९  
 पष्वा इदण ६।२।२०  
 ईनोऽङ्गुः ऋतौ ६।२।२१  
 पृष्ठाद्यः ६।२।२२  
 चरणाद्धर्मवत् ६।२।२३  
 गोरयवातात्त्रल्कट्यलूलम् ६।२।२४  
 पाद्यादेश्च ल्यः ६।२।२५  
 श्वादिभ्योऽञ् ६।२।२६  
 खलादिभ्यो लिन् ६।२।२७  
 ग्रामजनबन्धुगजसहायात्तल ६।२।२८  
 पुरुषात्कृतहितवधविकारे चैयम् ६।२।२९  
 विकारे ६।२।३०  
 प्राण्यौषधिवृक्षेभ्योऽवयवे च ६।२।३१

तालादनुपि ६।२।३२  
 नपुञ्जतोः षोन्तश्च ६।२।३३  
 शम्भ्या लः ६।२।३४  
 पयोद्रोयं ६।२।३५  
 उष्ट्रादकञ् ६।२।३६  
 उमोर्णाद्वा ६।२।३७  
 एण्या एयञ् ६।२।३८  
 कौशेयम् ६।२।३९  
 परशज्याद्यलुक् च ६।२।४०  
 कंसीयाञ्जय ६।२।४१  
 हेमार्थनिमाने ६।२।४२  
 द्रोर्वयः ६।२।४३  
 मानात्क्रीतक्त् ६।२।४४  
 हेमादिभ्योऽञ् ६।२।४५  
 अमश्याञ्जदने वा मयट् ६।२।४६  
 शरदर्भञ् दीवृणसोमञ्चवजात् ६।२।४७  
 एकस्वरात् ६।२।४८  
 दोरप्राणिनः ६।२।४९  
 गोः पुरीषे ६।२।५०  
 ग्रीहेः पुरोवाये ६।२।५१  
 तिलयवादानाम्नि ६।२।५२  
 पिष्टात् ६।२।५३  
 नाम्नि क ६।२।५४  
 ह्योगोदोहादीनञ् हियङ्गुश्चास्य ६।२।५५  
 अपो यञ्वा ६।२।५६  
 लुब्धङ्गुल पुष्पमूले ६।२।५७  
 फले ६।२।५८  
 प्लञ्जादेरन् ६।२।५९  
 जम्भा वा ६।२।६०  
 नद्विरद्भुवयगोमयफलत् ६।२।६१  
 पित्रुमातृव्यङ्गुलं भ्रातरि ६।२।६२  
 पित्रोर्दामहट् ६।२।६३  
 अवेर्हुंभ्ये सोटदूसमरीसम् ६।२।६४

राष्ट्रैऽनङ्गादिभ्यः ६।२।६५  
 राजन्यादिभ्योऽकञ् ६।२।६६  
 वसातेर्वा ६।२।६७  
 मौरिक्येषु कार्यादेर्विषमञ्चम् ६।२।६८  
 निवासाऽदूरमवे इति देशे नाम्नि  
 ६।२।६९  
 तदनाऽस्ति ६।२।७०  
 तेन निर्वृत्ते च ६।२।७१  
 नद्या मत्तुः ६।२।७२  
 मध्वादेः ६।२।७३  
 नडकुमुदवेतसमदिषाङ्गित् ६।२।७४  
 नडशादाद्वलः ६।२।७५  
 शिखायाः ६।२।७६  
 शिरीषादिककणौ ६।२।७७  
 शकंकराया इकणीयाऽण् च ६।२।७८  
 रोऽश्नादेः ६।२।७९  
 प्रेक्षादेरिन् ६।२।८०  
 तृणादे सल् ६।२।८१  
 काशादेरिल् ६।२।८२  
 अरीहगादेरकण् ६।२।८३  
 सुपन्यादेर्ज्यं ६।२।८४  
 सुतङ्गमादेरिञ् ६।२।८५  
 वनादेयं ६।२।८६  
 अहरादिभ्योऽञ् ६।२।८७  
 सख्यादेरेयण ६।२।८८  
 पन्यादेरायनेण् ६।२।८९  
 कर्णादेरायनिञ् ६।२।९०  
 उत्करादेरीयः ६।२।९१  
 नडादेः कीयः ६।२।९२  
 कृशाश्वदेरीयण् ६।२।९३  
 ऋश्यादेः कः ६।२।९४  
 वराहादे कण् ६।२।९५  
 कुमुदादेरिकः ६।२।९६

अश्वत्थादेरिकम् ६।२।१७  
 शास्य पौर्णमासो ६।२।१८  
 आम्रहायप्यश्वत्थादिकम् ६।२।१९  
 चैत्रीकृत्तिकाशाल्गुनीश्रवणाद्वा ६।२।१००  
 देवता ६।२।१०१  
 पैगाहसीपुष्पादेरीय ६।२।१०२  
 गुक्रादिय ६।२।१०३  
 शतस्रद्राक्षी ६।२।१०४  
 अश्विनपादपान्नपातस्तृचात ६।२।१०५  
 मरेन्द्राद्वा ६।२।१०६  
 कसोमाट्टपम् ६।२।१०७  
 पावाष्टयिबीशुनासीराऽग्नीषोममरुतद्वा  
 स्तोत्रपतिशहमेघादीयसौ ६।२।१०८  
 वाय्वृषिनुपसो य ६।२।१०९  
 महाराजप्रोष्ठपदादिकम् ६।२।११०  
 झालाङ्गवत् ६।२।१११  
 आदेऽउन्दस प्रगाथे ६।२।११२  
 योद्धृप्रयोजनाद्युद्धे ६।२।११३  
 भावपत्रोऽस्या ण ६।२।११४  
 श्येनम्यातातैल्भ्रता ६।२।११५  
 महरणात् श्रीढाया णः ६।२।११६  
 तद्वैत्यधीते ६।२।११७  
 न्यायादेरिकम् ६।२।११८  
 पदकल्पलक्षणान्तकवाख्यानारया  
 यिकात् ६।२।११९  
 भक्त्वान्मनात् ६।२।१२०  
 अश्वमेधप्रतिषेधार्थाद्दिवाया ६।२।१२१  
 याश्चिकित्थिकलैकायतिकम् ६।२।१२२  
 अनुवाङ्गादिन् ६।२।१२३  
 शतपठेः पय इकट् ६।२।१२४  
 पदोत्तरपदेभ्य इक ६।२।१२५  
 मदकमविशामीमाशाशम्नोऽक  
 ६।२।१२६

सर्वपूर्वाल्मुन् ६।२।१२७  
 सहरपाकात्स्ने ६।२।१२८  
 प्रोच्यत् ६।२।१२९  
 वेदेन् ब्राह्मणमत्रैव ६।२।१३०  
 तेनञ्जने श्ये ६।२।१३१  
 पाण्डुकम्पलादिन् ६।२।१३२  
 दृष्टे शान्ति नाम्नि ६।२।१३३  
 गोनादङ्कत् ६।२।१३४  
 कामदेवाद्य ६।२।१३५  
 द्विद्वाऽम् ६।२।१३६  
 वा जाते द्वि ६।२।१३७  
 तत्रोद्धृते पात्रेभ्य ६।२।१३८  
 स्पण्डिलाच्छेते ऋती ६।२।१३९  
 संस्मृते मध्ये ६।२।१४०  
 शूलोत्थाद्य ६।२।१४१  
 क्षीरादेय् ६।२।१४२  
 दध्न इकम् ६।२।१४३  
 बोदशिकत् ६।२।१४४  
 क्वचित् ६।२।१४५

### तृतीयः पादः

श्ये ६।३।१  
 नद्यादेरेय् ६।३।२  
 राश्रादिय ६।३।३  
 दूरादेय ६।३।४  
 उत्तरादाहम् ६।३।५  
 पारावारादीन् ६।३।६  
 व्यतव्ययस्तात् ६।३।७  
 सुभ्रगनागुदकप्रतीचो य ६।३।८  
 मामादीन्ञ ६।३।९  
 क्त्वादेभ्येकम् ६।३।१०  
 कुण्डपादिभ्यो यलुक्त्वा ६।३।११  
 कुलकुक्षिनीनाञ्जवाऽस्त्वङ्कारे ६।३।१२  
 दधिगान्ध्यापुरसस्यम् ६।३।१३

क्लृप्तुर्दिपदिक्कापिशयाशयनम् ६।३।१४  
 रंक्रोः प्राणिनि वा ६।३।१५  
 कवेहामात्रतस्य्यच् ६।३।१६  
 नेर्ध्रवे ६।३।१७  
 निसो गते ६।३।१८  
 ऐषमोह्यश्वसो वा ६।३।१९  
 कन्याया इकण् ६।३।२०  
 कर्गाइकञ् ६।३।२१  
 रूप्योत्तरपदारण्याण णः ६।३।२२  
 दिक्पूर्वादिनाम्नः ६।३।२३  
 मद्रादञ् ६।३।२४  
 उदगग्रामाद्यकृत्लोम्नः ६।३।२५  
 गोड्रीतैक्रीनैकेतीगोमतीशूरसेनवाही  
 क्रोमकप्रश्चरात् ६।३।२६  
 शकजादेर्यञ् ६।३।२७  
 बृद्धेऽञ् ६।३।२८  
 न द्विस्वराध्याग भरतात् ६।३।२९  
 मवतोरिकगीयसौ ६।३।३०  
 परजनराशोऽकीयः ६।३।३१  
 दोरीयः ६।३।३२  
 उष्णादिभ्यः कालात् ६।३।३३  
 व्यादिभ्यो णिकेकगौ ६।३।३४  
 काश्यादेः ६।३।३५  
 वाहीकेषु ग्रामात् ६।३।३६  
 बोशीनरेषु ३।३।३७  
 वृजिमद्रादेशात्कः ६।३।३८  
 उवर्गादिकम् ६।३।३९  
 दोरेव प्राञ्जः ६।३।४०  
 इतोऽकञ् ६।३।४१  
 रोपान्त्यात् ६।३।४२  
 प्रस्यपुरवहान्तयोपान्त्यधन्वार्थान् ६।३।४३  
 राष्ट्र्यैः ६।३।४४  
 बहुविधयेभ्यः ६।३।४५

धुमादेः ६।३।४६  
 सौवीरेषु कृलात् ६।३।४७  
 समुद्रान्तिनावोः ६।३।४८  
 नगरात्कुत्सादाश्वे ६।३।४९  
 कच्छाग्निवक्त्रतोत्तरपदान् ६।३।५०  
 अरभ्यात्पयिन्यायाप्यायेमनरविहारे  
 ६।३।५१  
 गोमये वा ६।३।५२  
 कुरुयुगन्धराद्वा ६।३।५३  
 साल्वाद्गोववाभ्वपत्तौ ६।३।५४  
 कच्छादेर्त्तृस्ये ६।३।५५  
 कोपान्त्याद्यान् ६।३।५६  
 गत्तोत्तरपदादीयः ६।३।५७  
 कट्टपूर्वाध्याचः ६।३।५८  
 कृत्लोपान्त्यकन्यापलदनगरग्रामशुद्धोत्तर-  
 पदारोः ६।३।५९  
 पर्वतात् ६।३।६०  
 अनेर वा ६।३।६१  
 पर्णकृष्णाद्भारद्वाजात् ६।३।६२  
 गद्वादिभ्यः ६।३।६३  
 पृथिवीमघ्यानमघ्यमभ्रास्य ६।३।६४  
 निवासान्तरणोऽण् ६।३।६५  
 वेणुकादिभ्य ईयन् ६।३।६६  
 वा युष्मदस्मदोऽनीनञौ युष्माकास्माकं  
 चास्यैकत्वे तु तवकममकम् ६।३।६७  
 द्वीनादनुसमुद्रं ष्यः ६।३।६८  
 अर्द्धाद्य ६।३।६९  
 सपूर्वादिकम् ६।३।७०  
 दिक्पूर्वात्तौ ६।३।७१  
 ग्रामराष्ट्राद्यादधिकणौ ६।३।७२  
 परावराधनोत्तमादेर्यैः ६।३।७३  
 अमोन्तावोऽघसः ६।३।७४  
 पश्चादाद्यन्ताप्रादिभ्यः ६।३।७५

मध्यान्मः ६।३।७६  
 मध्ये उत्कर्षाधिकारयोः ६।३।७७  
 अर्थात्मादिभ्य इकण् ६।३।७८  
 समानपूर्वलोकोत्तरपदात् ६।३।७९  
 वर्षाकालेभ्यः ६।३।८०  
 शरदः श्राद्धे कर्मणि ६।३।८१  
 न वा रोगातपे ६।३।८२  
 निशाप्रदोषात् ६।३।८३  
 श्वसस्तादिः ६।३।८४  
 चिरपक्ष्मणारोहणः ६।३।८५  
 पुरो नः ६।३।८६  
 पूर्वाहाचनट् ६।३।८७  
 सायञ्चिरं प्राहेप्रगेऽभ्यात् ६।३।८८  
 भर्तुसन्ध्यादेरण् ६।३।८९  
 संवसरात्कलत्रवर्णोः ६।३।९०  
 हेमन्ताद्वा तल्लुक् च ६।३।९१  
 प्रावृष एभ्यः ६।३।९२  
 स्यामाजिनान्ताल्लुप् ६।३।९३  
 तन कृतलन्घनीतसम्भूते ६।३।९४  
 कुशले ६।३।९५  
 पयोऽकः ६।३।९६  
 कोऽश्मादेः ६।३।९७  
 जाते ६।३।९८  
 प्रावृष इकः ६।३।९९  
 नाम्नि शरदोऽकञ् ६।३।१००  
 सिन्धुपकरात्काणौ ६।३।१०१  
 पूर्वाहापराहाद्रीमूलप्रदोषान्स्करादकः  
 ६।३।१०२  
 पयः पन्थ च ६।३।१०३  
 अथ वामावास्याया, ६।३।१०४  
 अदिशापादादीयण् च ६।३।१०५  
 फल्गुन्याष्टः ६।३।१०६  
 बहुलाऽनुराधापुष्यार्थपुनर्वसुहरतत्रिशा-  
 खास्वातेर्लुप् ६।३।१०७

चित्ररोवतीरोहिण्याः स्त्रियाम् ६।३।१०८  
 बहुलमन्येभ्यः ६।३।१०९  
 स्थानान्तगोशालखरशालात् ६।३।११०  
 वत्सशालाद्वा ६।३।१११  
 सोदर्यसमानोदर्यौ ६।३।११२  
 कालादेवे ऋणे ६।३।११३  
 कलाप्यश्वथयवजुसोमाव्यासैषमसोऽकः  
 ६।३।११४  
 ग्रीष्मावरसमादकन् ६।३।११५  
 संवसरात्प्रहायभ्या इकण् च ६।३।११६  
 साधुपुष्परच्यमाने ६।३।११७  
 उप्ते ६।३।११८  
 आश्वयुज्या अकञ् ६।३।११९  
 ग्रीष्मवसन्ताद्वा ६।३।१२०  
 व्याहरति मृगे ६।३।१२१  
 जयिनि च ६।३।१२२  
 मवे ६।३।१२३  
 दिगादिदेहाशाय ६।३।१२४  
 नाम्न्युदकात् ६।३।१२५  
 मध्यादिनण्णेषामोऽन्तश्च ६।३।१२६  
 जिहामूलाङ्गुलेश्चैवः ६।३।१२७  
 वर्गान्तात् ६।३।१२८  
 ईनयौ चाऽशन्दे ६।३।१२९  
 दतिकृत्तिकृत्तिसिबस्त्यहरेर्यण् ६।३।१३०  
 आस्तेयम् ६।३।१३१  
 श्रीवातोऽण् च ६।३।१३२  
 चतुर्मासान्नाग्नि ६।३।१३३  
 यजे ज्यः ६।३।१३४  
 गम्भीरपञ्चजनवर्हिर्देवात् ६।३।१३५  
 परिमुखादेरन्ययीमावात् ६।३।१३६  
 अन्तः पूर्वादिकण् ६।३।१३७  
 पर्यनोप्रीमात् ६।३।१३८  
 उमावजानुनीविकर्णीध्यादेण ६।३।१३९

रुद्रावन्त पुरादिक ६।३।१४०  
 कर्णलाटाकल् ६।३।१४१  
 तस्य व्याख्याने च ग्रन्थात् ६।३।१४२  
 प्रायोबहुस्वरादिकण् ६।३।१४३  
 श्रुष्टद्विस्वरयोगेभ्य ६।३।१४४  
 श्रुपेरध्याये ६।३।१४५  
 पुरोडाशपौरोडाशादिकेतौ ६।३।१४६  
 छन्दसो य ६।३।१४७  
 शिक्षादेश्वाण् ६।३।१४८  
 तत आगते ६।३।१४९  
 विद्यायोनिस्मन्घादकम् ६।३।१५०  
 पितृयो वा ६।३।१५१  
 श्रुत इकण् ६।३।१५२  
 आयस्थानात् ६।३।१५३  
 शुण्डिकादेरण् ६।३।१५४  
 गोत्रादङ्कवत् ६।३।१५५  
 नृहेतुभ्यो रूप्यमयदौ वा ६।३।१५६  
 प्रभवति ६।३।१५७  
 वैदुर्यं ६।३।१५८  
 त्यदादेर्मयट् ६।३।१५९  
 तस्येदम् ६।३।१६०  
 हलसीरादिकण् ६।३।१६१  
 समिध आघान्ते टेन्यण् ६।३।१६२  
 विवाहे द्वन्द्वादकल् ६।३।१६३  
 अदेवासुरादिभ्यो वैरे ६।३।१६४  
 नटानृत्ते ङण् ६।३।१६५  
 छन्दोगौक्थिकयाशिकवहृच्चाच्च धर्मा  
 म्नायसङ्घे ६।३।१६६  
 आयत्राणिकादणिकलुकच ६।३।१६७  
 चरणादकञ् ६।३।१६८  
 गोत्राददण्डमाणवशिष्ये ६।३।१६९  
 रैवतिकादेरीय ६।३।१७०  
 कौपिङ्गलहास्तिपदादण् ६।३।१७१

सङ्घघोषाङ्कल्यणोऽङ्गभिन्न ६।३।१७२  
 शाकलादकञ्च ६।३।१७३  
 एहेऽग्नीघोरण् घश्च ६।३।१७४  
 रथात्तादेश्च बोद्धुऽङ्गे ६।३।१७५  
 य ६।३।१७६  
 पत्रपूर्वादिञ् ६।३।१७७  
 वाहनात् ६।३।१७८  
 बाह्यपशुपकरणे ६।३।१७९  
 वहेस्तरिश्वादि ६।३।१८०  
 तेन प्रोक्ते ६।३।१८१  
 मौदादिभ्य ६।३।१८२  
 कठादिभ्यो घेदे लुप् ६।३।१८३  
 तित्तिरिवरतन्तुखण्डिकोखादीयण् ६।३।१८४  
 छगलिनो शेषिण् ६।३।१८५  
 शौनकादिभ्यो णिन् ६।३।१८६  
 पुत्राणे कल्पे ६।३।१८७  
 काश्यपकौशिकाद्वेदवच ६।३।१८८  
 शिलाशिवारात्र्यात्रिमिन्नुसूत्रे ६।३।१८९  
 कृशाश्वकर्मन्दादिन् ६।३।१९०  
 उपजाते ६।३।१९१  
 कृतं ६।३।१९२  
 नाम्नि मक्षिकादिभ्य ६।३।१९३  
 कुलालादेरकञ् ६।३।१९४  
 सर्वचर्मण् ईनेनेञौ ६।३।१९५  
 उरसो याणो ६।३।१९६  
 छन्दस्य ६।३।१९७  
 अमोऽधिकृत्य ग्रन्थे ६।३।१९८  
 ज्योतिषम् ६।३।१९९  
 शिशुकन्दादिभ्य ईय ६।३।२००  
 द्वन्दाध्याय ६।३।२०१  
 अभिनिष्कामत् द्वारे ६।३।२०२  
 गच्छति पथि दूते ६।३।२०३  
 मज्जति ६।३।२०४



महाराजादिक्रम ६।३।२०५  
 अचित्ताददेशकालात् ६।३।२०६  
 वासुदेवार्जुनादरुः ६।३।२०७  
 गोत्रक्षत्रियेभ्योऽकृत्र प्रायः ६।३।२०८  
 सरुपाद् द्वेः सर्वे राष्ट्रवत् ६।३।२०९  
 द्युत्यदिशि ६।३।२१०  
 तसिः ६।३।२११  
 यश्चोरसः ३।३।२१२  
 सेर्निवासादस्य ६।३।२१३  
 अभिजनात् ६।३।२१४  
 शण्डिकादेश्यः ६।३।२१५  
 सिन्धवादेरञ् ६।३।२१६  
 सलातुरादीयण् ६।३।२१७  
 तूदीवर्मत्या एयण् ६।३।२१८  
 गिरेरीषोऽन्वाजीवे ६।३।२१९

### चतुर्थः पादः

इवण् ६।४।१  
 तेन जितजपहीव्यतचनस्तु ६।४।२  
 संसृते ६।४।३  
 कुलथकोपान्वाद्यण् ६।४।४  
 संसृष्टे ६।४।५  
 लज्जाद ६।४।६  
 चूर्णमुद्राम्यामिनणी ६।४।७  
 व्यञ्जनेभ्य उपसिक्ते ६।४।८  
 तरति ६।४।९  
 नौद्विस्वरादिक ६।४।१०  
 चरति ६।४।११  
 पर्यादेरिकट् ६।४।१२  
 पदिकः ६।४।१३  
 श्वगगाद्वा ६।४।१४  
 घेतनादेर्जीवति ६।४।१५  
 व्याताच्च क्रयधिक्रयादिक ६।४।१६  
 वरनात् ६।४।१७

आयुधादीयश्च ६।४।१८  
 वातादीनञ् ६।४।१९  
 निर्वृत्तेऽश्वयूतादेः ६।४।२०  
 भावादिम ६।४।२१  
 याचिनापमित्यात्मण् ६।४।२२  
 हरत्युसङ्गादेः ६।४।२३  
 मन्त्रादेरिकट् ६।४।२४  
 विवधवीवधाद्वा ६।४।२५  
 कुटिलिकाया अण् ६।४।२६  
 भोज सहोम्मसो वचते ६।४।२७  
 तं प्रत्यनोर्लोमेस्कुलात् ६।४।२८  
 परेर्मुत्तपाश्चात् ६।४।२९  
 रक्षदुञ्जतो ६।४।३०  
 पश्चिमास्यमृगार्थोद् धनति ६।४।३१  
 परिपन्थात्तिष्ठति च ६।४।३२  
 परिपथात् ६।४।३३  
 अवृद्धेर्दृढति गह्वे ६।४।३४  
 कुसीदादिकट् ६।४।३५  
 दशैकादशादिकश्च ६।४।३६  
 अर्थपदपदोत्तरललामप्रतिक्रष्टात्  
 ६।४।३७  
 परदारादिभ्यो गञ्जति ६।४।३८  
 प्रतिपयादिकश्च ६।४।३९  
 मायोत्तरपदपदव्याकन्दाद्भवति ६।४।४०  
 पश्चात्पनुपदात् ६।४।४१  
 सुस्नातादिभ्यः पृञ्जति ६।४।४२  
 प्रभृतादिभ्यो भुवति ६।४।४३  
 माशब्द इत्यादिभ्यः ६।४।४४  
 शाब्दिकदार्दरिकालाटिककौकट्टिकम्  
 ६।४।४५  
 समूहार्थसमवेते ६।४।४६  
 पर्यदो ण्य ६।४।४७  
 सेनाया वा ६।४।४८

घर्माघर्माञ्चरति ६।४।८९  
 षष्ठ्या घर्म्ये ६।४।९०  
 श्रुन्नरादेरङ् ६।४।९१  
 विमाजयितृविशसितुर्णाड्लुक च ६।४।९२  
 अवत्रये ६।४।९३  
 तदस्य पण्यम् ६।४।९४  
 किशरादेरिक्त् ६।४।९५  
 शलालुनो वा ६।४।९६  
 शिल्गम् ६।४।९७  
 मङ्हुककूर्शराद्वाऽण् ६।४।९८  
 शीलम् ६।४।९९  
 अकर्याच्छत्रादेरङ् ६।४।६०  
 तूपीकः ६।४।६१  
 प्रहरणम् ६।४।६२  
 परश्वघाद्वाऽण् ६।४।६३  
 शक्तियष्टेश्रीकण् ६।४।६४  
 वेद्यादिभ्यः ६।४।६५  
 नास्तिकास्तिकदैष्टिकम् ६।४।६६  
 वृत्तोऽन्नाठोऽनुयोगे ६।४।६७  
 बहुस्वरपूर्वादिकः ६।४।६८  
 मक्ष्यं हितमस्मै ६।४।६९  
 नियुक्तं दीयते ६।४।७०  
 आणामासौदनादिको वा ६।४।७१  
 मकौदनाद्वा िक्त् ६।४।७२  
 नवयसादयोऽरिभन् वृत्तन्ते ६।४।७३  
 तत्र नियुक्ते ६।४।७४  
 अगारान्तादिकः ६।४।७५  
 अदेशकालादध्यायिनि ६।४।७६  
 निकटादिषु वसति ६।४।७७  
 सतीर्थ्यः ६।४।७८  
 प्रस्तारसंस्थानतदन्तकटिनान्तेभ्यो व्यव-  
 हरति ६।४।७९  
 सङ्ख्यादेर्भाहृदलुचः ६।४।८०

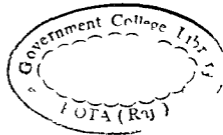
गोदानादीना ब्रह्मचर्ये ६।४।८१  
 चन्द्रायणं च चरति ६।४।८२  
 देवत्रतादीन् द्विन् ६।४।८३  
 षडश्राणचत्वारिंशत् वर्षाणाम् ६।४।८४  
 चातुर्मास्यन्तौ यलुक च ६।४।८५  
 क्रोशयोजनपूर्वाच्छतायोजनाच्चाऽमिग-  
 माहँ ६।४।८६  
 तद्यात्येभ्यः ६।४।८७  
 पय इक्त् ६।४।८८  
 नित्यं णः पण्यश्च ६।४।८९  
 शङ्कूत्तरकान्ताराजवारिस्यलज्जलादेस्ते-  
 नाहृते च ६।४।९०  
 स्पलादेर्मधुकमरिचेऽण् ६।४।९१  
 तुरायगनारायणं यजमानाऽधीयाने  
 ६।४।९२  
 संशयं प्राप्ते ज्ञेये ६।४।९३  
 तस्मै योगादेः शक्ते ६।४।९४  
 योगकर्मभ्या योक्तौ ६।४।९५  
 यज्ञानां दक्षिणायाम् ६।४।९६  
 तेषु देये ६।४।९७  
 काले कार्ये च भववत् ६।४।९८  
 व्युष्टादिष्वण् ६।४।९९  
 यथाकृष्यान्त्राण्यः ६।४।१००  
 तेन हस्ताद्यः ६।४।१०१  
 शोममाने ६।४।१०२  
 कर्मविधायः ६।४।१०३  
 कालात्परिज्यन्त्यकार्यसुकरे ६।४।१०४  
 निवृत्ते ६।४।१०५  
 तं भाविमूते ६।४।१०६  
 तस्मै भृताऽधीष्टे च ६।४।१०७  
 षग्नासादवयविग्नेकौ ६।४।१०८  
 समाया ईनः ६।४।१०९  
 रात्र्यहःसंकरराच्च द्विगोर्वा ६।४।११०

वर्षादश वा ६।४।१११  
 प्राग्नि भूते ६।४।११२  
 माताद्वयसि यः ६।४।११३  
 ईनञ्च ६।४।११४  
 पन्नासाद्ययनिष्णु ६।४।११५  
 सोऽस्य ब्रह्मचर्यतद्वतोः ६।४।११६  
 प्रयोजनम् ६।४।११७  
 एकागारान्चौरे ६।४।११८  
 चूडादिभ्योऽण् ६।४।११९  
 निशाखाशाढान्मन्यदण्डे ६।४।१२०  
 उरयापनादेरीयः ६।४।१२१  
 विशिष्टहिपदिपूरिसमापेरान्तपूर्वपदात्  
 ६।४।१२२  
 स्वर्गस्त्वस्तिवाचनादिभ्यो यलुषी ६।४।१२३  
 समयाध्यातः ६।४।१२४  
 श्रुत्वादिभ्योऽण् ६।४।१२५  
 कानाद्यः ६।४।१२६  
 दीर्घः ६।४।१२७  
 आकालिकमिदृश्याद्यन्ते ६।४।१२८  
 त्रिगद्विगतर्हकोऽसंज्ञायामार्हदर्थे  
 ६।४।१२९  
 सङ्ख्याडतेभ्याऽश्लिष्टेः कः ६।४।१३०  
 शतात्केवलादतस्मिन्देवी ६।४।१३१  
 वातोरिकः ६।४।१३२  
 कार्यागणादिकट् प्रतिश्रास्य वा ६।४।१३३  
 अर्द्धात्पलकंसकयोत् ६।४।१३४  
 कञ्जाह्वत् ६।४।१३५  
 सहस्रगतमानादण् ६।४।१३६  
 सर्वाद्वाऽण् ६।४।१३७  
 वचनात् ६।४।१३८  
 विशतिकत् ६।४।१३९  
 द्विगोरीनः ६।४।१४०  
 अनान्वयऽङिः प्लुप् ६।४।१४१

न वाणः ६।४।१४२  
 सुवर्गकार्यागतात् ६।४।१४३  
 द्विनिबहोर्निष्कवितात् ६।४।१४४  
 शताद्यः ६।४।१४५  
 शणात् ६।४।१४६  
 द्विभ्यादेर्याऽण् वा ६।४।१४७  
 पन्नादमापाद्यः ६।४।१४८  
 खारीकाकपोम्यः कञ् ६।४।१४९  
 मूल्यैः ऋते ६।४।१५०  
 तस्य वापे ६।४।१५१  
 वातचित्श्लेषमभिराताञ्जमनकोष्णे  
 ६।४।१५२  
 हेतौ संयोगोत्पाते ६।४।१५३  
 पुत्राद्येवौ ६।४।१५४  
 द्विस्वब्रह्मवर्चसाद्योऽसङ्ख्यापरिमाणा-  
 र्वादेः ६।४।१५५  
 पृथिवीसर्वभूमेरीशज्ञातयोश्चान् ६।४।१५६  
 लोकसर्वलोकात् ज्ञाते ६।४।१५७  
 तदन्तरमे वा बृहत्पापलाभोरदानुसुं  
 देयम् ६।४।१५८  
 पूणाद्वादिक्कः ६।४।१५९  
 मागाद्येवौ ६।४।१६०  
 तं पचति द्रोणाद्वाऽण् ६।४।१६१  
 सम्भवदवहस्तोश्च ६।४।१६२  
 पात्राचित्तादकादीनो वा ६।४।१६३  
 द्विगोरीनेक्यौ वा ६।४।१६४  
 कुलिजाद्वा लुप् च ६।४।१६५  
 वंशादेर्भास्तरहदावहात् ६।४।१६६  
 द्रव्यवस्नात्केकम् ६।४।१६७  
 सोऽस्य श्रुतिवन्नाशम् ६।४।१६८  
 मानम् ६।४।१६९  
 जीवितस्य सन् ६।४।१७०  
 सङ्ख्यायाः संसृज्वाठे ६।४।१७१

नाम्नि ६।४।१७२  
 विश्वत्यादय ६।४।१७३  
 त्रैशन्वात्वारिंशम् ६।४।१७४  
 पञ्चदशद्वयं वा ६।४।१७५  
 स्तोत्रे ङट् ६।४।१७६  
 तमर्हति ६।४।१७७  
 दण्डादेयं ६।४।१७८  
 यशादय ६।४।१७९

पात्रात्तौ ६।४।१८०  
 दक्षिणाकण्ठरस्यालीविलादीयौ  
 ६।४।१८१  
 छेदादेर्नित्यम् ६।४।१८२  
 निरागाद्विरञ्जश्च ६।४।१८३  
 शीर्षच्छेदाद्यो वा ६।४।१८४  
 शालीनकौपीनार्त्विज्यीनम् ६।४।१८५



## सप्तमोऽध्यायः

प्रथमः पादः

यः ७।१।१  
 वहतिरययुगप्रासङ्गात् ७।१।२  
 घुरो यैयन् ७।१।३  
 वामाद्यादेरीनः ७।१।४  
 अश्वैकादेः ७।१।५  
 हलसीरादिकण् ७।१।६  
 घकटादण् ७।१।७  
 विद्यत्यऽनन्देन ७।१।८  
 घनगणाल्ङ्गधरि ७।१।९  
 षोऽन्नात् ७।१।१०  
 हृद्यपद्यत्तुल्यमूल्यवश्यपय्यवयस्यधेनुष्या-  
 गार्हपत्यजन्यवर्म्यम् ७।१।११  
 नौविपेण तार्यवधे ७।१।१२  
 न्यायार्थादनपेते ७।१।१३  
 मतमदस्य कररो ७।१।१४  
 तत्र साधौ ७।१।१५  
 पय्यतिथिवन्नतिस्वपतेरेयण् ७।१।१६  
 मन्त्राण्यः ७।१।१७  
 पर्यदो ष्यणौ ७।१।१८  
 सर्वज्जनाण्येनसौ ७।१।१९  
 प्रतिजनादेरीनन् ७।१।२०  
 कयादेरिकण् ७।१।२१  
 देवतान्तात्तदर्थे ७।१।२२  
 पात्याष्ये ७।१।२३  
 ष्योऽतिथेः ७।१।२४  
 सादेष्वातदः ७।१।२५  
 हलस्य कपे ७।१।२६  
 सीतया संगते ७।१।२७  
 ईयः ७।१।२८

हविरत्रमेदापूपादेर्यो वा ७।१।२९  
 ठवर्णयुगादेर्यः ७।१।३०  
 नामेर्नम् चाऽदेर्हायात् ७।१।३१  
 न्योघसः ७।१।३२  
 सुनो वश्रोदूत् ७।१।३३  
 कम्बलान्नामि ७।१।३४  
 तस्मै हिते ७।१।३५  
 न राजाचार्यब्राह्मणवृष्णः ७।१।३६  
 प्राण्यङ्करपन्कटतिल्यववृषद्रक्षमापाद्यः  
 ७।१।३७  
 अव्यञ्जात् श्यप् ७।१।३८  
 चरकमागवादीनन् ७।१।३९  
 मोगोत्तरपदात्मम्यामीनः ७।१।४०  
 पञ्चसर्वविश्वज्जनाकर्मवारये ७।१।४१  
 महत्सर्वादिकण् ७।१।४२  
 सर्वाण्यो वा ७।१।४३  
 परिणामिनि तदर्थे ७।१।४४  
 चर्मप्यन् ७।१।४५  
 श्रुपमोगानहान्नयः ७।१।४६  
 छदिर्वलेरेयण् ७।१।४७  
 परिखाऽस्य स्यात् ७।१।४८  
 अन्त च ७।१।४९  
 तद् ७।१।५०  
 तस्याहौ क्रियायां क्त् ७।१।५१  
 स्यादेरिवे ७।१।५२  
 तत्र ७।१।५३  
 तस्य ७।१।५४  
 मावे स्वतल् ७।१।५५  
 प्रासत्वाद्गहुलादेः ७।१।५६  
 नञ् तत्पुरुषाद्बुधादेः ७।१।५७

पृथ्वादेरिमन्वा ७।१।५८  
 वर्णदृढादिम्यश्च च वा ७।१।५९  
 पतिराजान्तगुणाङ्ग्राङ्गादिम्य कर्मणि  
 च ७।१।६०  
 अर्हत्स्तो न्त च ७।१।६१  
 सहायाद्वा ७।१।६२  
 सखिवणिग्नूताद्य ७।१।६३  
 स्तेनान्ननुक्च ७।१।६४  
 कपिशालेरेयम् ७।१।६५  
 प्राणिजातिवयोऽर्थादञ् ७।१।६६  
 युवादेरण् ७।१।६७  
 हापनान्तात् ७।१।६८  
 यृन्तर्णिल्लघ्वादे ७।१।६९  
 पुष्पद्वयादसमासे ७।१।७०  
 ओत्रियाद्यजुक् च ७।१।७१  
 योनान्त्याद् गुरुपोत्तमादसुप्रयादक्ञ्  
 ७।१।७२  
 चोरादे ७।१।७३  
 द्वन्द्वान्तिन्त् ७।१।७४  
 गोत्रचरणात् श्लाघासाकारप्रोत्यवगमे  
 ७।१।७५  
 होत्राम्य ईय ७।१।७६  
 ब्रह्मणस्त्व ७।१।७७  
 शाकृशाकिनौ क्षेत्रे ७।१।७८  
 घान्देम्य ईनन् ७।१।७९  
 ग्रीहिशालेरेयम् ७।१।८०  
 यवयवकषट्टिकाद्य ७।१।८१  
 वाऽणुमाधात् ७।१।८२  
 बोमामङ्गतिलात् ७।१।८३  
 अलाञ्छाश्च कटोरजसि ७।१।८४  
 अह्ना रम्यऽश्वादीनन् ७।१।८५  
 कुलाङ्गणे ७।१।८६  
 पील्वादे कुण पाके ७।१।८७

कर्गदिर्मूले जाह ७।१।८८  
 पञ्चत्ति ७।१।८९  
 हिमादेजु सहे ७।१।९०  
 दलवातादूल ७।१।९१  
 शीतोष्णतृषादालुरसहे ७।१।९२  
 यथामुखसमुखादीनस्तद्दृश्यतेऽरिमन्  
 ७।१।९३  
 सर्वादे पय्यङ्गमपयरात्रराव व्याप्नोति  
 ७।१।९४  
 आप्रदम् ७।१।९५  
 अनुपद वद्धा ७।१।९६  
 अयानय नेय ७।१।९७  
 सर्वात्रमत्ति ७।१।९८  
 परोवरीपरपरीणपुत्रभौनीणम् ७।१।९९  
 यथाकामानुकामात्यन्त गामिनि ७।१।१००  
 पाराशर ज्यस्तन्यत्यस्त च ७।१।१०१  
 अनुग्रहन् ७।१।१०२  
 अध्वान देनौ ७।१।१०३  
 अम्यमित्रमीयश्च ७।१।१०४  
 समासमीनाद्यधीनाद्यप्रातीनाऽऽगधीन  
 सातपदीनम् ७।१।१०५  
 अपयश्चादितग्वल्ङ्गुर्माल्पुष्पादीन  
 ७।१।१०६  
 अदिक् स्त्रिया वाऽञ्च ७।१।१०७  
 तस्यतन्त्ये क सञ्ज्ञप्रतिकृत्यो ७।१।१०८  
 न नृपूनायर्ध्वजचित्रे ७।१।१०९  
 अयमे जीवने ७।१।११०  
 देवस्यादिम्य ७।१।१११  
 बस्तेरेयन् ७।१।११२  
 शिलाया एयन्च ७।१।११३  
 शाखादेर्य ७।१।११४  
 द्रोर्मये ७।१।११५  
 कुशाग्रादीय ७।१।११६

काकतालीषादय ७।१।११७  
 शर्करादेरम् ७।१।११८  
 अ सन्या ७।१।११९  
 एकमालाया इक ७।१।१२०  
 गोम्यादेशेकम् ७।१।१२१  
 कर्कलेहिताष्टीकम् च ७।१।१२०  
 वेर्विस्तृते शालग्रह्णौ ७।१।१२३  
 कट ७।१।१२४  
 संप्रोन्ने सकीर्णप्रकाशाधिकसमीपे  
 ७।१।१२५  
 अवात्कुटारश्वाकनते ७।१।१२६  
 नासानतितद्रतोष्टीटनाट्प्रत्यम् ७।१।१२७  
 नेरिननिष्काक्षिक्चिचिकश्वाख्य ७।१।१२८  
 विडविरीसौ नीलने च ७।१।१२९  
 किन्नाह्वभ्रुपि विल पित् जुल् चास्य  
 ७।१।१३०  
 उनल्यदाधित्यके ७।१।१३१  
 अवेस्सधातविस्तारे क्पटम् ७।१।१३२  
 पशुम्न स्थाने गोष्ठ ७।१।१३३  
 द्वित्वे गोयुग ७।१।१३४  
 पटवे पङ्गव ७।१।१३५  
 तिष्ठादिभ्य स्नेहे टौ ७।१।१३६  
 तत्र घटते कर्मण्ड ७।१।१३७  
 तदस्य सञ्जात वारकादिभ्य इत्  
 ७।१।१३८  
 गर्भोदप्रगिनि ७।१।१३९  
 प्रमाणान्नाजट् ७।१।१४०  
 हस्तिपुरुषाद्वाग् ७।१।१४१  
 बोद्ध्वे दहनट्प्रत्यसट् ७।१।१४२  
 मानादसद्यवे लुप् ७।१।१४३  
 द्विगो सद्यवे च ७।१।१४४  
 मात्रट् ७।१।१४५  
 शन्द्यद्विद्यते ७।१।१४६

चिन् ७।१।१४७  
 इदंकिमोऽतुरिदक्षिन् चास्य ७।१।१४८  
 यत्तदेतदौर्वादि ७।१।१४९  
 यत्तद्धिन् सङ्ख्यायाऽतिर्वा ७।१।१५०  
 अन्यत्रचयत् ७।१।१५१  
 द्वित्रिभ्यामपत् वा ७।१।१५२  
 द्वयादेर्गुणान्मूलकये मयट् ७।१।१५३  
 अधिक तत्तद्ध्रस्वमस्मिन् यत्तसहस्रेयते  
 यद्दयान्ताया इत् ७।१।१५४  
 सङ्ख्यापूरणे इट् ७।१।१५५  
 विद्यायादेर्वा तमट् ७।१।१५६  
 यत्तादिमाशार्द्धमासवत्तत्वात् ७।१।१५७  
 पट्यादेरसङ्ख्यादे ७।१।१५८  
 नो मत् ७।१।१५९  
 पित्तियट्क्वहुण्णूगलङ्घान् ७।१।१६०  
 अतोऽरियट् ७।१।१६१  
 पट्कृत्कृत्पिपात् यट् ७।१।१६२  
 चतुर ७।१।१६३  
 दैवी च लुक् च ७।१।१६४  
 द्वेस्तीव ७।१।१६५  
 त्रैस्तु च ७।१।१६६  
 पूर्वमनेन सादेशेन् ७।१।१६७  
 इष्टादे ७।१।१६८  
 आहनयनुक्तमिकेनौ ७।१।१६९  
 अनुचयन्वेष्टा ७।१।१७०  
 दाग्ढाजिनिक्वाय शूलिकपार्श्वकम् ७।१।१७१  
 च्चेऽन्वरेनहास्वे इय ७।१।१७२  
 छन्दोऽधीते भोत्रम् वा ७।१।१७३  
 इन्द्रियन् ७।१।१७४  
 तेन विचे जुञ्जुचौ ७।१।१७५  
 पूरणाद् अन्यस्य ग्राहके को लुक् चास्य  
 ७।१।१७६  
 महपादा ७।१।१७७

सस्मान गुण त्वरिवात् ७ ११७८  
 घनद्विरणो काने ७ ११७९  
 स्वाङ्गेषु सत्ते ७ ११८०  
 उदरे त्वक्पायुने ७ ११८१  
 अद्य हारिणि ७ ११८२  
 तन्नादचिरोद्भृते ७ ११८३  
 ब्राह्मणान्नामि ७ ११८४  
 उष्णान ७ ११८५  
 उताच कारिणि ७ ११ ८६  
 अघेराकृते ७ ११८७  
 अनो कमितरि ७ ११८८  
 अमेरीश्च वा ७ ११८९  
 सेऽस्य मुख्य ७ ११९०  
 मृन्मक करम ७ ११९१  
 उटुसोऽन्नमनि ७ ११९२  
 कालहेतुफलाद्यो ७ ११९३  
 प्रायोऽन्नम हिनन्नामि ७ ११९४  
 कुम्भापादण ७ ११९५  
 दृक्कादिन् ७ ११९६  
 सासद् द्रव्य ७ ११९७

### द्वितीयः पादः

तदस्याऽस्त्यरिमिनिमित्त ७ १२१  
 आयात् ७ १२२  
 नावादेरिक् ७ १२३  
 शिखादिभ्य इन् ७ १२४  
 ब्रीह्यादिभ्यस्तौ ७ १२५  
 अतोऽनेक स्वरात् ७ १२६  
 अशरसोऽशीर्षश्च ७ १२७  
 अर्थायन्ताद्वावात् ७ १२८  
 ईर्ष्यगुन्दादेरिश्च ७ १२९  
 स्वाङ्गाद्विवृदात्ते ७ १३०  
 वृन्दादारक ७ १३१

१७ हे०

मङ्गल् ७ १३२  
 पत्रवर्हाश्चैन ७ १३३  
 मलदमितश्च ७ १३४  
 मद्यवर्षणम् ७ १३५  
 बलिवटितुम् ७ १३६  
 उर्गऽह्नुमनो युस ७ १३७  
 कशम्या युस्तिपस्तुतवमम् ७ १३८  
 क्लवातदन्तलगाटादूल ७ १३९  
 प्राभ्यङ्गादातो ल ७ १४०  
 सिध्नादस्तुत्-न्तुस्य ७ १४१  
 प्रज्ञावर्षोदकफनाम्नेलौ ७ १४२  
 कानाङ्गायागत् क्षेपे ७ १४३  
 वान् आलाद्यै ७ १४४  
 मिन् ७ १४५  
 मन्वादिभ्यो र ७ १४६  
 कृपादिभ्यो वञ्च ७ १४७  
 लभिविजादे शोनम् ७ १४८  
 नोऽङ्गादे ७ १४९

शाक्रीपलानीदर्वी हस्तश्च ७ १३०

विध्वन्तो विधुश्च ७ १३१  
 लन्स्या अन ७ १३२  
 प्रसङ्गाद्वाच्चावृत्तेर्ण ७ १३३  
 व्येत्नादिभ्योऽण ७ १३४  
 सिकताशर्करात् ७ १३५  
 श्लश्च देशे ७ १३६  
 व्युत्तूर्म ७ १३७  
 काण्डाङ्गाङ्गादीर ७ १३८  
 कच्छ्मा हुर ७ १३९  
 दन्तादुन्नतात् ७ १४०  
 मधरथान्नवेर ७ १४१  
 कृपाहृदयादात्तु ७ १४२  
 केशाद् ७ १४३  
 मन्वादिभ्य ७ १४४



हीनात्त्वाद्वाद् ७।२।४५  
 अभ्रादिभ्य ७।२।४६  
 अस्तपोमायामेषासञ्जो विन् ७।२।४७  
 आमयादीर्घश्च ७।२।४८  
 स्वान्मित्रीशे ७।२।४९  
 गो ७।२।५०  
 ऊर्जो विन्क्लृप्तान्त ७।२।५१  
 तमिस्तार्णद्वयोऽङ्गना ७।२।५२  
 गुणादिभ्यो य ७।२।५३  
 रूपाप्रशस्ताहलात् ७।२।५४  
 पूर्णमासोऽण् ७।२।५५  
 गोपूर्वाद्दत् इषण् ७।२।५६  
 निष्वादे शतसहस्रात् ७।२।५७  
 एकादे कर्मधारयात् ७।२।५८  
 सर्वादिभिन् ७।२।५९  
 प्राणिस्थादस्वाद्वाद् द्वन्द्वसङ्गिन्ध्यात्  
 ७।२।६०  
 वातातीक्षारविद्यानात्क्वञ्चान्त ७।२।६१  
 पूरणाद्वयसि ७।२।६२  
 सुग्नादे ७।२।६३  
 मालाया क्षेपे ७।२।६४  
 घर्मशीलवर्णान्तात् ७।२।६५  
 बाहृर्ददर्शलात् ७।२।६६  
 मन्नाञ्जादेर्नाम्नि ७।२। ७  
 हस्तदन्तकृशाज्जातौ ७।२।६८  
 वर्णात् ब्रह्मचारिणि ७।२।६९  
 पुष्करादेर्देशे ७।२।७०  
 सूक्तसाम्प्रीय ७।२।७१  
 लुक्वाऽप्यायानुवाके ७।२।७२  
 विमुक्तादेरण् ७।२।७३  
 घोषदादेरक् ७।२।७४  
 प्रकारे जातीयर् ७।२।७५  
 कौऽङ्गादे ७।२।७६

बीर्गोमूत्रवदातसुरायन्तृणाच्छाल्या-  
 च्छादनसुराहिमीहितिले ७।२।७७  
 मूतपूर्व चरट् ७।२।७८  
 गोष्ठादीनञ् ७।२।७९  
 पञ्चया रूप्यचरट् ७।२।८०  
 व्याभये तसु ७।२।८१  
 रोगाप्रतीकारे ७।२।८२  
 पर्यमे सर्वाभये ७।२।८३  
 आद्यादिभ्य ७।२।८४  
 क्षेप्रातिग्रहाव्ययेष्वकचुस्तृतीयाया  
 ७।२।८५  
 प पहीयमानेन ७।२।८६  
 प्रतिना पञ्चम्या ७।२।८७  
 अहीनरुहोऽरादाने ७।२। ८८  
 किमद्रथादिसर्वाद्यऽवैपुल्यरही सित् तष्  
 ७।२।८९  
 इतोऽत वुत् ७।२।९०  
 मन्त्रकायुष्महोर्वायुर्देवानाप्रियैकार्यात्  
 ७।२।९१  
 नपच ७।२।९२  
 ह्युत्राग्नेह ७।२।९३  
 सतम्य ७।२।९४  
 कियत्तत्तर्वैकान्यात्काले दा ७।२।९५  
 सदाऽऽपुनेदानीतदानीमेतर्हि ७।२।९६  
 सद्योऽद्यपरेव्यवहि ७।२।९७  
 पूर्वापरारोत्तरान्यान्यतरैतरादेद्युष्  
 ७।२।९८  
 उमयाद् द्युश्च ७।२।९९  
 ऐयम परत्परारि र्षे ७।२।१००  
 अनद्यतने दि ७।२।१०१  
 प्रकारे या ७।२।१०२  
 कथमित्यम् ७।२।१०३  
 सङ्ख्याया घा ७।२।१०४

विचाले च ७०११०५  
 वैकाद्वयमज ७०११०६  
 द्विर्देर्मजेधौ वा ७०११०७  
 तद्वते घण् ७०११०८  
 वारे कृत्स् ७०११०९  
 द्वित्रिचतुः मुच् ७०१११०  
 एकासञ्चास्य ७०११११  
 बहोर्दाम्ने ७०१११२  
 दिक्शब्दादिगद्देशकालेषु प्रथमान्तमी  
 सतन्वाः ७०१११३  
 ऊर्ध्वादिशिष्टान्तुमन्वास्य ७०१११४  
 पूर्वादिगधरेभ्योऽसऽस्तातौ पुर्वघश्चैषाम्  
 ७०१११५  
 परावराण्णान् ७०१११६  
 दक्षिणोत्तराच्चातस् ७०१११७  
 अधरापराच्चात् ७०१११८  
 वा दक्षिणान् प्रथमा सतन्वा आः  
 ७०१११९  
 आही दूरे ७०११२०  
 वोत्तरान् ७०११२१  
 अदूरे एनः ७०११२२  
 लुक्च्येः ७०११२३  
 पञ्चोऽपरस्य दिक्पूर्वस्य चाति ७०११२४  
 वोत्तरपदेऽर्द्धे ७०११२५  
 कम्बन्तिभ्या कर्मकर्तृभ्या प्रागतत्तत्त्वे चिच्  
 ७०११२६  
 अहर्मनश्चतुरधेतोरहोरजसा लुक् च्वौ  
 ७०११२७  
 इनुसोर्बहुलन् ७०११२८  
 व्यञ्जनस्थान्त ईः ७०११२९  
 व्याप्तौस्त्वात् ७०११३०  
 आतेः सम्भदा च ७०११३१  
 त्वाघोने ७०११३०

देये वा च ७०११३३  
 सतमीद्वितीयाद्देवादिभ्यः ७०११३४  
 तीयशम्बवीजात्कृगाङ्गौ ङाच् ७०११३५  
 सङ्ख्यादेर्गुणात् ७०११३६  
 समयाद्यापनायाम् ७०११३७  
 सत्रनिष्पन्नादतिव्ययने ७०११३८  
 निष्कुलान्निष्कोपणे ७०११३९  
 प्रियमुलादानुकूल्ये ७०११४०  
 दुःखात्प्रातिकूल्ये ७०११४१  
 शूलात्पाके ७०११४२  
 सत्यादशयमे ७०११४३  
 मद्रभद्राद्वपने ७०११४४  
 अव्यक्त्याऽनुकरणदानेकस्त्रराकृम्बन्तिना-  
 अनितौ द्विश्च ७०११४५  
 रतान्तो लुक् ७०११४६  
 न द्विवे ७०११४७  
 तो वा ७०११४८  
 ङाच्चादौ ७०११४९  
 बह्वल्कार्यकारकादिघानिष्टे प्थस्  
 ७०११५०  
 संत्यैकार्याद्विष्वाया शस् ७०११५१  
 सङ्ख्यादे पदादिभ्यो दानदण्डे चाक-  
 ल्लुक् च ७०११५२  
 तीजाट्टीकण् न विद्या चेत् ७०११५३  
 निष्कले निलात् मिञ्जपेञ्चौ ७०११५४  
 प्रायोऽनोर्द्ध्वसट्मात्रट् ७०११५५  
 वर्णान्यवात्तरूपे कारः ७०११५६  
 रादेक ७०११५७  
 नामरूपमागादेयः ७०११५८  
 मर्त्तादिभ्यो यः ७०११५९  
 नवादीनितनर्त्तं च नू चास्य ७०११६०  
 प्रात्पुरारे नश्च ७०११६१  
 देनासल् ७०११६२

होनाया ईय ७।२।१६३  
 भेषजादिभ्यश्च ७।२।१६४  
 प्रजादिभ्योऽण् ७।२।१६५  
 श्रोत्रौषधिहृणाच्छरीरभेषजमृगे ७।२।१६६  
 कर्मण् सन्दिष्टे ७।२।१६७  
 वाच इण् ७।२।१६८  
 विनयादिभ्य ७।२।१६९  
 उपायाद् ह्रस्वश्च ६।२।१७०  
 मृदस्तिक ७।२।१७१  
 सप्तौ प्रशस्ते ७।२।१७२

### तृतीयः पादः

प्रकृते मयट् ७।३।१  
 अस्मिन् ७।३।१  
 तयो समूहवच्च बहुषु ७।३।२  
 निन्द्ये पाशप् ७।३।४  
 प्रकृष्टे तमप ७।३।५  
 द्वयोर्विभज्ये च तरप ७।३।६  
 क्वचिस्त्रायै ७।३।७  
 क्तिन्त्याद्येऽययादसत्त्वेनयोरन्त याम्  
 ७।३।८  
 गुणाङ्गाद्वैश्लेष्यम् ७।३।९  
 त्यादेश्च प्रशस्ते रूपम् ७।३।१०  
 अतमवादेरीपदसमाप्ते कल्पदेश्यन्दे  
 शीयर् ७।३।११  
 नाम्न प्राग् बहुर्वा ७।३।१२  
 न तमवादि कपोऽच्छिन्नादिभ्य ७।३।१३  
 अनत्यन्ते ७।३।१४  
 यावादिभ्य कः ७।३।१५  
 कुमारीक्रीडनेयसौ ७।३।१६  
 लोहितामणौ ७।३।१७  
 रक्षानित्यदर्णयो ७।३।१८  
 झालात् ७।३।१९

शीतोष्णादती ७।३।२०  
 लूनवियातात्पशौ ७।३।२१  
 रनाताद्वेदसमाती ७।३।२२  
 तनुपुत्राणुवृहतीशून्यात्सूत्रहृत्रिमनिपुगा  
 च्छादनरिक्ते ७।३।२३  
 मागेऽण्माञ्ज ७।३।२४  
 पठ्यात् ७।३।२५  
 माने कश्च ७।३।२६  
 एकादाकिन् चा सहाये ७।३।२७  
 प्रागनित्यात्कप् ७।३।२८  
 त्यादिसर्वादेशः स्वोऽन्त्यात्पूर्वोऽक  
 ७।३।२९  
 युष्मदस्मदोऽसौमादिस्वादे ७।३।३०  
 अव्ययस्य को ङ् च ७।३।३१  
 तूष्णीकाम् ७।३।३२  
 कुशिताल्याज्ञाते ७।३।३३  
 अनुकम्मात्सुकनीत्यो ७।३।३४  
 अजातेर्नृनाम्नो बहुस्त्रादिदेशकेल वा  
 ७।३।३५  
 बोपादेरढाक्षी च ७।३।३६  
 श्रुवर्णोऽर्गास्वरादेरादेश्लुक् प्रकृत्या च  
 ७।३।३७  
 लुक्युत्तरपदाय कप् ७।३।३८  
 लुक्पाऽजिनान्तात् ७।३।३९  
 पठवर्जस्वरपूर्वपदस्य स्वरे ७।३।४०  
 द्वितीयात्स्वराद्दुर्धर्म ७।३।४१  
 सन्ध्यशरात्तेन ७।३।४२  
 शैलाद्यादेश्चतृतीयात् ७।३।४३  
 क्वचित्तुर्पत् ७।३।४४  
 पूर्वपदस्य वा ७।३।४५  
 ह्रस्वे ७।३।४६  
 कुयीगुणाद् ७।३।४७  
 शम्भरौ ७।३।४८

कृत्वा ह्य ७।२।४९  
 क्राश्याणाम्या तरट् ७।३।५०  
 ५००० शश्वर्षमाद् हास नित् ७।३।५१  
 वैकाद्द्वयानिर्द्वाय इतरः ७।२।५२  
 यत्त क्कमन्यात् ७।३।५३  
 बहूना प्रश्ने इतमश्च वा ७।३।५४  
 वैकात् ७।३।५५  
 चालमवाद्श्चानत्यन्ते ७।३।५६  
 न सामिवचन ७।३।५७  
 नित्य ऋजिनोऽम् ७।३।५८  
 विसा रणा मत्स्ये ७।३।५९  
 पूगादमुदयकाञ्जयो इद्र ७।३।६०  
 प्रातादान्नयाम् ७।३।६१  
 शन्नन्नीविश्याञ्जयद् वा ७।३।६२  
 बाहीक ७।३।६३  
 वृकाट्टेष्वण् ७।३।६४  
 यौधेयादरञ्ज ७।३।६५  
 पञ्चदशैर्ण् ७।३।६६  
 दामन्यादरीय ७।३।६७  
 भ्रुमच्छमीवच्छिखाव-ठालावदूर्णविद्विदभृ  
 दमिञ्जितो गात्रेऽगो यञ् ७।३।६८  
 समासान् ७।३।६९  
 न किम क्षेपे १।३।७०  
 नन् तत्पुरुषात् ७।३।७१  
 पूजास्वते प्रावटात् ७।३।७२  
 बहोर्हं ७।३।७३  
 इच् सुद्धे ७।३।७४  
 द्वि दण्ड्यादि ७।३।७५  
 श्रुकपू ष्यगोऽत् ७।३।७६  
 धुरोऽनशस्य ७।३।७७  
 सस्यापाश्रुदक्कृपणाद्घूमे ७।३।७८  
 उपसर्गादध्वन ७।३।७९  
 समबन्धात्तमस ७।३।८०

ततान्वात्रहस ७।३।८१  
 प्रत्यन्वात्तामलान् ७।३।८२  
 नह्यहास्तरानित्याद्दर्चस ७।३।८३  
 प्रथेदरस सनम्या ७।३।८४  
 अश्वगोऽप्राग्यङ्ग ७।३।८५  
 सकृगम्याम् ७।३।८६  
 प्रातपरोऽनार ययीभावात् ७।३।८७  
 अन ७।३।८८  
 नपुसकाद्वा ७।३।८९  
 गारिनदीगौर्मास्याप्रहायम्यरञ्जननर्ग्याद्वा  
 ७।३।९०  
 सस्याया नदीगादावरीभ्याम् ७।३।९१  
 शरदादे ७।३।९२  
 जराया जरस् च ७।३।९३  
 सरजशोऽनुनानुगवम् ७।३।९४  
 जातनहद्वृद्धादुष्ण कर्मधारयात् ७।३।९५  
 न्त्रिया पुसो द्वन्द्वान्च ७।३।९६  
 श्रुकसामर्ग्यनुषधेन्वनहुहवाहमनसाऽहो  
 रात्ररान्निदिवनक्तदिवाऽहर्दिबोर्वशी  
 वपदशीवासिभ्रुवदारगवम् ७।३।९७  
 चवर्गदपह समाहारे ७।३।९८  
 द्विगोरन्नघ्नोऽट् ७।३।९९  
 द्वित्रैरायुष ७।३।१००  
 बाङ्गनेरलुक् ७।३।१०१  
 खार्या वा ७।३।१०२  
 वार्द्धान्च ७।३।१०३  
 नाव ७।३।१०४  
 गोस्तत्पुरुषात् ७।३।१०५  
 राजन्मुखे ७।३।१०६  
 राष्ट्राल्याद् ब्रह्मण ७।३।१०७  
 कुमहद्वा वा ७।३।१०८  
 प्रामकौटाक्ष्ण ७।३।१०९  
 गोष्ठाते शुन ७।३।११०

प्राणिन उपमानात् ७।३।१११  
 अप्राणिनि ७।३।११२  
 पूर्वोत्तरमृगाच्च सक्थनः ७।३।११३  
 उरसोऽप्रे ७।३।११४  
 सरोऽनोऽश्माऽयसो जातिनाम्नो ७।३।११५  
 अह् ७।३।११६  
 सङ्ख्यातादह्श्च वा ७।३।११७  
 सर्वाशसङ्ख्याऽययात् ७।३।११८  
 सङ्ख्यातैकपुण्यवर्षादीर्घान्च रात्रेरत्  
 ७।३।११९  
 पुरुषायुषद्विस्ताव्रिस्तावम् ७।३।१२०  
 श्वसो वसोयस ७।३।१२१  
 निसश्च श्रेयस ७।३।१२२  
 नऽप्रध्वयात्सङ्ख्याया हः ७।३।१२३  
 सङ्ख्याऽव्ययादङ्गुलेः ७।३।१२४  
 बहुव्रीहे. काष्ठे टः ७।३।१२५  
 सक्थ्यऽश्मः स्वाङ्गे ७।३।१२६  
 द्वित्रेर्मूर्ध्नी वा ७।३।१२७  
 प्रमाणीसङ्ख्याद्बुः ७।३।१२८  
 मुप्रातमुश्रमुदिवशारिकुशन्तुरसैणीपदा-  
 ऽजपदप्रोष्ठपदमद्रपदम् ७।३।१२९  
 पूरणीम्यस्तप्याधान्येऽप् ७।३।१३०  
 नम् सुव्युपत्रैश्चतुरः ७।३।१३१  
 अन्तरेर्हिर्म्या लोम्नः ७।३।१३२  
 मान्नेतुः ७।३।१३३  
 नाभेर्नाम्नि ७।३।१३४  
 नम्बशोर्शुचोमाणवचरणे ७।३।१३५  
 नम्सुदुर्म्यः सलिसवियरलेर्वा ७।३।१३६  
 प्रजाया अस ७।३।१३७  
 मन्दाल्पाच्च मेधायाः ७।३।१३८  
 जातेरीयः सामान्यन्ती ७।३।१३९  
 श्रुतिप्रत्ययान्मावादिक् ७।३।१४०  
 द्विपदादमादन् ७।३।१४१

सुहरितवृणसोमाऽजम्भात् ७।३।१४२  
 दक्षिणेर्मा व्याधयोमे ७।३।१४३  
 सुपूर्युसुरभेर्गन्धादिद्गुणे ७।३।१४४  
 वागन्ती ७।३।१४५  
 बाल्पे ७।३।१४६  
 वोपमानात् ७।३।१४७  
 पात्पादस्याहस्यादे ७।३।१४८  
 कुम्भरयादि ७।३।१४९  
 मुसङ्ख्यात् ७।३।१५०  
 वयसि दन्तस्य दतुः ७।३।१५१  
 स्त्रिया नाम्नि ७।३।१५२  
 श्यावारोकाद्वा ७।३।१५३  
 वामान्तशुद्धशुभ्रवृषवराहादिमूपिस्त्रि-  
 णरात् ७।३।१५४  
 संप्रजाज्जानोर्बुधौ ७।३।१५५  
 बोधार्त् ७।३।१५६  
 सुद्धदुर्द्धन्मित्रामिमे ७।३।१५७  
 धनुषो धन्वन् ७।३।१५८  
 वा नाम्नि ७।३।१५९  
 खुरतराप्रसिकाया नम् ७।३।१६०  
 अरथृल्लाघ नसः ७।३।१६१  
 उपसर्गात् ७।३।१६२  
 वेः खुरव्रमम् ७।३।१६३  
 जायाया जानिः ७।३।१६४  
 व्युदः काकुदस्य लुक् ७।३।१६५  
 पूर्णाद्वा ७।३।१६६  
 ककुदस्यानस्यायाम् ७।३।१६७  
 त्रिककुद् गिरी ७।३।१६८  
 स्त्रियामूषोन् ७।३।१६९  
 इनः कच् ७।३।१७०  
 श्रुत्स्त्रियदितः ७।३।१७१  
 दध्यूर.सर्षिर्मयूषानन्तालेः ७।३।१७२  
 पुमनहुश्रीरयोल्थ्या एकरत्ने ७।३।१७३

नञाऽयत् ७।३।१७८  
 रथाद्वा ७।३।१७५  
 न नामि ७।३।१७२  
 इयसो ७।३।१७७  
 महात्तुल्ययोगे ७।३।१७८  
 भ्रातृ स्तुतौ ७।३।१७०  
 नाडीतन्त्रीम्या स्वाङ्ग १३।१८०  
 निष्प्रवाणि ७।३।१८१  
 सुभ्रवादिभ्य १।१८०

### चतुर्थः पादः

बृहिस्ररेष्वादेर्ङि ने तद्धिते ७।४।१  
 कक्ष्यमत्रयुप्रत्ययस्य यादेरिच् च ७।४।२  
 देविकाशिंशनादीर्षत्रभ्रयेषस्त्वत्प्रातावा  
 ७।४।३  
 वहीनरस्यैत् ७।४।८  
 य पदान्तात्प्रागैदौत् ७।४।५  
 द्वारादे ७।४।६  
 न्यप्रोघस्य केवलस्य ७।४।७  
 न्यङ्कोर्वा ७।४।८  
 न ऋस्वाङ्गादे ७।४।९  
 षादेरिति ७।४।१०  
 इञ् ७।४।११  
 पदस्वानिति वा ७।४।१२  
 प्रोष्ठमद्रा जाते ७।४।१३  
 अशाद्तो ७।४।१४  
 सुसर्वदाद्राद्भ्रस्य ७।४।१५  
 अमद्रस्य दिश ७।४।१६  
 प्राग्ग्रानाम् ७।४।१७  
 सङ्ख्याधकाम्या व्यस्यामाविनि ७।४।१८  
 मानसव सरस्याशाणकृलिनस्यानामि  
 ७।४।१९  
 अर्द्धात्परिमास्यानतोवात्वादे ७।४।२०  
 प्राद्वाहस्यैये ७।४।२१

एयस्य ७।४।२२  
 नञ् च्चत्रश्चरश्चकुशल्चनलिपुञ्चुवे  
 ७।४।२३  
 जङ्गलधेनुवलङ्गस्यात्तरपदस्य तु वा ७।४।२४  
 हृद्मगदि घो ७।४।२५  
 प्राचा नगरस्य ७।४।२६  
 अनुशतिकादीनाम् ७।४।२७  
 देवतानामात्वादौ ७।४।२८  
 आतो नेन्द्रहस्य ७।४।२९  
 सारदेशाकमैत्रेयभ्रौणहृत्थधै त्वहिरग्नयम्  
 ७।४।३०  
 वान्तमान्तिनमान्तितोऽन्तयान्तिथन्  
 ७।४।३१  
 विमन्तोर्णाष्ठेयसौ लुप् ७।४।३२  
 अन्ययूनो कन्वा ७।४।३३  
 प्रशस्यस्य अ ७।४।३४  
 वृद्धस्य च ष ७।४।३५  
 ज्यायान् ७।४।३६  
 षाटान्तिकयो साधने दौ ७।४।३७  
 प्रियस्थिरस्तिरोरुगुरुबहुलत्प्रदीर्घवृद्ध  
 वृन्दारकस्येननि च प्रास्थास्त्वावर  
 गरवहत्रभ्राघनर्षवृन्दम् ७।४।३८  
 पृथुमुदुभृशङ्कशहदपरिवृद्धस्य श्रुतौ र  
 ७।४।३९  
 बहोर्णाष्ठे मूय ७।४।४०  
 मूर्जुक्चेर्णस्य ७।४।४१  
 स्थुनदूरयुनहृस्वअप्रलुद्रस्यान्तस्यादेर्गुण  
 र्च नामि ७।४।४२  
 व्यन्तस्तरादे ७।४।४३  
 नैकस्वात्स्य ७।४।४४  
 दाण्डहास्ननोरायन ७।४।४५  
 दाशन आयनौ ७।४।४६  
 एय ङिहाशिन ७।४।४७  
 ईनेऽष्वाभनो ७।४।४८

इक्ष्वाकुराज ७।४।४९

यूनोऽके ७।४।५०

अनोऽस्ये वे ७।४।५१

अग्नि ७।४।५२

सयोगादिन ७।४।५३

नाथिद्विदधिवे शिरणिगणिन ७।४।५४

अनपत्ये ७।४।५५

उष्ट्रोलुंक् ७।४।५६

नक्षत्र ७।४।५७

जातौ ७।४।५८

अचर्मणो मनोऽस्ये ७।४।५९

हितनाम्नो वा ७।४।६०

नोऽपदस्य तद्धिते ७।४।६१

कणापिष्टयुमितैतलिज्जालिज्जलिशिल  
ण्डिशिलालिस्त्रज्जवारिपीठवर्षिष्क  
रसदनसुपर्ण ७।४।६२

बाहमनो विकारे ७।४।६३

चर्मद्युन कोशसकोवे ७।४।६४

प्रायोऽन्यस्य ७।४।६५

अनीनादप्यहोऽत ७।४।६६

विशतेस्तेर्दिति ७।४।६७

अर्णवर्गस्य ७।४।६८

अकद्रूपाण्डबोरुवर्णस्यैवे ७।४।६९

अत्यम्मुबोऽनू ७।४।७०

श्रुबोवर्णदोषिसुसशरवदकरमात्तरकस्ये  
तो लुक् ७।४।७१

असहृत्तप्रमे ७।४।७२

भृशामीश्याविच्छेदे द्वि प्राक्तमवादेः  
७।४।७३

नानावधारणे ७।४।७४

आधिकशानुश्रुते ७।४।७५

इतरइतमी समानां स्त्रीमाबप्रपने ७।४।७६

पूर्वप्रयमान्यतोऽतिशये ७।४।७७

। प्रोक्तोक्तनादपूरणे ७।४।७८

सामीप्येऽप्येऽप्यपरि ७।४।७९

वेष्टायाम् ७।४।८०

पुत्रादावेकस्य स्वादे ७।४।८१

इन्द्र वा ७।४।८२

रहस्यमयीदोषित्पुत्रान्तिपठनात्रप्रयोगे  
७।४।८३

लोकज्ञातेऽत्यन्तसाहचर्ये ७।४।८४

आवाधे ७।४।८५

न वा युग सदशे रिन् ७।४।८६

प्रियसुख चाङ्गुले ७।४।८७

वास्यस्य परेऽप्यन ७।४।८८

सम्बन्धस्याकोपबुद्धतेऽप्यप्यमान्यमादौ

३२२६-न्तपरच प्लुत ७।४।८९

मार्त्तने पयदिग ७।४।९०

त्यादे साकाङ्क्षस्याङ्गेन ७।४।९१

। क्षयायी प्रये ७।४।९२

चित्तीवाये ७।४।९३

प्रतिभ्रवनिष्ठह्यानुरयोगे ७।४।९४

विचारे पूर्वस्य ७।४।९५

ओम. प्रारम्भे ७।४।९६

हे प्रश्नाख्याने ७।४।९७

प्रश्ने च प्रतिपदन् ७।४।९८

दूरादामन्यस्य गुरुवैकोऽनन्त्योऽपि लृन्  
७।४।९९

हेहीच्छेधामेव ७।४।१००

अस्त्रीशूद्रे प्रत्यभिवादे भोगोत्रनाम्नो वा  
७।४।१०१

प्रश्नार्चाविचारे च सन्धेयसन्धेयस्य  
दिदुस्वरः ७।४।१०२

तयोर्वी ३२२६ संहितायाम् ७।४।१०३

पञ्चम्या निर्दिष्टे परस्य ७।४।१०४

सप्तम्या पूर्वस्य ७।४।१०५

षष्ठ्याऽन्त्यस्य ७।४।१०६  
 अनेकान्तः सर्वस्य ७।४।१०७  
 प्रत्ययस्य ७।४।१०८  
 स्थानीवाचनविधौ ७।४।१०९  
 स्वरस्य परे प्राञ्चिधौ ७।४।११०  
 न सन्धिडीयक्त्रिदीर्घासिद्धिधावरकलुकि  
 ७।४।१११  
 लुप्यञ्चुल्लेनत् ७।४।११२  
 विरोधामन्त ७।४।११३

सतम्या आदि ७।४।११४  
 प्रत्यय प्रकृत्यादे ७।४।११५  
 गौणो ह्यादि ७।४।११६  
 वृत्तगतिकारकस्यापि ७।४।११७  
 पर ७।४।११८  
 सन्धि ७।४।११९  
 आसन्नः ७।४।१२०  
 सम्बन्धिना सम्बन्धे ७।४।१२१  
 स्मर्थः पदविधि ७।४।१२२





## परिशिष्ट २

### प्राकृत हेमशब्दानुशासन सूत्रपाठ

#### प्रथम. पादः

अय प्राकृतम् ८।१।१  
 गृह्णम् ८।१।२  
 आर्षम् ८।१।३  
 दीर्घं ह्रस्वौ मियो वृत्तौ ८।१।४  
 पदयो सधिर्वा ८।१।५  
 न युवर्णस्यास्वे ८।१।६  
 पदोतो स्वरे ८।१।७  
 स्वरस्योद्बृत्ते ८।१।८  
 व्यादे ८।१।९  
 लुप् ८।१।१०  
 अन्त्य यजनस्य ८।१।११  
 न श्रुदो ८।१।१२  
 निदुर्वा ८।१।१३  
 सरेन्तरश्च ८।१।१४  
 क्रियामादविद्युत ८।१।१५  
 रो रा ८।१।१६  
 लुघो हा ८।१।१७  
 शरदादेत् ८।१।१८  
 दिक् प्रावृषा स ८।१।१९  
 आयुरप्सरसोर्वा ८।१।२०  
 ककुमो ह ८।१।२१  
 धनुषो वा ८।१।२२  
 मोनुस्वार ८।१।२३  
 वा स्वर मश्च ८।१।२४  
 ह-म-ण-नो व्यञ्जने ८।१।२५  
 वशादान्त ८।१।२६  
 व-वा-स्यादेर्ण-स्वोर्वा ८।१।२७

विशत्यादेर्लुक् ८।१।२८  
 मासादेर्वा ८।१।२९  
 वर्गेन्त्यो वा ८।१।३०  
 प्राकृत्-शरत्तरण्य पुत्रि ८।१।३१  
 स्नमदाम-शिरो-नम ८।१।३२  
 वाक्ष्य-वचनाया ८।१।३३  
 गुणाद्या क्लीब वा ८।१।३४  
 वमाञ्जल्याया क्रियाम् ८।१।३५  
 बाहोरात् ८।१।३६  
 अतो हो विसर्गस्य ८।१।३७  
 निष्प्रती ओत्परी माल्य स्थोर्वा ८।१।३८  
 आदे ८।१।३९  
 त्यदाद्यव्यायात् तस्वरस्य लुक् ८।१।४०  
 पदादपेर्वा ८।१।४१  
 इते स्वरात् तश्च द्वि ८।१।४२  
 लुप्त-य-र-व-श-य-सा श-य सा  
 दीर्घं ८।१।४३  
 अत समृद्ध्यादौ वा ८।१।४४  
 दक्षिणे ह ८।१।४५  
 ह-स्वप्नादौ ८।१।४६  
 पञ्जाङ्गार-ल्लोट वा ८।१।४७  
 मध्यम-कृतम द्वितीयस्य ८।१।४८  
 सप्तर्णे वा ८।१।४९  
 मयत्यद्वौ ८।१।५०  
 ईहरे वा ८।१।५१  
 ध्वनि-विध्वन्कार ८।१।५२  
 अन्त्र-लण्डित वा वा ८।१।५३  
 गव्य व ८।१।५४

प्रयने द-योर्वा ८११५५  
 शो णत्वेभिजादौ ८११५६  
 एचउय्यादौ ८११५७  
 दल्लुत्कर-पर्यन्ताभ्रये वा ८११५८  
 ब्रह्मचये चः ८११५९  
 तोन्तरि ८११६०  
 ओत्वञ्चो ८११६१  
 नमस्कारपरस्वरे द्वितीयस्य ८११६२  
 वापौ ८११६३  
 एनाउच्च ८११६४  
 नात्पुनर्यादाई वा ८११६५  
 बालाञ्चरण्ये लुक् ८११६६  
 वाच्ययोत्वातादावदातः ८११६७  
 घन्वृद्धेर्वा ८११६८  
 महाराष्ट्रे ८११६९  
 मासादिष्वनुस्वारे ८११७०  
 श्यामाके म. ८११७१  
 इ' सदादौ वा ८११७०  
 आचाय चोच्च ८११७३  
 ई' स्यान् खल्वाटे ८११७४  
 उ' सारना-स्तावके ८११७५  
 उद्गाधारे ८११७६  
 धार्चिवा यः श्रवणाम् ८११७७  
 एद् आद्ये ८११७८  
 द्वारे वा ८११७९  
 पारापते रो वा ८११८०  
 मात्रटि वा ८११८१  
 उदोद्गात्रे ८११८२  
 ओदाल्या पङ्क्तौ ८११८३  
 हस्व' संयोगे ८११८४  
 इत एद्वा ८११८५  
 किंनुके वा ८११८६  
 निरायाम् ८११८७

पथि-गुथिनी-प्रतिश्रुन्नुपिक हरिद्रा  
 विभीतके ष्वत् ८११८८  
 शिथिलेङ्गुदे वा ८११८९  
 तित्तिरौ र' ८११९०  
 र्तौ तो वाक्यादौ ८११९१  
 ईर्जिह्वा सिंह त्रिशद्विशतौ त्या ८११९०  
 लुकि निर ८११९३  
 द्विन्योषत् ८११९४  
 प्रयासीशौ ८११९५  
 युधि ष्टरे वा ८११९६  
 ओञ्च द्विधाङ्ग ८११९७  
 वा निक्षीरे ना ८११९८  
 हरीतक्यामीनोत् ८११९९  
 आत्स्मरीरे ८११९००  
 पानीयादाष्वत् ८११९०१  
 उर्ज्जमिं ८११९०२  
 ऊर्हानि विहीने वा ८११९०३  
 तीर्थे हे ८११९०४  
 एत्योयूषापीड विभीतक कीटरेट्टो  
 ८११९०५  
 नीड पीठे वा ८११९०६  
 उतो मुकुलादिष्वत् ८११९०७  
 बोपरी ८११९०८  
 गुणै के वा ८११९०९  
 इभ्रंजुयौ ८११९१०  
 पुरुषे रो. ८११९११  
 ई' छुते ८११९१२  
 ऊत्सुमग मुसले वा ८११९१३  
 अतुत्साहोसन्ने सच्छे ८११९१४  
 लुकि दुरो वा ८११९१५  
 ओत्संयोगे ८११९१६  
 कुट्टले वा हस्वञ्च ८११९१७  
 अद्भूतः सूत्रे वा ८११९१८

दुक्ते वा लक्ष द्वि० ८।१।११९  
 ईवोद्वयुडे ८।१।१२०  
 उभ्रं-हनूमत्कभ्युयनात्ने ८।१।१२१  
 मजूके वा ८।१।१२२  
 इदेती नूपुरे वा ८।१।१२३  
 ओत्कम्पाग्दी तूपीर-कूरर खूल-ताम्बूल  
 रुद्धवी मूल्ये ८।१।१२४  
 खूगा-नूपे वा ८।१।१२५  
 ऋतोत् ८।१।१२६  
 आत्कृशा-नृदुक-नृदुखे वा ८।१।१२७  
 इरुपादी ८।१।१२८  
 पृष्टे चानुत्तपदे ८।१।१२९  
 मसृग-मृगाङ्क-मृदु-मृङ्ग-पृष्टे वा  
 ८।१।१३०  
 उदरवादी ८।१।१३१  
 निवृत्त-वृन्दाके वा ८।१।१३२  
 वृषभे वा वा ८।१।१३३  
 गौणान्तवस्य ८।१।१३४  
 मातुरिडा ८।१।१३५  
 उदूदोन्मृषि ८।१।१३६  
 इदुती वृष्ट-वृष्टि-मृषह्-मृदङ्ग-नपृके  
 ८।१।१३७  
 वा वृहस्तौ ८।१।१३८  
 इदेदीद्वन्ते ८।१।१३९  
 रिः केवलस्य ८।१।१४०  
 शृणुर्धूमत्तृषी वा ८।१।१४१  
 द्यः क्षिप-यकसकः ८।१।१४२  
 आहते द्विः ८।१।१४३  
 अरिहंसे ८।१।१४४  
 लृव इलि बलुत्त-बलुन्ने ८।१।१४५  
 एत इद्रा वेदना-बपेद्य-देवर-केसरे  
 ८।१।१४६  
 ऊः स्तेने वा ८।१।१४७

ऐत एत् ८।१।१४८  
 इत्लैग्यव्यनैधरे ८।१।१४९  
 सैन्ने वा ८।१।१५०  
 अरदँत्यादी च ८।१।१५१  
 वैरादी वा ८।१।१५२  
 एघ देवे ८।१।१५३  
 उच्चैर्नाच-वैअः ८।१।१५४  
 इद्वैये ८।१।१५५  
 ओतोद्धान्योन्य प्रक्रोष्टातोय शिरोवेदना-  
 मनोहर-सरोद्वेक्षीश्वदः ८।१।१५६  
 ऊ सोच्छवाते ८।१।१५७  
 रायउ-आश्रः ८।१।१५८  
 औत ओत् ८।१।१५९  
 उल्सीन्दर्यादी ८।१।१६०  
 कीक्षेयके वा ८।१।१६१  
 अउः वीरादी च ८।१।१६२  
 आच्च गौरवे ८।१।१६३  
 नाभ्यावः ८।१।१६४  
 एत्त्वयोदशादी स्वरस्य सस्वरव्यञ्जनेन  
 ८।१।१६५  
 रयदिर-विषकिलायस्कारे ८।१।१६६  
 वा कदले ८।१।१६७  
 वेतः कर्मिकारे ८।१।१६८  
 अवी वैत् ८।१।१६९  
 ओत्पूतर-बदर-नवमालिका नवकलिका-  
 पूगच्छे ८।१।१७०  
 कुतूहलोदुखलोलुबले ८।१।१७१  
 आवापोवे ८।१।१७२  
 उच्चोपि ८।१।१७३  
 उमो निषन्वे ८।१।१७४  
 प्रावरणे अह्वाङ्क ८।१।१७५  
 स्वरादसंपुस्तस्यानादेः ८।१।१७६

क-व-च व-त-द-प-य-वा प्रायो लुक्  
 ८।१।१७७

यनुना-चानुगडा-कानुकातिमुक्ते  
 मोनुनास्तिकश्च ८।१।१७८

नानाभ्य ८।१।१७९

अन्गो यभ्रुति ८।१।१८०

कृञ्-कृञ्-कीले क खोपुष्पे ८।१।१८१

मरकत मदकले क कन्दुकेत्वादे ८।१।१८२

किगते चः ८।१।१८३

शीकरे म हौ वा ८।१।१८४

चन्द्रिकाया म ८।१।१८५

निष्प र्णटिक-चिकुरे हः ८।१।१८६

स-घ य घ भाम् ८।१।१८७

पृथके घो वा ८।१।१८८

शुद्धते सः कः ८।१।१८९

पुत्रागमागिन्योर्गो म ८।१।१९०

जगे न ८।१।१९१

उत्वे दुर्भग मुभगे व ८।१।१९२

खचित निशाचबोध सन्धौ वा ८।१।१९३

वटिने चो क्षो वा ८।१।१९४

दो ह ८।१।१९५

स्य शक्य कैटभे ठ ८।१।१९६

स्यिके लः ८।१।१९७

चपेग-पायै वा ८।१।१९८

दो ट ८।१।१९९

अङ्गोठे ह्यः ८।१।२००

निटरे हो वा रश्च डः ८।१।२०१

डो ल ८।१।२०२

वेनौ णे वा ८।१।२०३

दुच्छे तश्च ठौ वा ८।१।२०४

तपर तसर श्वरे टः ८।१।२०५

प्रत्यादौ डः ८।१।२०६

इवे वेवसे ८।१।२०७

गमिनाऽनुक्ते ण ८।१।२०८

रुदिते दिना ण ८।१।२०९

सतनौ र ८।१।२१०

अतसी सानवाहने ल ८।१।२११

पश्चिते वा ८।१।२१२

पीने वे ले वा ८।१।२१३

निस्तित वसति भरत कातर मातुलिङ्गे हः  
 ८।१।२१४

मेधि शिथि शिथिल प्रथमे यस्य ट

८।१।२१५

निशीथ पृथि-गोर्नो ८।१।२१६

दशन दण दग्ध दान्वा दण्ण दर दाह-

दम्भ दर्म कदन दोहदे दो वा ड

८।१।२१७

दद्य दहो ८।१।२१८

सर्वा गृद्धे र ८।१।२१९

कदल्यामद्रुमे ८।१।२२०

प्रदीपि दोहदे ल ८।१।२२१

कदम्बे वा ८।१।२२२

दीनौ घो वा ८।१।२२३

कदधिने व ८।१।२२४

ककुदे ह ८।१।२२५

निषधे घो ट ८।१।२२६

चौरधे ८।१।२२७

नो ण ८।१।२२८

बादौ ८।१।२२९

निम्ब-नामिते ल ण्ण वा ८।१।२३०

पो व. ८।१।२३१

पाटि-वद्य परिष-परिखा पनस-वारिमद्रेण.

८।१।२३२

प्रमूते व. ८।१।२३३

नीपानोडे मो वा ८।१।२३४

पापद्वौ रः ८।१।२३५

को भ हो ८।१।२३६  
 वो वं ८।१।२३७  
 विभिन्वा मं ८।१।२३८  
 कन्वे म यौ ८।१।२३९  
 वैग्मे भो व ८।१।२४०  
 विभमे मो टो वा ८।१।२४१  
 मन्मये वः ८।१।२४२  
 वाभिमन्वौ ८।१।२४३  
 भ्रमरे सो वा ८।१।२४४  
 आदेर्यो व ८।१।२४५  
 सुप्प्रत्ययपरे त ८।१।२४६  
 यथाया ल ८।१।२४७  
 वोत्तरीयानीय तीय-क्ये च्च ८।१।२४८  
 उयाया होकान्तौ वा ८।१।२४९  
 डाङ्-वौ वृत्तिपये ८।१।२५०  
 किरि-भेरे रा ङ् ८।१।२५१  
 पदीरो डा वा ८।१।२५२  
 करवीरे न ८।१।२५३  
 हरिद्रादौ ल ८।१।२५४  
 रथूने लो र. ८।१।२५५  
 लाहल-लाङ्गल-लाङ्गले वादेर्ण  
 ८।१।२५६  
 लगाटे च् ८।१।२५७  
 शबरे वो म ८।१।२५८  
 म्पन्-नीत्योर्वा ८।१।२५९  
 य-यो स ८।१।२६०  
 स्तुपाया ष्हो न वा ८।१।२६१  
 दश-पापानो ह ८।१।२६२  
 दिवसे स ८।१।२६३  
 हो धोनुस्वारान् ८।१।२६४  
 पद्-शमी-शाव सुधा-सप्तर्षीष्वादेश्च  
 ८।१।२६५  
 शिष्या वा ८।१।२६६

लुग भाजन-दनुज-राजकृते च सस्वरस्य  
 न वा ८।१।२६७

व्याकरण-प्राकारागते कगो ८।१।२६८  
 क्रिसलय-कालायस-द्वये य ८।१।२६९  
 दुर्गादेःपुटुम्बर-पादपतन-पादपीठेन्तर्दः  
 ८।१।२७०

याक्त्वात्त्रिंशत्तर्तमानावट-प्रानारक-  
 देवकुलैर्नमेवे वः ८।१।२७१

### द्वितीयः पादः

समुक्तस्य ८।२।१  
 शक-मुक्त दण्ड-रुग्-मृदुत्वे कौ वा ८।२।२  
 छ ख क्वचित् छ ह्यौ ८।२।३  
 ष स्क्वोर्नाम्नि ८।२।४  
 शुष्क स्कन्दे वा ८।२।५  
 क्ष्वेटकादौ ८।२।६  
 स्यागावहरे ८।२।७  
 स्तम्भे स्तो वा ८।२।८  
 य ठाक्पन्दे ८।२।९  
 रक्ते गो वा ८।२।१०  
 शुल्के क्लौ वा ८।२।११  
 कृत्ति चत्तरे च् ८।२।१२  
 त्यो चैत्ये ८।२।१३  
 प्रत्यूपे पश्च हो वा ८।२।१४  
 त्व द्य द्वा च् छ-ज क्षा क्वचित् ८।२।१५  
 वृक्षिके श्वेज्जुर्वा ८।२।१६  
 छोक्ष्यादौ ८।२।१७  
 क्षमाया कौ ८।२।१८  
 श्रुत्वे वा ८।२।१९  
 क्षग उत्सवे ८।२।२०  
 ह्रस्वात् थ्य अ-त्स-स्वामनिश्चले ८।२।२१  
 सामर्थ्योत्सुकोसवे वा ८।२।२२  
 स्पृहायाम् ८।२।२३  
 च य यौ च् ८।२।२४

अभिमन्यौ ज झौ वा ८२१२५  
 साध्वत् घ घ्या झ ८२१२६  
 ध्वजे वा ८२१२७  
 इन्धौ श ८२१२८  
 वृत्त-प्रवृत्त-मृत्तिका-रत्तन-कदाचित्ते ट  
 ८२१२९  
 तंश्याभूतादौ ८२१३०  
 वृन्ते ष्ट ८२१३१  
 ठोरिष-निसंस्थुले ८२१३२  
 स्त्यान-चतुर्थि वा ८२१३३  
 घस्यानुष्टेणसंदष्टे ८२१३४  
 र्ते ट ८२१३५  
 संमदं-वित्तिर्दि-विच्छर्द-च्छर्दि-कपर्द-  
 मर्दिते दंस्व ८२१३६  
 गर्दभे वा ८२१३७  
 कन्दरिका-भिदिपाले षड्. ८२१३८  
 स्तब्धे ठ-दौ ८२१३९  
 दग्ध-विदग्ध-वृद्धि-वृद्धे टः ८२१४०  
 अद्वद्धि-मूर्धोधेन्ते वा ८२१४१  
 न्नशोर्ण. ८२१४२  
 पञ्चशत्वञ्जदश-दत्ते ८२१४३  
 मन्यौ न्तो वा ८२१४४  
 स्वस्य योसमस्त-स्तम्बे ८२१४५  
 सवे वा ८२१४६  
 पर्यस्ते य-यौ ८२१४७  
 वीत्साहे यो हृक्ष रः ८२१४८  
 आशिलष्टे ल-धौ ८२१४९  
 चिह्ने ण्यो वा ८२१५०  
 मस्माःमनो पो वा ८२१५१  
 ह्न्वमो. ८२१५२  
 ध-स्वयोः फः ८२१५३  
 भीष्मे ध्नः ८२१५४  
 श्लेषमलि वा ८२१५५

ताम्राग्ने न्व ८२१५६  
 ह्यो मो वा ८२१५७  
 वा विह्वले वौ वध्व ८२१५८  
 बोध्वे ८२१५९  
 कश्मीरे म्मो वा ८२१६०  
 न्मो म ८२१६१  
 ग्नो वा ८२१६२  
 ब्रह्मवर्च-व्य-सौन्दर्य-शौण्डीयै यो र.  
 ८२१६३  
 धैयै वा ८२१६४  
 एत पर्यन्ते ८२१६५  
 आश्रयै ८२१६६  
 अतो रिभार-रिञ्ज-रीश्र ८२१६७  
 पर्यस्त-पर्याग-सौकुमार्यै ल्. ८२१६८  
 वृहस्पति-वनस्पत्यो सो वा ८२१६९  
 वाध्पे होश्रुणि ८२१७०  
 काशीनये ८२१७१  
 दु ल-दक्षिण-तीयै वा ८२१७२  
 कृष्माण्ड्या ष्मो ल्स्तु ण्यो वा ८२१७३  
 पश्म-श्म-ध्न-श्म-झा-ग्ः ८२१७४  
 स्म-श्न-ष्ण-श्न-ह-ह-ष्णा-ग्ः  
 ८२१७५  
 हो ल्हः ८२१७६  
 क-ग-ट-ट-त-द-प-घ-घ-स-  
 प-  
 प-  
 पामूर्ध्वं लुक् ८२१७७  
 अघो न-न-याम् ८२१७८  
 सर्वत्र-ल-व-रामचन्द्रे ८२१७९  
 द्वे रो न वा ८२१८०  
 घान्याम् ८२१८१  
 तीक्ष्णे णः ८२१८२  
 शो जः ८२१८३  
 मध्याह्ने ह ८२१८४  
 दशाहं ८२१८५  
 आदे. श्मभ्रु-श्मशाने ८२१८६

ओ हरिश्चन्द्रे ८२१८७  
 रात्री वा ८२१८८  
 अनादौ शेषादेशयोर्द्विन्द्वम् ८२१८९  
 द्वितीय-तुर्ययोश्चपरि पूर्व ८२१९०  
 दीर्घे वा ८२१९१  
 न दीर्घानुस्वारात् ८२१९२  
 र-होः ८२१९३  
 धृष्ट्युम्ने णः ८२१९५  
 षण्णिकारे वा ८२१९५  
 ह्यप्ते ८२१९६  
 समासे वा ८२१९७  
 तैलादौ ८२१९८  
 सेवादौ वा ८२१९९  
 शाङ्ग हात्पूर्वात् ८२१९००  
 क्षना-श्लघाघारत्नेन्त्यव्यञ्जनात् ८२१९०१  
 स्नेहाग्नियोर्वा ८२१९०२  
 प्लक्षे लात् ८२१९०३  
 ह-भी-हो-कृत्स्न-क्रिया-दिष्वास्विन्  
 ८२१९०४  
 शं-पं-तप्त-दञ्जे वा ८२१९०५  
 लात् ८२१९०६  
 स्याद्-म-य-चैत्य-चौर्यसमेषु यात्  
 ८२१९०७  
 स्वप्ने नात् ८२१९०८  
 सिग्धं वादितौ ८२१९०९  
 कृष्णे षणे वा ८२१९१०  
 उच्चाहंति ८२१९११  
 पद्म-उद्ग-मूर्ख-द्वारे वा ८२१९१२  
 तन्वीतुल्येषु ८२१९१३  
 एकस्वरे श्वः-स्वे ८२१९१४  
 व्यायामीत् ४२१९१५  
 करोण-वाराणस्यो र-गोर्व्यत्ययः ८२१९१६  
 आलाने लनोः ८२१९१७

अचलपुरे च-जोः ८२१९१८  
 महाराष्ट्रे ह-रोः ८२१९१९  
 हृदे ह-दो. ८२१९२०  
 हरिताले र-लोर्न वा ८२१९२१  
 लघुके ल-होः ८२१९२२  
 ललाटे ल-होः ८२१९२३  
 हो ह्योः ८२१९२४  
 स्तोत्रस्य योक्त्र-योद-येवाः ८२१९२५  
 दुहितृ-भगिन्योर्धूआ-शद्विभ्यौ ८२१९२६  
 वृक्ष-क्षिनयो रक्त्र-ञ्जूटौ ८२१९२७  
 वनिताया विनया ८२१९२८  
 गीनस्येपत क्रूरः ८२१९२९  
 स्त्रिया इत्थी ८२१९३०  
 धृतेर्दिहिः ८२१९३०  
 माञ्जरिस्य मञ्जर-ज्जरी ८२१९३२  
 वैद्वयस्य वेदलिभं ८२१९३३  
 एहि एत्तादे ददानीमः ८२१९३४  
 पूर्वस्य पुरिमः ८२१९३५  
 व्रसनस्य हित्य तट्टौ ८२१९३६  
 वृहस्पतौ बहो मयः ८२१९३७  
 मलिनोमय-शुक्ति-द्युनारन्ध-पदातेर्मह-  
 लावह-सि पि-उक्रा-उत्त-पार्वकं  
 ८२१९३८  
 दंष्ट्राया दादा ८२१९३९  
 बहिषो वाहि-वाहिरी ८२१९४०  
 अधसौ हेष्टुं ८२१९४१  
 मातृ-पितुः स्वसुः सिआ-ठी ८२१९४२  
 तिर्यचस्तिरिच्छिः ८२१९४३  
 गृहस्य घरोरतौ ८२१९४४  
 शीलाद्ययस्यैः ८२१९४५  
 क्वस्तुमत्तुण-दुआणाः ८२१९४६  
 इदमर्थस्य केरः ८२१९४७  
 पर-राक्षस्यां क-द्विषौ च ८२१९४८

पुष्पदरमदोज एच्चयः ८२।१४९

क्तेर्वः ८२।१५०

मंत्राज्ञादीनस्पेकः ८२।१५१

पयो षष्टेकट् ८२।१५२

ईयस्यात्मनो णयः ८२।१५३

त्वय टिमा तगौ वा ८२।१५४

अनद्धोटात्तैलम्य डेल्लः ८२।१५५

यच्चदेतदोतीरिचिअ एतल्लुक् च

८२।१५६

रदंकिमथ डेत्तिअ डेत्तिल डेह्हा

८२।१५७

कृत्सो हुत्तं ८२।१५८

आल्लिअल्लाल्ल वन्त मन्तेचेर मणा

मतोः ८२।१५९

सो दो तसो वा ८२।१६०

अनो हि-हन्याः ८२।१६१

वैकाहः सि मिअं ट्वा ८२।१६२

टिल्ल हुल्लो मवे ८२।१६३

स्त्रार्थे कश्च वा ८२।१६४

सो नवैकाद्वा ८२।१६५

उपरैः संख्याने ८२।१६६

भ्रुवो मया डमया ८२।१६७

अनेसो डिअम् ८२।१६८

मनाको न वा ड्यं च ८२।१६९

मिआड्वाल्लिअः ८२।१७०

सो दीरीन् ८२।१७१

स्वादेः सः ८२।१७२

विशुत्तव-वीतान्वल्लः ८२।१७३

गोगादयः ८२।१७४

अव्ययम् ८२।१७५

तं वाक्योपन्यासे ८२।१७६

आम अम्पुत्तमे ८२।१७७

गवि वैपरीत्ये ८२।१७८

पुणदत्त कृतकरो ८२।१७९

इन्दि विपाद विस्मन पश्चात्तान-निधय

सत्ये ८२।१८०

इन्द च गृहागार्थे ८२।१८१

मित्र मित्र विव इव व विअ इवार्थे वा

८२।१८२

जेग तेग ल्छरो ८२।१८३

णइ चेअ निअ च्च अवधारो

८२।१८४

बले निर्धारण निधययोः ८२।१८५

किरेर हिर किलार्थे वा ८२।१८६

णर केरले ८२।१८७

आनन्तये णवरि ८२।१८८

अयाहि निवारो ८२।१८९

अण णाई नञ्थे ८२।१९०

माई मार्ये ८२।१९१

इद्धी निर्वेदे ८२।१९२

वेत्थे मय वारण विपादे ८२।१९३

वेत्त च आमन्त्रो ८२।१९४

मानि हला हले सरया वा ८२।१९५

दे संशुलीकरणे च ८२।१९६

हुं दान पृच्छा-निवारो ८२।१९७

हु खु निधय विवर्क-संभावन विस्मये

८२।१९८

ऊ गश्चिअ विस्मय-सूचने ८२।१९९

थू कुत्तायाम् ८२।२००

रे अरे संमापण-रतिकलहे ८२।२०१

हरे चेषे च ८२।२०२

ओ सूचना पश्चात्तापे ८२।२०३

अव्वो सूचना दुःख संमापणाराध-

विस्मयानन्दादर मय-खेद-विपाद-

पश्चात्तापे ८२।२०४

अइ संभावने ८२।२०५



बणे निश्चय विकल्पानुक्रम्ये च ८२२०६  
 मणे विमर्शे ८२२०७  
 अम्मो आश्रये ८२२०८  
 स्वयमोथे अप्पणो न वा ८२२०९  
 प्रत्येकमः पाट्टिकं पाट्टिएकं ८२२१०  
 उअ पश्य ८२२११  
 इहरा इतरया ८२२१२  
 एकसरिअं झगिति संप्रति ८२२१३  
 मोरउल्ला मुधा ८२२१४  
 दरार्थाल्ये ८२२१५  
 किणो प्रश्ने ८२२१६  
 इ-जे राः पादपूरणे ८२२१७  
 व्यादयः ८२२१८

### तृतीयः पादः

वीपयास्पादेवोप्पये स्वरे मो वा ८२२१९  
 अतः सेडोः ८२२२  
 वैतत्तदः ८२२३  
 जस्-शसोर्लुक् ८२२४  
 अमोस्य ८२२५  
 टा-आमोर्णः ८२२६  
 मिसो हि हिं हिं ८२२७  
 डसेस्-त्तो-दो-दु-दि-हिन्तो-सुक् :  
 ८२२८  
 म्यसस्-त्तो दो दु हि हिन्तोसुन्तो ८२२९  
 डसः स्मः ८२३०  
 डे म्नि डेः ८२३१  
 जस्-शस्-डसि-त्तो-दो-दामि दीर्घः  
 ८२३२  
 म्यासि वा ८२३३  
 टाण शस्येत् ८२३४  
 मिस्यस्सुपि ८२३५  
 इदुतो दीर्घः ८२३६  
 चट्टरो वा ८२३७

लुप्ते शसि ८२३८  
 अक्लीवे औ ८२३९  
 पुंसि जसो डउ डओ वा ८२४०  
 वोतो डवो ८२४१  
 जस-शसोर्णो वा ८२४२  
 डसि-डसोः पुं-क्लीवे वा ८२४३  
 टो णा ८२४४  
 क्लीवे स्वान्म् संः ८२४५  
 जस्-शस ई-ई-णयः सप्राग्दीर्घाः  
 ८२४६  
 ब्रियामुदोतो वा ८२४७  
 ईतः संश्वा वा ८२४८  
 टा-डस्-टेरदादिदेद्वा तु डसेः ८२४९  
 नात आत् ८२५०  
 प्रत्यये डीर्ण वा ८२५१  
 अजातेः पुंसुः ८२५२  
 किं-यत्तदोस्यमामि ८२५३  
 छाया-हरिद्रयोः ८२५४  
 स्वसादेर्डा ८२५५  
 हस्त्वोमि ८२५६  
 नामन्व्यात्सी मः ८२५७  
 डो दीर्घो वा ८२५८  
 श्रुतोद्वा ८२५९  
 नाम्न्यरं वा ८२६०  
 वाप ए ८२६१  
 ईदूतोर्हस्वः ८२६२  
 किरः ८२६३  
 श्रुतामुदस्यमौसु वा ८२६४  
 आरः स्यादौ ८२६५  
 आ अरा मातुः ८२६६  
 नाम्न्यरः ८२६७  
 आ औ न वा ८२६८  
 रावः ८२६९

जसु-शत-सि-सा णो ८३१०  
 यो णो ८३१५१  
 इंस्य णा-णो-हो ८३१५२  
 रणममामा ८३१५३  
 इद्धिस्मयाम्मुपि ८३१५४  
 आनस्य टा-डसि-रसु सणाणोष्वण  
 ८३१५५  
 पुष्वन भागो रात्रवच ८३१५६  
 आननगो णिमा णरआ ८३१५७  
 अत सदीरेड्ढंठ ८३१५८  
 चे सिं-म्मि-त्या ८३१५९  
 न वानिदमेतदो णि ८३१६०  
 आमा वेसि ८३१६१  
 किंत्तुण्ण डस ८३१६२  
 किंत्तुण्णया डस ८३१६३  
 ईड्ढय स्या से ८३१६४  
 हेणोह डाना हआ काले ८३१६५  
 डत्तेग्हा ८३१६६  
 तदो हो ८३१६७  
 किमो विगो-होती ८३१६८  
 इदमेतकि-यत्तुण्णयथो ८३१६९  
 तदो ण स्यादो वचित् ८३१७०  
 किम वज्ज-तगोअ ८३१७१  
 इदम इम ८३१७२  
 पु-त्रियोन वायमिमिआ सौ ८३१७३  
 सिं-सुओरत् ८३१७४  
 हेमैण ह ८३१७५  
 न य ८३१७६  
 णेणु-वस्य-मिसि ८३१७७  
 अणेणु ८३१७८  
 क्खीव स्वमदमिगमो च ८३१७९  
 किम किं ८३१८०  
 वेड-तदेतदो वसाम्या से-सिनी  
 ८३१८१

। वैतदो वतेरत्तो चाहे ८३१८२  
 त्य च तस्य लुक ८३१८३  
 एरदीती म्मी वा ८३१८४  
 वैसेणमिगमा सिना ८३१८५  
 तदश्च त सावणीव ८३१८६  
 वादसो दस्य होनोदाम् ८३१८७  
 मु स्यादो ८३१८८  
 म्मावदेओ वा ८३१८९  
 युष्मदस्त तु तुव तुह तुम सिना  
 ८३१९०  
 भे तुम्भे तुञ्ज तुह तुग्हे उग्हे लसा  
 ८३१९१  
 त तु तुम तुन तुह तुमे तुए अमा  
 ८३१९२  
 वा तुञ्ज तुम्भे तुग्हे उग्हे भे ससा  
 ८३१९३  
 भे दि दे त तइ तए तुम तुमइ तुमए  
 तुमे तुमाइ य ८३१९४  
 भे तुम्भेहि उग्गेहि उग्गेहि तुग्गेहि  
 उग्गेहि मिसा ८३१९५  
 तइ-तु-तुम-तुह-तुम्मा वसौ  
 ८३१९६  
 तुग्हे तुम्भे तदिन्तो वसिना ८३१९७  
 तुम्भे-तुग्गेहोग्गेहा म्यसि ८३१९८  
 तइ-तु-ते तुग्हे तुह तुह तुव तुम-तुमे तुमो  
 तुमाइ दि दे इ ए तुम्भोम्भोवहा  
 वसा ८३१९९  
 तु वो भे तुम्भे तुम्भे तुम्माण तुवाण तुमाण  
 तुहाण उग्हाण आमा ८३१९००  
 तुमे तुमए तुमाइ तइ तए सिना ८३१९०१  
 तु तुव तुम तुह तुम्मा हो ८३१९०२  
 मुपि ८३१९०३  
 म्भो ग्हे वसौ वा ८३१९०४

अस्मदो म्मि अग्नि अग्नि हं अहं अर्यं  
 सिना ८३११०५  
 अम्ह अम्हे अम्हो मो वयं मे जसा  
 ८३११०६  
 ये णं मि अग्नि अम्ह मम्ह मममं मिमं  
 अहं अमा ८३११०७  
 अम्हे अम्हो अम्ह ये शसा ८३११०८  
 मि मे ममं ममए ममाइ मइ मए  
 मयाइ ये टा ८३११०९  
 अम्हेहि अम्हाहि अम्ह अम्हे ये मिसा  
 ८३१११०  
 मद मम मह-मज्जा ढसी ८३११११  
 ममाम्हो म्यसि ८३१११२  
 मे मह मम मह मह मज्ज मज्ज अम्ह  
 अम्ह ढसा ८३१११३  
 ये णो मज्ज अम्ह अम्हं अम्हे अम्हो  
 अम्हाण ममाण महाण मज्जाण  
 धामा ८३१११४  
 मि मह ममाइ मए मे जिना ८३१११५  
 अम्ह मम-णह मज्जा ढौ ८३१११६  
 सुवि ८३१११७  
 त्रेती तृतीयादौ ८३१११८  
 द्वेदौ वे ८३१११९  
 दुवे दोगि वेणि न जसु शसा ८३११२०  
 त्रेस्तिथिः ८३११२१  
 चतुरश्रत्तारो चउरो चत्तारि ८३११२२  
 संख्याया आमो ण्ह ण्हं ८३११२३  
 शेषेदन्तवत् ८३११२४  
 न दीर्घो णो ८३११२५  
 दसेल्लुक् ८३११२६  
 म्यसथ हिः ८३११२७  
 डेडैः ८३११२८  
 एत् ८३११२९  
 द्विवचनस्य बहुवचनम् ८३११३०

चतुर्थ्या पठौ ८३११३१  
 तादर्घ्यङेर्वा ८३११३२  
 वधाद्वाइश्च वा ८३११३३  
 षचिद् द्वितीयादेः ८३११३४  
 द्वितीया तृतीययोः सप्तमी ८३११३५  
 पञ्चम्यास्तृतीया च ८३११३६  
 सप्तम्या द्वितीया ८३११३७  
 क्यङोर्यल्लुक् ८३११३८  
 त्यादीनामद्यन्यस्याद्यस्येचेचौ ८३११३९  
 द्वितीयस्य सि से ८३११४०  
 तृतीयस्य मि. ८३११४१  
 बहुष्वान्यस्य न्ति न्ते इरे ८३११४२  
 मध्यमस्येत्या इचौ ८३११४३  
 तृतीयस्य मो-मु-मा ८३११४४  
 अत एवैच् से ८३११४५  
 सिनास्ते सिः ८३११४६  
 मि मो-मैर्हि ङ्हो ङ्हा वा ८३११४७  
 अत्यिस्त्यादिना ८३११४८  
 शोरदेदावावे ८३११४९  
 गुर्वीदेरविर्वा ८३११५०  
 भ्रमेराडो वा ८३११५१  
 लुगावी क्त माव कर्मसु ८३११५२  
 अदेल्लुक्यादेरत आः ८३११५३  
 मौ वा ८३११५४  
 इच्च मो-मु-मे वा ८३११५५  
 क्ते ८३११५६  
 एच्च क्त्वा लुम् तथ्य मदिव्यल्लु  
 ८३११५७  
 वर्तमाना पञ्चमी शतृषु वा ८३११५८  
 ज्जा ज्जे ८३११५९  
 ईअ-इज्जौ क्यस्य ८३११६०  
 दधि वचेर्होस हुच्च ८३११६१  
 सी ही हीअ मूतार्थस्य ८३११६२

व्यञ्जनादीभः ८।३।१६३  
 तेनास्तेरास्यहेसी ८।३।१६४  
 ज्जात्सतम्पा इवां ८।३।१६५  
 मविष्यति हिरादिः ८।३।१६६  
 मि-मो-मु-मे स्वा हा न वा ८।३।१६७  
 मो-मु-माना हिस्ता हिरया ८।३।१६८  
 मे. स्सं ८।३।१६९  
 कृ-दो ह ८।३।१७०  
 भ्रु-गमि-घदि-विदि-टशि-मुचि-वचि-  
 ठिदि-भिदि-भुजा सोच्छं गच्छ  
 रोच्छ वेच्छं दच्छं भोच्छं वोच्छं  
 छेच्छं भेच्छं भोच्छं ८।३।१७१  
 सोच्छादय इजादियु हिलुक् च वा  
 ८।३।१७२  
 दु सु मु विघ्यादिष्वेकमिस्त्रयाणाम्  
 ८।३।१७३  
 सोर्हिर्वा ८।३।१७४  
 अत इवजस्विज्जहीन्जे- लुको वा  
 ८।३।१७५  
 बहुषु न्तु ह मो ८।३।१७६  
 वर्तमाना-मविष्यन्त्योश्च प्ज ज्ञा वा  
 ८।३।१७७  
 मध्ये च स्वरान्ताद्वा ८।३।१७८  
 क्रियातिपत्ते ८।३।१७९  
 न्त-भाणौ ८।३।१८०  
 राजानशः ८।३।१८१  
 ई च त्रियाम् ८।३।१८२  
**चतुर्थः पादः**  
 इदितो वा ८।४।१  
 क्येर्ज्ज-र-पञ्जरोप्पाल-पिसुण-संघ-  
 बोल्ल-चव-जम्भ-सीस-साहाः  
 ८।४।२  
 दु खे गिञ्जर ८।४।३

जुगुप्सेमुण-दुगुञ्ज-दुगुञ्जाः ८।४।४  
 कुमुक्षि-वीज्योर्णारिव-वोप्यौ ८।४।५  
 घ्या-मोक्षा-मौ ८।४।६  
 जो जाण-भुणौ ८।४।७  
 उदो घ्मो घुमा ८।४।८  
 भ्रदो धो पह ८।४।९  
 पिबेः निञ्ज-उल्ल-यह-घोट्टाः ८।४।१०  
 उद्वातेरोरुम्मा वसुआ ८।४।११  
 निद्रातेरोहीरोहौ ८।४।१२  
 आप्रोराइयः ८।४।१३  
 स्नातेरन्भुत्तः ८।४।१४  
 सम. सत्य खाः ८।४।१५  
 स्थथा-थक्क-चिट्ट-निरप्पाः ८।४।१६  
 उदष्ट-कुक्कुरौ ८।४।१७  
 म्लेर्वा-प-वायौ ८।४।१८  
 निर्मो निम्माण-निम्मवौ ८।४।१९  
 ज्ञेर्णिञ्जरो वा ८।४।२०  
 छदेणेषुम-नूम-सन्नुम-ठक्कौम्वाल-  
 पव्वालाः ८।४।२१  
 नित्रियत्योर्णिहोडः ८।४।२२  
 दूडो दूम. ८।४।२३  
 घवलेदुमः ८।४।२४  
 तुलेरोहाम. ८।४।२५  
 विरिचेरोल्लुङ्गोल्लुण्ड-पहहयाः ८।४।२६  
 तेडराहोड-विहोडौ ८।४।२७  
 मिश्रैर्वावाल-मेल्लौ ८।४।२८  
 उद्धलेगुण्टः ८।४।२९  
 भ्रमेस्तालिअय-त्तमादौ ८।४।३०  
 नरोर्विउड-नासव-हारव-विप्पगाल-  
 पलावाः ८।४।३१  
 हयोर्दाव दंस-दक्कवाः ८।३।३२  
 उद्धटेदुगः ८।४।३३  
 स्पृहः सिहः ८।४।३४

संभावेरासंघ ८।४।३५

उन्नमेहायंघोलाल-गुलुगुञ्जोपेलाः

८।४।३६

प्रस्यापेः पट्टर पेण्डवौ ८।४।३७

पिन्नपेर्बोकातुष्ठी ८।४।३८

अपैरल्लिव चन्नुप-यामाः ८।४।३९

यापेर्जवः ८।४।४०

प्लावेरोमाल वन्वाली ८।४।४१

दिकोशोः पक्खोडः ८।४।४२

रोमन्धेरोमाल वगोलौ ८।४।४३

कमेर्गिहुव. ८।४।४४

प्रकारेणुं वः ८।४।४५

कम्पेर्दिञ्जोलः ८।४।४६

आरोपेर्वल. ८।४।४७

दोले रङ्गोलः ८।४।४८

रञ्जे रावः ८।४।४९

घटेः परिवाहः ८।४।५०

वेष्टेः परिमाल ८।४।५१

क्रियः किणो वेस्तु क्के च ८।४।५२

मियो मा वीहौ ८।४।५३

आलीडोल्ली ८।४।५४

निलीगोर्णिलीअ-गिलुक्क-गिरिग्व लुक्क

लिक्क-लिहकाः ८।४।५५

पिलीडेर्विरा ८।४।५६

रुते रुञ्ज रुण्ठी ८।४।५७

भुटेर्हणः ८।४।५८

धूगोर्धुवः ८।४।५९

मुवेर्हो हुव हवाः ८।४।६०

अविति हुः ८।४।६१

पृयक् रपष्टे गिबडः ८।४।६२

प्रमौ हुप्पो वा ८।४।६३

छे हुः ८।४।६४

कृगोः कुणः ८।४।६५

कारेक्षिते गिभारः ८।४।६६

निग्ग्मादप्टम्भे गिट्टुह-संदापं ८।४।६७

अभे वाक्कः ८।४।६८

मन्युनौष्ठमाल्लिये गिञ्जोलः ८।४।६९

दौयिल्व लम्बने पयल्लः ८।४।७०

निष्पाताञ्जोटे गीलुञ्जः ८।४।७१

लुरे कम्मः ८।४।७२

चाटौ गुल्लः ८।४।७३

स्मरेर्हर हर-भर मल लट-विग्हर-मुमर-

पयर पग्हुहाः ८।४।७४

विरमुः पग्हुस विग्हर-वीसरः ८।४।७५

व्याहृगेः कोक्क पोक्कौ ८।४।७६

प्रसरेः पयल्लोवेल्ली ८।४।७७

महमहो गन्धे ८।४।७८

निरसरेर्पोहर-नील घाह-वरहाडाः ८।४।७९

जाग्ग्जेर्जगाः ८।४।८०

व्याप्रोपाअड्ड ८।४।८१

संशुगेः साहर साहट्टौ ८।४।८२

आहडेः सत्तामः ८।४।८३

प्रहृगेः सारः ८।४।८४

अवत्तरेरोह-ओरसौ ८।४।८५

शकेश्चय तर तीर-पाराः ८।४।८६

पक्करयक्कः ८।४।८७

श्लायः सलहः ८।४।८८

खवेर्वेअडः ८।४।८९

पचेः सोह्ल पडलौ ८।४।९०

मुचेरल्लुहावेहेह-मेल्लोस्सिक्क-रेअव-

गिल्लुञ्ज-अंसाहाः ८।४।९१

दु.खे गिञ्जलः ८।४।९२

वञ्जेवेह्व-वेलव-जूरवोमञ्जा ८।४।९३

रचेरुगाहावह-विट्टिड्डाः ८।४।९४

समारचेरुवहत्थ सारव समार-केलायाः

८।४।९५

तिचे सिद्ध सिम्मी ८४१६  
 प्रच्छ पुच्छ ८४१७  
 गङ्गुक्क ८४१८  
 वृषे दिक्क ८४१९  
 रागरन-छ-सह-रीर-रेहा  
 ८४१२०

मस्त्रराउडु-गिउडु-बुहु खुमा ८४१२०१  
 पु-रासोल-बमानौ ८४१२०२  
 लस्त्रबोह ८४१२०३  
 निरोसुक्क ८४१२०४  
 मृत्तुगुम सुच्छ-पुच्छ-पुस-कुस-पुस-  
 लुह हुल-रासाण ८४१२०५  
 मज्जवेमथ-मुसुमूर-मूर-मूर-सूह-विर-  
 पारिञ्ज-करञ्ज-वीरका ८४१२०६  
 अनुत्र-पडिअमा ८४१२०७  
 अञ्जे विटव ८४१२०८  
 युषो जुञ्ज-जुञ्ज-जुप्पा ८४१२०९  
 मुचो मुञ्ज-जिम-जम-कन्नाण्ड-चमड-  
 समान-चहा ८४१२१०  
 वापन कम्मव ८४१२११  
 घटोड ८४१२१२  
 समो गज ८४१२१३  
 हासन रफुटुंर ८४१२१४  
 मग्गेभिञ्ज-विञ्जम-विञ्जित्त-रीड-  
 विविडिक्का ८४१२१५  
 तुहेतोड तट्ट-खुट्ट-खुडोकखुडोल्लुक्क-  
 लिट्टुक्क-लुक्कोल्लुरा ८४१२१६  
 घूर्णे धुन-धोल-धुम्म-पहल्ला ८४१२१७  
 विवुवेहेस ८४१२१८  
 कथेरट्ट ८४१२१९  
 अन्यो गण ८४१२२०  
 मन्यधुंठ-विरोलौ ८४१२२१  
 हादेरव अञ्ज ८४१२२२

ने सदो मज्ज ८४१२२३  
 गडेट्टुंहाव-गिच्छल्ल गिच्छल्ल-गिक्क-  
 गिल्लुर-ल्लुरा ८४१२२४  
 आणा ओअन्दोहालौ ८४१२२५  
 मृदो मल्ल-मठ-परिवट्ट-उडु-चडु-  
 मडु-पत्ताडा ८४१२२६

स्मदेशुल्लुल्ल ८४१२२७  
 जतर पदेवंच ८४१२२८  
 विसवदेविअट्ट-विलोट्ट-पसा ८४१२२९  
 शदो सड-पक्खानौ ८४१२३०  
 आकन्देणीहर ८४१२३१  
 खिदेचूर-निस्सुरौ ८४१२३२  
 कथेरत्तयत्त ८४१२३३  
 निपधेहेक्क ८४१२३४  
 कुधेचूर ८४१२३५  
 जनो जा-जम्मी ८४१२३६  
 तन्नेस्त-उडु-तडुव-विरल्ला ८४१२३७  
 वृपस्थिय ८४१२३८  
 उअसपेरल्लिअ ८४१२३९  
 सउपेसंङ्ग ८४१२४०  
 व्यापेरोअमा ८४१२४१  
 समाप समान ८४१२४२  
 सिपगल्लथाडुक्क-सोळ्ळ-पेल्ल-पोल्ल-  
 छुह-हुत्त-परी-धत्ता ८४१२४३  
 उअिअगुंलगुंओत्थघाल्लत्थोमुत्तोसिअ  
 कक-हक्कत्ता ८४१२४४  
 आअपगलि ८४१२४५  
 स्वपे कनवस-ल्लिअ-लोटा ८४१२४६  
 वेपेराय बायञ्जौ ८४१२४७  
 विल्लपेसंङ्ग-वडवडौ ८४१२४८  
 लिपो लिप ८४१२४९  
 गुणविर-णडौ ८४१२५०  
 कपोवडौ पि ८४१२५१

प्रदीपेस्ते अव-सदुम-सधुक्वान्मुत्ता

८४११५२

सुमे समाव ८४११५३

सुम खतर-पट्टुहो ८४११५४

आढो रमे रम्म-द्वौ ८४११५५

उदानम्मेर्द्ध-रुचार-वेत्ता

८४११५६

अवेवृम्मो जम्मा ८४११५७

भाराक्रान्ते नमेर्गिमुट्ट ८४११५८

विभ्रमेर्गिन्वा ८४११५९

आक्रमेरोहावोत्पारन्हुन्दा ८४११६०

भ्रमेर्गिरिदिल्ल-दुम्बुल्ल-दण्डल्ल-

चक्कम्म-मम्मड-ममड ममाड-

तल-अष्ट-क्षष्ट-क्षन्न-नुम-गुम-

एम-कुस-दुम-दुस-परी-परा

८४११६१

गनेरई-अरञ्जागुवञ्जावञ्जोक्कु

साक्कुस-पञ्चडु-रञ्जन्द-गिम्मई-

णी-पीग-पीलुक्क-पदअ-रम्म-

परिअल्ल-चोल-परिअलगिरिमार-

गिवहावसेहावहरा ८४११६२

आत्ता आहिपच्चुअ ८४११६३

समा अमिड ८४११६४

अम्यालोम्मत्त ८४११६५

प्रत्पाडा पलोट्ट ८४११६६

गमे पडिसा-परिसामौ ८४११६७

रमे सलुडु-खेड्डोम्माव-किलिडिच्च-

कोट्टुम-मोट्टाय-पीसर-वेन्ना

८४११६८

पूरेरम्माडाग्वोद्धुमाहुमाहिरेमा

८४११६९

स्वरस्तुवर-जअडौ ८४११७०

त्पादियत्रस्तूर ८४११७१

सुरोत्पादौ ८४११७२

छर खिर-हर-रञ्जर-पञ्चड-गिच्च-

गिन्दुआ ८४११७३

उच्छल उत्यन्त ८४११७४

निगलेस्तिप्प-गिन्दुहा ८४११७५

दलि-क्क्योर्विसट्ट-क्करी ८४११७६

भरो पिड-पिट्ट-कुड-एट्ट-कुक्क-

सुन्ना ८४११७७

नशेरिणास-गिवहावसेह-पडिसा-

सेहावहरा ८४११७८

अवात्तागो वास ८४११७९

सदिरेरप्पाहः ८४११८०

दसो निअञ्जापेञ्जाक्कञ्जाक्क-

क्कञ्ज-सक्क-देक्कौ-अक्कवाक्कवा

वअक्क-पुलोअ-पुल्लअ निआक्-

आस-गता ८४११८१

सृष्टा पास-पस-परिस-उिव-

उिहाल्लुक्कालिहा ८४११८२

प्रक्करो रिअ ८४११८३

प्रान्मृय-मुपोर्हुँ ८४११८४

पिदिर्गिन्ह-गिरिणास-गिरिण्ण-राञ्ज-

चड्डा ८४११८५

मपेसुक्क ८४११८६

हृपे कट्ट-साअड्डाञ्जानञ्जाक्कञ्जा

८४११८७

असाक्कवोड ८४११८८

गवेपेदुण्डुल्ल-दण्डोल-गनेस-रत्ता

८४११८९

शिल्पे सामग्गाक्कास-परिअन्ता

८४११९०

अद्वेषोपड ८४११९१

आड्डेराहाहिल्लहाहिल्ल-क्क-क्क-क्क-

मह-सिह-दिनुन्ना ८४११९२

प्रतीक्षेः सामय-विहीर-विरमालाः

८४११९३

तत्तेस्तच्छ-चच्छ-रम्-रम्माः ८४११९४

विक्रसेः कोभास-बोसट्टौ ८४११९५

हस्तेर्गुञ्जः ८४११९६

सत्तेल्हंस-डिम्मौ ८४११९७

त्रसेर्टर-बोज्ज-वज्जा. ८४११९८

न्यसो णिम-गुमौ ८४११९९

पर्यसः पणोट्ट-वज्जट्ट-पल्लहत्याः ८४१२००

नि.श्वसेर्हंसः ८४१२०१

उल्लसेरुसलोसुम्म-णिल्लस-पुलआअ-

गुञ्जोहाराभाः ८४१२०२

मात्तेमिठः ८४१२०३

प्रतेर्षिस ८४१२०४

अवाद्राहेर्वाहः ८४१२०५

आरुहेश्वड-वल्लगौ ८४१२०६

मुहेर्गुम्म-गुम्मडौ ८४१२०७

दरेरहिउल्लालुङ्गौ ८४१२०८

ग्रहो वल-भोगह-इर-पङ्ग-निरुवाराहि-

पच्चुभा ८४१२०९

क्त्वा-वुम्-तञ्जेषु धत् ८४१२१०

वचो वोत् ८४१२११

रुद-मुज-मुचा तोन्त्यस्य ८४१२१२

दृश्यस्तेन हः ८४१२१३

आ कृगो भूत-मविष्यतोश्च ८४१२१४

गमिष्यमाहा छः ८४१२१५

छिदि-मिदो न्दः ८४१२१६

युध-वुध-श्व ऋष षिष-मुहाः ८४१२१७

रघो न्घ-म्मौ च ८४१२१८

सद-पतोर्डः ८४१२१९

क्य वधां दः ८४१२२०

वेशः ८४१२२१

समो स्तः ८४१२२२

वोद ८४१२२३

स्विदा व्नः ८४१२२४

प्रज नृत मदा च्च ८४१२२५

रुद नमोर्व ८४१२२६

उद्विजः ८४१२२७

खाद घावोर्लुक् ८४१२२८

सुजो रः ८४१२२९

शकादीना द्वित्वम् ८४१२३०

रुफुटि-चले ८४१२३१

प्रादेर्मालेः ८४१२३२

उवर्णस्याव ८४१२३३

श्रुवर्णस्यारः ८४१२३४

वृषादीनामरि ८४१२३५

शषादीना दीर्घ ८४१२३६

युवर्णस्य गुणः ८४१२३७

स्वराणा स्वराः ८४१२३८

यञ्जनाददन्ते ८४१२३९

स्वरादनतो वा ८४१२४०

चि जि श्रु हु-स्तु लृ पू धूर्गा णो ह्रस्वश्च

८४१२४१

न वा कर्म मावेन्वः कस्य च लुक् ८४१२४२

म्मश्चे ८४१२४३

हन्वन्नोन्त्यस्य ८४१२४४

म्मो दुह लिह-वह-रुधामुच्यत. ८४१२४५

दहो ज्ञः ८४१२४६

बन्धो न्यः ८४१२४७

समनूपाद्रुधेः ८४१२४८

गमादीना द्वित्वम् ८४१२४९

हृ कृ त् ज्ञामीरः ८४१२५०

अर्जोर्द्वित्वम् ८४१२५१

शो णन्व णञौ ८४१२५२

व्याहृगेर्णाहिय ८४१२५३

आरभेराट्ठम् ८४१२५४

स्लिह सिचो. सिष्य ८४१२५५

प्रधेष्ण ८४१२५६

स्युशेरिठ्ठम् ८४१२५७

केनाफ्फुग्गादयः ८४१२५८



घातवोर्षान्तरेणि ८।४।२५९  
तो दोनादौ शौरसेन्यामयुक्तस्य ८।४।२६०  
अधः क्वचित् ८।४।२६१  
वादेस्तावति ८।४।२६२  
आ आमन्थे भौ वेनो नः ८।४।२६३  
मौ वा ८।४।२६४  
भवद्गवतो ८।४।२६५  
न वा यो म्यः ८।४।२६६  
थो घ ८।४।२६७  
इह हचोर्हस्य ८।४।२६८  
भुवो भ ८।४।२६९  
पूर्वस्य पुरवः ८।४।२७०  
वाव इय दृणौ ८।४।२७१  
कृत्नामो इहुअ ८।४।२७२  
दिरिचेचो ८।४।२७३  
अतो देध ८।४।२७४  
मदिष्यति स्मिः ८।४। ७५  
अतो वसेर्हादो हाद् ८।४।२७६  
इदानीमो दाणि ८।४।२७७  
तस्मात्ताः ८।४।२७८  
मोन्त्याणो वेदेतो ८।४।२७९  
रगार्थे स्येव ८।४।२८०  
हञ्जे चेत्याहाने ८।४।२८१  
ह्रीमाणहे विस्मय निर्वेदे ८।४।२८२  
ण नन्वर्थे ८।४।२८३  
अम्महे हर्षे ८।४।२८४  
ह्रीही विद्रुपकस्य ८।४।२८५  
रेष प्राकृतवत् ८।४।२८६  
अत एत्सौ पुंसि मागप्याम् ८।४।२८७  
र-सोर्ल-शौ ८।४।२८८  
स-घो संयोगे सोमोष्मे ८।४।२८९  
टृ-घयोस्तः ८।४।२९०  
स्य-थयोस्तः ८।४।२९१  
ब-य-वां यः ८।४।२९२  
न्य-म्य-ञ्छ आ ञ्छः ८।४।२९३

मजो ज ८।४।२९४  
उस्य श्रो नादौ ८।४।२९५  
स्य्य-क ८।४।२९६  
स्व प्रेक्षात्रज्ञो ८।४।२९७  
तिष्ठश्चिष्ठ ८।४।२९८  
अर्णाद्रा वसो दाहः ८।४।२९९  
आनो दाहं वा ८।४।३००  
अह-वयमोर्हगे ८।४।३०१  
शेरं शौरसेनीवत् ८।४।३०२  
शो ञ्चः पेशाच्याम् ८।४।३०३  
राज्ञो वा चिञ् ८।४।३०४  
न्य-ण्योर्ञ्ज ८।४।३०५  
णो नः ८।४।३०६  
तदोरत् ८।४।३०७  
लो ल ८।४।३०८  
श-घो स ८।४।३०९  
हृदये यस्य प ८।४।३१०  
दोरतुर्वा ८।४।३११  
कञ्स्तून ८।४।३१२  
द्यून-स्यूनौ घ् ८।४।३१३  
र्य-स्न-ष्ठा रिय-सिन-सटाः क्वचित्  
८।४।३१४  
क्यस्तेय्यः ८।४।३१५  
कृगो हीरः ८।४।३१६  
यादशादेर्दुस्ति ८।४।३१७  
इचेचः ८।४।३१८  
आत्तेश्च ८।४।३१९  
मदिष्यतेय्य एव ८।४।३२०  
अतो वसेर्हातो हात् ८।४।३२१  
तदिदमोष्ठा नेन स्त्रिया तु नाए ८।४।३२२  
शेषं शौरसेनीवत् ८।४।३२३  
न क ग च-जादि षट् शम्यन्त सूत्रोक्तम्  
८।४।३२४  
चूलिका-पेशाचिके तृतीय तुयंयोराय  
द्वितीयौ ८।४।३२५

रस्य लो वा ८।४।३२=६  
 नादि-युञ्जोरन्देशान् ८।४।३२७  
 शेषं प्राक्वत् ८।४।३२८  
 स्वराणां स्वराः प्रायोपञ्चशो ८।४।३२९  
 स्यादौ दीर्घं ह्रस्वौ ८।४।३३०  
 स्पमोरस्योत् ८।४।३३१  
 सौ पुंस्योद्वा ८।४।३३२  
 एट्टि ८।४।३३३  
 डिनेच ८।४।३३४  
 भिस्तेद्वा ८।४।३३५  
 ङसेहै-हू ८।४।३३६  
 म्यसो हुं ८।४।३३७  
 ङसः सु हो-स्वः ८।४।३३८  
 आमो हं ८।४।३३९  
 हुं चेदुद्भयान् ८।४।३४०  
 ङति-म्यस् ङीना हे हुं हयः ८।४।३४१  
 आट्टो णानुस्वारी ८।४।३४२  
 एं चेदुतः ८।४।३४३  
 स्यम् जस् शस लुक् ८।४।३४४  
 पठयाः ८।४।३४५  
 आमन्त्ये ङो होः ८।४।३४६  
 भिस्तुनोर्हि ८।४।३४७  
 ङिना जस् शसोरुदोत् ८।४।३४८  
 ट ए ८।४।३४९  
 ङस-ङस्योर्हो ८।४।३५०  
 म्यसामोर्हुः ८।४।३५१  
 ङेर्हि ८।४।३५२  
 ङ्त्रीवे जस्-शसोरि ८।४।३५३  
 कान्तस्नात उं स्पमोः ८।४।३५४  
 सवदिङ्सेर्हो ८।४।३५५  
 ङिमो ङिहे वा ८।४।३५६  
 ङेर्हि ८।४।३५७  
 यत्तत्किम्यो ङसो ङासुर्न वा ८।४।३५८  
 ङ्रिया ङहे ८।४।३५९

यत्तदः स्यमोर्भुं ८।४।३६०  
 रदम इमुः ङ्त्रीवे ८।४।३६१  
 एतदः स्त्री-पुं ङ्त्रीवे एह एहो एहु  
 ८।४।३६२  
 एर्जस-शसो ८।४।३६३  
 अदस ओह ८।४।३६४  
 इदम आय ८।४।३६५  
 सर्वम्य साहो वा ८।४।३६६  
 किमः काङ्-ङ्वगौ वा ८।४।३६७  
 युष्मदः सौ तुहुं ८।४।३६८  
 जस्-शसोस्तुम्हे तुम्हर्हं ८।४।३६९  
 टा-ङयना पइ तर्हं ८।४।३७०  
 भिसा तुम्हेर्हि ८।४।३७१  
 ङसि-ङस्य्या तउ तुञ्ज तुञ्ज ८।४।३७२  
 म्यसाम्मया तुम्हर्हं ८।४।३७३  
 तुम्हासु सुया ८।४।३७४  
 सावरमदो हउं ८।४।३७५  
 जन् शसोरम्हे अन्हर्हं ८।४।३७६  
 टा-ङयना मर्हं ८।४।३७७  
 अम्हेर्हि भिसा ८।४।३७८  
 महु मञ्जु ङति-ङस्य्याम ८।४।३७९  
 अन्हर्हं म्यसाम्म्याम् ८।४।३८०  
 सुया अम्हासु ८।४।३८१  
 त्यादेशाद्य-उयस्य संबन्धिनो हि न वा  
 ८।४।३८२  
 मथ्य-त्रयस्याद्यस्य हिः ८।४।३८३  
 बहुत्वे हुः ८।४।३८४  
 अन्त्य-त्रयस्याद्यस्य उं ८।४।३८५  
 बहुत्वे हुं ८।४।३८६  
 हि-स्वयोरितुदेत् ८।४।३८७  
 दत्स्यति-स्यस्य स. ८।४। ८८  
 क्रियेः ङीसु ८।४।३८९  
 भुव. पर्यानी हुञ्चः ८।४।३९०  
 ब्रूयो ब्रुपो वा ८।४।३९१

प्रवृत्त ८११२१  
 दशे प्रस ८४०९३  
 प्रहेष्ट ८११२४  
 तस्यादीनां छोल्लादय ८११२५  
 अनादी हारादस्युक्ताना क-ख-न-य-  
 र-पा-ग-घ-द-ध-व मा  
 ८४३९६  
 मोन्नातिको वो वा ८४१९७  
 बाधो रो लुक् ८४३९८  
 अभूतापि क्वचित् ८११२९९  
 आगद्विप्रसवदा द ८११४००  
 क्य-यथा-तथा यादेरेनेमहया डित  
 ८४४०१  
 याहकाहक्रीडाद्या दादेहेह  
 ८११४०२  
 अना ह्रस्व ८११४०३  
 य-नप्रयोक्तस्य द्विदत्त्वत्तु ८११४०४  
 एत्तु क्वचि ८११४०५  
 पान्तान्तोर्दिर्म उ महि ८४४०६  
 वा यत्तक्षोताहेव ८११४०७  
 वद-क्विमोर्दि ८४४०८  
 परस्परस्वादि ८११४०९  
 कादि-स्थितोत्तरा-लापवन्  
 ८४४१०  
 पदाते उ-हु-हि-हकारागन्  
 ८४४११  
 ग्हो म्मो वा ८११४१२  
 अन्याहशोन्नाइसाकारसौ ८११४१३  
 प्रायस पाठ-प्राइव-प्राइव-रगिम्बा  
 ८११४१४  
 वा यथोक्तु ८१४१५  
 कुतस कउ कइन्तिहु ८११४१६  
 ततस्तदोस्त्रो ८११४१७  
 मगात् ८११४१८  
 क्रियायश्च दिवा-सह-नहेः किराहवह दिवे  
 तदु नाहि ८११४१९

पश्चादेवनेवैवेदानो प्रत्युत्तम पठ  
 एन्द्र वि एम्हि पचलेउ एत्तहे  
 ८११२०  
 निप्रगोक्त-वर्मनो बुत-बुत-विच  
 ८४४०१  
 श्रीप्रादीना वहिल्लादय ८११४२०  
 हुहु-बुग्गादय शब्द चोानुकरणो  
 ८४१२३  
 घट्टमादयोन्वय ८११४२४  
 तादर्थ्ये केहि-तेहि-रेवि-रेवि-तरेगाः  
 ८११४२५  
 पुनर्विन. स्वार्थे हु ८४१४२६  
 अन्वयमो हे-ही ८११४२७  
 एकशसो हि ८११४२८  
 अ-उ-हुल्ला स्वार्थि-क-लुक् च  
 ८४१२९  
 योगजाश्चैयान् ८१४३०  
 क्रिया तदन्ताद्भिः ८११४३१  
 आन्तान्ताद्भिः ८११४३२  
 अस्वये ८११४३३  
 युष्मदादेरीयस्य गर ८११४३४  
 अताहेत्तु ८११४३५  
 त्रस्य हेत्तहे ८११४३६  
 ए-तलो पा ८११४३७  
 तव्यस्य इएवउ एवउ एवा ८११४३८  
 क्व इ-इउ-इवि-अय ८११४३९  
 एण्येषि वेञ्जे निव ८११४४०  
 तुम् एवमपाणहमाहि च ८११४४१  
 गनेरेपिपेप्पारेलुंग वा ८११४४२  
 तुनोत्र ८११४४३  
 इवायै न-नउ-नाइ-नावह-इपि-  
 वाव ८११४४४  
 लिङ्गमन्वन् ८११४४५  
 शीरसेनीवत् ८११४४६  
 व्यययश्च ८११४४७  
 रेप सङ्घटवतिरुदन् ८११४४८